महादेव भाई की डायरी



सर्व सेवा संघ - प्रकाशन



महादेवभाई एक गुणी और प्रतिभावान् व्यक्ति थे। मेरे विचार से उनके चरित्र की सबसे बड़ी खूबी थी मौका पड़ने पर अपने को भूलकर शून्यवत् बन जाने की उनकी शक्ति। वह मुझमें पूरी तरह खो गये थे। मुझसे अलग उनकी कोई हस्ती ही नहीं रह गयी थी।

महादेव की एक बड़ी खूबी यह थी कि जो काम उन्हें सौंपा जाता था, उसे करने के लिए वे सदा तैयार रहते और बड़े उत्साह से करते थे। वह मेरे बॉसवेल (जीवनी-लेखक) बनना चाहते थे, फिर भी मुझसे पहले मरना चाहते थे। इससे बेहतर वह क्या कर सकते थे? सो वह तो चले गये, और मुझे अपनी जीवनी लिखने के लिए छोड़ गये।

—मो० क० गांधी

महादेवभाई की डायरी

(गांधीजी के साथ २५ वर्ष)

तीसरा खण्ड

[दिसम्बर १९२० से सितम्बर १९२४ तक]

सम्पादक

नरहरि द्वा० परीख

चन्दुलाल भगुभाई दलाल

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

प्रकाशक : मन्त्री, सर्व सेवा संघ,
राजघाट, वाराणसी-१

संस्करण : पहला

प्रतियाँ : २,००० : फरवरी, १९६६

मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) (६३२५-२१)

मूल्य : ~~छह रुपया~~
: आठ रुपया

Title : MAHADEOBHAI KI DIARY
(GANDHIJI KE SATH 25 VARSH)

Editor : N. D. Parikh
C. B. Dalal

Subject : Biography

Publisher : Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi

Edition : First

Copies : 2,000; February, '66

Price : ~~Rs. 6.00~~
: Rs. 8-00

प्रकाशकीय

यह बड़े हर्ष का विषय है कि सर्व सेवा संघ की ओर से महादेवभाई की डायरियाँ हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं। महादेवभाई देसाई और गांधीजी का सम्बन्ध भारत में कौन नहीं जानता ? दोनों नाम राष्ट्रीय इतिहास में अभिन्न रहेंगे। सन् १९१७ में जब महादेवभाई गांधीजी के पास आये, तब से उन्होंने नियमित रूप से अपनी डायरी लिखी और सन् १९४२ में आगा खाँ महल में वे जब गांधीजी की गोद में सिर रखकर गये, तब तक उनका यह सिलसिला बराबर जारी रहा।

महादेवभाई और गांधीजी का सम्बन्ध दो अभिन्न हृदयों का सम्बन्ध था। महादेवभाई की डायरी का मतलब है, गांधीजी की डायरी। महादेवभाई की इन डायरियों में आपको गांधीजी की राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं से मुलाकात मिलेगी। गांधीजी ने बीमारी में, सन्निपात में कुछ कहा होगा, तो उसका उल्लेख भी उसमें मिलेगा। गांधीजी के ऐतिहासिक और जगत्प्रसिद्ध व्याख्यान इन डायरियों में हैं। अगर राह चलते गांधीजी ने किसी बच्चे के साथ थोड़ा विनोद किया है, तो वह भी इन डायरियों में प्रतिबिम्बित हुआ है। इतिहास में इस प्रकार के डायरी-लेखन का नमूना सिर्फ एक ही मिलता है और वह है, अंग्रेज विद्वान् बॉसवेल का, जिन्होंने डॉ० जॉनसन के जीवन के बारे में लिखा है। लेकिन डॉ० जॉनसन के लेख और महादेवभाई की डायरियों में उतना ही अन्तर है, जितना डॉ० जॉनसन और गांधीजी के जीवन में।

अपने अनेक कामों के बीच जब कभी थोड़ी-सी फुरसत मिली है, महादेवभाई ने गांधीजी के वचनों के उपरान्त अन्य सामग्री से अपनी डायरियों को समृद्ध किया है। महादेवभाई के समान विशाल और गहरा अध्ययन करनेवाले लोग हमारे देश में कम ही मिलेंगे। समय-समय पर उन्होंने डायरियों में अपने व्यापक पठन की कुछ आलोचना भी लिखी है। कभी किसी नये स्थान पर गये, तो उस स्थान का वर्णन भी किया है। कभी किसी नये व्यक्ति से मिले, तो उसका थोड़ा

चरित्र-चित्रण भी किया है और इन छोटे-छोटे परिच्छेदों में महादेवभाई की उच्च कोटि की साहित्यिक प्रतिभा प्रकट हुई है।

सन् १९१७ से १९४२ तक की डायरी याने भारत के अहिंसक राष्ट्रीय आन्दोलन का एक जीता-जागता दिलचस्प इतिहास। गांधीजी के विचारों के अन्तस्तल में प्रवेश कराते हुए उनसे मिलनेवाले, पत्र-व्यवहार करनेवाले हजारों लोगों का सहज स्फूर्त वर्णन कर महादेवभाई ने उस समय के राष्ट्र-मानस का जो चित्र खींचा, वह अपने-आपमें एक विशेषता है।

कुल मिलाकर महादेवभाई की डायरी के प्रकाशन से न सिर्फ भारत के, किन्तु जगत् के साहित्य को लाभ होगा। यह दुर्भाग्य का विषय रहा कि स्व० महादेवभाई अपनी डायरियों को स्वयं सम्पादित न कर सके। एक कर्मयोगी की तरह काम करते हुए वे अचानक हमारे बीच से उठ गये। अपने मित्र के अधूरे काम को पूरा करने की जिम्मेवारी स्व० नरहरिभाई परीख ने मित्र-धर्म के पालन की दृष्टि से उठायी। अपनी प्राण-घातक बीमारी से जूझते हुए भी उन्होंने औसत पाँच-पाँच सौ पृष्ठों की छह डायरियों का पूरा सम्पादन किया। यह काम अपने में ही बहुत बड़ा काम था। लेकिन अभी तो वैसे ही लगभग १५ और खण्डों का सम्पादन बाकी है। आगे के खण्डों का सम्पादन श्री चन्दुलाल भगुभाई दलाल कर रहे हैं।

बहुत समय पहले 'नवजीवन प्रकाशन ट्रस्ट' अहमदाबाद की ओर से हिन्दी में डायरी के तीन खण्ड प्रकाशित हुए थे, जो सन् १९३२-३३ के थे। बीच में स्व० महादेवभाई के पुत्र श्री नारायण देसाई तथा स्व० नरहरिभाई के पुत्र श्री मोहनभाई परीख, जो उनके वारिस भी हैं, का नवजीवन ट्रस्ट के साथ प्रकाशन-अधिकार को लेकर मतभेद हो गया और इस तरह वर्षों तक डायरियों का प्रकाशन-कार्य रुका रहा। उक्त दोनों वारिसों ने डायरी के हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित करने का अधिकार सर्व सेवा संघ को निःशुल्क दिया, यह उनका सौजन्य है तथा संघ उनकी इस कृपा के लिए आभारी है।

पूरी डायरियाँ सन् १९१७ से सन् १९४२ तक के काल की हैं। २५ वर्षों की ये डायरियाँ क्रमशः प्रकाशित होंगी और सर्व सेवा संघ ने यह काम अपने हाथ में ले लिया है। आशा है कि गांधीजी की शत-संवत्सरी सन् १९६९ तक क्रमशः सब खण्ड प्रकाशित हो जायेंगे। नवजीवन द्वारा पूर्व प्रकाशित सन् १९३२-३३ के तीनों खण्ड भी यथाक्रम प्रकाशित होंगे।

हमें विश्वास है कि इस ऐतिहासिक डायरी का सर्वत्र स्वागत होगा।

तीसरा खण्ड

इस खण्ड में ता० १८-१२-'२० से जून '२१ तक की और फिर ता० १८-१-'२४ से २५-९-'२४ तक की डायरी ली गयी है। जून '२१ से दिसम्बर '२३ तक यानी लगभग ढाई वर्ष तक की डायरियाँ इसलिए नहीं लिखी जा सकीं कि श्री महादेवभाई पं० मोतीलाल नेहरूजी के साथ इलाहाबाद में थे। इस बात का स्पष्टीकरण प्रस्तावना में हुआ ही है।

इसके पूर्व डायरी के दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन अब उनके नये संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं। अब डायरियों का आकार भी बदल दिया गया है।

कागज, छपाई तथा अन्य सब प्रकार की महँगाई के बावजूद प्रत्येक खण्ड का मूल्य रु० ६.०० रखा गया है, जो लागत मात्र है।

१२-२-'६६

प्रस्तावना

यह डायरी बीच के फुटकर व्यवधानों के साथ जून १९२१ तक की है। दिसम्बर १९२१ में महादेवभाई गिरफ्तार हुए, तब तक वे पंडित मोतीलालजी के साथ थे। उस समय श्री कृष्णदास नाम के एक बंगाली सज्जन गांधीजी के साथ घूम रहे थे। उन्होंने 'गांधीजी के साथ सात मास' नामक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी है।

दूसरी डायरियों की तरह गांधीजी के कुछ सुन्दर पत्र भी इस डायरी का बड़ा आकर्षक अंग है। इनके सिवा ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी वफादारी कैसे छोड़नी पड़ी और उसके साथ असहयोग क्यों करना पड़ा, इस बारे में अंग्रेज जाति को और अन्य लोगों को लिखी गयी खुली चिट्ठियाँ भी परिशिष्ट (पृष्ठ ३०९–३२८) में दी गयी हैं।

—नरहरि परीख

× × ×

डायरी के इस (गुजराती छठे) खण्ड की शुरुआत ता० १८-१-'२४ से होती है। गुजराती पाँचवाँ (हिन्दी दूसरा)* खण्ड सन् १९२१ के जून मास तक का था। बीच के समय की लगभग ढाई वर्ष की अवधि दो भागों में बाँटी जा सकती है: (१) गांधीजी के कारावास से पहले का, और (२) कारावास का।

उन्हें ता० १०-३-'२२ को गिरफ्तार किया गया। उससे पहले अहिंसात्मक असहयोग का जो बीज उन्होंने बोया था, उसके अँखुए समूचे देश में फूट निकले थे। इस समय के दौरान वे बम्बई, पूना, अलीगढ़, संयुक्त प्रान्त, बंगाल, आसाम, मद्रास, दक्षिण भारत, पंजाब वगैरह प्रान्तों में कई जगह घूमे। सब जगह असहयोग का कार्यक्रम समझाया, फैलाया और उस पर अमल कराया। अनेक स्थानों पर

* सर्व सेवा संघ द्वारा प्रकाशित हिन्दी संस्करण में सन् '२१ का अंश नहीं लिया गया है। प्रस्तुत तीसरे खण्ड में वह अंश दिया जा रहा है। —सं०

भारी सभाएँ हुईं और विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलायी गयीं। उनका भ्रमण असहयोग-आन्दोलन को चालू रखने के लिए था।

सन् १९२१ के अन्त में कांग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद में करने का निश्चय किया गया था। उसके लिए देश को तैयार करना था, और इसीके लिए गांधीजी ने यह भ्रमण किया था।

सरकार ने पहले तो कांग्रेस द्वारा सूचित बहिष्कारों की हँसी उड़ायी। उसने यह माना कि विदेशी कपड़ों की होली करना तो केवल उफान है। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे उसके मन में डर पैठता गया। गांधीजी की प्रखर वाणी लोगों में सरकार के प्रति नफरत पैदा करने लगी, तो सरकार घबरायी, उत्तेजित हुई और उसने कांग्रेस के विरुद्ध हथियार सँभाले।

गांधीजी कलकत्ता से मद्रास जा रहे थे, तब मौलाना मुहम्मदअली उनके साथ थे। मौलाना को वाल्टेर स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में मौलाना शौकतअली भी पकड़े गये। गांधीजी के मलाबार जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। लाला लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू वगैरह की गिरफ्तारियाँ हुईं। सन् १९२१ के अन्त में अहमदाबाद में होनेवाले कांग्रेस के अधिवेशन के लिए मनोनीत अध्यक्ष देशबन्धु चित्तरंजन दास को भी गिरफ्तार कर लिया गया। फिर भी कांग्रेस का अधिवेशन तो हुआ ही।

बाद में बारडोली से सविनय भंग की लड़ाई शुरू करने का निश्चय किया गया। परन्तु उसके आरम्भ होने से पहले चौरीचौरा में लोग होश भूल गये। उन्होंने पुलिस के थाने जला दिये और पुलिस के आदमियों की हत्या कर डाली। इस कारण आन्दोलन शुरू न करने का निर्णय किया गया।

लड़ाई का ज्वार उतरता गया। लोगों में निराशा छा गयी।

मौका देखकर सरकार ने प्रहार किया।

ता० १०-३-'२२ को गांधीजी अहमदाबाद में गिरफ्तार कर लिये गये। १८ तारीख को मुकदमा चलाकर उन्हें छह वर्ष की सजा दे दी गयी। २० तारीख को उन्हें साबरमती (अहमदाबाद) जेल से ले गये और २१ तारीख को यरवड़ा-जेल में बन्द कर दिया। अन्त तक उन्हें वहीं रखा गया।

सजा की मीयाद तो ता० १७-३-'२८ को पूरी होती थी। मगर ता० ५-१-'२४ से उनके पेट में दर्द शुरू हुआ, ता० १० को डॉक्टरों को शक हुआ कि उन्हें अपेण्डिक्स का दर्द होगा। ता० १२ को उन्हें जेल से हटाकर सासून अस्पताल में ले जाया गया और ऑपरेशन किया गया।

इस बीच विलायत के राजनैतिक वातावरण में परिवर्तन हुआ। ता० २२ को मजदूर दल के नेता रॅमजे मॅकडोनल्ड वहाँ के प्रधानमन्त्री बने। गांधीजी को छोड़ने के लिए ता० ५-२-'२४ को भारत की बड़ी धारासभा में प्रस्ताव आनेवाला था, परन्तु उससे पहले आधी रात को बात जाहिर हो गयी कि गांधीजी को छोड़नेवाले हैं। ता० ५ को सुबह आठ बजे उन्हें छोड़ दिया गया।

इस सारे समय—अर्थात् ता० १२-१-'२४ से ४-२-'२४ तक—गांधीजी अस्पताल में थे। जेल में नहीं थे; परन्तु वे कैदी तो थे ही। फिर भी उनके स्वास्थ्य को देखते हुए उनसे मिलनेवालों पर पाबन्दियाँ ढीली कर दी गयी थीं। तदनुसार सार्वजनिक मुलाकात का हाल पहले-पहल ता० १८-१-'२४ को नोट किया गया होगा और इस तरह यह डायरी वहीं से शुरू होती है।

प्रश्न यह होता है कि इस सारे समय के बीच की—जुलाई १९२१ से ता० १७-१-'२४ तक की—महादेवभाई की डायरी नहीं है? नहीं तो क्यों नहीं?

इन प्रश्नों के स्पष्टीकरण का यहाँ प्रयत्न किया गया है।

ता० ५-२-१९१९ से 'इंडिपेंडेंट' नामक एक अंग्रेजी राष्ट्रीय दैनिक पत्र सैयद हुसैन के सम्पादकत्व में इलाहाबाद से निकलना शुरू हुआ था। इसके मुख्य संस्थापक पं० मोतीलाल नेहरू थे। सन् १९२१ में उसके सम्पादक ज्यॉर्ज जोसफ थे। उस समय इस पत्र पर सरकार के प्रहार का डर था। इसलिए पंडितजी की माँग पर गांधीजी ने महादेवभाई को इलाहाबाद भेज दिया था। सरकार से इस पत्र का तेज सहन नहीं हुआ, तो थोड़े समय में नेहरू पिता-पुत्र और सम्पादक ज्यॉर्ज जोसफ की गिरफ्तारी हुई और पत्र से दो हजार रुपये की जमानत माँगी गयी। ता० ७-१२-'२१ को जमानत जमा कराकर महादेवभाई सम्पादक बने। ता० २० को सरकार ने यह जमानत जब्त कर ली और दस हजार रुपये की नयी माँग की। वह अदा नहीं की गयी और ता० २२ को महादेवभाई ने इस पत्र का हस्तलिखित संस्करण निकाला और उसमें यह ध्यानाकर्षक वाक्य लिखा : 'I change, but I cannot Die.' (मैं बदलता हूँ, परन्तु मरूँगा नहीं।)

सरकार से यह कैसे सहन होता? उसने महादेवभाई को गिरफ्तार कर लिया और ता० २४-१-'२१ को उन्हें एक वर्ष की सख्त कैद की सजा दे दी और सौ रुपया जुर्माना कर दिया; और जुर्माना अदा न करने पर और एक मास की सजा। महादेवभाई ता० २३-१-'२३ को छूटे।

जुलाई १९२१ से उनकी गिरफ्तारी होने तक (ता० २४-१२-'२१ तक) उन्होंने डायरी लिखी होगी या नहीं, यह जानकारी नहीं मिलती। लिखी होगी तो ऐसा अनुमान करना होगा कि वह गुम हो गयी होगी। परन्तु इस समय के

दरमियान उनका और गांधीजी का पत्र-व्यवहार जारी था; तथा नवजीवन में उनके दो लेख, उन्हें सजा दी गयी उस समय का उनका बयान तथा कारावास के दौरान लिखे गये दो पत्र छपे थे। इसके सिवा उनके छूटने के बाद—खासकर काका-साहब कालेलकर को सजा हुई तब से (ता० २०-२-'२३ से), गांधीजी के नवजीवन का सम्पादक-पद सँभालने तक (ता० ६-४-'२४ तक) नवजीवन चलाने का भार मुख्यत: महादेवभाई पर ही था। इसलिए कहा जा सकता है कि ता० १७-१-'२४ तक के समय की डायरी 'नवजीवन' के अंक ही बने रहे।

इस प्रकार १९२१ के जुलाई मास से ता० २४-१२-'२१ तक की और ता० २३-१-'२३ से ता०१७-१-'२४ तक के समय की सामग्री तो है ही और वह इतनी है कि डायरी की एक पूरी पुस्तक बन जाय।

परन्तु डायरी का पहला* खण्ड जैसे समय की दृष्टि से डायरी की शुरुआत नहीं बताता और जैसे चौथे* खण्ड से† तीसरे खण्ड का क्रम नहीं बैठता, वैसे डायरी का यह छठा† खण्ड भी पाँचवें† खण्ड के क्रम में नहीं बैठता। पहले खण्ड की तरह छठे खण्ड में भी ऐसी जानकारी से ही शुरुआत की गयी है, जिसमें लोगों को दिल-चस्पी हो। और पाँचवें तथा छठे† खण्डों के बीच के समय की सामग्री भविष्य में एक अलग खण्ड के रूप में दी जायगी, अभी तो इतना ही कहा जा सकता है।

× × ×

गांधीजी की गिरफ्तारी उनके लिखे हुए तीन लेखों–(१) Tampering with Loyalty (राजद्रोह), (२) The Puzzle (वॉइसराय की परेशानी) और (३) Shaking the Manes (हुंकार) के सिलसिले में हुई थी। उन पर यह अभियोग लगाया गया था कि ये लेख राजद्रोह फैलाने-वाले हैं। गांधीजी ने आरोप स्वीकार किया, जज ब्रूमफील्ड ने इसके लिए उनका उपकार माना और छह वर्ष की सजा सुना दी।

इस समय देश के सामने कोई खास आन्दोलन का कार्यक्रम नहीं था। केवल कांग्रेस द्वारा सूचित बहिष्कारों का रचनात्मक कार्यक्रम था। गांधीजी की गिर-फ्तारी के बाद थोड़े समय तो इस दिशा में काम हुआ, परन्तु समय बीतने पर वह ढीला पड़ गया, इसमें भाटा आता गया और असहयोग के कार्यक्रम की सफलता के विषय में लोगों के मन में शंका पैदा हो गयी। कितने ही अग्रगण्य नेताओं को लगा कि यह कार्यक्रम नहीं चल सकेगा। परिणामस्वरूप जो सात बहिष्कार कांग्रेस ने निश्चित किये थे, वे नरम पड़ते गये। विद्यार्थी सरकारी या सरकार द्वारा मान्य

* नवजीवन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित।

† सर्व सेवा संघ द्वारा प्रकाशित हिन्दी के दूसरे और तीसरे खण्ड के बीच की सामग्री।

पाठशालाओं में वापस चले गये; जिन वकीलों ने वकालत छोड़ी थी, उन्होंने फिर से शुरू कर दी, लोग विलायती वस्त्रों का उपयोग करने लगे और धारा-सभाओं का बहिष्कार छोड़कर उनमें प्रवेश करके सरकार को चुनौती दी जाय, इस प्रकार का मानस बनता गया। लोगों को और कुछ नेताओं को इस आखिरी चीज में मुकाबला करने का अवसर दिखाई दिया। परन्तु सब इस राय के नहीं थे; इसलिए कांग्रेसियों में साफ दो दल बन गये—स्वराज्यवादी और अपरिवर्तनवादी। जो धारासभाओं में जाने के पक्ष में थे, वे स्वराज्यवादी कहलाये और जो कांग्रेस के मूल कार्यक्रम पर डटे रहने के पक्ष के थे, वे अपरिवर्तनवादी कहलाये।

जब तक गांधीजी जेल में थे, तब तक इन दोनों पक्षों के बीच खाई जरूर दिखाई देती थी, परन्तु वह उग्र नहीं बनी थी। यह कहा जा सकता है कि अपरिवर्तनवादियों की स्थिति बिना मालिक के पशुओं जैसी थी। स्वराज्यवादियों के पक्ष में कांग्रेस के महारथी थे—मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, पंडित मदनमोहन मालवीय वगैरह; जब कि अपरिवर्तनवादियों के पक्ष में मुख्यतः मूक भाव से रचनात्मक कार्य करनेवाले थे। गांधीजी के छूटने पर इन लोगों को लगा कि अब हमारी कोई सुनेगा।

छूटने के बाद थोड़े समय तक गांधीजी पूना में रहे। फिर स्वास्थ्य ठीक होने पर अधिक आराम के लिए ता० ११-३-'२४ को बम्बई आये और जूहू में सेठ नरोत्तम मुरारजी के बँगले में रहे। यहाँ उन्होंने कुछ सार्वजनिक प्रवृत्तियाँ कीं—वाईकोम-सत्याग्रह के सिलसिले में सलाह दी, अनेकों से मुलाकातें कीं, बुद्ध-जयन्ती के उत्सव में प्रवचन किया वगैरह-वगैरह। परन्तु मुख्यतः तो उन्होंने अलग-अलग राजनैतिक मन्तव्य रखनेवाले नेताओं के साथ चर्चा की। उस पर से उन्होंने देख लिया कि लोग असहयोग की लड़ाई के लिए तैयार नहीं; कांग्रेस के बताये हुए बहिष्कारों पर अमल करने को तैयार नहीं। और यह भी देखा कि स्वराज्यवादियों के पक्ष में जो बड़े लोग हैं, उनका अनादर करके, उनसे ऊपर होकर, उनका सामना करके कांग्रेस की नाव बहुत सही सलामत किनारे नहीं पहुँचायी जा सकती। इसलिए दिल से पक्के असहयोगी होने पर भी उन्होंने असहयोग का कार्यक्रम ढीला कर दिया—लगभग छोड़ दिया—स्वराज्यवादियों के साथ चर्चा की; और अन्त में एक तरफ उनके और दूसरी तरफ दास बाबू और मोतीलाल नेहरू के हस्ताक्षरों से ता० २२-५-'२४ को बयान प्रकाशित किया गया।

ता० २९-५-'२४ को गांधीजी अहमदाबाद आये। वहाँ जून मास के अन्त में महासभा की वह ऐतिहासिक बैठक हुई। उसमें काफी उग्र चर्चाएँ हुईं, दिल के गुबार निकले, रूठना हुआ, मनाना हुआ, आँसू बहाये गये और ऐसी बहुत बातें

हुई । गांधीजी को बहुमत मिलने पर भी ऐसा लगा कि वे हारे और हने गये । (पृष्ठ २००–२०५)

इस बीच और उसके बाद के समय में देश में जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे फूट निकले । गांधीजी को बहुत दुःख हुआ । दिल्ली में मौलाना मुहम्मदअली के घर में ही उन्होंने ता० १७-९-'२४ से इक्कीस दिन के उपवास जातीय एकता की साधना में किये । (पृष्ठ २८८–३०६) देश के सभी धर्मों के अगुआ मिले, चर्चाएँ कीं और जातीय मेल-जोल स्थापित करने का आश्वासन दिया ।

गुजराती के छठे खण्ड को पूरा न लेकर उसमें से ता० २५-९-'२४ तक का अंश तथा सम्बद्ध परिशिष्ट ही इस खण्ड में लिये गये हैं । गुजराती का छठा खण्ड ता० २९-१२-'२४ तक का है । इन तीन महीनों की डायरी हिन्दी के चौथे खण्ड में दी जा रही है ।

गांधीजी के २१ दिन के उपवास १७-९-'२४ से शुरू हुए थे । इस खण्ड में इन उपवासों के पहले सप्ताह का ही वर्णन आ पाया है । उपवास की समाप्ति, सर्वदल-सम्मेलन, कोहाट के साम्प्रदायिक दंगे तथा बेलगाँव-कांग्रेस के लिए अध्यक्ष-पद की स्वीकृति आदि के प्रसंग तथा तत्सम्बन्धी चर्चाओं का उल्लेख चौथे खण्ड में दिया जा रहा है ।

डायरी में गांधीजी के लिखे हुए कुछ पत्रों का भी समावेश किया गया है, और अन्त में थोड़े-से परिशिष्ट दिये गये हैं ।

ता० २९-६-'६४ —चन्दुलाल भगुभाई दलाल

जब हम कुदरती ताकतों पर सत्ता इस्तेमाल करने लगते हैं, तब प्रकृति से अलग हो जाते हैं। हम प्रकृति को अपनी दासी बनाने लगते हैं, परन्तु ऐसा करते हुए हम उसके साथ का सम्पर्क खो बैठते हैं। हम अपने आसपास की दुनिया का ही विचार करने लगते हैं। इसमें विविध प्रकार के भय समाये हुए हैं। यान्त्रिक रचनाओं द्वारा हम प्रकृति को हमारे लिए काम करने को बाध्य करते हैं। च्वांग त्सू के लेखों में एक ऐसी बात आती है कि कन्फ्यू-शियस का एक पण्डित शिष्य एक माली से मिला। वह अपनी फूलों की क्यारियों को पानी पिलाने के लिए कुएँ से एक-एक बालटी भरकर ला रहा था। उसके लिए उसे कुएँ के बहुत चक्कर लगाने पड़ते थे। उस पण्डित ने पूछा कि "तुम्हारी मेहनत हलकी हो जाय, तो क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा?" माली ने जवाब दिया: "सो कैसे?" पण्डित ने कहा: "एक सिरे पर मोटा और भारी तथा दूसरे सिरे पर पतला एक लम्बा लकड़ा लेकर उसका उच्चालन (ढेंकी) बनाओ। ऐसा करके तुम पानी निकाल सकोगे। तुम्हें झुक-झुककर पानी नहीं खींचना पड़ेगा। इसे पानी खींचने की ढेंकी कहते हैं।" वह माली साधु-पुरुष था। उसने उत्तर दिया: "मेरे गुरु ने ऐसा कहा है कि यदि कोई मनुष्य यंत्र का उपयोग करता है तो उसे अपनी सारी प्रवृत्ति यांत्रिक ढंग से करने की आदत पड़ जाती है। जो आदमी अपना

काम यांत्रिक ढंग से करता है, उसका हृदय यंत्र-जैसा (जड़) बन जाता है। और यंत्र-जैसे हृदयवाला इन्सान शुद्ध एकता (समग्रता) का ग्रहण नहीं कर सकता। वह जटिलता में (अलग-अलग विभागों में) उलझ जाता है।"*

× × ×

"नीति-धर्म इसके सिवा और कुछ नहीं कि प्राणिमात्र के प्रति आदर अथवा समभाव रखा जाय। जीवमात्र के प्रति आदर रखने से हमें नीति का मूलभूत सिद्धान्त मिल जाता है। वह सिद्धान्त यह है कि जीवमात्र की रक्षा करना, उसे मदद देना और उसका विकास करना ही कल्याण-मार्ग है। जीव का नाश करना, उसे चोट पहुँचाना या उसकी वृद्धि में रुकावट डालना ही पाप का मार्ग है।

× × ×

हिंसात्मक कार्य के लिए मेरा उपयोग करने की कोशिश बेकार होगी। गुप्त रीतियाँ मैं नहीं जानता। सत्य के सिवा कोई राजनीति मुझे मालूम नहीं। अहिंसा के अलावा मेरे पास कोई हथियार नहीं है।

—गांधीजी

× × ×

इसमें नैतिक दृष्टि का अभाव है। सत्य और अहिंसा की शाश्वत विजय के बारे में श्रद्धा की कमी है!

—गांधीजी

---

* यह उद्धरण कहाँ से लिया गया है, इसका उल्लेख महादेवभाई ने नहीं किया है। इसलिए सन्दर्भ खोजा नहीं जा सका। —सं०

१८-१२-'२० से
४-१-'२१

सुबह बारह बजे नागपुर पहुँचे। जमनालालजी की बढ़िया व्यवस्था। भारी प्रेम।

तारीख १८ की शाम को सार्वजनिक सभा।

बापू का भाषण :

हिन्दुस्तान में हम दोनों भाई (मौलाना शौकतअली और गांधीजी) कुछ महीनों से घूम रहे हैं। हमारे सदर साहब ने मौलाना साहब का परिचय नहीं कराया, क्योंकि वे छिंदवाड़ा में बहुत समय तक आपके मेहमान रहे थे। आप जानते हैं कि वे छिंदवाड़ा में सरकार के कैसे मेहमान थे और आज हम दोनों क्या काम कर रहे हैं। जिन वकीलों ने वकालत छोड़ी, उन्हें मैं धन्यवाद देता हूँ और कहता हूँ कि केवल इतने से काम नहीं चलेगा। नागपुर में कांग्रेस को आमन्त्रित किया, उसकी शोभा कैसे रहेगी ? सुना है मध्यप्रान्त में अच्छा काम हो रहा है और कांग्रेस में अच्छा काम होगा। यह अच्छी बात है कि मद्यपान छुड़वाने का आन्दोलन यहाँ अच्छा चल रहा है। मैं कहता हूँ कि उसे छुड़वाने में भी हमारी विजय है। हम असहयोग करना चाहते हैं और शराब पीकर दिमाग को गर्म करके न करने योग्य काम करेंगे, तो उसका नाम न अमन है, न शान्ति। अमन न रखेंगे तो इस जन्म में अंग्रेजी सल्तनत को नहीं मिटा सकेंगे। इसे ठीक करना या मिटाना हो तो शान्तिमय असहयोग के सिवा कोई भी हथियार नहीं है। मैं कहता हूँ कि यह हुकूमत शैतानियत से भरी है। शैतान को मजबूर करना हो, दूर करना हो तो यह शैतानियत से नहीं होगा। हमें खुदा की ही मदद लेनी चाहिए। हमारी लड़ाई अधर्म के विरुद्ध धर्म की लड़ाई है। पंजाब और खिलाफत के अन्यायों के बावजूद सल्तनत पश्चात्ताप नहीं करना चाहती। हमसे कहती है कि खिलाफत और पंजाब को भूलकर जो काम करना हो सो करो। जब तक हिन्दू-मुसलमानों की सच्ची एकता न हो, तब तक मैं दोनों से कहता हूँ कि इस हुकूमत को मिटाना असंभव है। इसी शर्त पर वह शक्य है। शान्तिमय असहयोग परम धर्म है।

अधर्म और धर्म के बीच कभी सहयोग नहीं हो सकता। शैतान की सहायता छोड़ना बहादुरी का काम है। इसीलिए जमनालालजी आज इसके अध्यक्ष बनकर बैठे हैं। जलता हुआ घर छोड़ते समय हम यह खयाल नहीं करते कि घर छोड़ें या नहीं। कौंसिलों में जाने से न पंजाब को ठीक किया जा सकता है, न खिलाफत को। पंजाब को न्याय तभी दिलाया जा सकता है, जब स्वराज्य ले सकेंगे।

सात करोड़ मुसलमान और तेईस करोड़ हिन्दू एकता के बिना और किसी शर्त पर साथ नहीं रह सकते।

अब तक प्रस्ताव पास किये, अब काम करने का समय आया है। कांग्रेस के जलसे से पहले यदि आपको कुछ काम कर दिखाना हो, तो नागपुर के सब स्कूल-कॉलेज खाली करने चाहिए।

खापर्डे और मेरे बीच भारी मतभेद है, परन्तु उन्हें कोई तंग करे तो उसे मैं पसन्द नहीं करता। मेरी माँग है कि जैसी स्वतन्त्रता मैं चाहता हूँ, वैसी खापर्डे को भी देनी चाहिए। हम अपने कामों से अच्छा परिणाम बतायेंगे तो देखेंगे कि खापर्डे और सब हमारे हो जायँगे।

हममें ऐसी व्यवस्था करने की ताकत होनी चाहिए कि हमारा सारा प्रबन्ध एक वर्ष के भीतर हो सके। ऐसा विश्वास रखना चाहिए कि पंजाब के लिए हमें न्याय अवश्य मिल सकेगा। हम डरपोक हैं, इसीलिए मुट्ठीभर अंग्रेज यहाँ राज कर रहे हैं। भविष्य में ऐसा विश्वासघात न हो सके, इसीलिए स्वराज्य चाहिए। हम अमली काम के लिए तैयार नहीं होंगे, तब तक कुछ नहीं कर सकते। यह पता नहीं चल सकता कि स्वदेशी में क्या कुर्बानी है। हमारे लिए यह ऐसा मौका है, जो मिस्र और कोरिया में नहीं था। भारत में तीस करोड़ लोग हैं। मिस्र में मुट्ठी-भर लोग हैं। सारे देश के लिए हम दोनों भाई पदार्थपाठ हैं। जैसे दो सगे भाई रहते हैं, वैसे हम रहते हैं। हम दोनों साफ-दिल हैं।

शौकतअली : साफ-साफ कह दिया जाय कि न्याय नहीं मिलेगा, तो भारत में या तो अकेले अंग्रेज रहेंगे या अकेले भारतवासी रहेंगे। इन पहाड़ों में शिवाजी कब पैदा होंगे ? क्या अब मराठा स्त्रियों की कोख से ऐसे लड़के नहीं निकलेंगे, जिनकी गद्दी घोड़े की पीठ पर हो और घर हजार कोस दूर हो ? मैं चाहता हूँ कि आपके कदम पीछे न हटें, बल्कि चार कदम आगे बढ़ें।

नागपुर-कांग्रेस में दिये गये भाषण

१

कांग्रेस के ध्येय-सम्बन्धी प्रस्ताव पर विषय-समिति में दिया गया भाषण :

मेरी जानकारी के अनुसार आज व्यासपीठ पर से मेरे प्रस्ताव के विरुद्ध दो प्रकार की आपत्तियाँ पेश होंगी। उनमें से एक यह है कि ब्रिटिश-सम्बन्ध हमेशा के लिए तोड़ने का विचार हम आज ही न करें। मैं जो कह रहा हूँ, वह यह है कि किसी भी कीमत पर ब्रिटिश-सम्बन्ध को बनाये रखना जनता के स्वाभिमान को गिरानेवाला है। हम जो असह्य दुःख सह रहे हैं, उन्हें दूर कराना प्रत्येक भारतीय का निजी कर्तव्य है। ब्रिटिश सरकार बेइन्साफी दूर करने से इनकार करती है। इतना ही नहीं, वह अपनी भूल तक स्वीकार नहीं करती। और उसका यही रवैया बना रहे तो भी हमें ब्रिटिश-सम्बन्ध कायम रखना है, यह हम नहीं कह सकते। हमारे मार्ग में कितनी ही कठिनाइयाँ हों, तो भी हमें सारे भारत और दुनिया पर जाहिर कर देना चाहिए कि यदि ब्रिटिश जनता इतना सादा न्याय भी नहीं देगी, तो कदाचित् हम ब्रिटिशों के साथ अपना सम्बन्ध सुरक्षित नहीं रख सकेंगे। मैं क्षणभर के लिए भी यह नहीं सुझाना चाहता कि हमें किसी भी तरह ब्रिटिश-सम्बन्ध तोड़ ही डालना है। यदि ब्रिटिश-सम्बन्ध से हिन्दुस्तान की प्रगति होती हो, तो हमें उसे नहीं मिटाना है; परन्तु यदि वह हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान में बाधक होता हो, तो उसे तोड़ डालना हमारा पवित्र कर्तव्य है। जो दल यह मानता है कि ब्रिटिश-सम्बन्ध कायम रखने से हम खुद भी विशुद्ध हो सकेंगे और ब्रिटिश जनता को भी विशुद्ध कर सकेंगे और जिस दल को ऐसा जरा भी विश्वास नहीं, उन दोनों दलों के लिए इस प्रस्ताव में स्थान है। उदाहरणार्थ, मि० एण्ड्रूज का दृष्टान्त लीजिए। वे कहते हैं कि ब्रिटिश-सम्बन्ध कायम रखने में भारत के लिए जरा भी शुभ आशा नहीं है। उनका कहना यह है कि भारत को इंग्लैण्ड से अलग होकर बिलकुल स्वतन्त्र बन जाना चाहिए। मि० एण्ड्रूज जैसों के लिए भी इस सुधरे हुए कांग्रेस-सिद्धान्त में स्थान है। दूसरा दृष्टान्त खुद मेरा और शौकतअली का है। हमारे दुःख दूर हों या न हों, फिर भी हमें ब्रिटिश साम्राज्य में ही अपना विकास करना पड़ेगा, यह सिद्धान्त सदा के लिए स्वीकार किया जाता हो, तो उसमें हमारे लिए स्थान नहीं है।

ऐसे ध्येय में मेरा स्थान नहीं हो सकता। इस नये ध्येय में दोनों मतों के अनुयायियों को इकट्ठा करने का बल निहित है और साथ ही ब्रिटिश जनता भी सचेत होगी कि वह न्याय नहीं देना चाहती हो, तो इस साम्राज्य का नाश करना प्रत्येक भारतवासी का पवित्र कर्तव्य हो जायगा।

अब हमें साधन-सम्बन्धी दलीलों पर विचार करना है। अन्तिम उत्तर देने का मुझे हक है, इसलिए इस प्रश्न में मैं इस समय नहीं जाना चाहता। अभी तो मैं केवल बंगाल प्रान्त की छावनी में घटित कल की घटना ने जो सबक सिखाया, उस ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। आपको स्वराज्य चाहिए तो वह कैसे लिया जाय, इसका एक दिग्दर्शन कल हुआ। कल बंगाल की छावनी में थोड़ी खींचातानी और मारपीट हुई, थोड़ा मतभेद भी उत्पन्न हुआ। मतभेद तो जब तक दुनिया है, तब तक रहेगा ही। मैं पति-पत्नी के बीच के मतभेदों से परिचित हूँ, क्योंकि मैं अभी तक पति हूँ। मैंने भाई-भाई के बीच के झगड़े देखे हैं, क्योंकि मैं चार लड़कों का बाप हूँ और उन सबमें शारीरिक युद्ध में तो मुझे खत्म कर डालने की शक्ति है। पति और पिता के रूप में मुझे विविध अनुभव हो चुके हैं। मैं जानता हूँ कि हममें हमेशा खींचातानी होती रहेगी। परन्तु जिस बोधपाठ की तरफ मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, वह यह है कि मुझे दोनों पक्षों के सामने बोलने का सम्मान मिला है, उन्होंने मेरी बात पूरे ध्यान से सुनी है और इससे भी अधिक बात तो यह है कि मैंने उनके सामने नम्रभाव से जो बोध रखा, उसे ग्रहण करके उन्होंने मेरे प्रति अपनी भावना, प्रेम और भ्रातृभाव प्रदर्शित किया है। यदि आप दृढ़ हों, आप बहादुर हों, यदि स्वराज्य लेने का आपका निश्चय हो और यदि आपको सचमुच कांग्रेस के ध्येय में परिवर्तन करना हो, तो आपको अपने क्रोध का शमन करना होगा। अन्याय की कुछ भी भावना आपके हृदय को कुतरकर खा रही हो, तो आपको उसे दबा देना पड़ेगा और यह सब कुछ भूल जाना होगा। बगाली भाई और अन्य सब, जो इस परिषद् में दृढ़ निश्चय करके आये हैं, उनसे मैं यही चाहता हूँ कि आप अपने देश को स्वतन्त्र करने के सिवा और किसी भी चीज के पीछे कोशिश मत कीजिए, अपने निजी अधिकार आगे बढ़ाने आदि की किसी बात की चिन्ता मत कीजिए और अपने देश के स्वाभिमान की रक्षा के अलावा किसी बात पर ध्यान न दीजिए। कल जिनके जी

दुखे और जिन्हें कल अपने सिर फूटे हुए मालूम हुए, उनके दृष्टान्त का अनुकरण करने की मैं आपमें से प्रत्येक को सलाह देता हूँ (हर्षनाद)। कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में प्रस्ताव पास करके हम जिस महान् युद्ध में उतरे हैं, उसके समाप्त होने से पहले शायद हमें खून का समुद्र पार करना होगा। इस बात का मुझे भान है; परन्तु हम पर या हममें से किसी पर खून बहाने का आरोप न आना चाहिए। भावी सन्तानों से हमें कहलवाना चाहिए कि हमने सहन किया है, हमने दूसरे का नहीं, परन्तु अपने प्राणों का बलिदान दिया है। और इसलिए मैं निःसंकोच कहता हूँ कि जिनके सिर फूटे और जिनकी जान जोखिम में पड़ी कही जाती है, उनके लिए मैं बहुत सहानुभूति दिखाना नहीं चाहता। ऐसा होने से चला क्या गया ? दूसरों के हाथों मरने की अपेक्षा अपने देशभाइयों के ही हाथों मरना बेहतर है। हमें किसलिए और किससे बदला लेना है ?

मैं आपमें से प्रत्येक से चाहता हूँ कि किसी भी अवसर पर अपने देश के भाई के विरुद्ध आपका खून उबल रहा हो (फिर भले ही वह सरकारी नौकरी में हो, खुफिया पुलिस में हो या गुप्तचर हो), तो आपको गुस्सा दबाकर रखने और चोट का बदला चोट से लेने से रुक जाने की सावधानी रखनी होगी। ऐसा समझिए कि जिस क्षण आप बदले का वार करेंगे, उसी क्षण आपका काम मिट्टी में मिल जायगा। यह आपका अहिंसात्मक कार्यक्रम है। जो लोग दौड़कर अध्यक्ष महोदय के सामने झगड़ा ले जाने से रुक गये, उन्हें मैं बधाई देता हूँ। यह प्रस्ताव केवल हर्षनाद से ही पास न कीजिए, यद्यपि इस प्रस्ताव के लिए मुझे आपके हर्षनाद की जरूरत तो पड़ेगी ही। यह प्रस्ताव पास करने के साथ ही मैं आपसे ऐसी श्रद्धा और निश्चय की आशा रखता हूँ, जो दुनिया में किसीसे विचलित न हो सके। मैं जानता हूँ कि आपका निश्चय जैसे-तैसे जल्दी स्वराज्य प्राप्त करने का है। और वह स्वराज्य वैध, सम्मानपूर्ण, अहिंसात्मक और शान्त साधनों से ही लेने की आपकी इच्छा है। हथियारों से हम सरकार का मुकाबला नहीं कर सकते, जिसे मैं आत्मबल कहता हूँ, उसके द्वारा सरकार के विरुद्ध जूझ सकते हैं। यह आत्मबल किसी एक ही मनुष्य के—फिर वह संन्यासी हो या नामी महात्मा हो—अधिकार की बात नहीं है। आत्मबल स्त्री या पुरुष सभी मनुष्यों के अधिकार की बात है, इसलिए मेरे देशबन्धु यदि यह प्रस्ताव स्वीकार करना चाहते हैं, तो उनसे मैं

कहता हूँ कि वे उसे दृढ़ निश्चयपूर्वक स्वीकार करें और समझ लें कि मेरे द्वारा वर्णित शुभ घड़ी में वह स्वीकार किया गया है। भगवान् आपसे यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कराये और आपमें एक वर्ष के भीतर इस प्रस्ताव को सफल बनाने का धैर्य और बल भी प्रेरित करे।

२

कांग्रेस के ध्येय-विषयक प्रस्ताव की चर्चा का उपसंहार करते हुए दिया गया भाषण :

मेरे सामने मूल प्रस्ताव, साम्राज्य में रहनेवाली बात, प्रजासत्ताक राज्यतंत्र शब्द निकाल डालने का सुझाव तथा और भी अन्य अनेक सूचनाएँ हैं। हमारे दुःख दूर न हों तो मैं अब भी कहता हूँ कि ब्रिटिश-सम्बन्ध तोड़ डालना चाहिए। संविधान में परिवर्तन करने का कारण यह है। यदि दुःख दूर हो जायेंगे, तो परस्पर चर्चा के बाद स्वराज्य के लिए समझौता हो जाने की संभावना रहती ही है। इसमें जरा भी प्रपंच (छल-कपट) नहीं है। अभी पेश किये गये कांग्रेस के ध्येय से तो दोनों पक्षों के लिए आने का मार्ग खुला रहता है। यदि इसका नाम प्रपंच हो, तो हम इसका स्वागत करते हैं। उचित और शान्त साधन कांग्रेस-धर्म की बुनियाद है। यूरोपियनों को हमें बता देना चाहिए कि हमारे देश में आपकी जिन्दगी सही-सलामत है और आपकी तोपें वगैरह विनाश के साधन नहीं, परन्तु खिलौने हैं। इस क्षण तो हिंसा की जरा भी संभावना नहीं है। अब तक हमें केवल शिक्षित वर्ग से ही काम लेना था। अब हमें लोक-समुदाय से काम लेना है। स्वराज्य यदि हीन साधनों से मिलेगा, तो वह स्वराज्य भी हीन है। इसलाम को अपमान से मुक्त करना चाहते हैं, तो हमें शान्ति रखनी चाहिए। नहीं तो यह आन्दोलन चौपट हो जायगा। हम हिंसा करने लगेंगे, तो कांग्रेस गैर-कानूनी मान ली जायगी और उसे कुचल दिया जायगा। हमें अपना लक्ष्य सम्मानपूर्ण साधनों से सिद्ध करना चाहिए। 'जिम्मेदार राज्यतन्त्र' भुलावे में डालनेवाला शब्द है। भारत में निरंकुश शासक नहीं आ सकता, क्योंकि स्वराज्य भारत के लोगों का स्वराज्य होगा। यदि भारत के लोगों की ही निरंकुश राज्य की इच्छा होगी, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता।

नागपुर-कांग्रेस में दिये गये भाषण

३

'इस कांग्रेस का ध्येय भारतवासियों द्वारा शान्ति और सत्यतापूर्ण साधनों से सम्पूर्ण स्वराज्य लेना है'—यह प्रस्ताव कांग्रेस के समक्ष उपस्थित करते हुए ता० २८-१२-'२० को दिया गया भाषण :

इस प्रस्ताव का अर्थ यह है कि राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्त करना है, और उस स्वराज्य की प्राप्ति का उपाय एक ही है और वह यह कि हमारे साधन न्यायपूर्ण, निर्मल और शान्तिमय हों। कांग्रेस यह मानती है कि स्वराज्य यथासंभव जल्दी-से-जल्दी मिले, आज मिलता हो तो आज ही लेना चाहिए।

स्वराज्य लेने के लिए क्या करना चाहिए, यह भी इस प्रस्ताव में कांग्रेस बताती है। प्रस्ताव में लिखा है कि स्वराज्य हमें तलवार से नहीं लेना है। हमें असत्य से या सचाई को छोड़कर स्वतन्त्रता नहीं लेनी है, परन्तु जैसा निर्मल हमारा हेतु है, वैसे ही हमारे साधन भी निर्मल होने चाहिए। इसलिए इस प्रस्ताव का अर्थ यह है कि हम स्वराज्य लेने का दृढ़ निश्चय करें और उसे प्राप्त करने के लिए न्याय, सत्य और शान्ति का रास्ता अपनायें।

मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव इस कांग्रेस के सामने पेश करने का मुझे मौका मिला है। मैं आपको बताऊँगा कि अब तक कांग्रेस का ध्येय यह था कि ब्रिटिश साम्राज्य में उपनिवेशों को जैसा दायित्वपूर्ण औपनिवेशिक शासन प्राप्त है, जिसे 'Responsible Colonial Government' कहते हैं, वैसा राज्यतन्त्र हम इस साम्राज्य में रहकर ही लेना चाहते हैं और उसे कानून के अनुसार प्राप्त करना है। कानून अर्थात् ब्रिटिश सरकार का कानून। ब्रिटिश सरकार खिलाफत के प्रश्न का संतोषजनक निपटारा न करे या पंजाब के अत्याचारों के प्रति न्याय तो एक ओर रहा, लेकिन अपनी भूल तक स्वीकार न करे, तब भी ऐसी सरकार के कानून को मान्य करना होगा, यदि हमें कांग्रेस में रहना हो। अब तक के विधान का यह अर्थ था कि हम इस सल्तनत को मिटा नहीं सकते। सल्तनत इतना घोर अन्याय करती रहे और उसे दुरुस्त करने की ओर ध्यान न दे, तब भी उसे बर्दाश्त कर लिया जाय, यह अब हिन्दुओं या मुसलमानों से नहीं हो सकता। इसलिए हम इस प्रस्ताव द्वारा इकरार

करते हैं कि हमें स्वराज्य चाहिए। स्वराज्य लेकर ही हम पंजाब और खिलाफत के अत्याचारों का न्याय प्राप्त कर सकेंगे।

परन्तु स्वराज्य लेने के लिए मैं पश्चिम के साधनों का उपयोग नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि हिन्दू या मुसलमान यह नहीं कहते कि हम अपनी स्वतन्त्रता के लिए कभी तलवार नहीं उठायेंगे, परन्तु इतना तो सब समझते हैं कि आज जो चाहिए उसे तलवार से नहीं ले सकेंगे; और इसीलिए तो हम तर्के मुवालात या असहयोग (आन्दोलन) चला रहे हैं। तलवार द्वारा हम अपने-आपको, अपने धर्म को या हुकूमत को, किसीको भी नहीं बचा सकेंगे। आप सब मेरा यह कहना स्वीकार करते हों, तो जो प्रस्ताव मैंने आपके सामने रखा, उसका कोई विरोध न करेगा।

मैं जानता हूँ कि हमारे समझदार लोगों में दो पक्ष हैं। उनमें से एक पक्ष में मेरे बड़े भाई माननीय पण्डित मालवीयजी हैं। पण्डितजी आज बुखार और सर्दी हो जाने से यहाँ आपके सामने अपना अभिप्राय प्रकट करने नहीं आ सके, इसलिए उनका अभिप्राय संक्षेप में मैं कह दूँगा। आप जानते हैं कि मालवीयजी जैसे देश की सेवा करनेवाले बहुत नहीं हैं। उनके जैसी सेवा करनेवाले का कहना मान्य न हो तो भी उसे शान्ति और अदब से सुन लेना चाहिए। वे कहते हैं कि ब्रिटिश हुकूमत को मिटाने की बात करना हमारी ताकत से बाहर है। जो भारत बेहथियार है, कम-ताकत है, वह ऐसी जबर्दस्त हुकूमत को कैसे मिटा सकेगा? वे कहते हैं कि अपनी शक्ति के बाहर की बात समझाकर लोगों को बहकाना नहीं चाहिए। जो ऐसे लोगों को उनकी शक्ति की सीमा से बाहर ले जाता है, वह मूर्ख है। उनके कहने के अनुसार ही यदि यह वस्तु जनता की शक्ति के बाहर की हो, तो मैं उनकी सलाह स्वीकार कर लेता। परन्तु इस मामले में मेरा मत उनसे भिन्न है। मैं मानता हूँ कि प्रत्येक स्त्री और पुरुष में स्वराज्य लेने की ताकत छिपी हुई है। जब तक हमारे हृदय में यह विश्वास है कि शरीर में आत्मा है, तब तक मेरा मानना है कि हम स्वराज्य लेने योग्य हैं। तैंतीस करोड़ हिन्दू-मुसलमान दोनों अपने-अपने धर्म में पक्के हैं, वे खुदा का नाम लेनेवाले हैं, ईश्वर के नाम पर मर-मिटनेवाले हैं। एक गाय की हत्या पर एक हजार हिन्दू खून लेने और अपना खून बहाने को तैयार हैं। एक मुसलमान के अपमान की खातिर अनेक मुसलमान अपना खून देने और खून लेने को

तैयार हैं। जब तक देश में ऐसे हिन्दू और मुसलमान मौजूद हैं, तब तक मैं कभी नहीं कहूँगा कि हिन्दुस्तान के लिए स्वराज्य लेना असंभव है; तब तक मैं स्वराज्य के हमारे इस आदर्श को दूर नहीं रखने दूंगा।

इस सल्तनत ने इतने अधिक अत्याचार किये हैं कि अब उसके झण्डे के नीचे रहना ईश्वर की बेवफाई करने के बराबर है। इसलिए मेरी आप सबसे नम्र प्रार्थना है कि आप इस प्रस्ताव को पसन्द करें।

हममें से जिन्हें ऐसा लगता हो कि हम अशक्त हैं, हम अपनी शक्ति से स्वराज्य नहीं ले सकते, उन्हें भी यह ध्येय स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि हमें शान्ति से, सचाई को न छोड़कर स्वराज्य लेना है। इससे हम अपने आदर्श को ऊँचे-से-ऊँचा रख सकते हैं।

जिनके मन में यह संशय होगा कि यह सल्तनत क्यों नहीं समझ जाती, ऐसी सल्तनत भी अन्त में समझ जायगी और न्याय करेगी, विधानसभाओं में जाकर हम उन्हें समझा सकेंगे, ऐसा अभिप्राय रखनेवाले लोगों के लिए भी इस प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस में स्थान रखा गया है।

हम सल्तनत को दण्ड देना नहीं चाहते। इसमें यह बात नहीं कि अंग्रेजी सल्तनत को मिटाकर ही स्वराज्य लिया जाय। यही हुकूमत यदि हमें न्याय देने के लिए तैयार हो, अधिकार देने के लिए तैयार हो, तो हम उसके अन्दर रहने को तैयार हैं। इसे मैं न्यायपथ कहता हूँ। इस पथ पर चलने में हमें कोई बाधा नहीं है।

इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि यदि आपको यह प्रस्ताव मंजूर हो, आपको यह स्वीकार हो कि हमें स्वराज्य लेना है और इस प्रस्ताव में बताये हुए ढंग से लेना है, तो आप अपने दिल में दृढ़ प्रतिज्ञा कीजिए। केवल प्रस्ताव पास कर लेने से ही काम पूरा नहीं हो जाता। आप प्रतिज्ञा कर लेंगे तो स्वराज्य अवश्य प्राप्त करेंगे और पंजाब के जुल्मों तथा खिलाफत के अन्याय को दुरुस्त कर सकेंगे।

कुछ वक्ता आपसे यह भी कहेंगे कि अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए चाहे जैसे साधन काम में ले सकते हैं। इसका उत्तर अवसर आने पर मैं दूंगा। अभी तो मैं इतना ही कहूँगा कि हम कांग्रेस का आदर्श निश्चित करें, तो उसे आज का समय देखकर ही निश्चित करना चाहिए। मेरे अपने लिए तो यही धर्म है कि हिंसा करके स्वराज्य मिलता हो तो मुझे वह नहीं चाहिए, मोक्ष मिलता हो तो वह भी नहीं चाहिए।

ईश्वर की भक्ति भी हिंसा करके होती हो तो मुझे वह भक्ति भी नहीं चाहिए। इस प्रस्ताव द्वारा आज आपके लिए जो शान्ति और सचाई के साधन बताये गये हैं, वही ठीक हैं। इन साधनों से ही हम अपने पर हुए अन्यायों को दूर कर सकेंगे।

मैं अब आपसे अधिक नहीं कहना चाहता। आज भारत में चारों ओर कितनी जाग्रति हो गयी है, उसे मैं जानता हूँ और इसलिए मानता हूँ कि आपसे और कुछ अधिक कहने की जरूरत नहीं है।

अपना विवेचन पूरा करने से पहले मैं आपके सामने एक आदर्श पाठ पेश करना चाहता हूँ। कल बंगाल कैम्प में थोड़ा-सा झगड़ा हो गया था। उसे सुनकर मुझे दुःख हुआ। स्वतन्त्रता किस तरह ली जाय, यह बताने के खयाल से मैं वहाँ गया। मुझे जो कुछ कहना था, उसे मैंने उन भाइयों से अदब के साथ कहा। मैंने उनसे कहा कि मैं यह नहीं कह सकता कि आपमें से कौन-सा पक्ष न्याय्य है और किस पक्ष की भूल है। परन्तु यदि आप अपनी अनबन सुधार लेना चाहते हैं, भारत के लिए स्वराज्य लेना चाहते हैं, दिल साफ और निर्मल कर लेना चाहते हैं, तो आप सारी बातें भूल जाइए। अपना सारा झगड़ा आप यहीं के यहीं दफनाकर उठिए। और वे दोनों पक्ष समझ गये। स्वराज्य चाहिए तो अपने भाई ने चोट पहुँचायी हो या सिर फोड़ा हो तो भी हम सरकार के पास न जायँ। अध्यक्ष के पास क्यों जाना चाहिए? मुझे कोई लाठी मार दे तो मैं उल्टा उसे नमस्कार करूँगा। उसे जीतने का यही अवसर है। ऐसा न करें तो हमसे कुछ नहीं हो सकता। यदि आप दृढ़ हैं, बहादुर हैं, यदि स्वराज्य लेने का आपका निश्चय ही हो और यदि आपको सचमुच कांग्रेस के ध्येय में परिवर्तन करना हो तो आपको अपना गुस्सा ठंडा कर लेना पड़ेगा। अन्याय की कुछ भी भावना आपके हृदय को कुतरकर खा रही हो तो उसे दबा देना पड़ेगा और यह सब भूल जाना होगा। जो हिंसा को धर्म समझते हैं, उनसे मैं कुछ नहीं कहना चाहता, परन्तु जो अपने को असहयोगी मानते हैं, उन्हें मैं अवश्य जोर देकर कह सकता हूँ। बंगाली भाइयों ने क्रोध न करने का इकरार किया है। मैं इस अवसर पर बंगाल के प्रतिनिधि भाइयों को बधाई देता हूँ। आप सब उन्हींकी तरह करेंगे तो मुझे लेशमात्र शंका नहीं कि आप स्वराज्य ले सकेंगे। आप अपने मारनेवाले को माफी दें तो नामर्दी से मत दीजिए। मुझे कोई मारे तो उसे मैं नामर्दी

से बर्दाश्त नहीं करूँगा, परन्तु मारनेवाले पर दया कर अपने पर अत्याचार करनेवाले को भी मैं क्षमा कर दूँ, इसमें बहादुरी है। आपके सामने यह प्रस्ताव रखते हुए मैं यह पदार्थपाठ आपके सामने पेश करता हूँ।

साथ ही साथ मैं आपसे ऐसी श्रद्धा और निश्चय की भी आशा रखता हूँ, जिसे दुनिया में कोई चीज विचलित न कर सके। जो इस प्रस्ताव को स्वीकार करना चाहते हैं, उनसे मेरा कहना है कि वे दृढ़ निश्चय से स्वीकार करें। भगवान् आपसे यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कराये और आपको एक वर्ष के भीतर इस प्रस्ताव को सफल करने के योग्य धैर्य और बल प्रदान करे।

४

असहयोग के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए ता० ३०-१२-'२० को दिया गया भाषण :

कांग्रेस का प्रस्ताव किसी व्यक्ति के 'अन्तर्नाद' में बाधक नहीं हो सकता। इसका ऐसा अर्थ करना भूल है। कांग्रेस के प्रस्ताव को इस प्रकार बन्धनकारक मानने का मैंने कभी आग्रह नहीं किया। हसरत मोहानी साहब विद्यार्थियों के मामले में रखी गयी सोलह वर्ष की वय-मर्यादा के विरुद्ध हैं। मैं कहूँगा कि सोलह वर्ष के भीतर का कोई विद्यार्थी पाठशाला छोड़ने का निश्चय करेगा तो इस दुनिया में उसे कौन रोक सकता है? परन्तु छोटी उम्र के बालकों को हमें असहयोग का उपदेश नहीं करना चाहिए। उनका अन्तःकरण जगाने का काम हमारा नहीं, उनके माँ-बाप का है। 'अन्तर्नाद' को न मानकर कांग्रेस की आज्ञा शिरोधार्य करने की बात से मैं सहमत नहीं हो सकता। मानव के अन्तःकरण से निकलनेवाला नाद पवित्र दैवी वस्तु है। मैं कांग्रेस की सिफारिश को अपने अन्तर्नाद के विरुद्ध पाऊँ, तो मैं क्या करूँ? मैं हजारों आदमियों की दी हुई आज्ञा के विरुद्ध होकर भी अपने अन्तःकरण की आवाज को ही मानूंगा। इसीलिए मैंने अलीगढ़ और काशी के विद्यार्थियों को 'अन्तर्नाद' की पवित्रता बार-बार समझाने के पीछे लगा। इस प्रस्ताव का आशय पुलिस और सेना के लोगों को या साहब लोगों के नौकरों को फोड़ना नहीं है। इसमें उन्हें इतना ही समझाने का आशय

है कि इस शैतानी सरकार की सेवा करके वे स्वदेश का अकल्याण कर रहे हैं। उन्हें यह सूझ जाय तो वे नौकरी छोड़ देंगे। हम उन्हें अपनी नौकरी सम्बन्धी कर्तव्य के विरुद्ध नहीं भड़काते। हम तो उन्हें केवल अपने अन्तःकरण में जलनेवाली आत्मज्योति को बुझने न देने के लिए ही समझाते हैं। आप कहें तो इस बात को और भी स्पष्ट करूँ। यदि मैं खुद जनरल डायर के मातहत कोई सिपाही होता और जलियाँवाला में मुझे निर्दोष मनुष्यों पर गोली चलाने का हुक्म मिला होता, तो मैं अपनी जान जोखिम में डालकर भी उस हुक्म को न मानना अपना धर्म समझता। मैं सिपाही के जीवन की कठोरता से परिचित हूँ, फिर भी कहता हूँ कि यदि किसी सिपाही को उसके अफसर की तरफ से अपने 'स्वधर्म' के विरुद्ध हुक्म मिले तो उसे अपने प्राण देकर भी उस आज्ञा का उल्लंघन ही करना पड़ेगा। मुझे उम्मीद है कि इस प्रस्ताव को पास करके आप पिछले तीन महीने में सरकार के साथ या आपस में हुए झगड़े, क्लेश और कटुता सब कुछ भूल जायँगे। और केवल एकचित्त होकर प्रस्ताव में बताये गये कार्यक्रम को पूरा करने के काम में लग जायँगे। इतना कर लेंगे तो मैं फिर एक बार आपको याद दिलाता हूँ कि स्वराज्य लेने के लिए आपको एक वर्ष तो क्या, नौ महीने भी नहीं लगेंगे।

५

दो सुधारक सज्जनों ने गांधीजी से इस परिषद् का अध्यक्ष-पद स्वीकार करने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि "महात्मा गांधी के राजनैतिक मतों के साथ हमारा मेल नहीं है। महात्माजी ने कितना ही बड़ा काम किया हो, तो भी जब तक वे अस्पृश्यता को मिटा न सकें, तब तक वे महात्मा-पद के योग्य नहीं हैं। आज तक महात्माजी ने हमारे लिए कुछ भी नहीं किया। उन्हें हमारे प्रयत्नों के लिए सहानुभूति है। हमारी उन्नति के लिए हमें गांधीजी की आवश्यकता नहीं। राज्य में अच्छे कानून बनाकर भी हम अपनी उन्नति करा सकेंगे, परन्तु अस्पृश्यता को हम कानून की सहायता से कभी नहीं मिटा सकेंगे।"

जब ऐसे उद्‌गारों से सभा प्रारम्भ हुई, तब गांधीजी को अन्त्यजों की उन्नति और अस्पृश्यता के बारे में अपने विचार खूब स्पष्टता से

कहना जरूरी मालूम हुआ। पहले तो दिनभर की थकान के कारण उनका विचार थोड़े में ही निपटा देने का था।

शुरू करने से पहले गांधीजी ने तीन सवाल किये। मैं जो बोल रहा हूँ, उसे सब समझ रहे हैं? जवाब 'हाँ' मिला। अन्त्यज अपने हाथ उठायें, यह कहने पर बहुत से हाथ उठे। सभा में लगभग पौन भाग अन्त्यजों का था।

"इतने अधिक अन्त्यज लोगों को इस सभा में आया हुआ देखकर मैं बहुत खुश हुआ।

"अन्त्यजवर्ग की हालत का अध्ययन मैं कितने ही वर्षों से कर रहा हूँ। इस विषय में मैं हमारे बड़े-बड़े सुधारकों जैसा नहीं हूँ। जिस ढंग से सुधारक काम करते हैं, उस ढंग से मैं नहीं करता। जब से मैं हिन्दुस्तान में आया हूँ, तब से सुधारक जिस ढंग से काम कर रहे हैं, उस पर मैंने विचार किया है। परन्तु मैं जो काम करता हूँ उसमें त्रुटि है या दूसरे जो करते हैं वह सब अच्छा है, ऐसा मुझे नहीं लगा। सम्भव है, मुझमें त्रुटि हो। परन्तु मेरा यही विश्वास है कि त्रुटि नहीं है।

"मैं जो काम कर रहा हूँ, वह इस प्रकार है। अस्पृश्यता पाप है, इसलिए उस पाप को मिटाना चाहिए। अस्पृश्यता को मिटाना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ, परन्तु वह अन्त्यजों के भीतर से नहीं, बल्कि अन्य हिन्दुओं में से मिटाना चाहिए। अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म की ज्यादती है। मद्रास में मैं एक जगह बोला था कि जिस प्रकार मैं अपनी सल्तनत में बड़ी भारी शैतानियत देखता हूँ और यदि मैं उसे दुरुस्त न कर सकूँ, तो उसे मिटा देना चाहता हूँ; उसी तरह मैं मानता हूँ कि हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता बड़ी शैतानियत है।

"स्व० गोखले ने दक्षिण अफ्रीका में वहाँ का सारा मामला जान लेने के बाद कहा था कि 'हमारी हालत ऐसी बुरी क्यों न हो?' जैसे हम अन्त्यजों को अस्पृश्य समझते हैं, वैसे ही यूरोप के लोग हमें, हिन्दू-मुसलमान सबको, अस्पृश्य समझते हैं। हमें उनके साथ रहने की अनुमति नहीं; हमें उनके बराबर अधिकार नहीं। हिन्दुओं ने अन्त्यजों को जितना बेहाल किया है, उतना ही दक्षिण अफ्रीका के गोरों ने भारत-वासियों को किया है। भारत से बाहर के साम्राज्य के जितने उपनिवेश हैं, उनमें भी गोरों का बर्ताव ऐसा ही है, जैसा कि हिन्दू-

समाज का अछूतों के साथ है। इसीलिए गोखलेजी ने कहा था कि 'हम हिन्दू-समाज की अब तक की शैतानियत का फल भोग रहे हैं। समाज ने बड़ा पाप किया है, भारी शैतानियत दिखायी है। उसीके परिणामस्वरूप दक्षिण अफ्रीका में हमारी बुरी हालत हुई है।' मैंने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। यह बात बिलकुल सच थी। उसके बाद का मेरा अनुभव भी ऐसा ही है।

"मैं स्वयं हिन्दू हूँ; मैं दावा करता हूँ कि मैं चुस्त हिन्दू हूँ। मेरा यह विशेष दावा है कि मैं सनातनी हिन्दू हूँ। इस समय गुजरात में हिन्दू-समाज के साथ मेरा बड़ा झगड़ा चल रहा है। हिन्दू-समाज—खास तौर पर वैष्णव-समाज मेरा सनातनी हिन्दू होने का दावा इनकार करता है, फिर भी मैं अपना दावा कायम रखता हूँ और कहता हूँ कि मैं सनातनी हिन्दू हूँ।

"हिन्दू-समाज की यह बड़ी खामी है। और खामियाँ भी बहुत हैं। परन्तु उन्हें तो आज दूर करें या हजार वर्ष बाद करें तो भी क्षम्य होगा, परन्तु मैं अन्त्यजों की अस्पृश्यता को सहन नहीं कर सकता। मैं अस्पृश्यता बर्दाश्त नहीं कर सकता। हिन्दू-समाज का कर्तव्य है कि वह अस्पृश्यता को दूर करने के लिए भारी तपश्चर्या करे। मैंने कहा है और आज फिर हिन्दू-समाज से कहता हूँ कि जब तक हिन्दू-समाज अस्पृश्यता के पाप से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक स्वराज्य की स्थापना असंभव है। मुझ पर आप विश्वास रखते हों, तो मैं आपसे कहता हूँ कि जितना दर्द अन्त्यजों को अस्पृश्य रहने में है, उससे ज्यादा मुझे हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता के रहने से है। जब तक हिन्दू-समाज में अस्पृश्यता कायम है, तब तक मुझे शर्म आती है और हिन्दू होने का दावा करने में भी मुझे संकोच होता है। आज मेरे सामने जो मराठी में बोल चुके हैं, उन्होंने आक्षेप किया है। भारत ने मुझे जो पद दिया है, परन्तु जिसे मैंने स्वीकार नहीं किया, उसके लिए मैं तभी योग्य हो सकता हूँ, जब हिन्दू-धर्म में से अस्पृश्यता निकल जाय। (गांधीजी के भाषण के दौरान में दो बार तालियाँ बजी थीं। यहाँ तीसरी बार बजीं। इसलिए गांधीजी को कहना पड़ा कि 'जहाँ मैं हृदय के उद्‌गार प्रकट करना चाहता हूँ, वहाँ आप तालियाँ बजाकर मुझे न रोकिए।') मैं आपसे पूछता हूँ कि आप मुझसे कह सकें तो कहिए कि एक आदमी किस तरह काम करे, ताकि कितने ही वर्षों के रिवाज को एक दिन

में मिटाया जा सके। मुझे कोई बता दे कि इस तरह काम करने से उसे आज मिटाया जा सकता है, तो मैं उसे आज मिटा दूं। परन्तु हिन्दू-समाज से दोष स्वीकार कराना और उसे सुधरवाना कठिन है।

"मैं जो कहता हूँ, वही करता हूँ। मैं जो काम कर रहा हूँ, उसमें अपनी धर्मपत्नी को शामिल करने में मुझे जो कष्ट हुआ है, मुझे जो तपस्या करनी पड़ी है, उस पर से मैं आप अन्त्यजों को और हिन्दू-समाज को बताना चाहता हूँ कि इस काम में बड़ी कठिनाइयाँ हैं। इसलिए मैं यह नहीं कहना चाहता कि यह काम बन्द कर दिया जाय। परन्तु काम किस ढंग से किया जाय, उसकी पद्धति सोच लेनी चाहिए। इसीलिए मुझे आपके प्रस्ताव पसन्द नहीं आते।

"आप प्रस्ताव करना चाहते हैं कि जितने देवालय हैं, उनमें अन्त्यजों को जाने का हक होना चाहिए। यह कैसे हो सकता है? जब तक हिन्दू-धर्म में वर्णाश्रम धर्म की प्रधानता है, तब तक यह कहना कि प्रत्येक देवालय में प्रत्येक हिन्दू जा सकता है, यह आज नहीं हो सकता। आज इसे समाज में जारी करना असंभव है। हिन्दू-समाज इसके लिए तैयार नहीं। मेरा अनुभव है कि बहुत से देवालयों में अन्त्यजों के सिवा अन्य कुछ जातियाँ भी नहीं जा सकतीं। मद्रास में कुछ देवालयों में तो मैं भी नहीं जा सकता। मुझे इस बारे में दुःख नहीं। मैं यह भी कहने को तैयार नहीं कि इसमें हिन्दू-समाज की संकुचित दृष्टि है या उसका दोष है। दोष हो भी तो वह दोष किस दृष्टि से किया गया है, इसका खयाल करना चाहिए। यह कार्य यदि संयम के खयाल से किया जाता हो तो मैं नहीं कहूँगा कि सबको देवालयों में जाने का अधिकार होना चाहिए। भारत में पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय हैं, उन्हें मैं नष्ट नहीं करना चाहता। हिन्दू-समाज का पतन सम्प्रदायों से या वर्णाश्रम से नहीं हुआ। पतन हुआ है तो वह वर्णाश्रम में निहित सौन्दर्य और संयम के त्याग से हुआ है। आपको यह समझ लेना चाहिए कि वर्णाश्रम धर्म एक चीज है और अस्पृश्यता दूसरी चीज है। वर्णाश्रम धर्म दूषित है, उसमें पाप है, यह कहने में पश्चिम की पद्धति का प्रयोग है। मैं उस पद्धति का प्रयोग नहीं करता। इसे स्वीकार करने से भारत गिरा है। मैं अन्त्यजों का आशीर्वाद और उनकी प्रसन्नता मुफ्त में नहीं लेना चाहता। इसलिए मैं आज साफ कह देना चाहता हूँ कि इस काम में बहुत कष्ट से सम्मिलित हुआ हूँ; क्योंकि मैं अस्पृश्यता का दोष

मिटाने में अन्त्यजों और सुधारकों के साथ हूँ। दूसरे मामलों में आप और वे जो करना चाहते हैं, उसमें मैं शामिल नहीं हूँ। मैं किसी भी हिन्दू से नहीं कह सकता--क्योंकि मैं ऐसा नहीं मानता--कि हरएक हिन्दू एक-दूसरे के साथ खाये, पिये या बेटी-व्यवहार करे। उसकी आवश्यकता नहीं।* मैं कहता हूँ कि जो आदमी इन तीन व्यवहारों का त्याग करता है, वह संयमी भी हो सकता है और स्वच्छन्द भी हो सकता है। मैं मानता हूँ कि यह त्याग संयम-वृत्ति से ही हुआ है।

"मैं खुद अन्त्यजों के साथ खाता-पीता हूँ। एक अन्त्यज लड़की को मैंने गोद लिया है। वह लड़की मुझे प्राणों से प्यारी है। फिर भी मैं हिन्दू-समाज से नहीं कहूँगा कि अपनी त्याग-वृत्ति को आप छोड़ दें। मैं मानता हूँ कि मुझ जैसों के लिए भी हिन्दू-समाज में स्थान है। संन्यासी न होने पर भी मैं जो कर रहा हूँ, वैसा करनेवाले के लिए हिन्दू-समाज के भीतर स्थान है। मुसलमान मुझे कोई खाद्य वस्तु दें तो मैं वह खा लेता हूँ, वैसे ही अन्त्यजों से भी खाद्य वस्तु ले सकता हूँ। परन्तु ऐसा करने के लिए मैं हिन्दुओं को विवश नहीं करना चाहता, क्योंकि ऐसा करने में संयम टूटता है। इस संयम में हिन्दू-संसार की रक्षा है। वर्णाश्रम या खाने-पीने के व्यवहार को मिटाना और अस्पृश्यता को मिटाना एक ही चीज नहीं है। पहली चीज संयम है, जब कि दूसरी शैतानियत है। मैं विद्यार्थी हूँ और अध्ययन कर रहा हूँ, इसलिए जब मुझे लगेगा कि मेरी समझ में भूल थी, उसी दिन मैं अपनी भूल मान लूँगा। परन्तु अभी तो मैं यह कहने को तैयार हूँ कि जो अस्पृश्यता का बचाव कर रहे हैं, उनमें मुझे पाखण्ड ही दिखाई देता है, शैतानियत ही दिखाई देती है। जिसका वे बचाव कर रहे हैं, वह शैतानियत है।

"मैंने अपनी मर्यादा, मेरा क्या काम है सो बता दिया; उसकी पद्धति भी मैंने बता दी है। मैं नहीं मानता कि सुधारक अन्त्यजों में काम करके, उन्हें शिक्षा देकर अस्पृश्यता का दोष मिटा सकते हैं। मैं ऐसे बहुतों को जानता हूँ कि जो मंच पर खूब बोलते हैं, परन्तु जब स्पर्श करने का प्रसंग आता है, तब हट जाते हैं। ऐसे ढंग से मेरी भिन्नता है और मैं

---

* रोटी-बेटी व्यवहार के बारे में और हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के हक के सम्बन्ध में समय गुजरने पर गांधीजी के विचार बहुत आगे बढ़ गये थे।

कहना चाहता हूँ कि इस तरीके से सुधार नहीं होता ! परन्तु दूसरी तरफ ऐसा कहनेवालों के प्रति भी मेरी अरुचि है कि हिन्दू-समाज समझेगा तब करेंगे। मैं अन्त्यजों से कह रहा हूँ कि ऐसे पाप के विरुद्ध मैं स्वयं तो असहयोग ही करूँगा। यहाँ आये हुए अन्त्यजेतर लोगों से मैं कहूँगा कि यदि यह पाप किसी भी तरह दूर न हो तो समाज के इस पाप के विरुद्ध—सारे हिन्दू-समाज के विरुद्ध मैं अकेला असहयोग करूँ, ऐसा मौका भी आ सकता है। साम्राज्य की शैतानियत मिटाना मुझे इतना ज्यादा मुश्किल मालूम नहीं होता। साम्राज्य की शैतानियत व्यावहारिक है। अस्पृश्यता की शैतानियत ने धार्मिक रंग ग्रहण कर लिया है। हिन्दू तो यही समझते हैं कि अन्त्यजों को छूने में पाप है। उन्हें मनाना कठिन काम है। हममें इतनी मंदता और आलस्य आ गया है, हम इतने अधिक दुःखों में डूबे हुए हैं कि हम विचार तक नहीं कर सकते। हमारे धर्माधिकारी भी अज्ञान में इतने अधिक डूबे हुए हैं कि उन्हें समझाया ही नहीं जा सकता। अस्पृश्यता-दोष के निवारण का अर्थ ही यह है कि उसे हिन्दू-समाज से स्वीकार कराया जाय। अन्त्यज करोड़ों हिन्दुओं का नाश करके अस्पृश्यता-दोष मिटा सकें, यह असंभव है। वेदों या मनुस्मृति में यदि यह फरमान हो तो वेदों को बदलना चाहिए। परन्तु दूसरे धर्म-ग्रन्थों की रचना कौन कर सकता है ? मैं संसारी हूँ, धर्माधिकारी होने का दावा नहीं करता। मैं स्वयं अनेक त्रुटियों से भरा हूँ। इसलिए हिन्दू-समाज को धर्मनीति कैसे दे सकता हूँ ? मैं अपने-आपको उनकी दया का पात्र बनाकर जो काम करा सकता हूँ, वह करना चाहता हूँ।

"काम में अनेक कठिनाइयाँ हैं। परन्तु यदि हमारे सुधारक इतना समझ लें कि हिन्दू-समाज को मिटाकर यह दोष मिटाना असंभव है, तो उन्हें विश्वास हो जायगा कि उसे वे अपनी सहिष्णुता से ही मिटा सकेंगे। आप अन्त्यज भाइयों से मैं कहता हूँ कि आप मेरे जितने ही हिन्दू हैं। आपको भी मेरे जितने ही हिन्दूपन के अधिकार हैं। आप हिन्दू-धर्म को अच्छी तरह समझ लेंगे, तो आपके हथियार आपके हाथ में ही हैं, जैसे सल्तनत को मिटाने का हथियार हमारे ही हाथ में है। भीख माँगने से उसका निवारण नहीं हो सकेगा। अस्पृश्यता को दूर करने का उपाय भी अन्त्यजों के ही हाथ में है।

"अन्त्यज कहेंगे कि हमें असहयोग सिखाइए, तो मैं उन्हें अवश्य आज

रात को ही असहयोग सिखाना चाहता हूँ। असहयोग आत्मशुद्धि की क्रिया है। भारत दूसरे देशों से भिन्न देश है। इसलिए हमें जो करना है, वह अंग्रेजों को तंग करके न करें। मगर हमारी शुद्धि कैसे हो ? हिन्दू-समाज कहता है कि देखो, अन्त्यज शराब पीते हैं, जो चाहे सो खाते हैं, शौच के नियमों का पालन नहीं करते, अन्त्यज गायों की कतल करते हैं। यह बात मैं नहीं मानता। जो हिन्दू होने का दावा करता है, वह गो-मांस नहीं खा सकता। अन्त्यज असहयोग करना चाहते हों तो वे मद्यपान छोड़ें, मुर्दार मांस छोड़ें, गो-हत्या तो अवश्य छोड़ें। चमारों से मैं चमड़े का काम छोड़ने को नहीं कहता, अंग्रेज यह काम करते हैं, फिर भी हम उन्हें सलाम करते हुए चलते हैं। अभी तो ब्राह्मण भी यह काम करते हैं। पाखाने साफ करने में मुझे मलिनता दिखाई नहीं देती। यह काम मैंने स्वयं बहुत किया है और मुझे वह पसन्द है। मेरी माता ने मुझे सिखाया है कि यह काम पवित्र है। मैले के साथ काम है, परन्तु है वह पवित्र। जो इस काम को इतना पवित्र समझकर करता है, वह स्वर्ग पाता है। इस काम को न छोड़ते हुए आप हिन्दू-धर्म में रह सकते हैं। आपको कोई जूठा या पकाया हुआ अन्न दे, तो आप उसे न लीजिए और कच्चा अनाज माँगिए। आप सफाई से रहिए। पाखाने साफ कर लेने के बाद आप अपने कपड़े बदल डालिए। मैला साफ करते हुए भी आप उतने ही साफ रहिए, जितनी कि मेरी माता रहती थी। आप पूछेंगे कि कपड़े बदलने को हमें कहाँ से मिलेंगे, तो आपको कहना चाहिए कि हमें पन्द्रह, बीस, तीस या जितने वेतन के लिए हम योग्य हैं, उतना वेतन जब तक नहीं मिलेगा, तब तक हम काम नहीं करेंगे। आप हिन्दू-समाज से यों कह सकते हैं। आप कह सकते हैं कि जैसे बढ़ई और लुहार आपका काम करते हैं, वैसे हम भी समाज का आवश्यक कार्य करते हैं। आप निडर बन जाइए। मैं गुजरात के अन्त्यजों को जानता हूँ, उनके स्वभाव से परिचित हूँ। उन्हें मैं यही सिखा रहा हूँ कि आप अपनी ताकत से ही अस्पृश्यता का दोष दूर कीजिए। आप कट्टर हिन्दू बन जाइए, ताकि हिन्दू-समाज आपसे घृणा न करके आपकी पूजा करे।

"मैं यह काम आपके या हिन्दू-समाज के द्वारा ही करा लेना चाहता हूँ। आपसे मैं कहता हूँ कि आप जो हक माँग रहे हैं, उसके लिए आप योग्य बनें। यह कहकर मैं यह नहीं कहना चाहता कि आप योग्य

नहीं हूँ। जब मैं भारत को स्वराज्य के लिए योग्य बनने को कहता हूँ, तब भारत को अयोग्य नहीं मानता। मैं भारत को अधिक योग्य बनने के लिए कहता हूँ। इसी तरह अन्त्यजों से कहता हूँ कि स्वतन्त्र बनने का आपका अधिकार है, प्रत्येक हिन्दू के साथ समानता प्राप्त करने का हक है, परन्तु मैं चाहता हूँ कि अब तपश्चर्या करके उसके लिए आप अधिक योग्य बनें।

"तपश्चर्या के विषय में बोलते हुए मैं अपने जीवन की दो घटनाओं के बारे में कहना चाहता हूँ। अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम खोलने के बाद मैंने वहाँ दूधाभाई नामक एक अन्त्यज भाई और उनकी पत्नी को आश्रम में रखा। जब मैंने उन्हें रखा, तब हिन्दू-समाज ने क्या किया? हम जिस कुएँ से पानी भरते थे, उससे दूधाभाई की पत्नी को पानी नहीं भरने दिया। मैंने कहा कि दूधाभाई को पानी न भरने दोगे, तो मैं भी इस कुएँ से पानी नहीं भरूँगा। उस कुएँ में पानी भरने का तो मेरा हक था, परन्तु वह मैंने छोड़ दिया। दूधाभाई ने क्या किया था? दूधाभाई तो स्वच्छ थे। वे जितनी गालियाँ पड़तीं, सुन लेते थे। इस तपस्या से तीन दिन के भीतर कष्ट दूर हो गया और लोग समझ गये कि उस कुएँ पर दूधाभाई भी पानी भर सकते हैं। इन्हीं दूधाभाई की लड़की लक्ष्मी अब मेरे घर में लक्ष्मी बनकर घूमती है। आप सब यदि दूधाभाई की तपस्या सीख लें, तो आपके दुःख आज ही मिट जायँ।

"अब मैं अन्त्यजेतर हिन्दुओं से कहता हूँ कि आप बहादुर बनकर अपने पाप को मिटाइए। मैं मानता हूँ कि मैं धार्मिक हूँ। आप मुझे वहमी भी कह सकते हैं। मैं मानता हूँ कि जब तक आप इस पाप से मुक्त न होंगे, अन्त्यजों से क्षमा नहीं माँग लेंगे, तब तक आपके सिर पर और कई कष्ट आते रहेंगे। यह समझ लीजिए कि अस्पृश्यता पाप है। आप ज्ञान-पूर्वक अपनी मलिनता मिटा सकें, तो स्वतन्त्रता आज आपके हाथ में ही रखी है।

"अब दूसरा दृष्टान्त देकर मैं आपको हिन्दू-धर्म की सरलता बताना चाहता हूँ। जब मैं दक्षिण अफ्रीका से आया, तब मेरे साथ नायडू नामक एक पंचम (अन्त्यज) जाति का लड़का था। भाई नटेशन अन्त्यजों का जबर्दस्त काम करनेवाले सज्जन हैं। मुझे अहमदाबाद जाते हुए मद्रास में उनके घर पर ठहरना पड़ा। मुझसे अनेक मित्रों ने कहा कि आप यह

क्या कर रहे हैं ? नटेशन की माता इतने अधिक पुराने विचारोंवाली हैं कि उन्हें यदि यह मालूम हो गया कि आप उनके घर में अन्त्यज को ले गये, तो बुढ़िया की मौत ही हो जायगी। मैंने कहा : मैं इस लड़के का त्याग करूँ, इससे तो अच्छा यह है कि मैं नटेशन के घर का ही त्याग कर दूँ। परन्तु नटेशन तो सरलचित्त मनुष्य हैं। उन्होंने जाकर माताजी को सच्चा हाल बता दिया। माताजी ने कहा : भले ही आने दो। वे समझ गयीं कि मेरे साथ आनेवाला अन्त्यज अस्वच्छ हरगिज नहीं होगा; और मैंने भी उस लड़के में से सारी मलिनता निकाल डाली थी। हम उनके घर पर ठहरे और जिस कुएँ से वह महिला पानी निकालती थी, उसीसे हमने भी निकाला। इस घटना से क्या फलित होता है ? अन्त्यजेतर अपनी माताओं और बहनों को भाई नटेशन की तरह पवित्रता से, सरलता से समझा सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस प्रश्न का निपटारा अन्त्यजेतरों की सरलता और अन्त्यजों की तपस्या से ही होगा।

"परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है कि अन्त्यज भाइयों को सन्मति और धैर्य प्रदान करे, ताकि वे धर्म को न छोड़ें। हिन्दुओं के लिए मेरी प्रार्थना यह है कि परमेश्वर इस पाप से––इस शैतानियत से—हिन्दू-समाज को मुक्त करे।"

६

[नागपुर-कांग्रेस के समय हुई जुलाहा परिषद् के अध्यक्ष-पद से दिया हुआ भाषण : ता० २५-१२-'२०]

काम में बहुत व्यस्त होने पर भी मैं इस सभा का अध्यक्ष-पद अस्वीकार नहीं कर सका। मेरा पेशा जुलाहे का न होने पर भी मैं अब अपने को किसान और जुलाहा मानता हूँ। अदालत में भी मैंने अपना यही धन्धा बताया है। मेरा खयाल है कि जब तक जुलाहों की उन्नति नहीं होती, तब तक भारत की उन्नति असंभव नहीं तो मुश्किल जरूर है। इसलिए पिछली विशेष कांग्रेस में इस बारे में कुछ कहा गया था। जब भारत परतन्त्र हुआ, तब हिन्दुस्तान में जितना और जैसा कपड़ा बनता था, उतना और वैसा दुनिया में नहीं बनता था। इतना अधिक कपड़ा पैदा होता था, तब यहाँ मिल एक भी नहीं थी। उस वक्त खादी से लेकर ढाका की मलमल तक का विविध कपड़ा मिलता था। भारत की आवश्यकता पूरी

होने के अलावा फालतू कपड़ा बाहर भेजा जाता था। बाहर के लोग आकर्षित होकर यहाँ देखने के लिए आते थे। हारग्रीव्स (कातने की मशीन का आविष्कारक) से भी अधिक शक्ति पवित्र चरखे के आविष्कारक ने दिखायी थी। इससे बड़ी अन्वेषण-शक्ति भारत में और किसीने नहीं दिखायी। भारत सुखी था, तब प्रत्येक घर में सूत की मिल थी। ब्रह्मा ने सोच लिया कि भारत को स्वतन्त्र रहना हो तो स्त्रियों को थोड़ा-सा सूत कात लेना चाहिए। वे यह समझ लें कि यह उनका पवित्र धंधा है। इसीलिए सूत बनानेवाली कोई अलग जाति पैदा न करके सभी स्त्रियों के लिए इसे आवश्यक रखा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यहाँ जिस दिन प्रवेश किया, तभी से गिरावट शुरू हो गयी। तब से जुलाहे और कातनेवाले ने अपना धंधा छोड़ दिया। चम्पारन में जैसे लोगों से नील की फसल ले ली जाती थी, वैसे लोगों से सूत माँगा जाता था। वह यहाँ तक कि लोगों ने तंग आकर अपनी उँगलियाँ काट डालीं। उसके बाद लंकाशायर का कपड़ा आने लगा। आप धर्म का उद्धार करना चाहते हों तो प्रायश्चित्त करके कातने और बुनने के पुराने धंधों को पुनर्जीवित कीजिए। हम धर्माचरण भूल गये, इसलिए स्वदेशी के नाम पर दुराचरण कर रहे हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि धर्म-रक्षा के लिए नया सूत पैदा कीजिए, नया कपड़ा बनाइए। ऐसा न होगा, तो बाहर से कपड़ा जरूर मँगाना पड़ेगा। फजलभाई और वाडिया साहब कहते हैं कि हमारे लिए पचास वर्ष तक अपना कपड़ा पूरा करना संभव नहीं। गोखलेजी ने बताया था कि सौ वर्ष तक भी असंभव है। यह उनकी भूल है। उन्हें पता नहीं था कि भारत के प्रत्येक घर में चरखा और करघा हो सकता है।

जब तक सूत कातने और बुनने की प्रवृत्ति न हो, तब तक स्वदेशी भण्डार खोलना देश-हित नहीं, बल्कि पाप है। मुझे जो रूमाल दिया गया, उसका सूत परदेशी है।

मैं यहाँ जुलाहों की संख्या बहुत थोड़ी देख रहा हूँ। तीन श्रेणियों के जुलाहों में से तीसरे अस्पृश्य लोग दिखाई नहीं देते। मुझे एक सज्जन ने लिखा कि उन्हें घुसने नहीं देंगे। मैंने कहा कि उन्हें नहीं घुसने देंगे, तो मैं निकल जाऊँगा। जब आप दूसरा अधिवेशन करें, तब उन जुलाहों को बुलाइए।

आप अपना धंधा जिस ढंग से कर रहे हैं, वह ठीक नहीं है। देश के

लिए ही करना चाहते हों, तो नया सूत पैदा करके और कराके उसे बुनिए। उसे बुनने में तकलीफ होगी, परन्तु उसे उठा लेना चाहिए। भारत के लड़के-लड़कियाँ रोज एक घण्टा कातें तो जितनी रूई पैदा करते हैं, उतनी कत जाय। इस समय भारत के लिए महीन कपड़ा बनाने को कहना मेरा धर्म नहीं। आज शोकाग्नि धधक रही है। इसमें मैं यदि भारत के स्त्री-पुरुषों को भस्म कर सकूँ तो करना चाहता हूँ। जुलाहों से मैं कहता हूँ कि वे जो कपड़ा पहनते हैं, वह उनका बुना हुआ नहीं है, यह खेद की बात है।

स्वराज्य का शिलान्यास

वाद अरु विवाद जले,
जहर बकवाद टले;
बिछुड़े सभी मिले रे—

(मणिलाल)

× × ×

मियाँ बीबी राजी
तो क्या करेगा काजी ?

(एक कहावत)

× × ×

वीर्य देओ क्षुद्र जने
ना करिते हीन ज्ञान; बलेर चरणे
ना लुटिते ।*— (गीतांजलि)

कांग्रेस गयी, परन्तु कांग्रेस की स्मृतियाँ तो सदा ही रहेंगी। आज हिन्दुस्तान का एक भी भाग, शहर, कसबा या गाँव ऐसा नहीं होगा, जहाँ कांग्रेस के यात्रियों ने अपने अनुभव घर पर रहनेवालों को न सुनाये हों। भारत के छोटे-से-छोटे गाँव के किसानों, अपढ़ स्त्रियों और बच्चों तक को कांग्रेस की कुछ न कुछ जानकारी हुए बिना नहीं रही होगी। कांग्रेस की ध्वनि, जो कुछ दिन शहरों की ही चहारदीवारी में गूँजकर रह जाती थी,

* हे प्रभु, मुझे बल दो कि मुझमें क्षुद्र जनों के प्रति हीन भाव न आये और मुझे उद्धत बल के आगे घुटने टेकना न पड़े।

वह देश की दसों दिशाओं में फैल जायगी, उसकी लगातार तरंगित होनेवाली प्रतिध्वनि लोगों के जीवन में चिरकाल के लिए संग्रहीत होकर रहेगी; इतना ही नहीं, देश की सीमा पार करके वह हजारों कोस दूर के बहरे कानों को भी खोलेगी।

इस कांग्रेस के बारे में मैं मानता हूँ कि कोई यह नहीं पूछेगा कि ऐसी अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा क्यों। क्योंकि सब स्वीकार करेंगे कि यह कांग्रेस साधारण नहीं थी। पिछली कांग्रेस जैसी सिर्फ अपूर्व ही नहीं थी; एक आश्चर्य-परम्परा थी। बाह्य दृष्टि से भी केवल इतना ही देखने की जरूरत है कि उसमें कितने प्रतिनिधि आये थे, कैसे-कैसे प्रतिनिधि आये थे। स्वागत-समिति को मिलाकर प्रतिनिधियों की संख्या लगभग अठारह हजार थी। उसमें ऐसे साधु भी आये थे, जो केवल भगवा वस्त्र धारण करनेवाले ही नहीं थे, बल्कि मानो गांधीजी के राजनैतिक संन्यासी के आदर्श का पोषण करने आये थे; सौ० जानकीदेवी बजाज (श्री जमनालालजी बजाज की धर्मपत्नी) के नेतृत्व में ऐसी मारवाड़ी बहनें भी सम्मिलित हुई थीं, जो कभी घर से बाहर कदम नहीं रखती थीं; सुदूर ब्रह्मदेश के वे प्रतिनिधि भी भाग लेने आये थे, जिन्होंने देश के विराट् सम्मेलन की पुकार सुनी थी; और इन सबके अतिरिक्त कुछ अंग्रेज मेहमान भी आये थे, जो अपना पुण्य तेज प्रकट करने के लिए कटिबद्ध भारत की आब देखना चाहते थे और जो चाहते थे कि संभव हो तो देश को समझौते के लिए मनाया जाय। ये सब महासभा के गौरव में वृद्धि करते थे। प्रतिनिधियों की संख्या ने प्रेक्षकों के लिए तो शायद ही जगह रहने दी थी; इसलिए दर्शक जितने मंडप में समा सकते थे, वे भीतर रहे और बाकी बाहर उमड़ रहे थे। असहयोग का सिद्धान्त स्वीकार करते हुए भी गांधीजी द्वारा सूचित मार्ग को पूरी तरह न माननेवाले सभी नाराज होकर बाहर निकलने के बजाय पिछले तीन मास के अनुभव के बाद अपने बदले हुए विचारों का लाभ पहुँचाने के लिए भारी संख्या में उपस्थित हुए थे। इन सब एकत्रित दलों के केन्द्रीभूत हो जाने के कारण वह आश्चर्य-परम्परा उत्पन्न हो सकी, जिसका मैं पहले जिक्र कर चुका हूँ।

इस आश्चर्य-परम्परा में मुझे अध्यक्ष महोदय* को पहले रखने में संकोच नहीं होता। यह तो नहीं कहा जा सकता कि अध्यक्ष महोदय के चुनाव

* श्री विजय राघवाचारियर।

का देश में स्वागत किया गया था। उनके भाषण को देखते हुए यह कल्पना करना मुश्किल था कि वे किस वृत्ति से काम लेंगे। परन्तु उन्होंने अपने कार्य से, अपनी दक्षता से, अपनी स्पष्टवादिता से सबको आश्चर्य में डाल दिया और सबको विश्वास हो गया कि उनका चुनाव गलत नहीं हुआ। उनके भाषण में जब उनकी तेजस्वी और अगाध विद्वत्ता दृष्टि में आती थी, तब उनके अनुभव के उद्‌गार भी कुछ लोगों को खटके बिना नहीं रहते थे। असहयोग के मुख्य तत्त्वों के बारे में अश्रद्धा ही नहीं, परन्तु इस आशय के विचार भी उनके भाषण में स्पष्ट थे कि यदि असहयोग कार्यान्वित होगा, तो देश फिर अपनी पहले की जंगली हालत को—देश जंगली कब था, यह तो अध्यक्ष महोदय ही जानें—प्राप्त हो जायगा। फिर भी जब वह भाषण पढ़ा गया, तब असहयोग के तत्त्वों की आलोचना-वाले भाग को अध्यक्ष महोदय ने जबानी ही बोलकर संक्षिप्त कर दिया, नरम कर दिया। विद्यार्थियों के बारे में कहा कि अच्छी तरह समझकर वे जितना जल्दी स्कूल-कॉलेज छोड़ दें, उतना अच्छा। यहाँ तक कह दिया कि वकील भी स्वार्थ-त्याग करने के लिए बाहर निकल आयें तो अच्छा। इस प्रकार उन्होंने पहले ही दिन अपने विचारों में परिवर्तन करने की जरूरत देख ली और अन्तिम दिन तो उन्होंने आश्चर्यजनक एकता देखकर असहयोग के प्रस्ताव पर अपनी प्रसन्नता ही प्रकट नहीं की, बल्कि इस आशय के उद्‌गार निकाले कि 'देश की आत्मा उबल उठी है; वह मदान्ध इंग्लैण्ड को रुलाकर छोड़ेगा।' विषयनिर्धारिणी समिति के अध्यक्ष के नाते उन्होंने जो दक्षता दिखायी, वह तो उस सभा की कार्रवाई देखनेवाले ही जानते हैं। उनके ज्ञान, व्यवस्था और पद्धति के लिए उनकी विलक्षण दृढ़ता और उनके सहज तथा निश्छल विनोद और मर्मवचनों का एक दिन अनुभव करने के बाद सबको अच्छी तरह पता लग गया था कि किससे पाला पड़ा है। जिन्होंने सर फीरोजशाह मेहता और गोखलेजी जैसे अध्यक्षों के मातहत काम किया था, उन्हें भी यह कहते सुना गया कि इस अध्यक्ष की कड़ाई ने उन सबको भुला दिया। फिर भी यह कहा जा सकता है कि उस कड़ाई ने ही उस भारी काम को अच्छी तरह निपटाया, जो कि कांग्रेस के सामने था।

कांग्रेस के सामने पुराने विधान को बदलकर बिलकुल नया ही—मूलगामी परिवर्तन करनेवाला—विधान तैयार करने का काम कोई मामूली

नहीं था। वह प्रत्येक प्रान्त को पसन्द हो तो ही पास हो, ऐसा नियम होने के कारण कठिनाई बढ़ गयी थी। इसके सिवा एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त करने का असहयोग-कार्यक्रम बनाने का काम तो था ही। विषय-निर्धारिणी समिति के सदस्यों ने न तो देखा अपने स्वास्थ्य की तरफ और न देखा समय की ओर। चार दिन आठ-आठ दस-दस घण्टे तक काम करके शुभ परिणाम लाया गया। उस सभा में जिस ढंग से कार्रवाई हुई, उसमें उपस्थित सभी साक्षी देंगे कि इस कांग्रेस की विषयनिर्धारिणी समिति ने काम अच्छे ढंग से निपटाने की जितनी उत्कंठा, जितना ज्ञानपूर्वक और दिलचस्पी के साथ ऊहापोह किया है, उतना पहले शायद ही किसी सभा ने किया होगा।

और उसके मधुर फल वे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव हैं, जो देश के द्वारा एक स्वर से पास किये गये।

इन प्रस्तावों के पास होने के मूल में जितना देश पर आये हुए असह्य संकट का साधारण भान था, उतना ही उस भान से उत्पन्न होने-वाली समाधान-वृत्ति भी थी। और सबसे अधिक सर्वोपरि थी तमाम 'वाद-विवाद', 'रगड़े-झगड़े' दूर करनेवाली प्रेम-वृत्ति। जो वीर कलकत्ते में गांधीजी के असहयोग के प्रस्ताव के विरोधी दल में थे, वे गांधीजी के साथ हो गये। श्रीयुत चित्तरंजन दास ने असहयोग का प्रस्ताव पेश किया! उसका अनुमोदन करनेवाले थे, गांधीजी, श्रीयुत विपिनचन्द्र पाल और कस्तूरीरंग आयंगर! इस अलौकिक दृश्य ने सबको हैरत में डाल दिया। सबसे बड़ा आश्चर्य तो हुआ हमारे अंग्रेज मेहमान मि० स्पूर को, जिन्होंने उस ऐक्य का वर्णन इन चिरस्मरणीय शब्दों में किया है :

'एक टेक रखकर, एक ही उद्देश्य के लिए, अटल आतम-बलिदान देने के लिए तैयार ऐसा जन-समुदाय मैंने अपनी जिंदगी में कभी नहीं देखा। मैं अपने देश जाकर सन्देश दूँगा कि राष्ट्रीय दल के तमाम भारतवासी एक हो गये हैं। मुझे आज यह अनुभव हो रहा है कि यह देश अपना पवित्र कार्य पवित्र ढंग से पूरा करके संसार को विवेक के मार्ग पर लायेगा। आत्मोन्नति के एक ही मार्ग—त्याग के मार्ग पर इस आन्दोलन को चलाने का प्रयत्न इसी देश को स्वतन्त्र करके नहीं रुकेगा, हमें और दूसरे देशों को भी स्वतन्त्रता देने में सहायता देगा।'

इस एकता में निहित सत्यता और सरलता ही इन उद्गारों का कारण

थी। विषयनिर्धारिणी समिति में तो वे सुन्दर ऊहापोह देख आये थे। प्रत्येक प्रस्ताव पर सूक्ष्म चर्चा होती देख आये थे। परन्तु भरी सभा में उन्होंने अधिक मोहक दृश्य देखे। असहयोग के प्रस्ताव में शिक्षा-सम्बन्धी भाग में मौलाना हसरत मोहानी का जरा मतभेद था। उन्होंने प्रस्ताव में संशोधन रखने के अपने विचार पर अमल किया। गांधीजी ने भरी सभा में समझाकर बताया कि दोनों में सिद्धान्त का भेद नहीं है। और उन्होंने तुरत अपना संशोधन वापस ले लिया। देशी राज्यों की भीतरी बातों से कांग्रेस को मुक्त रखनेवाले प्रस्ताव के बारे में कुछ गलतफहमी पैदा हो जाने से कुछ भाइयों ने उत्तेजित होकर भरी सभा में स्पष्टीकरण चाहा; गांधीजी ने वह कर दिया, तो वह विरोधपक्ष भी दूर हो गया! ये सारे दृश्य श्रद्धा गँवा बैठनेवालों में श्रद्धा जाग्रत करनेवाले थे।

असहयोग के प्रस्ताव पर जितना ऊहापोह नागपुर में खानगी और सार्वजनिक रूप में हुआ है, उतना और किसी प्रस्ताव पर नहीं हुआ। गांधीजी ने अपना मसविदा तैयार करके उसकी नकलें मित्रों में पहले से बँटवा दी थीं। उस पर चर्चा करने के लिए दो-तीन खानगी बैठकें हुईं, खानगी मुलाकातें हुईं और सबको कांग्रेस में फूट पड़ने का डर पैदा करनेवाला प्रस्ताव सारी कांग्रेस ने, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, एक स्वर से मंजूर किया! वह प्रस्ताव पेश करते हुए श्रीयुत चित्तरंजन दास ने उतना ही सुन्दर भाषण किया। इस प्रस्ताव की भाषा इतनी अधिक स्पष्ट है कि उस पर गहरे विवेचन की जरूरत नहीं रह जाती। यहाँ इतना बता दूँ कि बहुत आगे बढ़े हुए असहयोगियों को भी गांधीजी के भाषण के एक वाक्य का रहस्य गहरे विचार के बाद समझ में आये बिना नहीं रहेगा; 'लालाजी, कस्तूरीरंग आयंगर या श्रीयुत दास को अपना बनाने के लिए सिद्धान्त का कुछ भी त्याग न करना पड़े, तब तक मैं एक कदम पीछे हटने को भी तैयार हूँ।' इस प्रस्ताव की खूबी के बारे में एक परम मित्र के उद्गार यहाँ देने की इजाजत लूँ? पुनीतहृदय मि० एण्ड्रूज ने गांधीजी को एक पत्र लिखा है, जिसमें कहा है कि गीतांजलि की

"Give me the strength never to disown the poor,
Or bend my knee before insolent might."

इस प्रार्थना की दोनों बातें इस प्रस्ताव में आ जाती हैं। इस प्रस्ताव में इस बात का दिग्दर्शन है कि हमारे भाई सरकारी नौकर—पुलिस और

फौज के मुलाजिम–अपने क्षेत्र में रहकर कितना कर सकते हैं। इतना ही नहीं, जो हमारे ही अनौदार्य से दीन बने हैं, उन्हें फिर अपना बना लेने का दृढ़ निश्चय भी है; इस ऐक्य और दृढ़ निश्चय में सरकार के उद्धत बल के सामने न झुकने का निश्चय निहित है।

कांग्रेस ने जो विधान पास किया, उसकी महत्ता इस समय समझाना कठिन है। उसे तो एक वर्ष के कार्य के पश्चात् सभी समझ सकेंगे। भविष्य का इतिहासकार इस नये विधान में देश के स्वराज्य का शिलान्यास देखेगा, यह मेरा स्पष्ट मानना है। किसी भी ढंग के बिना, अपनी अनुकूलता के लिए—कभी-कभी तो उस अनुकूलता का भी विचार किये बिना—देश के टुकड़े करके वर्तमान शासक राज्य कर रहे हैं। भाषा के अनुसार देश के विभाग करके कांग्रेस ने देश की एकता की एक सबसे बड़ी कुंजी प्राप्त की है। विधान के जिन दो प्रस्तावों पर बड़ी चर्चा हुई थी—सच्चा प्रतिनिधित्व कायम रखने की प्रथा जारी करने से सम्बद्ध तथा कांग्रेस के ध्येयसम्बन्धी—उन दोनों प्रस्तावों में कितना पारस्परिक सम्बन्ध है, यह ध्येयसम्बन्धी प्रस्ताव का विरोध करनेवाले सज्जनों के खयाल में शायद ही होगा। प्रतिनिधित्व की नयी प्रथा में देश के सब राजनैतिक दलों को कांग्रेस में लाने का कारगर उपाय निहित है, इस बात की उपेक्षा किये बिना इस नये ध्येय का मुकाबला किया जा सके, ऐसा नहीं। ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर रहकर या न रहकर भारत के लोगों के हाथों होनेवाली स्वराज्य-प्राप्ति कांग्रेस का ध्येय है, यह निश्चय करने में कांग्रेस की सब दलों को साथ लेने की उत्कंठा तथा गहरी दीर्घदृष्टि है। जिस दल को ब्रिटिश राज्य का पल्ला नहीं छोड़ना हो, उसके लिए इस ध्येय के बिना कांग्रेस का द्वार खुला रखना असंभव था। भविष्य में यह दल अपने बल से अपनी इच्छा के स्वराज्य की देश से मांग करा सकता है।

स्वराज्य की इस प्रकार नींव डालकर उसके लिए काम करने के लिए कांग्रेस ने कार्यसमिति नियुक्त की है। उसने अपना काम शुरू कर दिया है। इस काम को पूरा करने के लिए धन के वास्ते प्रातःस्मरणीय लोकमान्य तिलक महाराज का स्वराज्य फण्ड स्थापित करने का संकल्प भी असहयोग के प्रस्ताव में ही आ जाता है। इससे गांधीजी को जो शान्ति और आनन्द हुआ है, उतना शायद ही और किसीको हुआ होगा। लगभग तीन मास पहले कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में उन्होंने यह सुझाव दिया था कि तिलक

महाराज के स्मारक के लिए तो 'स्वराज्य फण्ड' ही चाहिए; परन्तु विदेशों के अन्दर प्रचार-कार्य में रस लेनेवाले श्रीयुत सत्यमूर्ति और दूसरे भाइयों को यह सुझाव पसन्द नहीं आया था। श्री केलकर को भी वह पसन्द नहीं आया था। उन सब भाइयों ने इस बार प्रस्ताव में यह सूचना सम्मिलित करने की सम्मति देकर बड़ी उदारता दिखायी है और देश के चित्त को भी प्रसन्न किया है। इस फण्ड का मंगल मुहूर्त करनेवाले स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष श्री जमनालालजी ही हुए हैं। एक लाख रुपये की अंजलि द्वारा उन्होंने लोकमान्य के स्मारक स्वराज्य फण्ड का प्रारम्भ किया और दूसरे ही दिन बम्बईवाले प्रसिद्ध दानवीर सेठ शावकशा बमनजी ने जब तक स्वराज्य न हो जाय, तब तक कांग्रेस के काम के लिए हर महीने दस हजार रुपये देते रहने का वचन दिया! कांग्रेस की आश्चर्य-परम्परा के ये कोई छोटे आश्चर्य नहीं हैं।

परन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि श्रीयुत चित्तरंजन दास ने पचास हजार रुपयों की मासिक आय की वकालत छोड़ दी। इस आत्म-बलिदान से देश को कितना लाभ होगा, इसका पूरा अन्दाजा आज नहीं हो सकता; परन्तु यह तो हम थोड़े ही समय में देख लेंगे कि पण्डित मोतीलाल नेहरू के साथ देश-सेवा में शरीक होकर उन्होंने अनेक भीरु देश-हितैषियों को उत्तेजित किया है।

इन सब बातों से किसी भी आदमी की छाती फूल जायगी; परन्तु कांग्रेस के किये हुए काम से उत्पन्न होनेवाली जिम्मेदारी का विचार करने पर छाती बैठ जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा का सवाल अलग रख दीजिए, सच्चा political boycott—'राजनैतिक बहिष्कार'—लोगों को सिखाकर विधानसभाओं के बहिष्कार को विजयी बनाने की बात भी अलग रखिए, पर मैं अभी से देख रहा हूँ कि नये विधान का चौथा भाग अमल में लाने में लोगों की सारी देह का कचूमर निकल जायगा। तालुके के मुख्य गाँवों में घूमकर, सभाएँ करके, विधान का महत्त्व लोगों के मन पर जमानेवाले, सच्चा समझदार प्रतिनिधि-मण्डल तैयार करनेवाले, निर्मल, निःस्वार्थ, पूरा समय देनेवाले वीर नये बननेवाले प्रत्येक प्रान्त के लिए कम-से-कम साठ से सौ तक चाहिए; ढेरों रुपया चाहिएगा, क्या इन सब बातों के लिए देश तैयार है? तैयार न हो तो लज्जित होने की नौबत आ जायगी। सामने अनेक विघ्न डालनेवाले बलवान् शत्रु तो मौजूद ही हैं।

'The hour of the greatest triumph is the hour of the greatest humility.' (सबसे बड़ी विजय की घड़ी सबसे अधिक विनय और नम्रता की घड़ी है।) जिस विजय को ध्यान में रखकर गांधीजी का यह अमर वाक्य निकला था, उससे इस बार की विजय अधिक बड़ी है। इसलिए हमें उसके अनुरूप और भी बड़ी विनय और नम्रता जुटानी चाहिए। यह विनय और नम्रता, महाबलिदान के लिए वह शक्ति परमकृपालु भगवान् के सिवा और कोई नहीं दे सकता।

५-१-'२१

सरकार पटवर्धन की मृत्यु : अगहन बदी ११ की रात को।

६-१-'२१

छिंदवाड़े में। वहाँ अच्छा काम हुआ। चार वकीलों ने वकालत छोड़ी। बापू ने इस प्रकार भाषण दिया :

तीन वर्ष से मैं आपके शहर में आने की कोशिश कर रहा था। भारत में आने के बाद मेरे परिचय में आनेवाले मुसलमान भाइयों में अलीभाई पहले थे। जब से वे नजरबन्द हुए, तब से मैं उनसे मिलने के लिए अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु वह मुझे नहीं मिली।

अलीभाइयों का छिंदवाड़े के प्रति बड़ा प्रेम है। हमारा पहला करार यह था कि मैं बम्बई होकर अहमदाबाद थोड़ा आराम लेने चला जाऊँ। परन्तु वे मुझे छिंदवाड़े ले आये, क्योंकि इस स्थान के प्रति उनकी बड़ी भावना है, इसकी उन्होंने सेवा की है, इसने उनकी भी बदले में बड़ी सेवा की है और इससे उन्हें बड़ी आशाएँ हैं।

कांग्रेस के सम्मेलन से मध्यप्रान्त का गौरव बढ़ा है, परन्तु कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया, उससे उस वृद्धि में और वृद्धि हुई है। भारत तथा मध्यप्रान्त के सौभाग्य से कलकत्ते में जो हुआ, उससे हम नागपुर में एक कदम पीछे नहीं, परन्तु आगे ही बढ़ सके हैं। हम खिलाफत का अपमान मिटाना चाहते हैं, पंजाब का अन्याय दूर कराना चाहते हैं और स्वराज्य स्थापित करना चाहते हैं, तो हमारा क्या कर्तव्य है, यह नागपुर-कांग्रेस ने हमें बता दिया है। सरकारी उपाधिधारियों से हमें जितना कहना था, उतना हम कह चुके। खिताबों को छोड़ने या रखने की जिम्मेदारी कांग्रेस ने उन्हीं पर छोड़ी है, इसीलिए इस बार के प्रस्ताव में उनके नाम का उल्लेख तक नहीं है। अब कोई बच्चा भी ऐसा नहीं होगा, जिसे

इन उपाधिधारियों का भय हो अथवा उनके खिताबों के प्रति किसी भी तरह की इज्जत हो।

कांग्रेस ने वकीलों से वकालत छोड़ने का और भी कड़ा प्रयास करने तथा देश की सेवा में सारा समय अर्पण करने का आग्रह किया है। जिन वकीलों के पास अपना निर्वाह करने जितनी भी बचत न हो, उनके लिए कांग्रेस उतना जरूर जुटा देगी। वकील इस समय अपनी जिस शक्ति तथा समय का व्यय अदालतों में कर रहे हैं, उसकी इस समय देश के काम में बहुत जरूरत है।

कांग्रेस ने विद्यार्थियों और विद्यार्थियों के सम्बन्ध में उनके माता-पिताओं के कर्तव्य की ओर भी संकेत किया है। इस समय मैं उन सबकी दलील न देकर कांग्रेस का आदेश ही आपके सामने रख देना चाहता हूँ। बच्चों को पाठशालाओं से हटा लेने के साथ ही साथ इन बच्चों को दूसरे कामों में लगाना भी आपका कर्तव्य है। शिक्षा मिल सके तो उसका इन्तजाम कीजिए। अभी वह न मिल सकती हो, तो बच्चों को देश के अन्य कामों में लगाइए। मैं नहीं मानता कि कोई भी बालक ऐसा होगा, जो यह समझने के बाद कि पंजाब में क्या हुआ, खिलाफ़त का क्या हुआ, यह न कहे कि 'मैं इस राज्य को निर्मूल करना चाहता हूँ।' यदि ऐसा कोई हो तो उससे मैं कहूँगा कि तुम्हारी पाठशाला तुम्हें मुबारक हो। सोलह साल से ऊपर के विद्यार्थियों को सरकारी असरवाले स्कूल-कॉलेज तुरन्त छोड़ देने की कांग्रेस ने सलाह दी है।

इसी प्रकार फौजी सिपाहियों से भी अपना भाग अदा करने के लिए कांग्रेस ने कहा है। सरकारी नौकरी की वफादारी देश के प्रति वफादारी के अधीन है, इसलिए जब एक वफादारी दूसरी वफादारी में बाधा दे, तब नौकरी की वफादारी को छोड़कर देश की वफादारी स्वीकार करने का धर्म प्राप्त होता है। यदि डायर जैसा कोई अत्याचारी अफसर बेहूदा हुक्म दे, तो आप उसके हुक्म को मानने के बजाय बहादुर बनकर उसकी गोली खाकर मर जाना मंजूर कीजिए। जलियाँवाला की तरह निर्दोषों को गोली से उड़ाने के बजाय खुद गोली से उड़ने को तैयार होना बेहतर है। आप अपने देशबन्धुओं के लिए रहमदिल बनिए। अपने ओहदों से नाजायज फायदा उठाकर उन पर जुल्म करने के बजाय उन्हें अपना ही समझकर उनके सच्चे रक्षक बनिए। आपको मिलनेवाला रुपया देश की भलाई में देने से

आपको कोई नहीं रोक सकता। जो कुछ बचायें, उसे सार्वजनिक रूप से दीजिए। आप सार्वजनिक सभाओं में निर्भय होकर आ सकते हैं। यह सही है कि आप भाषण नहीं दे सकते, परन्तु अपने देश की हलचलों से परिचित रहने के लिए सभाओं में आने पर सरकार आपको हरगिज रोक नहीं सकती। इन सबके सिवा कांग्रेस ने स्वदेशी पर खास जोर दिया है। जब लंकाशायर का कपड़ा यहाँ आना बन्द हो जायगा, तभी भारत में स्वतन्त्रता की नींव पड़ी समझिए। और यह भी मत मानिए कि लंकाशायर का स्थान जापान को देकर आप मन की मुराद पूरी कर लेंगे। हमारी मुक्ति चरखे में है। प्रत्येक घर में चरखा प्रविष्ट कराने की जरूरत है। इस समय यदि देश का प्रत्येक मनुष्य—स्त्री, पुरुष और बालक—कुछ-न-कुछ समय कातने में देने का व्रत ले ले, तो देखते-देखते देश का शरीर ढँकने के लिए दूसरों पर आधार रखना बन्द हो जायगा और साठ करोड़ रुपया देश के लिए बचाया जा सकेगा।

उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य हिन्दू-मुस्लिम एकता का है। जैसे हम अंग्रेजों की गर्दन नहीं उड़ाना चाहते, वैसे ही हम एक-दूसरे के गले भी नहीं काटना चाहते। हमें भाई-भाई बनकर रहना है। शैतान हमेशा छिद्रों से लाभ उठाता है। इसलिए छेदों को भरना हमारा काम है।

जैसे हिन्दू-मुसलमानों के मिलकर रहने की जरूरत है, वैसे ही हिन्दुओं को अस्पृश्यता का कलंक मिटाकर हिन्दू-धर्म की बदनामी दूर करने की जरूरत है। कांग्रेस ने सब हिन्दुओं से अस्पृश्यता का बुरा रिवाज छोड़ देने की विनती की है। आप निश्चित समझ लें कि जैसे सरकार हिन्दू-मुसलमानों की फूट का फायदा उठाने से नहीं चूकती, वैसे ही हिन्दुओं के इस रिवाज के कारण फैलनेवाले आपसी असन्तोष का भी पूरी तरह लाभ उठाने से नहीं चूकेगी। जब तक हममें ऐसी खामियाँ हैं, तब तक हमारा स्वराज्य का प्रयत्न असफल रहे, तो कोई आश्चर्य नहीं।

संक्षेप में यह कांग्रेस द्वारा नागपुर में एक स्वर से स्वीकृत प्रस्ताव है। उसे अमल में लाने में हमारी परीक्षा होगी। हमने एक वर्ष के भीतर स्वराज्य प्राप्त करने का बीड़ा उठाया है। यदि सरकार अपनी शैतानियत भूलकर, हमें संतोष देकर हमारी इच्छानुसार यहाँ रहने को तैयार हो तो हम उसे रखना चाहते हैं, परन्तु वह शैतानियत कायम रखकर हमें दबाना चाहे, तो मैं कहता हूँ कि उसे नष्ट करना ही हमारा धर्म है।

यह यदि आज हो सकता हो तो उसके लिए मैं कल तक भी इन्तजार नहीं करना चाहता। मेरी प्रार्थना है कि ईश्वर हमें इस महान् संग्राम में आवश्यक तमाम कुर्बानियाँ करने की ताकत दे।

८-१-'२१

नागपुर से चले। रास्ते में मेरे लम्बे पत्र के सम्बन्ध में बातचीत हुई। कस्तूरीरंग आयंगर और लालाजी को पत्र लिखाये।

श्री कस्तूरीरंग आयंगर को :

¶ "आपने यह विश्वास दिलाया कि असहयोग के प्रस्ताव से आपको पूरी तरह संतोष हो गया है और कांग्रेस द्वारा अपनी दो बैठकों में कायम रखे गये कार्यक्रम के किसी अंग के विरुद्ध आप कोई आपत्ति नहीं करेंगे, इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैं आशा रखता हूँ कि आप अपने पत्र में उसका पूरे दिल से समर्थन करेंगे। हमें एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त कर लेना हो तो इस आन्दोलन को हम जितना बल दे सकें उतना देना चाहिए।"

लालाजी को लिखा गया पत्र :

¶ "मैं आशा रखता हूँ कि पंडित गंगाराम के काम की आप जाँच कर रहे हैं। मेरे पास जो पत्र आये हैं, उनमें उनके विरुद्ध बहुत बातें हैं। आपकी ओर से समाचार मिलने तक मैं उन्हें प्रकाशित करना मुल्तवी रख रहा हूँ।

"क्या मैं आशा रखूँ कि पंजाब में असहयोग-सम्बन्धी संगठन करने का काम आप करेंगे? मैं जानता हूँ कि लाला हरकिशनलाल के आन्दोलन के विरुद्ध हो जाने से आपकी कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गयी हैं। परन्तु जब तक आम लोगों की ओर से ठीक उत्तर मिल रहा है, तब तक जिन्हें असहयोग की आवश्यकता और असहयोग की शक्ति के बारे में प्रतीति हो गयी है, उनका स्पष्ट कर्तव्य है कि वे असहयोग को आगे बढ़ायें। मुझे तो यह लगता है कि मालवीयजी और लाला हरकिशनलाल सच्चे और बहादुर पुरुष हैं। इसलिए जब वे अपनी स्थिति की भीतरी कमजोरी और असत्यता देख लेंगे, तब वे इस काम में आये बिना नहीं रहेंगे। २० तारीख को बम्बई में वर्किंग कमेटी की मीटिंग है, उस समय, मैं मानता हूँ कि आप वहाँ अवश्य आयेंगे।

"मैं आपको यह जँचा देना चाहता हूँ कि भारत से बाहर विदेशों में प्रचार करने के लिए कुछ भी खर्च करना बेकार है। आपको यह जानकर

आश्चर्य होगा कि अमेरिका के एक मित्र की ओर से मेरे नाम पत्र आया है, जिसमें उन्होंने मेरी बात का अनुमोदन किया है। यह वर्ष हमारी कसौटी का है। इस समय मैं पाई-पाई बचाने की सलाह देता हूँ। देश में हमारा काम संगठित करने के लिए जितने मनुष्य और जितना रुपया मिल सके, उतने की हमें जरूरत है। परन्तु इस विषय में हम मिलेंगे, तब अधिक बातें करेंगे।"

१३-१-'२१

साबरमती आश्रम में।

नौ महीने में स्वराज्य लेने के लिए हमें पुस्तकें छोड़कर चरखा लेना होगा, उसका प्रचार करने गाँव-गाँव पहुँचना होगा। यह बात समझाते हुए गुजरात महाविद्यालय (अहमदाबाद) के विद्यार्थियों के सामने किया गया प्रेरक प्रवचन :

मुझे आशा थी कि प्रवास से लौटने पर आपसे मिलूँगा, आपसे सलाह-मशविरा करूँगा, सुख-दुःख की बातें करूँगा और अपनी यात्रा के अनेक अनुभवों में से कुछ बानगी आपको दूँगा। उस समय मुझे पता नहीं था कि जो सन्देश आज दो दिन से सभी को दे रहा हूँ, वही आज आपको भी दूँगा। जो चीज मैं इस समय आपके सामने रखनेवाला हूँ, वह कोई नयी नहीं है। वह वस्तु मेरे मन में मूलतः रही ही है। समय-असमय मैं उसका विचार करता ही रहा हूँ और उस पर अमल भी किया है। परन्तु अपने जीवन में मैं कुछ बातों को किसी खास समय ही दिन के प्रकाश की तरह साफ देख सकता हूँ, जैसे कि रौलट कानून के आन्दोलन के समय नड़ियाद में मुझे एक दिन एकाएक सूझ गया कि कानूनों का सविनय भंग करने के लिए जनता अभी तक तैयार नहीं है। नड़ियाद में मैं स्वयं रहा था और अपनी मान्यता के अनुसार मैंने सबसे बड़ा काम वहाँ किया था। वहीं के लोगों ने इतनी बड़ी भूल की कि बिलकुल रास्ता भूल गये। मैंने देखा कि कानून भंग तो वे ही कर सकते हैं, जो डर से नहीं, परन्तु समझकर जीवनभर कानून मानते रहे हों।

मुझे अपना हथियार वापस ले लेना पड़ा। इस प्रकार कोई बात किसी खास मौके पर ही सूझती है। जब मैं विद्यार्थी था, तब भूमिति मेरी समझ में नहीं आती थी। तेरहवें प्रमेय तक तो मुझे पता नहीं चलता था कि भूमिति क्या है ? मगर बाद में जब शिक्षक ने वह तेरहवाँ प्रमेय

तख्ते पर समझाया, तब अचानक मेरे अन्तर में उजाला हुआ और उसके बाद मैं रसपूर्वक भूमिति पढ़ने लगा। इसी प्रकार आज तीन-चार दिन से एक बात मेरे मन में पैदा हुई है। हम असहयोग को सफल बनाना चाहते हों, विद्यार्थियों से उसमें भाग लिवाना चाहते हों, तो हमें क्या करना चाहिए ? जो बात मैं शुरू से मानता रहा हूँ, वह अब आपके सामने रखता हूँ। मेरा तो इस बात में शुरू से ही अटल विश्वास रहा है; फिर भी यह विश्वास किसलिए है, इसका एक पहलू, जैसा मैं अब समझा हूँ, वैसा पहले कभी नहीं समझता था।

मैं आपको कुलपति के नाते कुछ नहीं कहने आया हूँ। बड़े भाई या बुजुर्ग की हैसियत से सलाह देने और मशविरा करने आया हूँ। वह सलाह आग्रहपूर्वक तो दूँगा ही। जितनी दृढ़ता और विश्वास से आज मैं यह बात कहूँगा, उतनी दृढ़ता और विश्वास के साथ पहले कभी मैंने यह बात आपके सामने नहीं रखी। अगर आपका यह कहना हो कि पाठशालाएँ छोड़कर शिक्षा-विहीन होना अपघात करने जैसा है, तो मैं आपसे कहूँगा कि पाठशालाओं में रहने का पाप छोड़कर आप अवश्य आत्मघात कर लें। ईश्वर आपको इस अपघात के लिए क्षमा कर देगा। अब तक मैं आपको कई बानगियाँ परोसता था। आज तो मैं यह कहने आया हूँ कि यदि आप असहयोग को सही साबित करना चाहते हैं, तो आप अपना पूरा समय सूत कातने में ही दीजिए। यह आपको नयी बात लगेगी, इससे आपको आघात पहुँचेगा। जिसे बी० ए० होने की आकांक्षा है और जिसे यह विश्वास दिलाया गया है कि उसे यह विद्यापीठ डिग्री देगा, उससे मैं कहता हूँ कि आज हिन्दुस्तान के लिए चरखा चलाना ही सबसे बड़ी डिग्री है। मेरा इस हद तक जाने का कारण यह है कि मैं अपने विचारों जितनी ही तीव्रता का दर्शन आपमें भी करना चाहता हूँ।

हिन्दुस्तान के गुलाम होने का कारण यही है कि हमने स्वदेशी को छोड़ दिया। भारत में सूत कातना कोई अलग धन्धा नहीं था। प्रत्येक वर्ग की प्रत्येक स्त्री सूत कातती थी। कुछ पुरुष भी कातते थे। ढाके की मलमल का सूत निकालनेवाले पुरुष थे। परन्तु यह तो मैंने कुछ धन्धेवालों की बात की। आम तौर पर कातना धन्धा नहीं, परन्तु कर्तव्य माना जाता था, धर्म समझा जाता था। जब तक हिन्दुस्तान में कातने का रिवाज था, तब तक हिन्दुस्तान खुशहाल था, समृद्ध था। हमारा पैदा किया

हुआ कपड़ा केवल देश की भीतरी माँग को ही पूरा नहीं करता था, बल्कि उससे बचता था और विदेशों में जाता था, यह भूतकालीन इतिहास बताता है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पवित्र और अपवित्र उपायों से कपड़ा बुनने का उद्योग नष्ट किया, करोड़ों रुपये प्राप्त करने के लिए उसने लड़ाइयाँ कीं, बन्दरगाह सर किये, व्यापार हथियाया और अन्त में राज्य स्थापित किया। हम जब तक पश्चात्ताप नहीं करते, अपने बाप-दादों पर गुजरे हुए जुल्म के लिए प्रायश्चित्त नहीं करते, तब तक स्वराज्य कैसे ले सकते हैं? दण्ड देकर हम वह हरगिज नहीं ले सकते। दण्ड देने की पद्धति हमें छोड़ देनी होगी। दण्ड से नहीं, परन्तु आत्मशुद्धि से ही सामर्थ्य प्राप्त करके हमें अंग्रेजों को राज्य करने से रोकना चाहिए। वे हमारी अपवित्रता के कारण ही राज्य कर रहे हैं, निभ रहे हैं, यदि आप यह मानते हों और निर्मल साधनों से ही स्वराज्य प्राप्त करना हो, तो क्या करना चाहिए? प्रायश्चित्त करना चाहिए, पहले कातने का जो काम करते थे, उसे फिर से उठा लेना चाहिए। आप कहेंगे कि यह काम स्त्री-वर्ग का है; उन्हें कातने को कहने के लिए हम तैयार हैं। मैं कहूँगा कि इतने से नहीं चलेगा। हमने पंजाब की स्त्रियों की लाज लुटते हुए देखी है; उस लज्जा से भी हम पुरुषों को यह कातने का धन्धा किसी और धन्धे के ऐवज में नहीं करना है, परन्तु लोगों को अपने फालतू समय का उपयोग करके सूत कातना है और उसके द्वारा भारत का उद्धार करना है। हमारा प्रायश्चित्त पूरा तो तभी होगा, जब स्त्री, पुरुष और बालक, सभी कातने लगेंगे। ब्रिटिश माल के बहिष्कार के हिमायती लंकाशायर को पछाड़ने के लिए बहिष्कार की बात करते हैं, परन्तु दूसरों को पछाड़ने के बजाय खुद किसीसे न पछाड़े जाने की बात करना मुझे ठीक लगता है। जापान, विलायत और अमेरिका की खिड़की बन्द करनी हो तो हमें तमाम आवश्यक कपड़ा घर में ही पैदा कर लेना चाहिए। जब तक हम सूत पैदा नहीं करेंगे, तब तक हम अपनी जरूरत का सारा कपड़ा बुन नहीं सकेंगे। अनुभवी व्यापारियों का कहना है कि हम मिलों के जरिये अपनी आवश्यकता का सारा कपड़ा प्राप्त करना चाहें तो उतनी मिलें खड़ी होने में पचास बर्ष चाहिए। तब नौ महीने में यह काम कैसे पूरा करें? मिलों से आप करोड़ों का उद्धार कदापि नहीं कर सकेंगे। जो अनेक भाई और बहन नंगे फिरते हैं, उनका तन नहीं ढँक सकेंगे। किसी भी देश का गुजर अकेली खेती पर

नहीं हो सकेगा। खेती के साथ कोई दूसरा सहायक धधा अवश्य होना चाहिए। वह धन्धा कातने, बुनने का ही है। हम जब तक उसका पुनरुद्धार नहीं करेंगे, उसे सीख नहीं लेंगे, तब तक हमारी दूसरी पढ़ाई फजूल है।

यह सब कहकर मैं यह साबित करना चाहता हूँ कि यदि यह बात सच्ची लगती हो—और देश की कांग्रेस ने प्रस्ताव पास करके इस बात की सचाई सार्वजनिक रूप में स्वीकार की है—तो हमें अब क्या करना चाहिए ? यदि नौ महीने में स्वराज्य लेना हो तो विद्यार्थियों के लिए असली विद्या यही है कि भारत की कपड़े की भूख मिटायें। आज भारत में कपड़े की तंगी है। भुखमरी भी इतनी नहीं है। इस कपड़े के लिए साठ करोड़ रुपये हर साल बाहर चले जाते हैं। भारत इस समय चालीस करोड़ पौण्ड सूत विदेशों से मँगाता है। इतना सूत हमें घर में कात लेना चाहिए। जुलाहों की हमारे यहाँ कमी नहीं। इस समय कमी कातनेवालों की है। बुननेवालों की संख्या का निश्चित आँकड़ा मुझे अभी नहीं मिला है। परन्तु उनकी संख्या पचास लाख या अधिक है। यदि यह रुपया बचाना हो तो हमें सूत कातने में लग जाना चाहिए। ६० करोड़ रुपये का व्यापार देश में ही करने में कितने आदमियों को रोजी मिलेगी, इसका विचार कीजिए। कपड़े को घी की तरह काम में लेना चाहिए। हमारी ऐसी स्थिति नहीं है कि जितना चाहें उतना कपड़ा इस्तेमाल करें। एक कुर्ते से काम चल जाय, तब तक और कुछ नहीं पहनना चाहिए। पंछिये से काम चला सकें, तो धोती नहीं पहननी चाहिए। साठ करोड़ रुपया बचाने के लिए उतनी ही बड़ी कुर्बानी देनी पड़ेगी।

विद्यार्थी इस सारे वर्ष यही काम उठा लें, तो कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार एक साल के अन्दर स्वराज्य ले सकते हैं। परन्तु इसके लिए महाप्रयत्न करने की जरूरत है। आप अमुक शर्त पर ही अपना यह ध्येय प्राप्त कर सकते हैं। विद्यार्थी अपनी पढ़ाई बन्द करके भारत के लिए मजदूर बन जायँ। अपनी मजदूरी का आप कोई मेहनताना न लें तो आपकी मेहरबानी, परन्तु जिसे लेना हो, वह शौक से ले सकता है।

अगर मैं आपको सलाह देने योग्य हूँ, तो आपको सलाह दूँगा कि आप कॉलेज छोड़ दें। स्वराज्य की लड़ाई में अपना पूरा योगदान देना चाहते हैं, तो भारत के लिए जितना सूत कात सकते हों, उतना कातें। रोज

छह घण्टे या उतना न हो सके तो कम-से-कम चार घंटे ही कातने में बितायें। मेरा यह आग्रह नहीं है कि आप बिलकुल पढ़ाई छोड़ दें। मैं यह नहीं मानता कि आप पढ़ाई छोड़ देंगे तो इससे आपकी विचार-शक्ति घट जायगी। जिसका मन मलिन नहीं है, उसकी विचार-शक्ति कभी नहीं घटती। मेरा अपना अनुभव तो यह है कि जब मैं जेल में था और मुझे पढ़ने को एक भी पुस्तक नहीं मिलती थी, तब मैं अधिक विचार कर सकता था। हमारे दिमाग पढ़-पढ़कर सड़ गये हैं। इसलिए मैंने आपसे कहा कि आप छह घण्टे कातिए और बाकी के समय में पढ़िए। आपसे मैं यह भी कहता हूँ कि आप इस कातने के काम में पारंगत हो जायेंगे तो आप गाँव में भी चले जा सकते हैं। आपमें इतना आत्म-विश्वास न हो तो आप कॉलेज में भी रह सकते हैं। मगर मुझे इतना तो यकीन मालूम होता है कि सभी के चार-छह घंटे रोज कातने में लगाये बिना हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। एक मास में या अधिक-से-अधिक तीन मास में आप कातना सीखकर गाँवों में पहुँच जाने के योग्य हो जायेंगे और वहाँ उसका प्रचार कर सकेंगे। सूत की तंगी मिटाकर हम भारत को जितना आगे बढ़ा सकेंगे, उतना और किसी तरह नहीं बढ़ा सकते। और अब तो हमें कांग्रेस के विधान के अनुसार मतदाता-संघ तैयार करने हैं। यह और किस तरह हो सकेगा? गुजरात के देहात को आज मैं क्या पैगाम पहुँचा सकता हूँ। क्या उन्हें अंग्रेजों को गालियाँ देने को कहूँ या उन्हें तलवार-बन्दूक दूँ? तब मैं उनसे क्या कहूँ? मेरा सन्देश इस समय यह है कि सब सूत कातने में लग जायँ। जब एक देहाती आदमी अहमदाबाद आकर कपड़ा ले जाता है, तब मुझे बहुत चुभता है। मेरा स्वदेशी धर्म यह है कि प्रत्येक गाँव अपनी जरूरत की चीजें खुद ही पैदा कर ले। यदि हम इस प्राचीन प्रथा को फिर ले आयें तो भारत पर कोई कुदृष्टि नहीं डाल सकेगा। मैं आचार्य महोदय और अध्यापकों से प्रार्थना करता हूँ कि एक वर्ष के लिए तो आप यही तरीका अख्तियार कर लीजिए और विद्यार्थियों को देहात में भेज देने के लिए तैयारी कीजिए।

इस वर्ष के दरमियान आपकी शिक्षा इतनी हो तो काफी है: अपनी गुजराती सुधारें, अंग्रेजी को छोड़ें, हिन्दुस्तानी सीखें, उर्दू लिपि भी सीखें और चरखा चलाना अवश्य सीखें। इतना कर लेंगे तो हम अगले वर्ष के लिए ताजा हो जायेंगे। मैं तो चाहता हूँ कि स्वराज्य मिलने तक यही

ढंग जारी रखें। ऐसा न हो तो अन्त में एक वर्ष तक तो यह क्रम रखें ही। यही मेरा आज का सन्देश है।

आप कुछ भी शंका होने पर उसे बेधड़क पूछें। मैं नहीं चाहता कि एक भी अश्रद्धालु विद्यार्थी यह नयी चीज स्वीकार करे। आपकी बुद्धि और हृदय स्वीकार करे, तभी मेरी बात मानें।

विद्यार्थी : माँ-बाप कहेंगे, तुम्हें महाविद्यालय में पढ़ने भेजा था, चरखा कातने नहीं।

गांधीजी : उनसे कहिए कि चरखा कातना भी पढ़ाई है।

वि० : माँ-बाप गाँवों में जाने के लिए मना करेंगे और कहेंगे, घर पर ही बैठे रहो।

गां० : तो आप घर बैठकर कातिए, यह अच्छा रास्ता है। कातने के लिए भी मना कर दें तो उन्हें विनयपूर्वक समझाइए। दिनभर चरखा कातनेवाले लड़के से माँ-बाप एक दिन, दो दिन या अधिक-से-अधिक चार दिन लड़ेंगे। परन्तु बाद में वे समझ ही जायेंगे। मैंने ऐसे माँ-बाप भी देखे हैं जो बच्चों से झूठ बोलने के लिए कहते हैं। लड़के के झूठ न बोलने पर नाराज होते हैं। परन्तु दो-चार दिन नाराज होकर अपने-आप चुप हो जाते हैं। आपमें इतनी दृढ़ता तो अवश्य आनी चाहिए और मैं कॉलेज के विद्यार्थी से इतनी दृढ़ता की आशा अवश्य ही रखूँगा।

वि० : चरखे से असहयोग को क्या मदद मिलेगी ?

गां० : चरखे से भारत की आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकेगी। जब तक आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं हो जाती, तब तक हम स्वराज्य का उपभोग नहीं कर सकेंगे। हम साबुन के बिना, सूई के बिना या पिन के बिना काम चला सकते हैं, परन्तु कपड़े के बिना नहीं चला सकते। अभी हम बाहर से जितना माल ला सकते हैं, उतना बाहर दे नहीं सकते। इसलिए साल दर साल घाटा बढ़ता ही जाता है। सरकारी फौज का भारी खर्च हमें उठाना ही पड़ता है। साठ करोड़ रुपये कपड़े पर देते हैं और दूसरा व्यर्थ की चीजों पर चला जाता है, वह अलग। यह सही हो तो हमें आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ही लेनी चाहिए। यह साठ करोड़ रुपया हम बचा सकें तो बचा लेने चाहिए। साठ करोड़ बचा लेंगे तो और भी बचाने की शक्ति आ जायगी अथवा वे चीजें बाहर से लेना भी उस वक्त संभव होगा। पिन का या घड़ियों का कारखाना हिन्दुस्तान में न

हो तो भारत कोई अपंग नहीं हो जायगा, परन्तु कपड़े के बिना तो भारत की हालत सचमुच विधवा-जैसी होगी।

वि० : चरखा जारी होने से विद्यार्थियों में फिर खलबली पैदा होगी।

गां० : खलबली से तो विद्यार्थी ऊपर उठते हैं। खलबली करना मेरा और अध्यापकों का धर्म है। इस समय विद्यार्थी जागते हुए भी सो रहे हैं। माँ-बाप के साथ, दुनिया के साथ और अपने साथियों के साथ इस प्रकार का झगड़ा चल रहा हो, तब कुछ का जाग्रत होना संभव है; इसमें गिरावट नहीं है।

वि० : विद्यार्थियों के सिवा अन्य वर्गों को आप कातने के लिए क्यों नहीं कहते? विद्यार्थियों से पढ़ाई क्यों छुड़वाते हैं?

गां० : हमारी पहली भूल यह मानना है कि कातना शिक्षा नहीं। दूसरी भूल यह मानना है कि बलिदान शिक्षा नहीं। कल ही यदि सारे लड़के समझ जायँ कि पढ़ाई का बलिदान करके देश-सेवा करनी है तो मैं समझूँगा कि उसी क्षण मेरा एक वर्ष का काम पूरा हो गया।

वि० : चरखे से जीवन-निर्वाह कैसे हो सकेगा?

गां० : बुद्धि का उपयोग करनेवाला कमाई भी कर सकता है। परन्तु इस वक्त तो मैं चरखे को आपद्धर्म के रूप में रख रहा हूँ। भारत के तमाम लड़के रोज चार घंटे सूत कातने की प्रतिज्ञा ले लें तो एक महीने में सूत के भाव घट जायँगे।

वि० : पाठशालाओं में ऐसा परिवर्तन करने से क्या असहयोग-आन्दोलन को धक्का नहीं लगेगा?

गां० : नहीं। सरकारी पाठशाला छोड़नेवाले को यह मानकर पाठशाला छोड़नी है कि सरकारी शिक्षा मलिन वस्तु है। इस विद्यालय के लालच से ही छोड़ते हों तो उन्हें अपने कॉलेज ही मुबारक हों। जिन्हें केवल अक्षर-ज्ञान ही देना हो, वे भले ही वैसे अलग कॉलेज खोलें। हमें यदि सूझता हो कि हमारा यही कर्तव्य है, एक वर्ष यह काम करेंगे तो देश को लाभ होगा, हम स्वराज्य के साधन बनेंगे, तो यह काम करना ही चाहिए।

वि० : क्या आप मानते हैं कि आपके नये विचार के लिए देश का वातावरण तैयार है? आप लड़ाई के 'टर्किश बाथ' के अन्तिम कमरे में एकदम ही लोगों को धकेल रहे हैं!

गां० : मैं जानता हूँ कि वातावरण तैयार है, इसीलिए तो यह बात कर रहा हूँ। देश पिछले तीन मास में बहुत ही आगे बढ़ गया है। वातावरण रेल की चाल से नहीं, परन्तु बरफ पड़ने की तरह भूमिति के ढंग से तेजी के साथ बढ़ रहा है। मैंने आठ वर्ष पहले लिखा था कि भारत को यह मार्ग स्वीकार करना पड़ेगा। उस समय मैं नहीं जानता था कि सन् १९२१ के जनवरी मास की १३ तारीख को आपसे यह बात करूँगा।

वि० : क्या देश-सेवा से पहले कुटुम्ब-सेवा नहीं करनी चाहिए ?

गां० : जरूर करनी चाहिए। परन्तु कुटुम्ब-सेवा लोक-सेवा की विरोधी नहीं हो सकती। मैं यह क्रम मानता हूँ कि पहले अपनी सेवा, फिर कुटुम्ब की सेवा, फिर गाँव की सेवा और बाद में देश-सेवा। परन्तु कोई भी सेवा संसार के कल्याण के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए। देश के ऐसे दारिद्र्य-काल में कुटुम्ब-सेवा के नाम पर बहन के विवाह में बीस हजार रुपया खर्च नहीं किया जा सकता।

वि० : देश की रक्षा के लिए पुलिस की जरूरत पड़ेगी। आप चरखे के बजाय हमें कवायद सिखाकर उस काम के योग्य क्यों नहीं बनाते ?

गां० : पुलिस का कार्य आपको मैं कैसे सिखाऊँ ? जहाँ भय हो, वहाँ जाकर खड़े रहने की शक्ति आनी चाहिए। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि आराम से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही स्वराज्य की कोशिश करेंगे ?

वि० : स्वराज्य का क्या अर्थ है ?

गां० : हमारे हाथ में सैनिक विभाग आये, आमद-खर्च का अधिकार आये, कर-प्रबन्ध हमारे हाथों में हो और अदालतें हों, इसीका नाम स्वराज्य है। ऐसा स्वराज्य मिलने पर हम सब प्रकार के अत्याचार रोक सकते हैं। इनमें से आर्थिक स्वातन्त्र्य तो हम आज ही प्राप्त कर सकते हैं। यह चरखे से मिल सकता है। संभव है, देश इसे इस समय स्वीकार न भी करे।

वि० : आप बार-बार यह बात कहते रहते हैं कि 'लड़ाई की स्थिति है' 'लड़ाई की स्थिति है', तो क्या 'वालंटियर आर्मी' (स्वयंसेवक सेना) खड़ी किये बिना लड़ाई हो सकेगी ? विद्यार्थियों को फौजी तालीम

भी जरूर देनी चाहिए। तो क्या अभी चरखे की अपेक्षा उस पर ज्यादा जोर देने की जरूरत नहीं है ?

गां० : यह सैनिक शिक्षा तो बहुत ही थोड़े समय में दी जा सकती है। और सैनिक शिक्षा का अर्थ क्या ? बहादुरी । [गांधीजी को मालूम था कि सवाल पूछनेवाले विद्यार्थी भाई पुराणी के अखाड़े में जानेवाले थे।] बहादुरी क्या कुश्ती खेलने से आती है ? शहर में कहीं दंगे शुरू हो जायँ और लोग मकान जलाने लगें, तो जो व्यक्ति तुरन्त दौड़कर बीच में पड़कर कहता है कि मुझे मारने के बाद ही तुम घर जला सकोगे, वह सच्चा बहादुर है। ऐसे समय क्या हुक्म दिये जाते हैं ? 'मार्च', 'क्विक मार्च' सुनने तक खड़े रहा जाता है ? ऐसे वक्त पर तो कवायद भी भूल जाना होता है। ऐसे मौके पर मैं यही कह सकता हूँ कि भाई, जितना दौड़ा जा सके, दौड़कर उस जगह पहुँच जाओ। मैं तो ऐसा समय आने पर कुछ भी साथ लिये बिना, जूते पहनते-पहनते भी छोड़कर दौड़ जाऊँ और आग को बुझाता हुआ भस्म हो जाऊँ। यदि मैं इस तरह भस्म न हो जाऊँ, तो कहना कि गांधीजी बड़ी-बड़ी बातें करता था, वे सब मिथ्या थीं।

वि० : सरकार हमारी तमाम माँगें मान ले और केवल खिलाफत की माँग स्वीकार न की जाय तो क्या लड़ाई जारी रखनी चाहिए ?

गां० : जरूर, मैंने कई बार कहा है कि मैं इसलाम के बचाने में हिन्दू-धर्म को बचाने की तालीम ले रहा हूँ। इसलाम को बचाने में ही गाय की रक्षा समायी हुई है। जब तक भारत में एक भी गाय मारी जाती है, तब तक मेरा मांस, मेरे स्नायु और मेरे खून का पानी हो रहा है। मैं गाय को बचाने के लिए तालीम ले रहा हूँ, तपश्चर्या कर रहा हूँ, अनेक विभूतियाँ प्राप्त कर रहा हूँ और मैं यह गो-रक्षा का मंत्र जपते-जपते ही मरूँगा।

वि० : क्या आप यह नहीं मानते कि केवल चरखे का ही ध्यान करने से वर्तमान शिक्षा को हम भूल जायेंगे ?

गां० : चरखे की प्रवृत्ति से स्वतन्त्र होकर अक्षर-ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम सच्ची योग्यता प्राप्त कर लेंगे, अर्थात् इस चरखे की प्रवृत्ति से वर्तमान शिक्षा सतेज हो जायगी।

१९ (?)-१-'२१

वड़ताल की यात्रा

थोड़े दिन बाद गांधीजी ने स्वामीनारायण के पवित्र धाम वड़ताल की यात्रा की। अहमदाबाद से नड़ियाद रेल में और नड़ियाद से वड़ताल मोटर से गये। नड़ियाद की राष्ट्रीय पाठशाला के विद्यार्थियों के सामने बोलते हुए कहा :

"मैं चाहता हूँ कि आप यह न मान बैठें कि स्वराज्य कोई राजनैतिक विषय है। हरएक बालक को समझना चाहिए कि स्वराज्य क्या है और मानना चाहिए कि यह स्वधर्म है। स्वधर्म की रक्षा करने की प्रत्येक बालक में शक्ति होनी चाहिए। उसमें इतनी सत्ता होनी चाहिए कि उससे कोई मारकर या धमकाकर कुछ न करा सके। हर बच्चे में इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि झूठे को झूठा और सच्चे को सच्चा कहे। हरएक माँ-बाप का कर्तव्य है कि वे बच्चों को सच-झूठ का भेद सिखा दें। यही स्वराज्य का अर्थ है। स्वराज्य अर्थात् जो मन में हो, वह कहने और करने का और जो वस्तु पाप मानी जाय, उसे न करने का अधिकार।"

वड़ताल में साधुओं की सभा में यह समझाया कि उन्होंने स्वयं भगवा क्यों नहीं धारण किया :

"मुझे कुछ मित्रों ने सुझाया है कि मुझे संन्यासी बन जाना चाहिए। परन्तु मैं संन्यासी नहीं बना। मेरी अन्तरात्मा स्वीकार नहीं करती। इसका कारण आप यह न मानिए कि मुझे कोई भोग भोगने हैं। उनका त्याग करने की मैं यथाशक्ति कोशिश करता रहा हूँ। उस कोशिश में ही मैं यह देखता हूँ कि मैं भगवा धारण करने के योग्य नहीं। मैं यह नहीं कह सकता कि मैं तन, वचन और मन तीनों से सत्य, अहिंसा या ब्रह्मचर्य का पालन करता हूँ। मेरे मन में राग-द्वेष पैदा होते हैं, वासना उठती है, उन्हें मैं विचारपूर्वक रोकने का प्रयत्न करता हूँ और शरीर द्वारा दबा देता हूँ। यदि इन सबका मैं सम्पूर्ण रूप में पालन कर सकूँ, तो आज मैं सब विभूतियों का स्वामी होऊँ, मेरे नम्र होने पर भी जगत् मेरे चरणों में हो और कोई मेरी हँसी उड़ाने या मेरा तिरस्कार करने की इच्छा न करे।"

वड़ताल की सार्वजनिक सभा में जो व्याख्यान दिया, उसका सार इस प्रकार है :

इस पवित्र स्थान पर आने से मुझे आनन्द हो रहा है। सन् १९१५ ई०

से मैं अन्तःकरणपूर्वक चाहता था कि इस पवित्र धाम की यात्रा करूँगा। मैं ईश्वर का अनुग्रह समझता हूँ कि आज यह अवसर उसने दिया और आपकी भी कृपा मानता हूँ।

इस सभा में इतने सारे साधु आये, इससे मुझे बहुत आनन्द हो रहा है; क्योंकि मेरा सन्देश केवल साधारण स्त्री-पुरुषों के लिए ही नहीं है, परन्तु सबके लिए है—साधुओं के लिए तो विशेष है। जब साधु-वर्ग यह समझेगा कि असहयोग क्या है, भारत के लोग क्यों असहयोग कर रहे हैं, तब उन्हें मालूम होगा कि असहयोग के मंत्र के बिना साधु नहीं रहा जा सकता, साधुता कायम नहीं रखी जा सकती। असहयोग हमारे धर्म में कोई नया तत्त्व नहीं है। परन्तु कुछ उपाधियों के कारण हम इसे भूल गये हैं अथवा इसके लक्षण भूल गये हैं। इसलिए इस पर अमल करने में कुछ ढील हो रही है, शंकाएँ उठ रही हैं और इसलिए स्वराज्य की स्थापना में समय लग रहा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि यह तत्त्व नया नहीं है, इसीलिए मैं कहता हूँ कि यदि लोग अच्छी तरह जवाब दें, तो हम एक वर्ष में स्वराज्य स्थापित कर लें। इस बात को चार महीने हो गये, तो भी मैं ऐसा कह रहा हूँ, इसका कारण लोगों में मेरी अविचलित श्रद्धा है।

जब केवल राजनीति में पड़े हुए कुछ भाई शंका उठाते हैं और कहते हैं कि यह काम राजनैतिक नहीं, कौन जाने क्या है, या धार्मिक है, तब मैं स्वीकार करता हूँ कि यह निःसन्देह धार्मिक है; यह मैंने छिपाया भी नहीं है। जब तक इसका उपयोग राजनैतिक प्रश्नों के हल करने में नहीं करते, तब तक कठिनाई पैदा होती है। जब तक साधु इसमें अपना पूरा योग न देंगे, तब तक उनमें साधुता नहीं आ सकती।

क्षत्रिय को विश्वास हो, तो मौत सिर का मुकुट है। मरने का क्या डर? जहाँ सबसे ज्यादा मरने की संभावना हो, वहाँ जाकर जो खड़ा रहता है, वही बहादुर है। जो मार सकता है, उसे कोई बहादुर नहीं कहता। एक कुम्हार गधे को मारता रहता है, उसे हम क्षत्रिय नहीं कहते। इसी तरह जो क्षत्रिय मारता रहता है, उसे हम घातकी कहकर यथार्थ विशेषण देते हैं। नामर्द पुरुष स्त्री को मारता रहता है, उसे हम बहादुर नहीं कहते, परन्तु नामर्द कहकर सच्चा विशेषण देते हैं। जब तक हममें क्षत्रिय का यह गुण नहीं आ जाता, तब तक स्वराज्य मिलना कठिन है।

क्षत्रिय का गुण धीरज है। बारह वर्ष के प्रह्लाद में, सुधन्वा में, सीता में यह गुण था। रावण ने सीता को प्रलोभन दिये, भय दिखाये, परन्तु सीताजी टस से मस नहीं हुईं, इसीलिए हम उन्हें शुद्ध क्षत्राणी–देवी–माता मानते हैं। स्त्रियों में जब तक सीता के गुण नहीं आते, तब तक असहयोग करने के लिए, स्वराज्य लेने के लिए हम नालायक हैं। सीता ने रावण के मिष्टान्नों का त्याग किया, वे मिठाइयाँ कोई कड़वी नहीं थीं; परन्तु वे अपात्र की थीं, इसलिए उन्होंने उन्हें फेंक दिया। रावण ने शरीर को सजाने के लिए सीता के पास जो शृंगार भेजे, वे ऐसे उत्तम होंगे, जो आपने कभी नहीं देखे होंगे; उनके हीरे-मोती आजकल के हीरे-मोतियों से भी ज्यादा जगमगाते होंगे; परन्तु यह जानकर कि ये सब वस्तुएँ अपात्र की ओर से आयी हैं, सीताजी ने उनका त्याग किया। तभी वे अपने सतीत्व की रक्षा कर सकीं।

सरकार ने हमारी प्रतिष्ठा की चोरी की है। रुपया तो वह चुराती ही थी। परन्तु जब तक वह केवल रुपयों की ही चोरी करती थी, तब तक मैंने उसे बर्दाश्त किया। मैंने उसके साथ अपने आश्रम-जैसा व्यवहार रखा। जैसे आश्रम में किसी चोर को सजा नहीं देता, वैसे ही मैंने सरकार को भी सहन किया। परन्तु जब सरकार ने मेरे देश की प्रतिष्ठा को कुचलना शुरू किया, तब मैं सचेत हो गया कि यह तो रावण का अवतार है। इसका संहार करना चाहिए। इससे मैं यह कहने का दावा नहीं करता कि मैं रामचन्द्र का अवतार हूँ। रामचन्द्र को हम ईश्वर मानते हैं। मैं ईश्वर नहीं; आप भी नहीं; परन्तु हम सब रामचन्द्र के वारिस हैं। उनकी-सी तपश्चर्या करना, उनके-से दुःख उठाना हमारा धर्म है। उन्होंने जैसे रावण से असहयोग किया, वैसे हमें भी करना होगा। हम राम नहीं हैं, इसलिए हम अत्याचारी के शरीर को मारकर कुछ नहीं कर सकते। हम तो मानते हैं कि यह अपनी दुष्ट वासनाओं के कारण बार-बार नये-नये शरीर धारण करता रहेगा। परन्तु हमें वाल्मीकि और तुलसीदास की आज्ञा का पालन करके उसके संग का त्याग करना चाहिए; उसकी दुष्टता का नाश करना चाहिए।

अवेस्ता, कुरान, बाइबिल और स्वामीनारायण ने यही सिखाया है कि दुष्टों का संग न किया जाय; उन्हें मदद न दी जाय और न उनकी मदद ली जाय। सरकार ने इसलाम पर हाथ डालकर, मुसलमानों को

दगा देकर अपना रावणपन प्रकट किया है। आज इसलाम और कल हिन्दू-धर्म । हिन्दू-धर्म पर तो उसने इसके पहले ही वार किया है; परन्तु अज्ञानवश हमने अपनी सभ्यता का त्याग करके उसके विरुद्ध बहुत कुछ नहीं किया। हिन्दू अपने धर्म का त्याग न करते, तो गायों का खुले आम वध करनेवालों को हम सलाम कैसे कर सकते थे? यह किसी एक व्यक्ति का प्रश्न नहीं है। एक व्यक्ति गाय मारे और उसे हम सहन कर लें, यह अलग बात है। परन्तु यह सरकार तो हमारी सरदार, अन्नदाता बनकर गाय मारती है, उसके हम कैसे वफादार हो सकते हैं?

आप पूछेंगे कि यह बात क्या मुझे एक वर्ष से ही मालूम हुई है? नहीं, परन्तु उस समय मैं मिथ्यात्व में डूबा हुआ था। मैं यह मानता था कि सरकार को सुधार लूँगा। मैं मानता था कि मरकर भी उस पर असर डाल सकूँगा। परन्तु इसलाम को जान-बूझकर धोखा देने से मेरा वह विश्वास जाता रहा। मैं चेत गया और समझ गया कि हे जीव, तू हिन्दू है, तो चेत जा कि अब तुझे भागना चाहिए, नहीं तो तू हिन्दू-धर्म छोड़ेगा। तब से मैं हिन्दू माता-पिताओं को धर्मरक्षार्थ असहयोग सिखा रहा हूँ। यदि आपको हिन्दू-धर्म का पालन करना हो तो इस पवित्र धाम में मैं कहता हूँ कि आपका पहला और अंतिम पाठ असहयोग है।

× × ×

सरकार ने इसलाम के साथ विश्वासघात किया और पंजाब की नाक काटी। पंजाब तो हमारा सिर है; जहाँ हमारे ऋषि-मुनियों ने निवास किया वह देश पंजाब है। उस देश के लोगों को इसने कोड़े लगाये, उन्हें पेट के बल चलाया, उनकी स्त्रियों के बुर्के उठाये, साधुओं के कपड़ों को सफेद कूँची से रँगा, एक हजार मनुष्यों को पीछे से गोली मारकर कत्ल किया; वह सरकार अब कहती है कि इसे तुम भूल जाओ। हजार आदमियों की कतल होने से मेरे जख्म नहीं हुए हैं। परन्तु मर्मान्तिक घाव तो इस बात से हुआ है कि उन्होंने इसमें सारा दोष भारत का बताया है। खुद खराब होने पर भी भारत को ही खराब बताया। कहते हैं हमने कुछ नहीं किया, यह तो जनरल डायर से थोड़ी-सी भूल हो गयी। इसके लिए न तो उसे पश्चात्ताप है और न क्षमा-याचना की वृत्ति। जब तक पंजाब को न्याय नहीं मिल जाता, तब तक हिन्दू, मुसलमान,

ईसाई सबका धर्म है कि असहयोग करें। मुसलमान-धर्म में भी यही बात है। इसके लिए उन्होंने 'तर्क मुवालात' शब्द इस्तेमाल किया है।

यह असहयोग शान्त है; इसमें लाठियों या कुल्हाड़ों का उपयोग नहीं है। सिर काटने नहीं; सिर देने हैं। यह अंग्रेजों के प्रति और अपने प्रति भी अहिंसा पालन करने का धर्म है।

आप धाराला नहीं; ठाकरड़ा नहीं, ठाकुर हैं। आपको ठाकुर बनना हो तो आप चोर नहीं हो सकते। पाटीदार भी अपने को क्षत्रिय कहते हैं, परन्तु वे क्षत्रिय नहीं, क्योंकि वे चोरी में अपना हिस्सा रखते हैं। वे चोरी का माल लेते हैं, वे क्षत्रियपन भूल गये हैं। आप तो क्षत्रिय-जैसे ही लगते हैं, शस्त्र रखकर क्षत्रियपन का दिखावा करते हैं। मैं आपसे कहता हूँ कि लोगों को सताने के लिए आप क्षत्रिय नहीं हैं, परन्तु उनकी रक्षा करने के लिए हैं। आप शराब पियें, लोगों को दुःख दें, स्त्रियों पर कुदृष्टि डालें, किसीको लूटें, यह आपका धर्म नहीं। ऐसा करने से आप लंपट कहलायेंगे। लंपट को क्षत्रिय नहीं कहा जाता। मैं धारालों को अपने भाई समझकर उनसे मिलने आया हूँ। मैं कहता हूँ कि यदि कोई पाटीदार लंपट बनता है, तो आप उसे छोड़ दीजिए। मैं आपमें से ही हूँ, पाटीदारों में से भी हूँ। उन्हें क्षत्रिय जानकर उनके साथ रहने आया हूँ। जब मैंने सुना कि ये पाटीदार लूट का माल रखते हैं, तब मुझे शंका हुई कि ये नामर्द तो नहीं हैं? यदि आप पाटीदार जाति के द्वारा स्वराज्य में हिस्सा देना चाहते हों तो आप यह काम भूल जाइए।

धाराले ठाकुर तभी बनेंगे, जब वे देश की रक्षा करेंगे। साधु वही है, जो धारालों में चला जाय। जो उनका संग करते हुए भी कमल-पत्र की तरह निर्लेप रहकर उन्हें समझाने के लिए तत्पर रहे। मैं साधु होने का दावा नहीं करता; परन्तु गृहस्थ होने पर भी कहता हूँ कि यदि मैं इस काम में न लगा होता तो भीलों में और जंगली जातियों में जाकर रहता; उन्हें शुद्ध, दयावान्, बहादुर, सदाचारी, सच बोलनेवाले होने का उपदेश देकर उन्हें लोगों की रक्षा में लगाता।

यहाँ अनेक साधु रहते हैं, उनसे मेरी विनती है कि जब तक इस तरह का कहर फैला हुआ है, तब तक जैसे मैं विद्यार्थियों से स्वयंसेवक बनने को कहता हूँ, वैसे आप अपने अधिकार का उपयोग करके देश के इस काम में जुट जाइए। लुच्चों, चोरों और लम्पटों के दोषों का हरण

करना आपका धर्म है। जब तक आप ऐसा नहीं करते, तब तक आपको साधु कहलाने का अधिकार नहीं। यदि आप स्वराज्य चाहते हैं—अर्थात् रामराज्य, सत्ययुग चाहते हैं, यदि आप भरतखंड को धर्म-भूमि—देव-भूमि बनाना चाहते हैं, तो पड़ोसी पर होनेवाले अत्याचारों से उसकी रक्षा करना आपका धर्म है। आपके पास यम-नियम के दिव्य शस्त्र हैं। इन शस्त्रों को आप यत्किंचित् तपस्या से सहज ही सच्चे कर सकते हैं।

धारालों से मैं कहता हूँ कि आप साधुओं को कष्ट न दें। पाटीदारों से कहता हूँ कि आप लूट व चोरी को प्रोत्साहन न दें। आप ब्राह्मण-धर्म पालन न कर सकें तो डाकुओं को मार भगायें।

यदि ये दोनों अपना धर्म भूल जायँ, तो मैं साधुओं से कहता हूँ कि आप उनकी रक्षा कीजिए, उन्हें सुधारिए, उनका मैल धोइए; जब आप यह काम करेंगे, तब धर्म की पुनः स्थापना होगी, तभी हम भारत को कर्म-भूमि कहेंगे।

मैं तो चला जाऊँगा। परन्तु आप यह काम उठा लीजिए। मैं कहता हूँ कि आज ही दो-चार साधुओं, दो-चार पाटीदारों, दो-चार धारालों की एक कमेटी बनाकर यह काम कराइए—प्रतिज्ञा लिवाइए। यह काम करेंगे तो स्वराज्य एक वर्ष में अवश्य मिलेगा। ईश्वर आपको प्रेम, हिम्मत, दया, सत्य और यज्ञ करने की शक्ति दे, यह मेरी प्रार्थना है।

२५ (?)-१-'२१ से
४-२-'२१

[कलकत्ते में। वहाँ की प्रवृत्तियों के बारे में महादेवभाई द्वारा लिखित पत्र नीचे दिया जाता है :]

हम कल ही कलकत्ता पहुँचे। श्री जयकर के (स्वराज्य मिलने तक) अपना धंधा छोड़ने की खुशखबरी लेकर ही हम बम्बई से चले थे। यह खबर गांधीजी ने श्री दास को दी। वे बहुत खुश हुए। जब २१ तारीख को सुबह के वक्त श्री जयकर अपना धंधा छोड़ने की बात कहने लगे, तब गांधीजी का उनसे कहा हुआ एक वाक्य याद आता है : 'तो अब हमारा काशी के करार का ठीक-ठीक पालन हुआ। सिर्फ मालवीयजी और लाला हरकिशन-लाल रह गये।' इस करार की जरा तफसील में उतरने की जरूरत है, ताकि श्री दास को इस लड़ाई में पड़ने की प्रेरणा देनेवाले असली कारण

का पता चल जाय। १६ दिसम्बर के आसपास हम ढाके में थे। वहाँ दिये गये एक प्रौढ़ भाषण के आरम्भ में गांधीजी ने कहा था कि 'पंजाब कमेटी की रिपोर्ट तैयार करने में मुझे श्री दास की अमूल्य सहायता मिली है। जब हम उस कमेटी की आखिरी सिफारिश पर पहुँचे, तब मैंने सबसे अनुरोध किया कि हमें अपनी कम-से-कम माँग लिख देनी चाहिए और उस माँग को पूरा कराने के लिए हम सबको प्राण अर्पण करने को भी तैयार हो जाना चाहिए। हमारे काशी के इस जबानी करार की मैं श्री दास को याद दिलाता हूँ।' उस दिन श्री दास बड़े विचार में पड़ गये। कांग्रेस में आकर उन्होंने विचार को निश्चय का रूप दिया और आज उस निश्चय को कार्यरूप दे रहे हैं।

श्री दास आज बंगाल में आबाल-वृद्ध सभी की जबान पर चढ़े हुए हैं। उन्होंने कहा कि 'मैं घबरा गया; इतनी आशा मैंने नहीं रखी थी; और अब तो मुझसे यहाँ से हटा नहीं जा सकता——इन विद्यार्थियों को छोड़कर।' सभी कह रहे हैं कि यह मासिक पचास हजार की वकालत छोड़ने का परिणाम है। श्रीयुत दास भी यह मानने लगे हैं। 'नायक' नामक एक पत्र में आया हुआ एक 'कार्टून' (व्यंग्यचित्र) बंगालियों की श्री दास-सम्बन्धी भावना का द्योतक है। उस चित्र में श्री दास को गांधीजी रूपी गंगा को बंगाल में लानेवाले भगीरथ के रूप में चित्रित किया गया है।

कितने विद्यार्थी निकले, इस बारे में तो 'नवजीवन' में समाचार आ गया है। प्रेसिडेन्सी कॉलेज के, शिवपुर इंजीनियरिंग कॉलेज के और मेडिकल कॉलेज के लड़कों के सिवा सभी कॉलेजों के अधिकांश विद्यार्थी निकल आये हैं। गांधीजी के विषय में अहमदाबाद में जो अफवाह उड़ी थी (कि वे गुजरात कॉलेज की सीढ़ियों पर आड़े लेट जानेवाले हैं) उसे, यहाँ विद्यार्थियों ने सही साबित कर दिया है, ऐसा मालूम होता है। इसमें बंगवासी कॉलेज के विद्यार्थी सबसे कम दोषी कहे जा सकते हैं। उन्होंने जिन परिस्थितियों में यह कथित सत्याग्रह किया, वे जानने योग्य हैं। कॉलेज के आचार्य श्री दास से कह चुके थे कि सात सौ लड़कों के हस्ताक्षरों से प्रार्थना-पत्र ले आयें, तो वे कॉलेज को राष्ट्रीय बना देंगे अर्थात् उसका विश्वविद्यालय से सम्बन्ध तोड़ देंगे। श्री दास हजार हस्ताक्षर लेकर गये, तब उन्होंने कहा :

'इन हस्ताक्षरों का कोई अर्थ नहीं ।' यह स्वाभाविक है कि विद्यार्थी इसे सहन नहीं कर सकते थे। उन्होंने कॉलेज की सीढ़ियों पर धरना दिया ! इसी प्रकार आचार्यजी के घर के आँगन में जाकर सुबह के आठ बजे सो गये। रात को दस बजे आचार्यजी की पत्नी की करुण विनती उन्हें माननी पड़ी : 'बेटो, तुम उठो, खाओ। तुम्हें देश का काम करना है; इस प्रकार उपवास करके शरीर को गिरा देना ठीक नहीं। आचार्यजी को पाँच दिन की मोहलत दो; जरा विचार करने का अवकाश दो।' श्री दास शंकास्पद सत्याग्रह की इन कार्रवाइयों से निपटने की कोशिश कर रहे हैं। वे समझते हैं कि ऐसा करने में सूक्ष्म हिंसा है। इतना ही है कि इसमें से इस सूक्ष्म 'हिंसा' को बाद कर दें, तो विद्यार्थी अत्यन्त आत्मनिग्रह का परिचय दे रहे हैं। इसका एक उदाहरण दूँ। स्कॉटिश चर्च कॉलेज के आचार्य डॉ० वॉट अपने बूट से छूते हुए एक विद्यार्थी को लाँघकर गये—ऐसा नहीं लगता कि लात मारने के लिए बूट छुआया हो, परन्तु चिढ़ाने के लिए तो जरूर छुआया, क्योंकि उनके लिए जाने का दूसरा रास्ता था—दूसरे विद्यार्थी भी उन्हें लाँघकर गये। परन्तु उन्होंने साँस तक नहीं निकाली। इस प्रकार खुद आत्मनिग्रह करके वे दूसरों को आत्मनिग्रह का पाठ पढ़ा रहे हैं।

सर प्रफुल्लचन्द्र रॉय जैसे अभी तक तटस्थ रहकर यह रंग देख रहे हैं। उन जैसे सरल हृदयवाले से अब भी यह आशा रखना व्यर्थ नहीं कि वे अपना कॉलेज राष्ट्रीय बनाकर दूसरों को भी मार्ग दिखायेंगे। विश्वविद्यालय के अध्यापकों में से एक-दो प्रोफेसरों के सिवा कोई नहीं निकला।

मिर्जापुर स्क्वायर की विराट् सभा

कल रात मिर्जापुर स्क्वायर में विद्यार्थियों की जो सभा हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। स्क्वायर (चौक) का विस्तार जलियाँवाला बाग-जितना होगा; उसमें तिल धरने को भी जगह नहीं थी। चौक के बाहर लोगों के झुण्ड-के-झुण्ड खड़े थे। चारों तरफ के तीन-तीन चार-चार मंजिल के मकान ऐसे मालूम होते थे, मानो स्त्री-पुरुषों के भार से बैठ जायेंगे। शुरू में शान्ति स्थापित करने में काफी समय लग गया। अध्यक्ष-पद पर तो श्री दास ही थे। एक मेज पर श्री दास और कुर्सी पर गांधीजी बैठे थे। गांधीजी ने इस प्रकार आरम्भ किया :

"मुझे अफसोस है कि कांग्रेस के शुरू होते समय मेरी जो आवाज थी, वह अब नहीं रही। जो मेरी आवाज न सुन सकें, उन्हें मेरे भाषण की जैसी-तैसी रिपोर्ट से सन्तोष करना पड़ेगा। मुझे अफसोस है कि इतना शोर हो रहा है। परन्तु क्या किया जाय? इतनी भीड़ के सामने हमें भाषण देने-जैसे काम करने हैं, तो इस प्रकार के विघ्नों के बीच ही करने होंगे।

"आज हम प्रसव-वेदना अनुभव कर रहे हैं। प्रसूति से पहले जो दु:ख—कष्ट होते हैं, वे सब इस समय हम महसूस कर रहे हैं। देश की पुकार का इतना सुन्दर जवाब दिया, इसके लिए मैं बंगाल के विद्यार्थियों को बधाई देता हूँ। यह तो मैं जानता था कि जवाब देंगे। परन्तु वे यह बाट देख रहे थे कि श्री दास उनके अगुआ बनें। वे अगुआ बन गये और आप तुरन्त उनके पीछे चल पड़े, इसके लिए मैं आप दोनों का जितना अभिनन्दन करूँ, उतना कम है। परन्तु श्री दास का विद्यार्थियों का काम तो अब शुरू होता है। आपने विद्यालय छोड़ दिये, इतना ही काफी नहीं; असली जरूरत इस बात की है कि फिर उनका द्वार न खटखटाया जाय। श्रीयुत दास आपको बाहर निकालकर बैठ नहीं जायेंगे। उन्हें आपके लिए काम ढूँढ़ना होगा; और योग्यता प्राप्त करने के इस काल में, आत्मशुद्धि के काल में आपको शुभ प्रवृत्तियों में लगाये रखना पड़ेगा।"

[इतना बोलने के बाद आवाज भारी होने लगी। कुछ समय अशान्ति रही। गांधीजी की आवाज भी कुछ धीमी लगी। श्री बिपिनचन्द्र पाल द्वारा अपनी बुलन्द आवाज से शान्ति के लिए प्रार्थना करने के बाद शान्ति छा गयी। उसके बाद गांधीजी की आवाज धीरे-धीरे इतनी खुलती गयी कि ऐसा लगता है कि उसे तीस-तीस हजार तक श्रोता सुन सके होंगे।]

"इसके बाद श्री दास को और आपको मिलकर ऐसे उपाय सोचने होंगे कि आरम्भ किया हुआ कार्य उचित रूप में निपटाया जा सके, आपकी शक्तियों का उपयोग केवल स्वराज्य लेने के लिए ही हो, और किसी भी दिशा में व्यर्थ व्यय न हो।

अध्यापकों और शिक्षितों से

"जब विद्यार्थियों ने इतना उमंगभरा जवाब दिया है, तब अध्यापकों, ट्रस्टियों, संचालकों और मालिकों को, गरज यह कि शिक्षित वर्ग को जो जवाब

देना चाहिए था वह अभी तक नहीं दिया गया, इसका मुझे अपार दुःख हो रहा है। यह कहकर मैं उन पर या उनके देश-प्रेम पर आक्षेप करना नहीं चाहता। मेरा खयाल है कि उन्हें यह स्पष्ट लगता है कि विद्यार्थियों ने भूल की है, श्री दास ने भूल की है। वे मानते हैं कि देश के सामने असहयोग को रखकर मैंने भी गंभीर भूल की है और खासकर विद्यार्थियों को स्कूल-कॉलेज छोड़ने का उपदेश देने में तो मेरी भयंकर भूल हुई है। परन्तु मुझे जो कुछ अनुभव हुए, मैंने जो कुछ पढ़ा-सुना है, उन सबके बावजूद मैं अपने सब नेताओं और बुजुर्गों से कह सकता हूँ कि यदि हमें अपनी इच्छा का स्वराज्य चाहिए, भारत को खोया हुआ सम्मान वापस लेना हो और इसलाम की इज्जत जाने न देनी हो, तो सरकार से हमें साफ शब्दों में कह देना होगा कि उसे हमारी ओर से कोई सहायता नहीं मिलेगी, और न हम उससे सहायता लेंगे। उस पर हमें रत्तीभर विश्वास नहीं रहा है। आप कहेंगे कि मुझ अकेले को नहीं रहा; आपको तो मुझ पर श्रद्धा नहीं रही, क्योंकि मैं ऐसी बात बार-बार करता रहा हूँ। मैक्समूलर ने एक संस्कृत कहावत का अनुवाद करके अपनी एक पुस्तक में कहा है कि सत्य जब तक दूसरे को जँच न जाय, तब तक दोहराते ही रहना चाहिए। इसीलिए जब तक मैं उपर्युक्त बात विद्यार्थियों और बुजुर्गों के मन में जँचा न दूँ, तब तक बार-बार कहता ही रहूँगा। इसलिए मैंने जो बात कई जगह कही, वह आज यहाँ भी कहने आया हूँ कि जब तक भारत को अपनी आजादी वापस न मिल जाय, तब तक यह नहीं माना जायगा कि उसने असहयोग की पुकार का सही-सही जवाब दे दिया।

असहयोग हमारी हड्डियों में है

"मुझे पक्का विश्वास हो चुका है कि असहयोग के सिवा और किसी भी तरह इस सरकार के विरुद्ध लड़ाई नहीं हो सकती। प्रत्येक भारतीय अपनी हड्डियों में असहयोग लेकर जनमा है। और यह जानना हो कि भारत के लाखों आदमियों के गले असहयोग कैसे उतर गया है, तो मैं कहूँगा कि इसका कारण यह नहीं है कि इस आन्दोलन का प्रणेता मैं हूँ। उसका कारण तो यही है कि असहयोग हममें जन्मजात है। वह प्रत्येक धर्म के अन्तर्गत है—भले ही वह हिन्दू-धर्म हो या इसलाम। और इसी कारण हमारी शक्ति पर्याप्त न होने पर भी और यह महसूस होते हुए भी

कि हम निराधार हैं, इस असहयोग ने हमें अपनी लम्बी नींद से जगा दिया है । उसीके द्वारा हम विश्वास, आशा और बल प्राप्त कर रहे हैं। शिक्षित वर्ग ने अभी तक कोई जवाब नहीं दिया, इसका कारण यह है कि वे श्रद्धाहीन हैं और साधारण लोगों में आयी हुई धर्म-जाग्रति का लेशमात्र भी उनमें नहीं है । उनकी रग-रग में पाश्चात्य सुधार भरा हुआ है—आधुनिक सुधार कहना ज्यादा ठीक होगा, यद्यपि मैंने तो दोनों शब्द एक-दूसरे के पर्याय के रूप में ही इस्तेमाल किये हैं । मैं पश्चिम का तिरस्कार नहीं करता । पश्चिम से मैंने बहुत सीखा है; इसके लिए उसका आभारी हूँ ।

"आधुनिक सुधार ने मुझे कोई चीज सिखायी है तो वह यह कि उससे बारह कोस दूर भागता रहूँ । आधुनिक सुधार क्या चीज है? उसका अर्थ है पार्थिव पूजा, पशु-पूजा । पद-पद पर पार्थिव सुधार की पूजा उसमें न हो तो निश्चित मानिए कि उसमें कुछ भी नहीं है । मुझे साधारण लोगों के मन का पता न होता तो यह आन्दोलन छेड़ने में मेरी भूल होती । मैं बीस वर्ष तक आधुनिक प्रवृत्ति से क्षुब्ध एक देश में—दक्षिण अफ्रीका में रहा हूँ । उस देश ने सब आधुनिक बातें ग्रहण की हैं और इस समय वह उस प्रवृत्ति से तिलमिला रहा है । वहाँ मैंने दुनिया के बहादुर-से-बहादुर पुरुष देखे हैं । फिर भी मुझे शिक्षित वर्ग से कहना चाहिए कि आधुनिक सुधार को श्रेष्ठ रूप में प्रचलित देखकर भी इसी निश्चय पर पहुँचा हूँ कि ईश्वर भारत को तो आधुनिक सुधार की बला से मुक्त ही रखे तो अच्छा ।

"यह पाठ मैंने आज नहीं, सन् १९०८ में पढ़ा था; और यही पाठ मैं जब से यहाँ आया, तब से शान्ति से, किन्तु दृढ़ता के साथ देश को पढ़ा रहा हूँ । हमारी प्राचीन संस्कृति-सम्बन्धी अपने विश्वास के कारण ही विरोध और झगड़ों के बादलों में भी मैं अपनी शान्ति और आशा कायम रख सका हूँ । अभी तो पहाड़ की चढ़ाई की शुरुआत है । यह विरोध और झगड़ा हमें पग-पग पर परेशान करेगा, परन्तु आप भी मेरे जैसा जाग्रत और प्रज्वलित विश्वास रखेंगे तो यह निश्चय समझिए कि आप कभी लड़ाई नहीं हारेंगे । आधुनिक सुधार में पले हुए आप लोगों के सामने भी मैं यह कहते लज्जित नहीं होता कि यह धर्मयुद्ध है; मुझे यह कहने में लज्जा नहीं है कि हमारी राजनैतिक दृष्टि बदल डालने का यह एक महाप्रयास

है। अपने राजकाज को धर्ममय बनाने का यह एक महान् प्रयत्न है। और जैसे-जैसे हम इसमें प्रगति करते जायेंगे, वैसे-वैसे हम अपने उद्देश्य की ओर भी अधिक प्रगति करेंगे।

"मैं मानता हूँ कि भारत के साधारण लोग मौजूदा ब्रिटिश शासन से ऊब गये हैं। इसीलिए मैंने यह कहने का साहस किया है कि स्वराज्य एक वर्ष के भीतर लिया जा सकता है। इस समय मेरे भीतर विश्वास की जो ज्योति जल रही है, वह पहले कभी नहीं जली। आपने मेरी आशा, साहस और बल में वृद्धि की है। ईश्वर करे और शौकतअली, मुहम्मद-अली और मैं स्वराज्य का झण्डा एक साल के अन्दर फहराता हुआ देखने को जीते रहें। परन्तु ईश्वर की मरजी यह हो कि मेरे शरीर की भस्म आठ महीने पूरे होने से पहले ही गंगा के जल में प्रवाहित करनी पड़े, तो भी मैं इतना आश्वासन देता हूँ कि मैं इसी विश्वास के साथ मरूँगा कि इस वर्ष के समाप्त होने से पहले स्वराज्य आप ले लेंगे।

हमारी समझ में परिवर्तन होना चाहिए

"इसे आप जितना दुष्कर समझते हैं, उतना कठिन यह नहीं है। केवल हमारी समझ में परिवर्तन होना चाहिए। हमने मान लिया है कि विधानसभा के भवन में हमें स्वराज्य के पाठ मिलेंगे। यही तो मुश्किल है। हमने मान रखा है कि आज हमें जो शिक्षा मिल रही है, उसके सोलह वर्ष के पाठ्यक्रम में से गुजरे बिना हमारा उद्धार नहीं। इसीमें तो बड़ा झगड़ा है। परन्तु इनमें से एक भी चीज की हमें जरूरत नहीं। हमें केवल बल, साहस और श्रद्धा चाहिए; और मुझे प्रतीति है कि साधारण लोगों के पास ये सब चीजें हैं। इसीलिए मैं मानता हूँ कि स्वराज्य इस वर्ष के भीतर लिया जा सकता है।

कांग्रेस की पुकार का अर्थ

"कांग्रेस की पुकार का यह अर्थ है कि आपके सामने, मेरे सामने और देश के सारे शिक्षित वर्ग के सामने--जो वर्ग भारत के करोड़ों लोगों, कारीगरों और किसानों के आगे महासागर की एक बूँद के बराबर है, उसके सामने—एक कसौटी रखी गयी है। और मेरे इस कथन को निश्चित समझिए कि कांग्रेस भारत को आपसे मुक्त कर देगी और उद्धत हाथों

से आजादी लेकर उसका झण्डा गाड़ देगी। ऐसा करने में आपकी सहायता होगी, तो ठीक है और आपकी सहायता के बिना काम चलाना पड़ेगा, तो वह भी चला लेगी। सारा भारत शिक्षित भारत में ही नहीं समा जाता है। यह विश्वास मुझे टिकाये हुए है कि सारा शिक्षित भारत अश्रद्धालु बनकर आशा, साहस और बल के बिना बाकी के भारत से अलग रहेगा, तो भी भारत की आशा कायम रहेगी। और मुझे आशा है कि बंगाल के विद्यार्थी यदि अपनी प्रतिज्ञानुसार चलेंगे, अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे, तो अध्यापक, ट्रस्टी और शिक्षाशास्त्री भी उनकी आवाज सुनेंगे और उनकी निराशा का पतझड़ बदलकर आप आशा का वसन्त ला सकेंगे।

"परन्तु मैं आपसे, बंगाल के युवकों से कहता हूँ कि आप जिस निश्चय पर पहुँचे हैं, उस पर चाहे जो हो जाय, डटे रहिए। मुझे इसमें कतई संदेह नहीं कि श्री दास अपने वचन पर कायम रहेंगे। आपको १०,०००) रुपये का वचन मिल चुका है और १०,०००) रु० वार्षिक मिलना निश्चित है। कुछ मारवाड़ियों से—कलकत्ते में रहनेवाले मारवाड़ियों से भी उनको वचन मिले हैं और रुपये की मदद के और भी बहुत-से वचन मिलना निश्चित है। परन्तु रुपया जुटाना एक मामूली कठिनाई है। उन्हें कॉलेजों के लिए मकान ढूँढ़ने पड़ेंगे, अधिक अच्छे अध्यापक ढूँढ़ने पड़ेंगे।

प्रचलित तरीके को भूल जाइए

"मैं आपसे विनयपूर्वक कहता हूँ कि आप पुराने तरीके को भूल जाइए। जैसे हम जो स्वराज्य लेना चाहते हैं, उसके लिए हम यह नहीं चाहते कि वह मौजूदा शासन-प्रणाली की हल्की नकल हो, वैसे ही हमारी शिक्षा-पद्धति भी मौजूदा ढंग की हल्की नकल न होनी चाहिए। आप यह आशा मत रखिए कि ईंट या पत्थर के मकान, बेंचें और कुरसियाँ आपमें चेतना भरेंगी। आप केवल चारित्र्य देखिए; आप अपने अध्यापकों और शिक्षकों के निर्मल चारित्र्य से चेतना प्राप्त करने की आशा रखिए; आप अपने लिए आवश्यक प्रेरणा-बल अपने अन्तर में से, अपने आत्मनिश्चय में से ही प्राप्त कीजिए, और मैं आपको वचन देता हूँ कि फिर आपको निराश होने का कारण नहीं रहेगा। परन्तु यदि आप यह मानते हैं कि श्री दास आपको आलीशान मकान देंगे, आपको सुख-शान्ति और ऐश-आराम से रखेंगे, तो आप एकदम निराश होंगे।

नया सन्देश

"परन्तु आज मैं आपको एक नया सन्देश देने आया हूँ, अधिक अच्छा सन्देश देने आया हूँ। यदि आप एक वर्ष के भीतर स्वराज्य लेने का आग्रह रखते हैं, यदि आपको एक वर्ष के भीतर स्वराज्य चाहिए, तो मैं आपको जो सलाह देता हूँ, उसे स्वीकार कर स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग को अधिक निश्चित और सुगम बनाइए।

"आप यदि ऐसा मानते हैं कि स्कूल-कॉलेज जैसे आज चल रहे हैं, वैसे ही चालू रखने से स्वराज्य मिल सकेगा, तो आप बड़ी भूल कर रहे हैं। किसी भी देश को कष्ट सहे बिना और बलिदान किये बगैर स्वतन्त्रता नहीं मिली, नया जन्म प्राप्त नहीं हुआ। और कुर्बानी या त्याग का अर्थ क्या है? अंग्रेजी में 'Sacrifice' शब्द 'पवित्र करना' धातु से निकला है। असहयोग आत्मशुद्धि की क्रिया है और आत्मशुद्धि के लिए मामूली कार्य-व्यवहार छोड़ना पड़े, तो भी यह जरूरी है। मैं बंगाल को जानता हूँ, तो मेरा खयाल है कि आप वह कर्तव्य नहीं छोड़ेंगे और मुझे उचित उत्तर देंगे।

चरखा लो

"हमारी शिक्षा में दो बड़ी त्रुटियाँ हैं। हमारा पाठचक्रम तैयार करने-वालों ने शरीर और आत्मा की शिक्षा की अवगणना की है। असहयोग करने से ही आपको आत्मा का शिक्षण मिल रहा है,—क्योंकि असहयोग का अर्थ पाप का सम्पर्क छोड़ना है। यदि यह सम्पर्क हम सच्चे दिल से विचारपूर्वक छोड़ देते हैं, तो हम ईश्वराभिमुख होकर चलते हैं। इतना होते ही आत्मा का शिक्षण शुरू हो जाता है या पूरा हो जाता है। परन्तु हमारे शरीर के शिक्षण की उपेक्षा हुई है और भारत चरखा छोड़कर चमड़े की छोटी पट्टी के लिए भैंस मारकर गुलाम बन गया है। इसलिए मैं आप बंगाली युवकों के सामने चरखा रखते हुए संकोच का अनुभव नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि इस आत्मशुद्धि के एक वर्ष के भीतर चरखा सीखना और जितना सूत उत्पन्न हो सके, उतना करना आपका मुख्य उद्देश्य और मुख्य काम हो जाना चाहिए। स्वराज्य स्थापित हो जाने के बाद अपनी साधारण शिक्षा शुरू कीजिएगा। मैं चाहता हूँ कि आज बंगाल के सब युवक और युवतियाँ अपना सारा समय और शक्ति कातने में ही लगायें।

२

"आपमें से जिन्हें इंग्लैण्ड की जानकारी है, उन्हें मैं वहाँ की लड़ाई के दिनों की स्थिति की याद दिलाता हूँ। उस वक्त वहाँ के प्रत्येक बालक और बालिका ने अपना नियमित अध्ययन बन्द करके लड़ाई-सम्बन्धी कुछ-न-कुछ काम शुरू कर दिया था। छोटी उम्र के बच्चों को भी काम में लगाया गया था। जब मैंने खेड़ा के नौजवानों के सामने माँ-बाप की इच्छा के विरुद्ध लड़ाई के मैदान में जूझने की बात रखी, तब मेरी हलचल से सरकार काँप उठती थी। यही सरकार आज मुझे कच्ची उम्र के बालकों को माँ-बाप के विरुद्ध भड़काने का दोष दे रही है। मुझे आपसे यही कहना है कि यदि आपका अन्तःकरण आपको मौजूदा लड़ाई में केवल कुर्बानी देने की ही प्रेरणा करता हो तो आज आप अपने दूसरे सारे काम बन्द करके अपना सारा समय और शक्ति एक वर्ष के लिए स्वराज्य लेने में लगाइए। सबसे पहले आप चरखा कातना सीखकर सूत पैदा करने लग जायँ। जब तक भारत के तमाम स्त्री-पुरुष और बालक कातने न लग जायँ, तब तक विदेशी कपड़े और विदेशी वस्तुओं का सम्पूर्ण बहिष्कार असंभव है। शाब्दिक सूत के धागे तो कांग्रेस ने पैंतीस वर्ष तक निकाले। उससे भूखों को संतोष नहीं हुआ और न नंगों के तन ढँके। अब हमें इस कार्य का सही मार्ग मिला है। इसीलिए मैं देशोद्धार का यह नया अवसर बंगाली भाई-बहनों के चरणों में अर्पण कर रहा हूँ। इस उपाय से हम विदेशी कपड़े का सम्पूर्ण बहिष्कार सफल करके लंकाशायर की तरफ से लोकसदन में बैठनेवाले पचपन सदस्यों की हलचलों को बेकार कर देंगे। इससे भारत पर लोभ-दृष्टि रखनेवाले जापान को भी हम रोक देंगे। जैसा कांग्रेस ने हमें कहा है, जब तक भारत अन्न-वस्त्र के मामले में स्वतन्त्र नहीं हो जाता, तब तक उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता की आशा व्यर्थ है। भारत-जैसा अत्यन्त विशाल देश दूसरों के आधार पर काम चलाकर स्वाधीन बन ही कैसे सकता है? कंपनी-काल का इतिहास याद कीजिए और जुल्म से कायर बनकर हमने अपना जो स्वधर्म भुलाया, उसका प्रायश्चित्त आज ही आरम्भ कर दीजिए। अब सूत कातकर भारत की आर्थिक स्वतन्त्रता हासिल कीजिए।

"यदि आप एक वर्ष के भीतर स्वराज्य स्थापित करना चाहते हैं, तो उस आदमी की सलाह मान लीजिए, जिसे आज से तेरह वर्ष पहले

यह मंत्र स्फुरित हुआ, उसके बाद उस पर बनाये हुए सिद्धान्तों से प्राप्त श्रद्धा से जिसे आज तक कोई डिगा नहीं सका, और जो इस दिशा में इतने वर्षों सें अपनी श्रद्धा को और भी दृढ़ करने के ही अनेक प्रयास कर चुका है। भारत की आर्थिक दशा का मैं ज्यों-ज्यों अध्ययन करता गया, मिलों के संचालकों से मैंने जितनी-जितनी बातें कीं, उतना ही मेरा विश्वास अधिकाधिक बढ़ता गया कि घर-घर चरखा जारी किये बिना हमारा उद्धार नहीं है। किसी भी मिलवाले से जाकर पूछिए; वह कहेगा कि मिलों से ही भारत अपनी आवश्यकता का सारा कपड़ा जुटाना चाहे, तो वह सारा कपड़ा देने योग्य मिलें खोलने के लिए पचास वर्ष लगेंगे। इसमें मैं इतना और जोड़ता हूँ कि इस समय देश में जो हजारों जुलाहे हाथ-बुनाई का काम कर रहे हैं, उन्हें देशी मिलें पूरा सूत नहीं दे सकतीं, इसलिए वे विलायती सूत काम में ला रहे हैं। मैं बार-बार सारे बंगाल के नौजवानों से इस भूली हुई कला का जीर्णोद्धार करके भारत की पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़ने का अनुरोध करता हूँ।

हिन्दी भाषा सीखो

"मैंने एक और भी सूचना दी है। हमने अपने स्कूल-कॉलेजों में इतने दिन सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा के मूलाक्षर के समान एक राष्ट्रीय भाषा की शिक्षा भी नहीं दी। इस समय देश के एक प्रान्त के नौजवानों को दूसरे प्रान्त में जाना और उपयोगी बनना मुश्किल हो जाता है। इसलिए मेरी दूसरी सलाह यह है कि कातने से जो समय फालतू बचे, उसका उपयोग हिन्दी सीखने में कीजिए। मुझे विश्वास है कि होशियार, नम्र, मेहनती और देश की लगनवाला कोई भी नौजवान इसे दो महीने में सीख लेगा।

गाँवों की सेवा

"इतनी तैयारी करने के बाद आप मद्रास प्रान्त के सिवा किसी भी प्रान्त के गाँवों में सेवार्थ जाने के योग्य बन जायेंगे और लोगों के साथ दिल खोलकर बातें कर सकेंगे। २२ करोड़ लोग हिन्दुस्तानी समझते हैं। और कोई भाषा वे इतनी नहीं जानते। आप उनके दिल जीतना चाहते हैं, तो आपको हिन्दी सीख ही लेनी होगी। इतना करने को तैयार हो जायेंगे, तो मेरा वचन है कि इतने दिन की हिम्मत और शक्ति की कमी को आप एक वर्ष में पूरी कर लेंगे।

जनता पर अंग्रेजी व्यर्थ लादी गयी है

"मैं हजारों ऐसे अल्पप्राण विद्यार्थियों को जानता हूँ, जो सरकारी नौकरी न मिलने का धक्का लगते ही निराश हो जाते हैं। यदि इस सरकार को सुधारने या मिटाने का आपने संकल्प कर लिया है, तो भविष्य में आपके सामने सरकारी नौकरी का सवाल ही कैसे खड़ा हो सकता है? यदि आजीविका के लिए आपने सरकार की तरफ न देखने का ही निश्चय कर लिया है, तो फिर अंग्रेजी भाषा के ज्ञान का आपके लिए क्या प्रयोजन रह जाता है? मैं साहित्य की दृष्टि से अंग्रेजी भाषा का महत्त्व घटाना नहीं चाहता। अंग्रेजी ग्रन्थों में समायी हुई बड़ी विभूतियों का मूल्यांकन भी मैं कम नहीं करना चाहता। मैं तो इतना ही जँचा देना चाहता हूँ कि हमने सब लोगों पर अंग्रेजी भाषा व्यर्थ लाद रखी है। स्वराज्य की दृष्टि से तो अंग्रेजी भाषा का बहुत गौण स्थान है। स्वराज्य प्राप्त करने की योग्यता हासिल करने के लिए किसीको अंग्रेजी शब्दों की पूँजी बढ़ाने की जरूरत नहीं; और इसीलिए गुजरात के नौजवानों को मैंने अंग्रेजी शिक्षा नौ या बारह महीने के लिए बिलकुल मुल्तवी करके कातने की सलाह दी है।

"इतना सीखकर वे अपने-आपको देश की सेवा में अर्पण करने के योग्य बनायेंगे। भारत में साढ़े सात लाख गाँवों के लिए जब तक हम ऐसे सेवकों की सेना तैयार नहीं कर लेते, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि हमने कांग्रेस के नये विधान से लाभ उठाया है। हम अगर चाहते हैं कि गाँव-गाँव में कांग्रेस की एकाध कमेटी स्थापित हो जाय, तो नौजवानों को इस काम का बीड़ा उठा लेना होगा। बंगाल तथा समस्त भारत के विद्यार्थी-वर्ग के लिए सेवा का यह अवसर एक अपूर्व पर्व है। मेरा हृदय तो यह साक्षी देता है कि आप सब इस विश्वास के साथ इस सेवा-क्षेत्र में बलिदान देंगे, तो एक वर्ष के अन्त में इस कार्रवाई को पश्चात्ताप की भावना से याद करने की नौबत कदापि नहीं आयेगी। उल्टे उस दिन आपका दिल खुशी के मारे फूला नहीं समायेगा, क्योंकि स्वराज्य स्थापित करके आप भारत की नाक रख लेंगे, इसलाम की इज्जत बचा लेंगे, सारे राष्ट्र को दुनियाभर में सिर ऊँचा करके चलने का अधिकारी बना देंगे। ईश्वर आपको—बंगाल के युवक-युवतियों को—बलिदान और आत्मशुद्धि के इस पवित्र वर्ष में से विजयी होकर गुजरने के लिए अटूट धैर्य, आशा और श्रद्धा दे।"

मेडिकल विद्यार्थियों से

गांधीजी के बोल चुकने के बाद डॉक्टरी पढ़ाई करनेवाले विद्यार्थियों को सम्बोधित करके कुछ कहने का उनसे फिर अनुरोध किया गया। इसलिए वे फिर बोलने खड़े हुए :

"एक चीज मैंने जान-बूझकर छोड़ दी। वह मेरे खयाल के बाहर नहीं थी, परन्तु कातने और हिन्दी की बात कहने में मुझे आपका इतना समय लेना पड़ा कि मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थियों की कठिनाइयों के बारे में कहने से मैं जान-बूझकर ही रह गया। जो बात साधारण स्कूल-कॉलेजों के विद्यार्थियों को लागू होती है, वह सच पूछा जाय तो मेडिकल विद्यार्थियों को कुछ अधिक ही लागू होती है। वे भारत के घाव भरनेवाले हैं; जिन रोगों से देश दुःखित है, उन्हें मिटानेवाले हैं। जो घाव पंजाब को लगा, उससे बड़ा घाव मुझे इस समय भारत के शरीर पर दिखाई नहीं देता। जिस पराधीनता, दीनता और विपन्नता के रोग में लोग इस वक्त तड़प रहे हैं, उससे ज्यादा भयंकर दूसरा रोग मैं नहीं जानता कि हिन्दुस्तान को लगा हो। यदि मेडिकल विद्यार्थी अपने भावी पेशे के प्रति वफादार साबित होना चाहते हैं, तो वे इस अवसर पर भारत का अपमान धोने, भारत की दरिद्रता मिटाने, नंगों के तन ढँकने और दुःखियों को दिलासा देने के लिए आगे आने में बिलकुल नहीं हिचकिचायेंगे। कितने ही पढ़े हुए, शिक्षा पाये हुए और कितने ही समृद्ध भारतीयों के लिए भारत को पीड़ित कर रहे इस रोग को मिटाने से अधिक और उच्च कार्य इस समय नहीं हो सकता। इसलिए सोलह वर्ष से ऊपर की उम्र के प्रत्येक मेडिकल विद्यार्थी को एक भी क्षण प्रतीक्षा किये बिना अपना स्कूल-कॉलेज छोड़ने के लिए कहने में मुझे संकोच नहीं होता। मेरी सलाह मानना-न मानना अवश्य आपकी मर्जी पर है। अपनी पढ़ाई बन्द न होने देने का ही आपका आग्रह हो तो आप नये राष्ट्रीय स्कूल-कॉलेज खोलने के लिए भी स्वतन्त्र हैं। परन्तु याद रखिए, जब तक आप अपना सारा समय स्वराज्य की वर्तमान लड़ाई में अर्पण करके जनता का कार्य सरल नहीं कर देते, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि नौजवानों की हैसियत से आपने इस प्रजाकीय युद्ध में अपने सबसे जरूरी हिस्से में पूरी तरह हाथ बँटाया।

'भाषण देते-देते थक गया'

"आपके मन में अब भी कोई शंका-समाधान कराना बाकी रह गया

हो, तो मैं उसका जवाब देने को तैयार हूँ। वैसे मुझे स्वीकार कर लेन चाहिए कि मैं जवाब देते-देते और भाषण करते-करते थक गया हूँ। अब मुझसे संभव हो तो मैं मौन रहकर आपके अपने उद्यम और आपके अपने अंतःकरण पर यह सवाल छोड़ देना ज्यादा पसन्द करूँगा। आज ही 'नवजीवन' के एक संवाददाता ने मुझसे सवाल किया है कि "यदि आप अन्तःकरण को सबसे ऊपर गिनते हैं, तो किसलिए हमसे इतनी ज्यादा बहस करते रहते हैं ? हमको अपने अन्तर के बल पर क्यों नहीं छोड़ देते ?" मुझे कहना चाहिए कि एक दृष्टि से यह ताना ठीक था। परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरे अन्तर में जो आग जल रही है, उसे आपके सामने खोलकर न दिखाऊँ तो मैं अपने कर्तव्य से चूकता हूँ; इसीलिए भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम-घूमकर मैं आपको धैर्य तथा आशा का सन्देश दे रहा हूँ। मुझे फुर्सत मिले तो आप मुझे कातते और हिन्दुस्तानी की पुस्तकों के पन्ने उलटते ही देखेंगे। मैं हिन्दुस्तानी जानता हूँ, परन्तु उतनी ही मैं उसकी त्रुटियाँ भी जानता हूँ। मैं अंग्रेजी-जितनी हिन्दुस्तानी में प्रवीणता नहीं रखता, इससे मुझे कितनी दिक्कत होती है, यह मैं ही जानता हूँ।

"बंगाल के नौजवानो, आप अपनी तमाम शंका-कुशंकाएँ बंगाल की खाड़ी में डुबो दीजिए और एक ऐसी असीम आशा से खड़े हो जाइए, जिसे निराशा का कोई क्षितिज सीमित न कर सके।"

गांधीजी का पूरा भाषण ऊपर दे दिया गया है। इस अवसर पर मौ० मुहम्मदअली का भाषण भी बड़े महत्त्व का था, खास तौर पर उनका कर्नल वेजवुड के कुछ आक्षेपों का उत्तर। कर्नल वेजवुड ने 'नेशन' पत्र में गांधीजी-विषयक एक लेख में मौलाना शौकतअली के बारे में लिखा है कि उनकी अहिंसा-वृत्ति केवल ऊपरी है। उन्हें जवाब देते हुए मौ० मुहम्मदअली ने बताया कि "हमने अहिंसात्मक कार्यक्रम स्वीकार किया है, क्योंकि हमें महसूस हुआ कि उस कार्यक्रम से कार्य अधिक जल्दी पूरा किया जा सकता है। हम हिंसात्मक युद्ध के लिए बम और बन्दूक बनाने लगें, तो कितने वर्ष तैयारी में लगेंगे, इसकी कल्पना नहीं कर सकते, जब कि इस कार्यक्रम से—शान्ति के कार्यक्रम से—एक वर्ष में स्वराज्य लेने की हम आशा रखते हैं।" कातने का काम करने के बारे में बोलते हुए उन्होंने विद्यार्थियों से कहा : "जैसे हमारी अनेक वर्षों की गुलामी की तुलना नहीं हो सकती,

वैसे ही हमारी स्वतन्त्रता भी इतनी जल्दी प्राप्त होगी कि उसकी तुलना नहीं की जा सकती। अविलम्ब स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के लिए गांधीजी एक वर्ष के लिए आप सबको पुस्तकें रख देने को कह रहे हैं। इस चरखे के धागे से आप आर्थिक परतंत्रता का धागा तोड़ सकेंगे। आप अपने दिल से पूछिए कि क्या कोई आपको अपनी स्वतन्त्रता के लिए शेक्सपियर पढ़ने को कहता है? अगर कोई ऐसा कहता हो तो वैसा कीजिए। परन्तु यदि ऐसा लगे कि इस तरह पढ़ते रहने से हम पर मंचेस्टर का कब्जा बढ़ता जायगा, तो शेक्सपियर के अध्ययन को आग लगा दीजिए।"

इसके बाद दूसरे भाषण श्री दास, पाल और जितेन्द्रलाल बनर्जी के हुए। उनमें मैं पाठकों को नहीं ले जाना चाहता। श्री दास को १०,०००) रुपये भेजने का पत्र लिखते हुए बाबू गोपालचन्द्र सिंह का अन्तिम वाक्य यहाँ उद्धृत करता हूँ: "विद्यार्थियों ने अच्छा किया हो या बुरा, वे जिस अदम्य उत्साह से कार्य में अग्रसर हुए हैं, उसे सुपथ में लगाने के लिए लोगों को—धनी, निर्धन, पण्डित और मूर्ख, सभी को—जी-तोड़ कोशिश करनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि जो ऐसा नहीं करेंगे, उन पर एक दोष रह जायगा। इस विश्वास के कारण मुझे जो देना था, सो मैंने दिया है।" बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय, सर प्रफुल्लचन्द्र रॉय और दूसरे विद्वान् शिक्षा-शास्त्री, जो इस समय इस आन्दोलन के विरुद्ध हो रहे हैं, उपर्युक्त पत्र की बात की अवहेलना कर रहे हैं।

इस विराट् सभा के बाद गांधीजी ने यहाँ कई सभाओं में भाषण दिये हैं, वे अनेक व्यक्तियों से मिले हैं, शिक्षा-मण्डल स्थापित किया है, विद्यार्थियों के माता-पिताओं से मिल रहे हैं और तत्काल करने योग्य अन्य आवश्यक कार्रवाई कर रहे हैं। स्त्रियों की सभाओं में प्रकट हुए उत्साह का वर्णन नहीं किया जा सकता। स्त्रियों की कुल तीन सभाएँ हुईं। एक, श्री दास के आँगन में, जहाँ चार-पाँच सौ बंगाली बहनें होंगी। उनसे प्राप्त चन्दे में छह सौ से अधिक नकद रुपये और पाँच हजार की कीमत के गहने थे। दूसरी सभा, मारवाड़ी बहनों की हुई; उन्होंने तो गहनों और रुपयों की वर्षा ही कर दी। दोनों का मिलाकर दस हजार से कम चन्दा नहीं हुआ होगा। तीसरी एक सभा बाबू निर्मलचन्द्र के यहाँ हुई। वहाँ केवल सौ के करीब बंगाली महिलाओं में आठ सौ रुपये हुए।

श्रीयुत दास के पास खानगी सज्जनों की ओर से सहायता आती ही

रहती है; जमीन, मकान वगैरह की। उस दिन लगभग एक लाख रुपये के मूल्य की जमीन और मकानवाली एक पूरी पाठशाला श्रीयुत दास को सौंप दी गयी। मारवाड़ी भाई भी अच्छा उत्साह दिखा रहे हैं। उनकी तरफ से करीब एक लाख रुपये का चन्दा हुआ है। गुजराती भाइयों की विशेष सभा बुधवार को रखी गयी है।

चरखे की प्रवृत्ति के बारे में यहाँ अभी तक अपेक्षित दिलचस्पी पैदा हुई नहीं कही जा सकती। हाँ, बहनें श्रीयुत दास के यहाँ रखे गये चरखे पर कातना सीख जाती हैं। श्रीमती उर्मिलादेवी—श्रीयुत दास की विधवा बहन—ने कातना सीखने आनेवाली बहनों के लिए अपना मकान खोल दिया है। एक व्यापारी संस्था ने केवल चरखे के ही लिए १०,०००) रु० दिये हैं।

कितने विद्यार्थी बाहर हैं, यह अभी बतलाना कठिन है, क्योंकि सब कॉलेज बन्द कर दिये गये हैं। दो-तीन दिन में राष्ट्रीय विद्यालय खुलेगा, तो पता चल जायगा कि कितने नये आते हैं। प्रवेश के लिए जब अर्जियाँ उमड़ने लगीं, तब श्रीयुत दास ने यह आग्रह रखा कि जो अपना कॉलेज छोड़ने का प्रमाण-पत्र ले आयें, उन्हींको भरती किया जाय। ऐसे विद्यार्थियों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। विद्यालय के लिए २,०००) रु० महीने किराये का एक मकान और तीन मकान उनके रहने के लिए लिये गये हैं। कल नयी खुलनेवाली विधानसभा के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए सारे शहर में सुबह से शाम तक आठ सभाएँ होंगी। गांधीजी और मौ० मुहम्मदअली हर जगह जायेंगे।

३

अपने पिछले पत्र में मैं गांधीजी की कलकत्ते की हलचलों का संकेत कर चुका हूँ। उसके बाद जानने योग्य बड़ी घटना पहली तारीख की विरोध-सभाएँ थीं। यह अन्दाज लगाया जाता है कि कुल मिलाकर तीन-चार लाख मनुष्य इन सभाओं में गये होंगे। ड्यूक ऑफ कॅनॉट के कानों तक यदि इन सभाओं का कोई हाल पहुँचता हो, तो अवश्य ही उन्हें पहले से मिली हुई आज्ञानुसार यंत्रवत् चलने पर भारी पछतावा हो रहा होगा! नयी विधान-सभा के विरोध के लिए हुई सभाओं में से एक के अध्यक्ष और पाँच में वक्ता श्रीयुत दास थे; एक भी सभा में अध्यक्ष न होने पर भी गांधीजी

सभी सभाओं में वक्ता थे। उस दिन के श्री दास और गांधीजी के श्रम की कल्पना की जा सकती है।

दूसरे प्रान्तवालों का सहयोग

उसके बाद मनमोहन नाटकघर में गुजरातियों की सभा हुई। वहाँ कलकत्ते में आकर बसनेवाले, कलकत्ते के व्यापार से धनिक बने हुए गुजरातियों ने बंगाल के प्रति अपना ऋण चुकाने का प्रयत्न किया। उन्होंने श्रीयुत दास के सुपुर्द करने के लिए गांधीजी को ४७ हजार रुपये की थैली दी। गुजराती भाई उचित अवसर पर अपना कर्ज अदा करके कृतकृत्य हुए हैं। दूसरे दिन सिक्खों का एक छोटा-सा जलसा हुआ। वहाँ गांधीजी की भिक्षा माँगने की वृत्ति नहीं थी। उनके आग्रहपूर्ण निमन्त्रण का आदर करके उन्हें अहिंसा और सब्र का पाठ सुनाने गांधीजी गये थे। वहाँ मुश्किल से दो-तीन सौ आदमी होंगे। अपना कथन पूरा करके गांधीजी सिक्ख बहनों का संगीत सुनने को तत्पर हो रहे थे कि इतने में एक वृद्ध सिक्ख ने सिक्ख जाति में फैली हुई मद्यपान की बुरी आदत के विरुद्ध थोड़ा उपदेश देने की गांधीजी से बिनती की। गांधीजी ने वह प्रार्थना मंजूर करते हुए भिक्षा माँगने का भी अवसर ले लिया और भिक्षा के साथ रुपये निकलने लगे। बहनों ने अपने जेवर उतारे और पुरुषों ने घड़ीभर में पाँच सौ रुपये इकट्ठे कर दिये। एक धनवान् सिक्ख ने बंगीय राष्ट्रीय विद्यालय को १००) रु० मासिक देने का सार्वजनिक रूप में वचन दिया।

अन्त में रह गये मारवाड़ी भाई। भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई में मारवाड़ी भाइयों का चन्दा बहुत प्रमुख स्थान लेगा, इस विषय में अब किसीको शंका नहीं रही थी। इस जाति के अग्रगण्य श्री जमनालालजी ने पहल तो कर ही दी थी। परन्तु इतने से सन्तोष न करके वे गांधीजी को मदद देने के लिए कलकत्ते आ गये थे। कलकत्ते में वे अनेक मारवाड़ी भाइयों से मिले। उनका चन्दा दो लाख से ऊपर जाना निश्चित है। इसमें मारवाड़ी बहनों का भव्य भाग शामिल है।

इस प्रकार रासबिहारी घोष और बाबू तारकनाथ पालित की भारी दानशीलता से मशहूर हुए बंगाल में आज परप्रान्तीय लोग अपना हिस्सा दे रहे हैं।

नया राष्ट्रीय विद्यालय

तारीख ४ का दिन बड़े महत्त्व का था। उस दिन वेलिंग्टन स्क्वेअर

में एक आलीशान मकान का गांधीजी ने विद्यालय के लिए उद्घाटन किया। उस समारोह की गंभीरता का क्या कहना ! मैंने देखा कि गांधीजी पर भी इसका बड़ा असर हुआ । हजारों विद्यार्थियों के होते हुए भी अपूर्व शान्ति थी । 'वन्दे मातरम्' का जयघोष एक ही बार हुआ। उसके बाद जितने समय तक कार्रवाई हुई, उतने समय अक्षुब्ध शान्ति छायी रही । इस शान्ति में भगवद्गीता के श्लोकों से कार्यारम्भ हुआ। गांधीजी ने उस शान्त गांभीर्य को अपनी प्रसन्न गंभीर वाणी में प्रतिध्वनित किया। उन वचनों में रही हुई तीव्र चिन्ता, अटल श्रद्धा, और मन, वचन और काया की निर्मलता के लिए अनिवार्य आग्रह परिणाम लाये बिना नहीं रहेगा, ऐसी आशा है। वे वचन आज शब्दशः 'नवजीवन' में अन्यत्र दिये गये हैं । इसलिए उनके बारे में मैं अधिक विवेचन नहीं कर रहा हूँ। गांधीजी ने खुद उस बारे में बोलते हुए मुझसे कहा था कि ऐसी वाणी मेरे मुख से बिरले अवसरों पर ही निकलती है !

हम ता० ४ की शाम को ही कलकत्ते से रवाना हुए। श्रीयुत दास के यहाँ जिस प्रीति और सरलता का अनुभव हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीयुत दास के प्रौढ़ चेहरे से दबकर उनसे दूर भागनेवाले लोग उनके साथ के घड़ीभर के सहवास से उनके मित्र बन जाते हैं और उनके साथ समानता का अनुभव कर सकते हैं। उनकी सरलता बालोचित है। उन्होंने अपना आलीशान भवन आज एक सार्वजनिक दफ्तर-जैसा बना दिया है। उनकी पत्नी तथा उनकी गंगास्वरूप भगिनी श्रीमती उर्मिलादेवी तथा पटना हाईकोर्ट के जज उनके भाई प्रफुल्लरंजन दास की लड़कियों ने अपने प्रेम से सब पर अजीब मोहिनी डाल दी है। न्यायाधीश दास की पुत्रियाँ आग्रहपूर्वक खादी पहनने लगी हैं और कातना सीख गयी हैं।

[तारीख ४ को कलकत्ते के एक राष्ट्रीय महाविद्यालय का उद्घाटन करते समय दिया गया भाषण :]

मित्रो,

विद्यार्थियों द्वारा गीता में से की गयी सुन्दर प्रार्थना आपने सुन ली। उसकी उदात्त भाषा का आप मनन कीजिए। इस संस्था के सारे काम-काज की रचना हम इस प्रकार प्रार्थना पर करेंगे तो हम अपना और देश का मुख अवश्य अधिक उज्ज्वल करेंगे। अभी-अभी मैंने ऐसी कितनी ही

संस्थाओं का उद्घाटन किया होगा, परन्तु यह संस्था खोलते हुए मुझे जितनी चिन्ता और जितना डर लग रहा है, उतना पहले कभी नहीं लगा। इस वक्त सारे भारत की आँखें कलकत्ता पर लगी हुई हैं। देश की पुकार को सुनकर कलकत्ता के विद्यार्थियों द्वारा दिखाये गये पराक्रम के अभिनन्दन के अनेक तार आप प्रतिदिन अखबारों में पढ़ते हैं और कई न छपनेवाले तार मैंने पढ़े हैं। आपने यह भी देखा होगा कि आपका उदाहरण लेकर सारे देश के विद्यार्थी सरकारी स्कूल-कॉलेज खाली कर रहे हैं। इस प्रकार आपकी, आपके अध्यापकों की, स्वयं मेरी और श्रीयुत दास की जिम्मेदारी निःसंशय बहुत बड़ी है। मैं स्वयं रात-दिन प्रभु से आपके प्रयत्नों की सफलता की प्रार्थना करता ही रहूँगा; परन्तु जब तक खुद विद्यार्थी अत्यन्त नम्र भाव से भगवान् से डरकर लगन और एकनिष्ठा से—जिस देश के लिए उन्होंने सरकारी स्कूल-कॉलेज छोड़े, उसके प्रति अनन्य भक्ति से—अपना काम शुरू नहीं करेंगे, तब तक किसी भी प्रकार की प्रार्थना फलीभूत नहीं होगी। देश-सेवा की भावना के लिए शिक्षा को, प्रमाण-पत्रों को और भावी अभिलाषाओं को होम देने के लिए तैयार होना और यह मानना कि देश की ऐसी सेवा में ही अपना सर्वोच्च स्वार्थ सिद्ध होता है, छोटी बात नहीं। मुझे तो इसमें कोई शंका है ही नहीं। मैं जानता हूँ कि सरकारी संस्थाएँ छोड़ने के लिए आपको कभी पछताना नहीं पड़ेगा। परन्तु साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि स्कूल-कॉलेज छोड़कर यदि आप अपना समय उपयोगी काम में नहीं बितायेंगे, तो आपको जरूर पछताना होगा और देश के कुछ हितचिन्तक नेताओं को लगनेवाला डर आप सच्चा साबित करेंगे। मुझे उम्मीद है कि आप उनके डर को झूठा सिद्ध करेंगे।

आपको यह वर्ष इसी ढंग से बिताना चाहिए कि जो इस वक्त सन्देहशील हैं, उनकी शंकाएँ अनुचित साबित हों। दूसरे लोग आपके लिए—कलकत्ते के विद्यार्थियों के लिए—क्या सोचते हैं, यह भी मैं कह दूँ। वे आपके बारे में काफी शंकाशील हैं। वे आपको भावनाप्रधान और कोमल-हृदय मानते हैं। लगन और अविश्रान्त उद्योग भी आपमें है, इसका उन्हें विश्वास नहीं।

अध्यापक-वर्ग की जिम्मेदारी

आपने नयी पगडंडी पकड़ी है, नयी दिशा में अपनी नाव खोल दी है।

आप भारत का भविष्य निर्माण कर रहे हैं। और इन जिम्मेदारियों का सच्चा भान आपमें पैदा हो जाय, तो मुझे सन्देह नहीं कि आप उपर्युक्त सारी आशंकाओं को अवश्य गलत साबित कर देंगे। जो सचमुच बंगाल को जानते हैं, उन्होंने देखा है कि बंगाली पीछे रहनेवाले नहीं हैं और मैं तो गाँठ बाँधकर बैठा हूँ कि जो विद्यार्थी बाहर निकल आये हैं और जो इस संस्था में आयेंगे, वे कभी पीछे नहीं रहेंगे। मैं यह भी उम्मीद रखता हूँ कि अध्यापक-वर्ग भी उतना ही ईमानदार साबित होगा। गुजरात महाविद्यालय शुरू करते समय मैंने जो कहा था, वही यहाँ भी आपको सम्बोधित करके, उतने ही नम्र भाव से कहूँगा कि आप ही के उद्यम, परिश्रम और आपकी ही अनन्यता पर इस संस्था की सफलता या असफलता निर्भर रहेगी। हमारे प्रिय देश के इतिहास के ऐसे आनबान के समय नवयुवकों के अन्तःकरण का निर्माण करना चाहनेवालों के सिर पर बेहद जिम्मेदारी है। ऐसी स्थिति में यदि अध्यापक-वर्ग सोता रहे, संशयात्मा बन जाय, भविष्य की चिन्ता से भयग्रस्त हो जाय, तो विद्यार्थियों की क्या दशा होगी? मैं प्रार्थना करता हूँ कि सर्वशक्तिमान् प्रभु हमारे अध्यापक-गण को समझदारी, साहस, श्रद्धा और आशा में अडिग बनाये।

जबरदस्ती से बचो

मैं विद्यार्थियों से कह चुका हूँ कि आप अपने लिए निश्चित किये हुए मार्ग में चाहे जितना पराक्रम दिखाइए, परन्तु दूसरों के निर्णय में दखल मत दीजिए। बारीसाल का किस्सा आपने आज अखबारों में पढ़ा ही होगा (बारीसाल में सरकारी स्कूल-कॉलेजों में जानेवाले विद्यार्थियों के पैरों पड़ने के बहाने पैर पकड़कर उन्हें स्कूल-कॉलेजों में जाने से रोक दिया गया था)। इसमें अतिशयोक्ति हो या न हो, तो भी वह इतना तो सिखाता ही है कि किसी भी स्थिति में हम जबरदस्ती या बेजा दबाव से काम ले ही नहीं सकते। मुझे आशा है कि स्कूल-कॉलेज न छोड़नेवालों के यहाँ धरना देने या अन्य किसी भी प्रकार का दबाव डालने का काम विद्यार्थी अवश्य छोड़ देंगे। जिन्हें सरकारी संस्थाओं में रहना पाप लगे, वे ही इन संस्थाओं को छोड़ें, इतना काफी है। हम श्रद्धावान् होंगे तो दूसरे एक भी विद्यार्थी के बाहर न निकलने पर भी हम दृढ़ रहेंगे। अधीरतावश घबरा जाना अश्रद्धा की निशानी है। घबराने

पर ही हमारे द्वारा दूसरों पर दबाव पड़ता है। मुझे आशा है कि इस संस्था का प्रत्येक विद्यार्थी इस मामले में अपना सच्चा धर्म समझेगा।

हिन्दी भाषा के अनमोल रत्न

दूसरी यह भी उम्मीद रखता हूँ कि एक महीने बाद हम जब दुबारा मिलेंगे, तब तक आप ऐसी स्थिति बना लेंगे कि आपसे मुझे अंग्रेजी में बात करने की जरूरत न रहे। और आप सभी इतनी हिन्दी सीख लेंगे कि मुझे आपको जो भी सन्देशा देना हो, वह राष्ट्र-भाषा में दे सकूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके केवल हिन्दी भाषा की ओर रुख करनेभर की देर है। यह बड़ी आसान भाषा है। कितने ही शब्द आपको घर के ही लगेंगे; क्योंकि द्राविड़ भाषाओं के सिवा उत्तर की भाषाओं का अधिकांश शब्द-भण्डार एक ही है। आप यह भी देखेंगे कि यह भाषा ऐसी है, जो आपके उच्च और विद्वत्तापूर्ण विचारों के लिए भी पर्याप्त हो सकती है। हिन्दी सीखो या उर्दू, दोनों में आपको अपार गुप्त रत्न मिलेंगे। आप हिन्दी-साहित्य और आज की हिन्दी को निर्धन करते हैं, परन्तु आप तुलसी-दास का तो परिचय करके देखें! आपको मालूम हो जायगा कि वर्तमान काल ने इतनी सदियों में इस ग्रन्थ की जोड़ का दूसरा एक भी ग्रन्थ पैदा नहीं किया। इस एक ही ग्रन्थ ने मुझमें जो आशा और श्रद्धा भरी है, वह और किसी ग्रन्थ ने नहीं दी। मैं मानता हूँ कि तुलसीकृत रामायण रस में, अलंकार में या भक्तिभाव में किसी भी पंक्ति की आलोचना या परीक्षा में टिक सकती है।

चरखे में काव्यानन्द

मैं तीसरी आशा भी रखता हूँ और वह सर्वोपरि है। वह यह है कि मैं लौटकर आऊँ, तब तक आप सब कातनेवाले और अपने हाथों काता हुआ सूत अपने गाँव के जुलाहों से बुनवाकर अपने हाथ की बनी खादी पहनने-वाले बन जायेंगे। इतना ही नहीं, मैं तो यहाँ तक आशा रखता हूँ कि इतनी अवधि में आप कातने में अद्‌भुत करामात कर दिखायें और मैं जो बौद्धिक आनन्द और काव्यानन्द कातने में अनुभव करता हूँ, वह भोगने-वाले बन जायेंगे। भारत के भविष्य के बारे में श्रद्धा और आशा रखकर कातेंगे तो कातने में ऐसा आनन्द आपको मिले बिना नहीं रहेगा। मुझे उम्मीद है कि आपके अध्यापक भी आपको बंगला में ही अपने भाषण

सुनायेंगे और आपने भी इतने दिन सरकारी संस्थाओं में जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया हो, उसे बंगला में लाकर आम लोगों को उसका लाभ प्रदान करेंगे; ऐसा करने में अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं के साहित्य के उमदा विचार व्यक्त कर सकनेवाले बंगला शब्द-प्रयोग ढूंढ़कर तथा रूढ़ करके बंगला भाषा का विकास करेंगे और उसे अधिक सम्पन्न बनायेंगे ।

श्रद्धा पैदा करो

आप अपना यह काम धर्मबुद्धि से हाथ में लीजिए । यदि हम इस लड़ाई को धर्म समझकर नहीं करेंगे तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के कहता हूँ कि यह डूब जायगी । इतना ही नहीं, यह हमारा नाम भी डुबायेगी। हमने काम करने का यह ढंग निकाला है और उसमें पुराने ढंग में थोड़े सुधार कर लेने से काम सिद्ध हो जायगा, यदि हम यह मान बैठेंगे तो हम हार जायेंगे । बंगला भावनाशीलता के लिए प्रख्यात है । इसी धर्मभावना के साथ आप यह काम शुरू करेंगे, तो आप देखेंगे कि स्वराज्य आपके हाथ में है । ईश्वर आपकी और आपके अध्यापकों की सहायता करे और श्री दास को आवश्यक बल आप पहुँचाइए । अब मैं इस महाविद्यालय को खुला घोषित करता हूँ ।

५-२-'२१

झरिया में

दास-कुटुम्ब से जुदा होकर हम झरिया गये । झरिया गुजरातियों और कच्छियों की एक बड़ी बस्ती है । वे कोयले की खानों के ठीके और व्यापार के लिए झरिया जा बसे हैं । मारवाड़ी भी बहुत हैं और इस धंधे से मालदार बन गये हैं । इन खानों के मजदूरों की स्थिति वर्णन करने का यह स्थान नहीं है । उनकी स्थिति ध्यानपूर्वक देखने का हमें समय नहीं था । अलबत्ता हमने सरसरी तौर से जरूर देख लिया कि पेटभर अन्न के लिए वे कितने कष्ट में, कितने खतरे में काम कर रहे हैं ।

झरिया में हुए काम के बारे में कुछ कहने से पहले एक मजेदार बात कह दूँ । हम कलकत्ता छोड़नेवाले थे, उससे एक दिन पहले श्रीयुत दास मुझे कहने लगे : "महादेव, झरिया को किसी तरह बंगाल में नहीं माना जा सकता ?" मैं सवाल का रहस्य समझ गया । फिर भी मैंने पूछा :

"क्यों ?" हँसने लगे और बोले : "झरिया का चन्दा बिहार में चला जायगा !" मैंने कहा : "जो सरकार अपनी मरजी के मुताबिक प्रान्तों को तोड़ती और जोड़ती है, उसके मातहत आप और क्या आशा रख सकते हैं ? जब आप अपने प्रान्त बनायें, तब झरिया को बंगाल में शामिल कर लीजिए ।" इस विनोद की खूबी झरिया में हुए चन्दे से अधिक समझ में आ जायगी ।

झरिया में तो भाइयों और बहनों ने हद कर दी । लाला रामजस अगरवाल नामक मारवाड़ी सज्जन ने पन्द्रह हजार रुपये देकर पहल की । बाद में वे खुद ही दूसरे व्यापारियों से आग्रह करने लगे और उनके आग्रह से कच्छी व्यापारियों ने दस हजार जमा किये थे, उसके बजाय बीस हजार कर दिये । दूसरे सज्जनों ने भी अच्छी रकमें भरीं । स्त्रियों ने आम सभा में साढ़े तीन हजार नकद और दो-तीन हजार के गहने दिये । कुल मिलाकर झरिया में साठ हजार तक चन्दा हुआ । सुबह धनबाद में एक हजार, शाम को कतरास में दस हजार और बराकत में दो हजार रुपये इकट्ठे हुए । परन्तु इस चन्दे की मैं बहुत कीमत नहीं लगाता । इस चन्दे की जड़ में जो धर्मवृत्ति है, वह आश्चर्यजनक है । मैं नम्रतापूर्वक मानता हूँ कि यह इस नयी हलचल का परिणाम है । स्त्रियों की प्रेम-भक्ति और श्रद्धा से उत्पन्न होनेवाली रमणीय परेशानी के उदाहरणों में से एक ही यहाँ देता हूँ । एक बहन ने अपने सोने के कड़े और सोने का हार पूज्य कस्तूरबा को पहना दिया । कस्तूरबा तुरन्त घबराकर बोली "मुझे क्यों दे रही हो ?" और कहा : "बहन, यह गहने तो गांधीजी स्वराज्य के लिए माँग रहे हैं ।" बहन ने हार स्वराज्य-कोष के लिए गांधीजी के चरणों में रख दिया । परन्तु कहा : "कड़े तो आप पहनें तभी दूँ ।" कस्तूरबा ने कड़े नहीं लिये, इसलिए कड़े स्वराज्य-कोष को नहीं मिले ।

पटना में

[इस बारे में महादेवभाई का पत्र इस प्रकार है :]

६,७-२-'२१

विद्यालय की स्थापना

अपने पिछले पत्र में मैं झरिया से रुक गया था । झरिया की गठरी उठाकर गांधीजी पटना आये । पटना का राष्ट्रीय विद्यालय शुरू तो हो

ही गया था। परन्तु आशीर्वचन लेकर उसे आरम्भ करने का पक्का मुहूर्त गांधीजी से छह तारीख को कराना था। बिहार-जैसे गरीब प्रान्त में रुपये की तंगी तो होगी ही। इसलिए झरिया की गठरी देखकर बाबू राजेन्द्रप्रसाद और ब्रजकिशोर बाबू बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु इस गठरी को उचित ढंग से काम में लेने की जिम्मेदारी भी मानो उन्हें दबा रही थी। इन दोनों नेताओं की बालोचित सरलता और गहरा कर्तव्य-भान मशहूर है। उनके प्रयास से यह विद्यालय स्थापित हुआ। उनकी प्रतिष्ठा से विद्यालय में उत्तम कार्यकर्ता मिले हैं। इतना ही नहीं, उत्तम विद्यार्थी भी आये हैं। इस समय लगभग बारह अध्यापक हैं। अधिक-से-अधिक मासिक वेतन सवा सौ रुपये लेनेवाले हैं। कम-से-कम तो तीस-चालीस रुपये लेकर भी काम करनेवाले हैं। और अधिकांश की योग्यता 'विश्व-विद्यालय के स्वर्णपदक-प्राप्ति' की है। विद्यार्थियों की तो बात ही क्या कहूँ ? सरकारी कॉलेज में 'ऑनर्स कोर्स' के लिए पढ़नेवाले विद्यार्थियों की ही इस राष्ट्रीय विद्यापीठ में भरती हुई है। जो लोग कहते हैं कि 'जिन विद्यार्थियों को पढ़ना अच्छा नहीं लगता, आवारा रहना चाहते हैं और इसीको ही देश का काम करना कहते हैं, वे ही इस राष्ट्रीय विद्यापीठ में जाते हैं', इसका ज्वलंत उत्तर इस विद्यालय के विद्यार्थी और मजहरुल हक साहब के विद्यार्थी हैं। ये विद्यार्थी तीन घण्टे साहित्यिक अध्ययन करके बाकी का सारा समय चरखा कातने में, करघा बुनने में और चरखे बनाने में लगायेंगे।

असतो मा सद्गमय

गांधीजी से विद्यापीठ का उद्घाटन करने की प्रार्थना करते हुए मजहरुल हक साहब ने गद्गद कंठ से जो भाषण किया और गांधीजी ने उसका जो उत्तर दिया, उसे यहाँ प्रस्तुत करने की इच्छा होती है परन्तु मैं उनकी केवल ध्वनि दे देता हूँ। मजहरुल हक साहब के उद्गारों से प्रत्येक व्यक्ति को मालूम हो गया कि उन्होंने मूक कार्य करने का मंत्र विलक्षण रूप में सिद्ध कर लिया है। 'गांधीजी ने मौन-व्रत लिया, मेरे भी बहुत जी में आता है कि ऐसे समारोहों में आना बन्द कर दूँ, परन्तु प्रेमीजन घसीट लाते हैं और दो शब्द बोलने पड़ते हैं।' इस प्रकार कहकर उन्होंने प्रारम्भ किया और 'गांधीजी ने जिस हिन्दू-मुसलिम एकता कराने के लिए अवतार लिया है, वह वे करायेंगे और उसीसे स्वराज्य मिलेगा; उस स्वराज्य की

नींव में इस विद्यालय-जैसे विद्यालय ईंट-स्वरूप हैं और उस स्वराज्य की प्राप्ति में मेरे जैसे लोग निमित्तमात्र हैं', यों कहकर समाप्त किया। गांधीजी ने अपने भाषण में जिस प्रार्थना से दिवस का कार्यारम्भ हुआ था, उस पर विशेष जोर दिया। प्रार्थना के बिना पाठ पढ़ने की शिक्षा भूलकर हम प्रत्येक कार्य प्रार्थना से ही आरम्भ करें। आज जैसे आप बोले, वैसे जीवन के प्रत्येक दिन

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

यह रुद्र की प्रार्थना करें, ऐसी शुभेच्छा प्रकट की तथा ऐसे उद्गार प्रकट किये कि आत्मशुद्धि की यह प्रवृत्ति असत् से सत् में जाने की प्रेरणा देनेवाली है, अज्ञानान्धकार से ज्योति में जाने की प्रेरणा देनेवाली है, मृत्यु में से ले जाकर अमृतत्व दिलानेवाली है। हम ऐसी आशा रखेंगे कि ये शुभ वचन प्रत्येक सच्चा असहयोगी संग्रह करके रखेगा।

साथ ही साथ विद्यापीठ की स्थापना हुई। उसमें भी कर्ता-धर्ता राजेन्द्रबाबू, हक साहब और ब्रजकिशोर बाबू ही हैं। दक्षिण अफ्रीका में भी लड़ाई शुरू होते समय केवल सोलह ही योद्धा थे। बाद में ज्यों-ज्यों दूसरों को रंग चढ़ता गया, वैसे-वैसे सोलह हजार हो गये। इस विचार से कार्य करनेवालों की थोड़ी संख्या से डरना नहीं चाहिए। बाहर रहकर भी कुछ सज्जन कैसा काम कर रहे हैं, यह देखने लायक है। विद्यापीठ के लिए चन्दा हुआ, तब प्रोफेसर जायसवाल जैसे ने—जो इस समय सरकारी युनिवर्सिटी में व्याख्याता हैं—युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार को लिखा कि 'मेरे भाषणों का वेतन छह सौ रुपया कृपा करके तुरन्त भेज दीजिए, क्योंकि मुझे वह राष्ट्रीय विद्यापीठ को देना है।' रजिस्ट्रार को ऐसा पत्र लिखने में जरा छेड़खानी का अंश मालूम होता है, परन्तु उसमें यह दिखानेवाली प्रामाणिक निर्भयता भी है कि युनिवर्सिटी का व्याख्याता-पद चला जाय तो चला जाय, परन्तु ईमानदारी से कह दिया जाय कि अपनी भावना किस प्रकार की है। क्या इनका उदाहरण लेकर सरकारी नौकर लुक-छुपकर सभाओं में जाने, चुपके से स्वराज्य-कोष में रुपया देने से रुक जायेंगे ?

सुनायेंगे और आपने भी इतने दिन सरकारी संस्थाओं में जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया हो, उसे बंगला में लाकर आम लोगों को उसका लाभ प्रदान करेंगे; ऐसा करने में अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं के साहित्य के उमदा विचार व्यक्त कर सकनेवाले बंगला शब्द-प्रयोग ढूँढ़कर तथा रूढ़ करके बंगला भाषा का विकास करेंगे और उसे अधिक सम्पन्न बनायेंगे।

श्रद्धा पैदा करो

आप अपना यह काम धर्मबुद्धि से हाथ में लीजिए। यदि हम इस लड़ाई को धर्म समझकर नहीं करेंगे तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के कहता हूँ कि यह डूब जायगी। इतना ही नहीं, यह हमारा नाम भी डुबायेगी। हमने काम करने का यह ढंग निकाला है और उसमें पुराने ढंग में थोड़े सुधार कर लेने से काम सिद्ध हो जायगा, यदि हम यह मान बैठेंगे तो हम हार जायेंगे। बंगला भावनाशीलता के लिए प्रख्यात है। इसी धर्मभावना के साथ आप यह काम शुरू करेंगे, तो आप देखेंगे कि स्वराज्य आपके हाथ में है। ईश्वर आपकी और आपके अध्यापकों की सहायता करे और श्री दास को आवश्यक बल आप पहुँचाइए। अब मैं इस महाविद्यालय को खुला घोषित करता हूँ।

५-२-'२१

झरिया में

दास-कुटुम्ब से जुदा होकर हम झरिया गये। झरिया गुजरातियों और कच्छियों की एक बड़ी बस्ती है। वे कोयले की खानों के ठीके और व्यापार के लिए झरिया जा बसे हैं। मारवाड़ी भी बहुत हैं और इस धंधे से मालदार बन गये हैं। इन खानों के मजदूरों की स्थिति वर्णन करने का यह स्थान नहीं है। उनकी स्थिति ध्यानपूर्वक देखने का हमें समय नहीं था। अलबत्ता हमने सरसरी तौर से जरूर देख लिया कि पेटभर अन्न के लिए वे कितने कष्ट में, कितने खतरे में काम कर रहे हैं।

झरिया में हुए काम के बारे में कुछ कहने से पहले एक मजेदार बात कह दूँ। हम कलकत्ता छोड़नेवाले थे, उससे एक दिन पहले श्रीयुत दास मुझे कहने लगे : "महादेव, झरिया को किसी तरह बंगाल में नहीं माना जा सकता?" मैं सवाल का रहस्य समझ गया। फिर भी मैंने पूछा :

"क्यों ?" हँसने लगे और बोले : "झरिया का चन्दा बिहार में चला जायगा !" मैंने कहा : "जो सरकार अपनी मरजी के मुताबिक प्रान्तों को तोड़ती और जोड़ती है, उसके मातहत आप और क्या आशा रख सकते हैं ? जब आप अपने प्रान्त बनायें, तब झरिया को बंगाल में शामिल कर लीजिए ।" इस विनोद की खूबी झरिया में हुए चन्दे से अधिक समझ में आ जायगी ।

झरिया में तो भाइयों और बहनों ने हद कर दी । लाला रामजस अगरवाल नामक मारवाड़ी सज्जन ने पन्द्रह हजार रुपये देकर पहल की । बाद में वे खुद ही दूसरे व्यापारियों से आग्रह करने लगे और उनके आग्रह से कच्छी व्यापारियों ने दस हजार जमा किये थे, उसके बजाय बीस हजार कर दिये । दूसरे सज्जनों ने भी अच्छी रकमें भरीं । स्त्रियों ने आम सभा में साढ़े तीन हजार नकद और दो-तीन हजार के गहने दिये । कुल मिलाकर झरिया में साठ हजार तक चन्दा हुआ । सुबह धनबाद में एक हजार, शाम को कतरास में दस हजार और बराकत में दो हजार रुपये इकट्ठे हुए । परन्तु इस चन्दे की मैं बहुत कीमत नहीं लगाता । इस चन्दे की जड़ में जो धर्मवृत्ति है, वह आश्चर्यजनक है । मैं नम्रतापूर्वक मानता हूँ कि यह इस नयी हलचल का परिणाम है । स्त्रियों की प्रेम-भक्ति और श्रद्धा से उत्पन्न होनेवाली रमणीय परेशानी के उदाहरणों में से एक ही यहाँ देता हूँ । एक बहन ने अपने सोने के कड़े और सोने का हार पूज्य कस्तूरबा को पहना दिया । कस्तूरबा तुरन्त घबराकर बोली "मुझे क्यों दे रही हो ?" और कहा : "बहन, यह गहने तो गांधीजी स्वराज्य के लिए माँग रहे हैं ।" बहन ने हार स्वराज्य-कोष के लिए गांधीजी के चरणों में रख दिया । परन्तु कहा : "कड़े तो आप पहनें तभी दूँ ।" कस्तूरबा ने कड़े नहीं लिये, इसलिए कड़े स्वराज्य-कोष को नहीं मिले ।

पटना में

[इस बारे में महादेवभाई का पत्र इस प्रकार है :]

६,७-२-'२१

विद्यालय की स्थापना

अपने पिछले पत्र में मैं झरिया से रुक गया था । झरिया की गठरी उठाकर गांधीजी पटना आये । पटना का राष्ट्रीय विद्यालय शुरू तो हो

ही गया था। परन्तु आशीर्वचन लेकर उसे आरम्भ करने का पक्का मुहूर्त गांधीजी से छह तारीख को कराना था। बिहार-जैसे गरीब प्रान्त में रुपये की तंगी तो होगी ही। इसलिए झरिया की गठरी देखकर बाबू राजेन्द्रप्रसाद और ब्रजकिशोर बाबू बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु इस गठरी को उचित ढंग से काम में लेने की जिम्मेदारी भी मानो उन्हें दबा रही थी। इन दोनों नेताओं की बालोचित सरलता और गहरा कर्तव्य-भान मशहूर है। उनके प्रयास से यह विद्यालय स्थापित हुआ। उनकी प्रतिष्ठा से विद्यालय में उत्तम कार्यकर्ता मिले हैं। इतना ही नहीं, उत्तम विद्यार्थी भी आये हैं। इस समय लगभग बारह अध्यापक हैं। अधिक-से-अधिक मासिक वेतन सवा सौ रुपये लेनेवाले हैं। कम-से-कम तो तीस-चालीस रुपये लेकर भी काम करनेवाले हैं। और अधिकांश की योग्यता 'विश्व-विद्यालय के स्वर्णपदक-प्राप्ति' की है। विद्यार्थियों की तो बात ही क्या कहूँ? सरकारी कॉलेज में 'ऑनर्स कोर्स' के लिए पढ़नेवाले विद्यार्थियों की ही इस राष्ट्रीय विद्यापीठ में भरती हुई है। जो लोग कहते हैं कि 'जिन विद्यार्थियों को पढ़ना अच्छा नहीं लगता, आवारा रहना चाहते हैं और इसीको ही देश का काम करना कहते हैं, वे ही इस राष्ट्रीय विद्यापीठ में जाते हैं', इसका ज्वलंत उत्तर इस विद्यालय के विद्यार्थी और मजहरुल हक साहब के विद्यार्थी हैं। ये विद्यार्थी तीन घण्टे साहित्यिक अध्ययन करके बाकी का सारा समय चरखा कातने में, करघा बुनने में और चरखे बनाने में लगायेंगे।

असतो मा सद्गमय

गांधीजी से विद्यापीठ का उद्घाटन करने की प्रार्थना करते हुए मजहरुल हक साहब ने गद्गद कंठ से जो भाषण किया और गांधीजी ने उसका जो उत्तर दिया, उसे यहाँ प्रस्तुत करने की इच्छा होती है परन्तु मैं उनकी केवल ध्वनि दे देता हूँ। मजहरुल हक साहब के उद्गारों से प्रत्येक व्यक्ति को मालूम हो गया कि उन्होंने मूक कार्य करने का मंत्र विलक्षण रूप में सिद्ध कर लिया है। 'गांधीजी ने मौन-व्रत लिया, मेरे भी बहुत जी में आता है कि ऐसे समारोहों में आना बन्द कर दूँ, परन्तु प्रेमीजन घसीट लाते हैं और दो शब्द बोलने पड़ते हैं।' इस प्रकार कहकर उन्होंने प्रारम्भ किया और 'गांधीजी ने जिस हिन्दू-मुसलिम एकता कराने के लिए अवतार लिया है, वह वे करायेंगे और उसीसे स्वराज्य मिलेगा; उस स्वराज्य की

नींव में इस विद्यालय-जैसे विद्यालय ईंट-स्वरूप हैं और उस स्वराज्य की प्राप्ति में मेरे जैसे लोग निमित्तमात्र हैं', यों कहकर समाप्त किया। गांधीजी ने अपने भाषण में जिस प्रार्थना से दिवस का कार्यारम्भ हुआ था, उस पर विशेष जोर दिया। प्रार्थना के बिना पाठ पढ़ने की शिक्षा भूलकर हम प्रत्येक कार्य प्रार्थना से ही आरम्भ करें। आज जैसे आप बोले, वैसे जीवन के प्रत्येक दिन

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

यह रुद्र की प्रार्थना करें, ऐसी शुभेच्छा प्रकट की तथा ऐसे उद्गार प्रकट किये कि आत्मशुद्धि की यह प्रवृत्ति असत् से सत् में जाने की प्रेरणा देनेवाली है, अज्ञानान्धकार से ज्योति में जाने की प्रेरणा देनेवाली है, मृत्यु में से ले जाकर अमृतत्व दिलानेवाली है। हम ऐसी आशा रखेंगे कि ये शुभ वचन प्रत्येक सच्चा असहयोगी संग्रह करके रखेगा।

साथ ही साथ विद्यापीठ की स्थापना हुई। उसमें भी कर्ता-धर्ता राजेन्द्रबाबू, हक साहब और ब्रजकिशोर बाबू ही हैं। दक्षिण अफ्रीका में भी लड़ाई शुरू होते समय केवल सोलह ही योद्धा थे। बाद में ज्यों-ज्यों दूसरों को रंग चढ़ता गया, वैसे-वैसे सोलह हजार हो गये। इस विचार से कार्य करनेवालों की थोड़ी संख्या से डरना नहीं चाहिए। बाहर रहकर भी कुछ सज्जन कैसा काम कर रहे हैं, यह देखने लायक है। विद्यापीठ के लिए चन्दा हुआ, तब प्रोफेसर जायसवाल जैसे ने—जो इस समय सरकारी युनिवर्सिटी में व्याख्याता हैं—युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार को लिखा कि 'मेरे भाषणों का वेतन छह सौ रुपया कृपा करके तुरन्त भेज दीजिए, क्योंकि मुझे वह राष्ट्रीय विद्यापीठ को देना है।' रजिस्ट्रार को ऐसा पत्र लिखने में जरा छेड़खानी का अंश मालूम होता है, परन्तु उसमें यह दिखानेवाली प्रामाणिक निर्भयता भी है कि युनिवर्सिटी का व्याख्याता-पद चला जाय तो चला जाय, परन्तु ईमानदारी से कह दिया जाय कि अपनी भावना किस प्रकार की है। क्या इनका उदाहरण लेकर सरकारी नौकर लुक-छुपकर सभाओं में जाने, चुपके से स्वराज्य-कोष में रुपया देने से रुक जायेंगे ?

इसके सिवा अन्य हलचलों का पता तो इस समय बिहार में हो रही नौकरशाही की दौड़धूप और धरपकड़ से ही चल जायगा। लॉर्ड सिंह की हुकूमत बाजे-गाजे के साथ अच्छी तरह शुरू हो गयी है। तिरहुत-विभाग में और दरभंगा-विभाग में जहाँ-तहाँ काम कर रहे लोगों के विरुद्ध किसीको न बोलने की तो किसीको सभाएँ न करने की, किसीको अच्छे चाल-चलन की जमानत देने की तो किसीको किसी खास इलाके में प्रवेश न करने की नोटिसें मिल रही हैं। यह सब किस इल्जाम में? अशान्ति फैलाने के। सीतामढ़ी के एक परिवार के चार-पाँच व्यक्तियों को जमानत देने की नोटिस मिली और जमानत न देने पर उन्हें जेल भेज दिया गया। बूढ़े पिता को जेल में पहुँचाकर पुत्र गांधीजी से गोरखपुर मिलने आया था। उसे हर घड़ी और हर क्षण स्वयं पकड़े जाने का यकीन था। उसने गांधीजी से कहा : "मेरे पिता पर जिस जगह अशान्ति फैलाने का आरोप है, वहाँ वे कभी नहीं गये और न जानेवाले थे!" परन्तु यहाँ तो जैसा फिल्डिग हॉल नामक एक सहृदय सिविलियन अपनी सुन्दर पुस्तक 'डूबता साम्राज्य' में लिख गये हैं : "जाब्ता फौजदारी की 'निरोधक धाराओं' की रू से किसी खास अपराध का आरोप लगाये बिना ही अनेक मनुष्यों से जमानत ले ली जाती है और अनेक मनुष्यों को जेल में डाल दिया जाता है! ये धाराएँ लगा-लगाकर काम में लेने के लिए मजिस्ट्रेटों और पुलिस को स्थायी आज्ञाएँ देकर रखी जाती हैं। सफर में रहते समय प्रत्येक गाँव में रहनेवाले बेरोजगार और संदिग्ध मनुष्यों की जाँच-पड़ताल करने के हुक्म होते हैं और उन पर कार्रवाई करने के आदेश दिये जाते हैं। गाँवों के मुखियों पर ऐसे व्यक्तियों का पता बता देने का दबाव डाला जाता है और जिनसे उनकी अनबन होती है, उन्हें वे आराम से पकड़वा देते हैं!" यह तो पाँच वर्ष पहले की स्थिति हुई। आज 'सफेद टोपी' देखकर भड़कनेवाली पुलिस को, जहाँ देखे वहाँ, संदिग्ध मनुष्य ही दिखाई दे तो इसमें क्या आश्चर्य है? फिल्डिग हॉल लिखते हैं : "भारत का सारा फौजदारी कानून और कानून का अमल ही भद्दा है। इन तमाम फौजदारी अदालतों पर ताले लगा दिये जायँ और ग्राम-पंचायतों से मशविरा करके अपराध रोकना मेरे हाथ में हो तो मैं तो जिले को अधिक शान्ति में रख सकूँगा।" परन्तु अधिकारियों में फिल्डिग हॉल के समान सिविलियन आज शायद ही मिलते हैं और उन्होंने अपनी

पुस्तक में जो अत्यन्त गंभीर आगाही––साम्राज्य के डूब जाने की––दी है, उसे सच्ची साबित करने की पूरी कोशिश आज की नौकरशाही कर रही है।

परन्तु नौकरशाही को लोग किस प्रकार जवाब दे रहे हैं? बिहार के तिरहुत-विभाग में कितनी ही अदालतें खाली हैं। जहाँ वकील खाली नहीं करते, वहाँ लोगों ने खाली कर दी हैं। ग्राम-पंचायतें वहाँ बड़े-बड़े अपराधों के सम्बन्ध में सन्तोषजनक ढंग से न्याय दे रही हैं। गया, आरा, मुंगेर वगैरह जिलों में शराब के ठीकेदार ग्राहकों के बिना मुँह बाये बैठे हैं! पाठशालाएँ भी जहाँ-तहाँ खुल रही हैं। हाजीपुर की जिस पाठशाला की गांधीजी ने दो मास पूर्व नींव रखी थी, वह तैयार हो गयी; उसमें साढ़े तीन सौ विद्यार्थी हैं। स्थानीय अंग्रेजी स्कूल के लगभग अधिकांश विद्यार्थी उसे छोड़कर इस पाठशाला में भरती हो गये हैं और ज्यादातर शिक्षक भी निकलकर इस पाठशाला में आ गये हैं। दूसरे स्थानों पर बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद और बाबू धरणीधर काम कर रहे हैं और पाठशालाएँ खोल रहे हैं। यहाँ एक फकीर की उदार-वृत्ति का उल्लेख किये बिना नहीं रहा जा सकता। उस फकीर को लोग बहुत मानते थे, इसलिए पैसा-पैसा करके उसके पास सात-आठ हजार की पूँजी हो गयी थी। उससे उसने धर्मशाला बनवायी। यह पाठशालाएँ खोलने की जो जबर्दस्त हलचल चल रही है, उसे देखकर उसने स्वयं ही स्थानीय कार्यकर्ताओं से माँग की कि उस धर्मशाला को एक पाठशाला बना दिया जाय! वह धर्मशाला अब शिक्षणशाला बन गयी है और वह फकीर मस्त होकर आज देहात की अनेक प्रवृत्तियों में घूम रहा है!

हक साहब के बारे में आरम्भ में मैं थोड़ा-सा कह चुका हूँ। उन्हें मैंने इस बार जो देखा तो कुछ नया ही पाया। उस बार देखा था तब का उनका चित्र मैंने अपने उस समय के पत्र में दिया था। इस समय का चित्र भी उतना ही देने योग्य है। सीधी सरल भाषा में कहूँ तो उन्हें मैंने खूब तगड़ा देखा। उनके गाल भरे हुए थे, उन पर कुछ और ही लाली थी, उनकी अचकन फटी जा रही थी। मैंने कहा : 'आप तो सचमुच इस बार बहुत ही मोटे-ताजे हैं।' उन्होंने हँसकर कहा : 'मोटा न होता? कितनी स्वतन्त्रता, गंगा का किनारा और अपने प्यारे विद्यार्थियों का सहवास! इन विद्यार्थियों को खिलते हुए देखकर मैं भी खिल उठता हूँ।' इन विद्यार्थियों का जीवन देखने हम गांधीजी के मौनवार––सोमवार को सदाकत

आश्रम गये । विद्यार्थी कल्लोल कर रहे थे। देहात के लोग वहाँ इस भावना से उछल रहे हैं कि गांधीजी का आश्रम खुल गया है । वे उनके साथ घुल-मिल गये हैं । देहाती आते हैं तो उनके साथ टोली बनाकर ये विद्यार्थी पखावज और मजीरों के साथ रामायण गाते हैं और उन्हें देखकर हक साहब की छाती फूलती है । आठ-दस घण्टे वे चरखे बनाने के काम में और उद्योग-गृह बनाने के कार्य में देते हैं और शाम को इकट्ठे होते हैं। वहाँ रामायण-पाठ के बाद हक साहब उनके सामने दिनभर के हाल-चाल पर विवेचन करते हैं। वे पूछताछ करते हैं और एक-दो घंटे तक यह ज्ञानगोष्ठी चलती है। और वे खाते क्या हैं ? मुझे जरा ताज्जुब हुआ। मैंने सुबह हक साहब के साथ खाया। मोटे चावल-दाल और साग खाने के बाद मैंने हक साहब से पूछा : 'क्या आप सदा ऐसा ही खाते हैं ?' उन्होंने मुझसे मजाक करके कहा : 'भाई, यह क्या सिकन्दर मंजिल है, जहाँ मनचाहे साग बनें और चाहे जितने लोग खा जायँ ?' उन्होंने मुझसे कहा कि यही खुराक विद्यार्थी खाते हैं और यह भी कहा : 'लोगों को यह खयाल न हो कि मैं हिन्दुओं को भ्रष्ट करने बैठा हूँ। इसलिए मैं उनके साथ नहीं खाता।' शाम को मैंने विद्यार्थियों के साथ खाया। विद्यार्थियों के साथ भी वही खुराक। विद्यार्थियों से मैंने पूछा : 'तुम्हारा खर्च क्या पड़ता है ?' तो उन्होंने कहा : 'पौने आठ या आठ रुपये।' भारत में आम तौर पर दस रुपये से कम में नहीं खाया जा सकता—दो-तीन रुपये में काम चलानेवाले मनुष्य भी हैं, इसका मुझे पता न हो सो बात नहीं—मेरी यह भ्रान्ति इन विद्यार्थियों ने मिटा दी। दूध, घी वे शायद ही लेते हैं। उनसे पूछा : 'इस खुराक से तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है ?' हक साहब के चेहरे की गुलाबी सुर्खी देखकर भी मैंने यह पूछने की धृष्टता की । मुझे भी लाजवाब ही उत्तर मिला : 'अभी तक तो स्वास्थ्य नहीं बिगड़ा। बाद की ईश्वर जाने।' इस आश्रम में अपरिग्रह और अस्तेय-व्रत का जैसा पालन मैंने देखा, वैसा शायद ही कहीं देखा होगा। क्या देश इन विद्यार्थियों का इन दोनों व्रतों के पालन में अनुकरण करेगा ?

यह मेरा पत्र लम्बा हो जाने पर भी हक साहब के आश्रम में एक बात जो देखी, उसके बारे में दो शब्द कहे बिना नहीं रहा जाता। लोग जानते थे कि गांधीजी सोमवार को मौन रहते हैं, फिर भी केवल दर्शनों

के लिए गाँव से बहुत-से लोग वहाँ उमड़ आते थे। हक साहब ने कहा कि 'इनमें से आधे तो इसलिए भी आते हैं कि गांधीजी का जो आश्रम बन रहा है, उसे देखने चलें। आज दुगुने आये हैं। अब तो शान्ति के लिए आश्रम को ऐसी किसी जगह ले जाना चाहिए, जहाँ गांधीजी का नाम न सुना गया हो। महात्माजी का नाम एक पीड़ा (nuisance) है।' तुरन्त ही कहा : 'इस पीड़ा के बिना जीवित नहीं रह सकते। ये लोग तो मेरे जीवन बन गये हैं।' परन्तु इतनी देर में एक विद्यार्थी आकर कहने लगा : 'सैकड़ों स्त्रियाँ उस मण्डप में बैठी हैं—केवल दर्शनों के लिए।' मैंने गांधीजी से कहा। गांधीजी निकले और जाकर खड़े हो गये। उनके सामने छोटे-बड़े गहनों से भरी एक थैली उँड़ेल दी गयी! ऐसी श्रद्धा जहाँ-तहाँ देखकर मैं चकित हो गया हूँ। झरिया की थैली में वहाँ के अर्धनग्न मजदूरों की स्त्रियों के गहने रखे हैं। पटना में उस दिन पू० कस्तूरबा गंगाजी नहाने गयी थीं, वहाँ अनेक बहनें नहा रही थीं। उन्हें किसीने कह दिया कि 'ये माताजी हैं।' बस, उन्होंने अपने पल्ले जो कुछ बँधा हुआ था, उसे खोलकर कस्तूरबा के चरणों में धर दिया! परन्तु अन्त में एक जीर्ण-शीर्ण कपड़ोंवाली बुढ़िया आयी और उसने एक रुपया रखा। पू० कस्तूरबा ने पूछा : 'बहन, तुम क्या काम करती हो?' जवाब मिला : 'दूध बेचने का।' इस पर दूसरे पास खड़े हुए एक भाई ने कहा : 'दूध बेचकर ज्यों-त्यों बचाये हुए पैसे में से यह एक रुपया आया है!' इस पर वह भली औरत बोली : 'माताजी, आप जो देश का भला कर रही हैं, उसके लिए यह दिया है।'

[८ तारीख को गोरखपुर से काशी जाते हुए जो दुःखद एवं सुखद अनुभव हुए, उनका वर्णन महादेवभाई ने नीचे के पत्र में किया है।]

८-२-'२१

पटना छोड़कर हम गोरखपुर गये। गोरखपुर के विवरण में मैं यहाँ नहीं जाना चाहता। ८ तारीख को काशी जाते हुए हम पर जो बीती, उसे बयान करने तथा उस पर से सूझनेवाले कुछ विचार इस पत्र में प्रकट करने का इरादा है।

गोरखपुर संयुक्त प्रान्त का सबसे बड़ा जिला है। अकेले गोरखपुर जिले की आबादी २९ लाख की कही जाती है। थोड़े दिन पहले ही

खबर लगने पर भी बहुत-से गाँवों से लोग गोरखपुर में उमड़ आये थे। गोरखपुर की विराट् सभा में एक लाख से कम लोग शायद ही होंगे। इतने आदमी देखकर मैं एक तरह से निश्चिन्त हो गया था कि हमारा रात का समय तो शान्ति में ही गुजरेगा; क्योंकि दर्शनों के लिए आनेवाले लोग भी ज्यादातर इस सभा में आ गये होंगे। परन्तु मेरी धारणा गलत निकली।

गोरखपुर से रात को साढ़े आठ बजे गाड़ी चली। काशी जाते हुए भटनी स्टेशन पर लगभग ग्यारह बजे गाड़ी बदलती है। गाड़ी प्रत्येक स्टेशन पर खड़ी रहनेवाली थी। गोरखपुर के कार्यकर्ताओं ने दीर्घ-दृष्टि से हमारे लिए एक-दो ठेठ के डब्बे ले रखे थे और हमें गाड़ी बदलने की चिन्ता से मुक्त कर दिया था। परन्तु हमें चिन्ता से मुक्त किया ही नहीं जा सकता था। गोरखपुर से बादवाले ही स्टेशन से हर स्टेशन पर मनुष्यों की भीड़ की भीड़ आकर हमारे डब्बे पर हमला करने लगी। जिसने कासगंज से कानपुर की यात्रा का वर्णन पढ़ा है, उसके लिए इन हमलों का वर्णन करने की जरूरत नहीं है। हाँ, ये हमले उस ऐतिहासिक हमले से भी अधिक भयंकर थे और उसी हद तक मैं इनका वर्णन करना चाहता हूँ। हर स्टेशन पर बड़ी-बड़ी लाठियों और मशालोंवाले किसान आकर कान फोड़नेवाली आवाजें लगाते थे। उनसे जितनी बिनती की जा सकती थी, उतनी हम सब डब्बे में से करते ही रहते थे।

हमारी कौन सुनता था? बहुत-से स्थानों पर मैं गाड़ी से उतरकर लोगों के पैरों पड़ता, तब थोड़ी देर के लिए वे पीछे हट जाते; परन्तु जहाँ मैं ऊपर चढ़ा कि वापस दरवाजे पर आकर शोर मचाने लगते। मानो इतने से उन्हें सन्तोष न होता हो, गाड़ी चलने लगती कि सैकड़ों आदमी गाड़ी पर चढ़ जाते और डब्बे के बाहर खड़े रहते। कुछ स्थानों पर तो यह मानकर कि अपने बल से गाड़ी को रोक रखा जा सकेगा, अनेक मनुष्य गाड़ी को खींचकर खड़ी रखने का भी प्रयत्न करते! उन्हें रोकने और गाड़ी को आगे चलाने में किसीको चोट न लगे, यह देखने में बेचारे गार्ड के कष्ट और धीरज की भी हद हो जाती थी। परन्तु लोग किसी भी प्रकार मानते ही न थे।

ऐसी हालत में मैं अपनी चिढ़ नियंत्रित नहीं रख सकता था। इस चिढ़ ही चिढ़ में मैंने गांधीजी के समक्ष असत्य बोलने की भी धृष्टता

कर डाली, यह यहाँ स्वीकार कर लूँ। इन बहुत-से भक्तों को पता भी नहीं होता था कि 'महात्मा गांधी' कौन हैं? थोड़े-से लोग डब्बों पर चढ़ गये और पुकारने लगे : 'महात्माजी कौन हैं?' 'महात्माजी कौन हैं?' मैंने क्रुद्ध होकर कहा : 'मैं हूँ', इस पर सन्तुष्ट होकर, प्रणाम करके उतर गये ! कहाँ मेरी धृष्टता और कहाँ उनका निर्मल प्रेम ! परन्तु उस निर्मल प्रेम पर मोहित होने से कुछ नहीं हो सकता था।

भटनी स्टेशन आया। भटनी स्टेशन पर तो हद हो गयी। गाड़ी स्टेशन पर लगभग ग्यारह बजे पहुँचने के बदले इन हमलों के कारण बारह बजे पहुँची। लोगों को दर्शन न मिल सकने के कारण वे क्रुद्ध होकर अनेक प्रार्थनाओं के बावजूद गाड़ी की पटरियाँ रोककर खड़े हो गये। अनेक लोग कहने लगे कि जब तक दर्शन नहीं हो जाते, तब तक गाड़ी को चलने ही नहीं देंगे। मैं फिर उतरकर उनके पैरों पड़ा। तो भी वे हटने को तैयार नहीं थे। अन्त में मैं क्रोध में भर गया। न कहने योग्य शब्द मैं उन्हें कहने लगा। गांधीजी पंजाब में दो आदमियों के विरुद्ध सत्याग्रह करके गाड़ी में दो घंटे खड़े रहे थे, यह मैंने उन्हें कह सुनाया; यह चेतावनी दी कि इस उपद्रव के परिणामस्वरूप कदाचित् वे दौरा करना बन्द कर देंगे या कुछ-न-कुछ अकल्पनीय कड़ा सत्याग्रह कर बैठेंगे; परन्तु वह बात उनके कानों को स्पर्श तक नहीं करती थी। 'भगवान् के दर्शन करने आये, इसमें शर्म किस बात की?' यों कह-कहकर हमें शरमाने की कोशिश करते। इस तरह करते-करते हमारा डब्बा दूसरी गाड़ी से जोड़ने में गार्ड को आधा-पौन घण्टा लग गया।

गांधीजी इस ऊधम में सो कैसे सकते थे? परन्तु चुपचाप पड़े हुए थे। उन्होंने यह आशा रखी थी कि भटनी के बाद कुछ-न-कुछ शान्ति हो जायगी, परन्तु वह आशा भी व्यर्थ हुई। फिर तो हर स्टेशन पर लोगों का ऊपर कहे अनुसार दुराग्रह जारी रहा। एक स्टेशन पर थककर तंग आकर कोई डेढ़ बजे गांधीजी उठे और विनती करने लगे : 'मेहरबानी करके आप जाइए। इतनी रात गये क्यों तंग करते हैं?' इसके जवाब में जोरदार हर्षनाद ही होते थे। बहुत-से यह भी कहते थे कि गाड़ी चलने तक नहीं हटेंगे। गांधीजी ने फिर आजिजी की, परन्तु कौन सुने? इस अवसर पर गांधीजी की सौम्य मूर्ति में हुई विकृति का वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं भी त्रस्त हो गया था। क्या होगा, इसकी कल्पना नहीं

कर सकता था। गांधीजी को क्रुद्ध दशा में मैंने इससे पहले कभी नहीं देखा था। इसलिए मैं काँप रहा था। अन्त में उन्होंने अपना माथा पीटकर कहा : 'तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, भले बनकर यहाँ से हट जाओ।' लोगों की उद्धतता की हद हो गयी! गांधीजी के इस प्रकार तीन बार कपाल पीटने के बाद लोग वहाँ तो शान्त हो गये।

यह सब दृश्य एक अपरिचित सज्जन ने देखा था। इसके बाद के प्रत्येक स्टेशन पर वे हमारे डब्बे के सामने पहुँच जाते और भीड़ के सामने अत्यन्त नम्र और हृदयद्रावक भाषा में भाषण दे जाते थे। सौभाग्य से भीड़ भी उनकी सलाह पर ध्यान देती और शान्ति से बिखर जाती। इस प्रकार हमारे सिर का भार इस देवदूत ने ही ले लिया। उनके भाषण शुद्ध भाषा में होते थे। मालूम होता था, उन्होंने गांधीजी के सारे सिद्धान्त अच्छी तरह हजम कर रखे हैं और शान्ति, परन्तु दृढ़तापूर्वक प्रत्येक भाषण के अन्त में वे साधारण अहिंसा के, विदेशी वस्तु-बहिष्कार के और असहयोग के प्रत्येक अंग के बारे में उपदेश देते थे। उनकी भक्ति, उनके धैर्य और उनकी शान्ति के विषय में मेरे विस्मय का पार नहीं रहा।

मैंने उनसे उनका नाम पूछा। उन्होंने कहा : 'मेरा नाम रामगोपाल है। मैं मऊ में एक मामूली—साधारण व्यापारी हूँ और वहाँ खिलाफत कमेटी का मंत्री हूँ।' मुझे और भी आश्चर्य हुआ। इस प्रकार कितने ही मूक सेवक देश में काम कर रहे होंगे, जिनका देश के अधिकांश लोगों को पता तक नहीं होगा!

Some village Hampden that with dauntless breast
The little tyrant of his fields withstood,
Some mute inglorious Milton here may rest,
Some Cromwell guiltless of his country's blood.*

ये पंक्तियाँ मुझे याद आयीं और तुरन्त ही एक प्रकार का आश्वासन

* अंग्रेज कवि ग्रे ने देहात के कब्रस्तान पर एक करुण प्रशस्ति लिखी है। उसीकी ये विख्यात पंक्तियाँ हैं। भावार्थ : यहाँ शायद किसी ऐसे ग्रामीण की अस्थियाँ होंगी कि यदि मौका मिलता तो अपने खेत को हजम करनेवाले जमींदार के विरुद्ध छाती खोलकर लड़ता और हेम्पडन की-सी ख्याति प्राप्त करता, ऐसा कोई मूक, कीर्तिविहीन व्यक्ति यहाँ सो रहा होगा, जो मिल्टन जैसा कवि हो सकता था अथवा अपने देश-बन्धुओं के रुधिर से अकलुषित कोई ऐसा पड़ा होगा, जो क्रॉमवेल की-सी कीर्ति प्राप्त कर सकता था।

मिल गया। असहयोग के इस सहस्रमुखी ज्वालामुखी का, कितने ही प्रयत्न होते हुए भी, कहीं भी कोई सा भी मुख फूट निकलना जितना संभव है, उतना ही संभव उस स्थान पर उस उत्पात को रोकने के लिए निकल पड़नेवाले और उसे शान्त करते हुए उसीमें खप जानेवाले मनुष्यों का प्रकट होना भी है। इस हलचल का भविष्य उज्ज्वल ही है। कौन जानता है, किस अज्ञात रूप में शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्त देश के शरीर में प्रवेश कर रहे हैं और योग्य पात्र में उत्तम रूप में स्थिर होकर उत्तम परिणाम ला रहे हैं।

जरा और विचार करने पर मुझे हण्टर-कमेटी की बैठक के समय अहमदाबाद में गांधीजी को सर चिम्मनलाल सेटलवाड द्वारा पूछा गया प्रश्न याद आ गया। उन्होंने बार-बार गांधीजी से पूछा था कि 'आप जितना सहन कर सकते हैं, जो शान्ति रख सकते हैं, उतनी रखने में दूसरे लोग तो अशक्त ही होंगे, यह तो ठीक है न ?' इससे गांधीजी ने इनकार किया था और कष्ट सहन करने की भारत की शक्ति के लिए प्रत्येक माता का दृष्टान्त दिया था। आज की घटना से भी वैसा ही दृष्टान्त मिलता है। जिस प्रसंग पर खुद गांधीजी धीरज नहीं रख सके, जिस अवसर पर गांधीजी की मुख-मुद्रा पर क्रोध की छाया फिर गयी, उस अवसर पर असाधारण शान्ति से लोगों को समझानेवाला भी एक केवल साधारण मनुष्य ही था। कोई इसके विरुद्ध यह तर्क करेगा कि गांधीजी को तो ऐसे अनुभव रोज होते हैं, इसलिए उनकी शान्ति भंग होना स्वाभाविक है। यह ठीक है, परन्तु वह आदमी, जिसने इस प्रसंग पर असाधारण शान्ति दिखायी, वह ऐसे मौके रोज आने पर नहीं दिखायेगा, इसका भी हमारे पास कोई सबूत नहीं है। और हम यह आशा रख सकते हैं कि मेरी कल्पना के ऐसे प्रसंग क्वचित् ही होंगे, तो भी ऐसे मौकों पर आवश्यक शान्ति रखनेवाले मनुष्य साधारण मनुष्यों में भी मिल जायेंगे, कहने का इतना ही तात्पर्य है।

गांधीजी की उत्तर भारत-यात्रा

[काशी, लखनऊ, दिल्ली होकर पंजाब। इस सम्बन्ध में महादेवभाई का पत्र इस प्रकार है। इस पत्र में आचार्य कृपालानीजी का हमें बढ़िया परिचय मिलता है :]

९-२-'२१ से
१२-२-'२१

किसानों के बीच

बिहार छोड़कर गांधीजी संयुक्त प्रान्त में गये––खास तौर पर किसानों से मिलने के लिए और काशी विद्यापीठ का उद्‌घाटन करने के लिए। किसानों के दो बड़े जलसे गोरखपुर और फैजाबाद में हुए। गोरखपुर के लाख आदमियोंवाले जलसे की व्यवस्था बिलकुल ठीक थी। हजारों बड़ी-बड़ी लाठियोंवाले किसान भाइयों को देखकर किसीको भी आनन्द हुए बिना नहीं रह सकता था। उन लाठियों का उपयोग किसीको मारने में, उपद्रव करने में न किया जाय, यही ज्ञान गांधीजी को देना था। फैजाबाद में भी यही ज्ञान दिया गया। लूट-मार, बदमाशी और उपद्रव के जो चिह्न संयुक्त प्रान्त में मालूम हुए थे, उन्हें ध्यान में रखकर ही गांधीजी के वचन निकले थे। यह कह दूँ तो हर्ज नहीं कि इसी विषय में गांधीजी ने अपने जो विचार सूत्ररूप में 'यंग इण्डिया' में रख दिये हैं, वे वहाँ विस्तार से बताये थे। उन्हें यहाँ सूत्ररूप में ही दे दूँ : 'जहाँ सरकार की या लोगों की आतंक-नीति चल रही हो, वहाँ एक वर्ष में लोक-शासन का वातावरण उत्पन्न करना असंभव है। कुछ बातों में लोगों की आतंक-नीति लोक-शासन के वातावरण के लिए सरकारी आतंक-नीति से भी अधिक प्रतिकूल है; क्योंकि जहाँ सरकारी आतंक-नीति से लोक-शासन की भावना को पोषण मिलता है, वहाँ लोगों की आतंक-नीति से वह भावना नष्ट होती है। डायरशाही से स्वातंत्र्य की जितनी उत्कंठा पैदा हुई है, उतनी और किसी चीज से नहीं हुई। परन्तु आपस की डायरशाही बहुमत द्वारा संचालित आतंक-नीति का प्रतिबिम्ब होने के कारण एक ऐसी अल्प-लोकसत्ता स्थापित करेगी, जिससे स्वतन्त्र चर्चा और स्वतन्त्र आचरण की वृत्ति ही कुचल दी जायगी।' 'लीडर' जैसे ने भी साफ तौर पर कहा है कि 'गांधीजी के फैजाबाद के भाषण में अहिंसा पर अत्यन्त जोर दिया गया था।'

काशी में जब गांधीजी पहले गये थे, तब जो दो सौ के करीब विद्यार्थी निकल आये थे, उनके सिवा नये और कोई नहीं निकले। फिर भी उन्होंने अपना काम धीरे-धीरे, किन्तु दृढ़ता से जारी रखा और यह कहने में हर्ज

नहीं कि उसीके परिणामस्वरूप बाबू भगवानदास और शिवप्रसाद गुप्त ने वहाँ विद्यापीठ खोलने का निश्चय किया। उन विद्यार्थियों के नेता प्रोफेसर कृपालानी हैं। वे इन्हीं विद्यार्थियों को लेकर निकले थे। कोई चार साल पहले वे मुजफ्फरपुर के सरकारी कॉलेज में प्रोफेसर थे। वहाँ उन्होंने गांधीजी को न्योता देने का पहला पाप किया था; और बाद में अपनी स्पष्टवादिता के कारण उन्होंने सरकार की पूरी नाराजी मोल ली और उन्हें वहाँ से छुट्टी मिल गयी। इसलिए वे चम्पारन में जहाँ गांधीजी थे, वहाँ उनकी सहायता के लिए गये। स्वयं अत्यन्त जोशीले और जन-समुदाय का नेतृत्व करने की भारी शक्ति रखनेवाले होने पर भी उन्होंने उस समय गांधीजी का छोटे-से-छोटा काम करना ही पसन्द किया। कितने ही महीनों तक, जब कि कस्तूरबा वहाँ नहीं थीं, तब गांधीजी का खाना वे ही बनाते थे। (गांधीजी उस समय दाल-चावल-साग जैसा साधारण लोगों का-सा भोजन करते थे, इसलिए कृपालानी जैसे भावुक रसोइये के लिए अपनी भावना व्यक्त करने की गुञ्जाइश थी।) डेढ़ वर्ष वहाँ कार्य करने के बाद उन्हें मालवीयजी ले गये। अपने साथ अपने मंत्री के तौर पर लम्बे समय तक काम करने के बाद पण्डितजी ने उन्हें हिन्दू विश्वविद्यालय में इतिहास का अध्यापक नियुक्त किया। विश्वविद्यालय में विद्यार्थी उन्हें बहुत मानने लगे थे। और 'जूनियर' होने पर भी उनके 'सीनियरों' को अवसर उनकी सहायता की जरूरत पड़ती थी। पण्डितजी के दिल को कैसे न दुखाया जाय और अपने हृदय को कैसे सन्तोष दिया जाय, प्रेम और कर्तव्य-पथ के बीच के इस धर्म-संकट से वे थोड़े ही समय पहले छूटे और उदार-हृदय पण्डितजी का आशीर्वाद लेकर उन्होंने विश्वविद्यालय छोड़ दिया। इसके बाद उन्होंने अपने विद्यार्थियों की छोटी-सी टोली के साथ जो-जो विडम्बनाएँ भुगती हैं, उनके वर्णन का यह स्थान नहीं है। विद्यार्थियों के लिए उन्होंने एक छोटा-सा मकान लेकर आश्रम खोला। उनमें से बहुत-से विद्यार्थियों ने मिलकर एक पाठशाला खोली और वह पाठशाला रोज बढ़ती जा रही है। मैं मानता हूँ कि उन विद्यार्थियों का स्वावलम्बन देखकर बाबू शिवप्रसाद गुप्त और भगवानदासजी ने विद्यापीठ खोलने का उपक्रम किया। जब विद्यापीठ खोला गया, उस अवसर पर विद्यार्थियों को आशीर्वाद देने के लिए प्रिन्सिपल आनन्दशंकरभाई भी उपस्थित हुए थे। बाबू भगवानदास और गांधीजी

के भाषण 'आज' पत्र से बहुत-से अखबारों ने उद्धृत कर दिये हैं, इसलिए उस बारे में कुछ भी कहकर मैं पाठकों का समय लेना नहीं चाहता। आज विद्यालय की स्थिति यह है कि उसमें विद्यार्थियों की जो संख्या थी, वह ज्यों की त्यों बनी हुई है, परन्तु पाठशाला में विद्यार्थियों की भरती होती ही जा रही है, यहाँ तक कि विद्यालय की अपेक्षा उस पाठशाला के संचालन पर संचालकों को अधिक ध्यान देना पड़ेगा।

लखनऊ

दिल्ली जाते हुए गांधीजी थोड़ी देर लखनऊ भी ठहरे थे। उस समय की एक-दो बातें यहाँ दे दूँ। लखनऊ स्टेशन पर बहुत-से सैनिक अपने अफ़सर के (जो गोरा था) साथ खड़े थे। उन सबने गांधीजी को फौजी ढंग से सलाम किया। गोरे ने भी किया। इसमें जरा चकित होने की-सी बात है भी और नहीं भी है। लखनऊ में रेलवेवालों ने जो हड़ताल की थी, उसका गांधीजी के दौरे से जरा भी सम्बन्ध नहीं था। फिर भी 'लीडर' के सवाददाता ने इस प्रकार का सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया है। कोई हड़ताली गांधीजी से मिलने तक नहीं आया था।

दिल्ली

गांधीजी का दिल्ली आगमन स्मरणीय था। हकीमजी के जिस वैद्यक-विद्यालय का शिलान्यास लॉर्ड हार्डिज ने किया था, उसका उद्घाटन करने गांधीजी गये थे। इसमें लोगों को थोड़ी-सी विचित्रता लगी होगी। परन्तु उस विचित्रता की सफाई गांधीजी ने अपने उस समय के चिरस्मरणीय भाषण में बढ़िया ढंग से दी थी। हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य की मूर्ति हकीमजी की संस्था--हिन्दू-मुसलमानों की एकता की चिह्नस्वरूप संस्था--के उद्घाटन के लिए जाने से इनकार कैसे किया जा सकता था? और वहाँ जाकर गांधीजी यह बताने का मौका भी कैसे छोड़ सकते थे कि लार्ड हार्डिज की तस्वीर के उद्घाटन का कार्य ऊपरी दृष्टि से देखनेवाले को असहयोग-वृत्ति के साथ असंगत प्रतीत होते हुए भी पूरी तरह संगत है? और अन्त में अर्वाचीन वैद्यक के बारे में अपना मत स्पष्ट रूप से प्रकट करने का भी यह अवसर था। इन तीनों चीजों को उस भाषण में आप बढ़िया ढंग से दी हुई देखेंगे। वह भाषण अक्षरशः पढ़ने योग्य है।

परन्तु यह तो विद्यालय की बात हुई। उस विद्यालय के उद्घाटन

के लिए जाते हुए जो अद्भुत दृश्य देखे गये, वे ऐसे थे, जिन्हें देखनेवाला कभी नहीं भूल सकता। यह व्यवस्था थी कि गांधीजी, लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू, अली भाई और अन्य नेताओं की दस मोटरें तेजी से विद्यालय के स्थान पर चली जायँ। विद्यालय दरियागंज में—डॉ० अन्सारी के मकान से कोई चार मील होगा, परन्तु डॉ० अन्सारी के बँगले से उस विद्यालय तक रास्ते मनुष्यों से भरे थे। जामा मस्जिद के आगे से चाँदनी चौक के रास्ते जाते हुए दो-ढाई मील तक अपार भीड़ थी। तीन-तीन, चार-चार मंजिल की हवेलियाँ शहद की मक्खी के छत्तों की तरह खचाखच भरी हुई थीं। उनमें स्त्रियों का भी पार नहीं था। ताँगे-इक्के तो बन्द ही थे, इसलिए रास्तों पर मनुष्यों की भीड़ के सिवा कुछ नहीं था और वह भी काफी धूप में। बहुतों का कहना था कि दिल्ली ने ऐसा स्वागत किसीका नहीं किया। बहुत-से सहयोगियों से भी ऐसे ही शब्द सुने गये हैं : 'नहीं। डचूक को इस बात का पता नहीं होगा ? दिनदहाड़े आँखें मूँद लेनेवाले को भी इस बात का पता चल जायगा।' 'डचूक जब दो-तीन दिन के लिए आये, तब अजीब हड़ताल हुई थी। रास्तों पर के घरों में दिये तक नहीं जले थे। लोगों की इस नापसन्दगी पर सरकार कब तक पर्दा डाले रहेगी ?'

पंजाब

दिल्ली से भिवानी और रोहतक में जाट लोगों को अहिंसा के पाठ पढ़ाकर गांधीजी पंजाब गये। पंजाब में मैं इस बार गांधीजी के साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सका, इसलिए वहाँ की यात्रा के विस्तृत वर्णन की मुझसे कोई आशा न रखे। वहाँ ननकाना साहब में जो सिक्ख-हत्याकाण्ड हो गया, वही आज चर्चा का बड़ा विषय बन गया है। आज ही खबर पढ़ी है कि उसकी एक जाँच-समिति में लोगों ने गांधीजी को भी नियुक्त किया है और गांधीजी का भी ऐसा तार है कि उन्हें वहाँ लगभग दस दिन बिताने पड़ेंगे। चार दिन पहले मेरे नाम आये हुए एक पत्र में गांधीजी कहते हैं :

"मेरा मन तो सिक्ख उल्कापात में लगा हुआ है। इस यज्ञ (अर्थात् असहयोग यज्ञ) का क्या अर्थ है, इसमें क्या होगा, यह तो कहा ही नहीं जा सकता। यह जो दावानल धधक उठा है, यह क्या सूचित करता है,

सो भीतर ही भीतर देखता रहता हूँ। लड़ाई का तो खतरा नहीं दीखता, फिर भी लड़ाई पर इसका बहुत बड़ा असर अवश्य होगा।"

कल ही आये हुए एक पत्र में वे लिखते हैं: "सिक्खों के मामले में अभी तक सत्य मेरे हाथ नहीं लगा।"

अन्य निजी पत्रों से मालूम होता है कि वहाँ सिक्खों के एक दल ने निर्दय हत्याकाण्ड के विरुद्ध सुन्दर सत्याग्रह किया है। परन्तु हमारे लिए यही ठीक है कि धीरज और शान्ति से सत्य के बाहर आने की प्रतीक्षा करें।

[इसके बाद के अरसे में महादेवभाई कुछ समय दासबाबू के साथ और बाद में पण्डित मोतीलालजी के साथ रहे थे, इसलिए डायरी नहीं लिख सके, परन्तु बीच में मई और जून मास में कुछ समय वे बापूजी के पास आये थे, उस वक्त के लिखे हुए चार प्रवास-पत्र नीचे दिये जाते हैं।]

१

उत्तर का प्रवास

तीन महीने बाद

कोई तीन मास बाद अपने पत्रों द्वारा 'नवजीवन' के पाठकों से मैं फिर भेंट कर रहा हूँ। दूसरे काम में लग जाने के कारण मुझे इतने दिन गांधीजी के साथ जाने का सौभाग्य नहीं मिला था। इस बीच भाई 'रामानुज' ने जगह-जगह के हाल-चाल के सुन्दर बयान 'नवजीवन' को भेजे हैं।

संयुक्त प्रान्त में हम तीन महीने से हैं। लोगों का उत्साह बढ़ा हुआ लगा। परन्तु व्यवस्था-शक्ति में ज्यादा सुधार मालूम नहीं हुआ। रात को गांधीजी की निद्रा शायद ही टूटती है, परन्तु स्टेशनों पर भीड़, नारे और अन्य यात्रियों की सुविधा के प्रति अवहेलना आदि दोषों से हम अभी तक नहीं छूटे हैं।

भीड़ का कष्ट

बोरीबन्दर पर रात को मैं ज्यों-त्यों कर नौकरों (सर्वेण्ट्स) के डब्बे में जगह पा सका था। नौकर किसी तरह मानते ही नहीं थे कि मैं 'नौकर' हूँ। परन्तु यह आश्वासन मिल जाने के बाद कि 'मैं गांधीजी का नौकर हूँ'

मुझे उन्होंने तुरन्त अन्दर ले लिया और कहा : 'हम गांधीजी के दास हैं।' दूसरे दिन उनकी वृत्ति बदल गयी। लोगों की भीड़ पर भीड़ स्टेशन पर आती थी और वे लोग साग-पूड़ी लेने के लिए डब्बे से बाहर निकल तक नहीं सकते थे। दोपहर को बारह बजे भी वे कुछ पा न सके थे! मेरी आँखें बन्द हुईं तो वे हमारे बारे में कटु वचन कहने लगे। मैंने उठकर अपने पास जितना भी खाने का सामान था, वह सब उनके लिए उँड़ेल दिया। मैंने फिर आँखें बन्द कीं तो वे फिर बातें करने लगे। एक ने कहा : 'लो, कल तो तुम इसे डब्बे में घुसने नहीं दे रहे थे। घुसने न दिया होता तो आज क्या हाल होता ? इसने खाने को दिया तो हमें मिला, नहीं तो भूखों ही मरना पड़ता न ?' दूसरे ने जवाब दिया : 'क्यों ? गांधी और गांधी के किसी भी आदमी को न घुसने दिया होता तो सभी जगह साग-पूड़ी मिल जाती।'

इससे मुसाफिरों की तकलीफ का खयाल हो जायगा। कानपुर स्टेशन से हम दस-बारह बार गुजरे होंगे, फिर भी इस बार हजारों की भीड़ एक-दूसरे के साथ धक्का-मुक्की करती हुई गांधीजी के डब्बे पर बढ़ी चली आ रही थी। हमारी व्यवस्था-शक्ति की न्यूनता और भक्ति का पागलपन ही महासमिति को सविनय भंग की सलाह देने से रोकता है। मालेगाँव की भीड़ें इसी प्रकार की होंगी। आज तो जगह-जगह केवल शान्त कार्य में ही लीन रहने तथा वैसा करने की सभी को सलाह देने का प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। शान्ति के बिना स्वराज्य दूर चला जायगा, यह तो अब सभी को साफ रोशनी की तरह दीखना चाहिए।

अलाहाबाद म्युनिसिपैलिटी

हमारे जाने से पहले अलाहाबाद में थोड़ी खलबली मच गयी थी। वहाँ की म्युनिसिपैलिटी के कुछ उत्साही सदस्यों को अन्य म्युनिसिपैलिटियों की तरह गांधीजी को मानपत्र देकर उनके कार्य के प्रति सहानुभूति प्रकट करने की इच्छा हुई। उन्होंने प्रस्ताव रखा। विरुद्ध मतों से वह रद्द हो गया। इस पर लोगों ने इकट्ठे होकर प्रस्ताव किया कि कुछ 'शहरी बाबा' ('जामे जमशेद' जैसे पत्रों का 'सिटी फादर्स' के लिए शब्द काम में ले लूँ ?) गांधीजी का आदर न करें तो 'शहरी बच्चे' तो अवश्य करें। इसलिए किसानों की जो परिषद् थी, उसीमें गांधीजी को मानपत्र दिया

गया। प्रतापगढ़, फैजाबाद, बरेली वगैरह जिलों में सभाबन्दी के हुक्म होने के कारण पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किसानों की परिषद् अलाहाबाद में ही करने का विचार रखा था। परिषद् चांदनी में खुले मैदान में हुई थी। हजारों किसान गाँवों से उमड़ आये थे। पण्डित मोतीलालजी ने खादी के कपड़े पर लिखा हुआ सादा मानपत्र पढ़कर सुनाया। उसके उत्तर में कहे गये वचनों में से महत्त्वपूर्ण शब्द यहाँ उद्धृत करता हूँ :

"मैं आज पहली ही बार यहाँ नहीं आया हूँ, कई बार आ चुका हूँ; बल्कि मैं यहाँ का पुराना निवासी कहला सकता हूँ। परन्तु जैसे दूसरी म्युनिसिपैलिटियों द्वारा किये गये स्वागत से यह निश्चयपूर्वक मालूम हो जाता है कि वे हमारे साथ हैं, वैसे आपने भी अपना निश्चय प्रकट करने का विचार किया। यहाँ के सदस्यों ने माना कि म्युनिसिपैलिटियों का राजनैतिक मामलों से कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए राजनैतिक कामों में लगे हुए मेरे जैसे का सम्मान नहीं करना चाहिए। यह दलील ठीक है। परन्तु हम इस समय देख रहे हैं कि म्युनिसिपैलिटियों को राजनैतिक कामों में डाले बिना काम नहीं चल सकता। म्युनिसिपैलिटी अपनी शक्ति का उपयोग करेगी, तभी हम स्वराज्य के योग्य बनेंगे। परन्तु ऐसा लगता है कि अलाहाबाद की म्युनिसिपैलिटी स्वराज्य के मार्ग में आहिस्ता कदम चलेगी। उसने जो काम किया, वह मेरे विरुद्ध किसी अदावत से नहीं किया। आजकल जो म्युनिसिपैलिटियाँ मानपत्र दे रही हैं वे छोटी हैं, अलाहाबाद-जैसी बड़ी नहीं हैं। परन्तु बात यह है कि छोटी म्युनिसिपैलिटी से जो काम होता है, वह बड़ी से नहीं होता, क्योंकि बड़ी म्युनिसिपैलिटी इतनी कठोर पद्धति के अधीन हो जाती है कि वह आसानी से उसकी लकीर में से नहीं निकल सकती।

"परन्तु म्युनिसिपैलिटी के साथ हम झगड़ा नहीं कर सकते। ऐसे झगड़ों में पड़ेंगे, तो हम अपनी कांग्रेस कार्यसमिति के आदेश भूल जायेंगे। हमें तो इस साल में तीन बातें सिद्ध करनी हैं। और वे मानपत्रों से, गजलें पढ़ने से या जलसे करने से नहीं कर सकेंगे। सच्ची सरकार तो हम हैं और जब कांग्रेस की आज्ञा हो गयी है कि फलां काम ही करना है, तब उसे छोड़कर हम दूसरा कोई काम नहीं कर सकते। हम जलसे छोड़ देंगे, गाना-बजाना छोड़ देंगे, मानपत्र देना छोड़ देंगे तो स्वराज्य रुक नहीं जायगा, परन्तु कांग्रेस का सौंपा हुआ काम छोड़ देंगे तो स्वराज्य जरूर रुक जायगा।

अलाहाबाद फकीराबाद

"जैसा मानपत्र में कहा गया, उस तरह अलाहाबाद को आप सच्चा फकीराबाद बनायेंगे तो हम स्वराज्य फौरन ले लेंगे। यहाँ जो लोग आये हैं, उनमें से कितने लोगों ने कमेटी में नाम लिखवाये हैं ? (पं० जवाहरलाल : 'सभीने।' गांधीजी ने आनन्द प्रकट किया।) आपने यह प्रश्न किया है कि फकीराबाद चन्दा कैसे इकट्ठा करेगा ? मुझे इसका उत्तर स्पष्ट भासित होता है। यह त्रिवेणी का स्थान है। त्रिवेणी के पवित्र स्थान--प्रयागराज में लाखों लोग यात्रा के लिए आते हैं। जब मैं जगन्नाथपुरी में गया, तभी मैंने विचार कर लिया था कि हमारे यात्रा के स्थान यात्रियों से रुपया इकट्ठा करके स्वराज्य लेने में बड़ी मदद कर सकते हैं। यहाँ के तीर्थ-क्षेत्र से संयुक्त प्रान्त का हिस्सा तो आप आसानी से इकट्ठा कर सकते हैं।"

इसके बाद गांधीजी चरखा और स्वदेशी के बारे में बोले, और मालेगाँव के अपराध पर कठोर उद्गार प्रकट किये : "हममें फाँसी पर चढ़ने की शक्ति आनी चाहिए। मुझे या पण्डितजी को पकड़ लें तो हमें स्वराज्य लेकर छुड़ाइए, दंगे करके छुड़वाने की इच्छा न रखिए। मालेगाँव से हमें बड़ा सबक मिलना चाहिए। वहाँ के लोगों ने कांग्रेस और खिलाफत कमेटी की बदनामी करायी है, ईश्वर का अपमान किया है।"

मुहम्मदअली को क्यों पकड़ेंगे ?

मौ० मुहम्मदअली के अफगान हौए के बारे में कुछ स्पष्ट उद्गारों से सरकार चिढ़ गयी है और उन्हें पकड़ना चाहती है। इस तरह की जो अफवाहें जहाँ-तहाँ उड़ रही हैं, उन्हें ध्यान में रखकर गांधीजी बोले :

"सरकार भाई मुहम्मदअली को किसलिए पकड़ना चाहती है ? वे जो कह रहे हैं, वही मैं भी कहता हूँ। यदि वे कहें कि अमीर चढ़ आये, तो एक भी हिन्दू या मुसलमान ब्रिटिश सरकार को मदद न दे, तो मैं भी यही कह रहा हूँ। मैं अफगानों से नहीं डरता। मैं किसीसे भी डरूँ, तो नालायक हूँ। मैं सात करोड़ मुसलमानों से डरूँ, तो अयोग्य हूँ। इन्सान से डरना स्वराज्य के लिए अयोग्यता सूचित करता है। सात करोड़ मुसलमान हिन्दुओं से क्यों डरें ? कोई धर्म डरना नहीं सिखाता। अमीर से मैं इतना अवश्य कहूँगा कि यह हुकूमत हमारी बात न सुने, हठपूर्वक

हमारी माँग स्वीकार न करे तो हम उसे मदद नहीं देंगे। मुझमें, हममें इस समय इतनी ताकत नहीं है कि हम सिपाहियों को समझा सकें; क्योंकि उन्होंने अपने क्रोध पर नियंत्रण नहीं किया है। इसलिए आज मैं सिपाहियों को सरकार की तरफ रहकर लड़ना बन्द करने की सलाह नहीं दे सकता, परन्तु जिस हुकूमत को हमें मिटाना है, उसके कायम रहने में हम क्यों मदद दें? मुहम्मदअली को पकड़ लें, तब भी आप उन्हें खुशी से जेल जाने दें। आप उन्हें जेल में न जाने देने के लिए फसाद करेंगे, कायरता दिखायेंगे तो आप हमें लजायेंगे, खुदा को लजायेंगे। मुझसे आप कुछ भी प्रेम रखते हों, खिलाफत और पंजाब के मामलों का इसी वर्ष में निपटारा करना चाहते हों, तो आप दंगा-फसाद की बात भूल जाइए। यदि आप इतना भी करने को तैयार न हों, तो आप स्वराज्य के योग्य नहीं हैं, मैं भी योग्य नहीं हूँ।"

किसानों की परिषद् देखने का तो हमें अवसर नहीं मिला, क्योंकि पू० पण्डित मालवीयजी का पत्र आ जाने से गांधीजी का दूसरे ही दिन शिमला जाना तय हो गया। शिमला के बारे में गांधीजी बहुत कुछ लिख चुके हैं। और थोड़ा-सा मैं अगले पत्र में लिखूँगा।

२

शिमला में गांधीजी

वाइसरॉय की मुलाकात

शिमला जाना कैसे हुआ, यह स्वयं गांधीजी अपनी टिप्पणी में पिछले अंक में बता चुके हैं। वही हालात गांधीजी ने अपने शिमला के सार्वजनिक भाषण में और शिमला छोड़ने के बाद अंबाला, भुसावल, संगमनेर वगैरह स्थानों पर वर्णन किये हैं। 'इंग्लिशमॅन' इस काम को बड़ी शंका की दृष्टि से देखता है और कहता है कि गांधीजी के सभी साथी उनके शिमला जाने के विरुद्ध होने चाहिए, नहीं तो गांधीजी को शिमला जाने के कारणों के सम्बन्ध में इतनी लंबी सफाइयाँ क्यों देनी पड़ीं? यहाँ इतना कह देना जरूरी है कि पू० पण्डित मालवीयजी का पत्र अलाहाबाद आया, तब पण्डित मोतीलालजी, अली भाई, लाला लाजपतराय और अन्य

कुछ नेता वहाँ मौजूद थे। गांधीजी ने उनसे मशविरा करके निश्चय किया कि मैं मुख्यतः पण्डितजी से मिलने शिमला जा रहा हूँ; बाद में जरूरत हो तो वाइसरॉय से मिला जाय। मि० एण्ड्रूज का, जो उसी दिन शिमला से आये थे, कहना था कि वाइसरॉय गांधीजी के मुँह से गांधीजी का दृष्टि-बिन्दु जानने को आतुर हैं। शिमला जाकर पण्डितजी के मुख से भी यही हाल सुना। इसलिए गांधीजी ने वाइसरॉय को लिखित सूचना दी कि यदि आप मेरे विचार जानने की इच्छा रखते हैं, तो उन्हें मैं सुनाने को तैयार हूँ। तदनुसार वाइसरॉय ने गांधीजी को मिलने का समय भेज दिया। गांधीजी इतनी सफाइयाँ जो दे रहे हैं, वह नेताओं के लिए नहीं, किन्तु लोगों के लिए हैं। लोगों की विचार-शक्ति इतनी जाग्रत हो गयी है कि वे नेताओं के प्रत्येक कृत्य पर अच्छी तरह निगाह रखते हैं और यही स्थिति ठीक है। इन पहरेदारों को सन्तोष देने के लिए ये हाल गांधीजी बार-बार सुना रहे हैं। वह यह समझाने के लिए कि असहयोग का सिद्धान्त यह नहीं कहता कि विरोधी पक्ष को यह न समझाया जाय कि हमारा क्या पक्ष है? सरकार का छोटे-से-छोटा अफसर भी हमारा दृष्टिकोण जानना चाहे, तो उसे भी वह साफ समझा देना हमारा धर्म है।

शिमला में गांधीजी वाइसरॉय से एक-दो बार नहीं, छह बार मिले ! इतनी सारी मुलाकातों में वे क्या कर आये, यह प्रश्न अनुचित नहीं और उसका उत्तर गांधीजी दे चुके हैं। उन्होंने अथ से इति तक वाइसरॉय को असहयोगियों का पक्ष सुनाया, समझाया। वाइसरॉय ने भी उसे छह दिन तक घण्टों शान्त चित्त से, सम्पूर्ण सभ्यता के साथ सुना। इससे इतनी तो कल्पना की जा सकती है कि हमारी स्थिति समझने की उनकी तीव्र इच्छा है। अपना पक्ष समझाने के बाद गांधीजी ने उनका हाल भी सुना। इसलिए कोई परिणाम निकला हो, तो यही निकला कहा जा सकता है कि वाइसरॉय गांधीजी को अधिक समझने लगे और गांधीजी वाइसरॉय को। गांधीजी कहते हैं कि इसके सिवा कुछ फल नहीं निकला। 'मैं कुछ लेने नहीं गया था कि लेकर आता, मैं तो देने गया था सो दे आया। इतनी मुलाकातों के बाद मेरे जो विचार थे, वे कायम ही हैं और हमें यदि जीतना है तो अपनी शान्त लड़ाई दसगुने जोश से जारी रखने से ही जीतेंगे। स्वराज्य देना वाइसरॉय के हाथ में नहीं; उसे लेना हमारे हाथ में है।' ये गांधीजी के शिमला के बाद के उद्गार हैं। यह तो वहाँ जो कुछ हुआ,

उसकी बात हुई। 'आप वाइसरॉय से क्या बातें कर आये ?' यह प्रश्न भी नहीं पूछा जाता हो सो बात नहीं है। परन्तु अनेक लोग स्वीकार करेंगे कि यह प्रश्न सुरुचिपूर्ण नहीं है।

जाते वक्त हम कालका पहुँचे, तभी से मैं कुछ दूसरे ही वातावरण की आशा रखता था। गरमी कुछ कम होने लगी, परन्तु लोगों के मन का वायुमण्डल कुछ भी बदला हुआ प्रतीत नहीं हुआ। कालका का प्लैटफार्म भी मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ था। पंजाब के सूत के जो गोले यहाँ से फेंके जाने लगे, वे शिमला की पाँच सौवीं मंजिल पर भी कम नहीं हुए। कालका स्टेशन पर पुलिस के आदमी भी अच्छा स्वागत कर रहे थे। गांधीजी ने पूछा : 'आप यहाँ कैसे आ सके ?' जवाब मिला : 'हम तो अपने अफसर की मंजूरी लेकर आये हैं !' और कालका से शिमला तक के दसियों स्टेशनों पर मनुष्यों के झुण्ड आते ही रहते थे। मुझे सहज ही शंका हो रही थी कि 'हजारों फुट ऊँचे शिमला के पहाड़ पर लोगों को क्या पता होगा ?' परन्तु पहाड़ के ऊपर के और नीचे तलहटी के मनुष्यों के उत्साह में मुझे कोई फर्क नहीं लगा। छोटे-से-छोटे स्टेशनों पर मजदूर तक आकर तिलक स्वराज्य फण्ड में रुपया दे जाते थे। एक गाँव में तो लोगों ने सवा सौ रुपये की थैली तैयार रखी थी। वहाँ की आबादी शायद ही पाँच सौ की होगी !

शिमला स्टेशन पर मुझे हमारा नया राष्ट्रीय झण्डा देखकर आश्चर्य हुआ। लम्बी चौरस लाल, नीली और सफेद भूमि पर चरखे की आकृति रूई चिपकाकर बनायी गयी थी !

शिमला में हम आठ दिन रहे। उस दौरान में दर्शकों के लिए आनेवालों की संख्या और किसी जगह से कम नहीं होगी। दिनभर तलहटी के गाँवों के लोग आते ही रहते और सुबह-शाम सरकारी दफ्तरों के कर्मचारी आते। सरकारी कर्मचारियों की एक भी टोली स्वराज्य-कोष के लिए अपना थोड़ा-सा चन्दा लिये बिना नहीं आती थी। गांधीजी वाइसरॉय के यहाँ गये हुए होते, तब 'वाइसरीगल लॉज' के बाहर सैकड़ों मुलाजिम ––सेक्रेटरियट के––दर्शनों के लिए समूहों में खड़े होते थे। इस प्रकार सरकारी कर्मचारी सरकारी घोषणाओं को ताक में रखकर यथाशक्ति योगदान दे रहे हैं। शिमला के कर्मचारियों से गांधीजी ने कहा कि आप लोग जब ऊन काम में न लेते हैं, तब खादी काम में लीजिए। परन्तु उन बेचारों

ने बताया कि अगर खादी से उनकी नौकरी छीन ली गयी तो? उन्हींको ध्यान में रखकर गांधीजी ने १५ ता० की शिमला की आम सभा में कहा था कि 'जहाँ आपको अपनी माता के काते हुए सूत का कपड़ा पहनने की इजाजत न हो, तो मैं उस राज्य में रहना नहीं चाहता। उसे मिटा देना चाहिए या सुधारना चाहिए।'

शिमला में जब कि आम लोगों का उत्साह काफी मालूम हुआ, तब शिक्षित वर्ग अर्थात् अधिकांश में वकील वर्ग (क्योंकि वकीलों के सिवा ज्यादातर सरकारी कर्मचारी ही होंगे) तो असहयोग आन्दोलन से अछूता ही मालूम हुआ। शिमला में किसी वकील ने वकालत नहीं छोड़ी। फिर भी लाला मोहनलाल नामक एक पंजाबी सज्जन ने, जो अब भी नाममात्र की वकालत करते हैं और व्यापार करते हैं, असहयोग कार्य में सहानुभूति दिखाने के लिए गांधीजी को एक दिन शाम को न्योता दिया और मित्र-मण्डली से दस हजार रुपये इकट्ठे करके प्रदान किये।

शिमला की सार्वजनिक सभा

वाइसरॉय के साथ लंबी मुलाकातें होने पर भी सभाओं ने गांधीजी को शिमला में भी छोड़ा नहीं था; इसी प्रकार शान्त कुटी पर बहुत-से यूरोपियन अफसर और अंग्रेजी अखबारों के प्रतिनिधि वगैरह मुलाकात के लिए आते ही रहते थे। स्त्रियों की एक सभा रखी गयी थी, जिसमें स्त्रियों की अच्छी उपस्थिति थी, परन्तु जो आम सभा हुई, वह तो एक जबरदस्त जलसा ही था।

जिस स्थान में यह सभा हुई, वहाँ का दृश्य भी विलक्षण मोह पैदा करनेवाला था। बड़े रास्ते से उतरकर लगभग एक हजार फुट नीचे थोड़ी-सी सपाट जमीन है, जहाँ थोड़ी-सी कुर्सियों और तख्त का इन्तजाम था और सामने पाँच सौ फुट की ऊँचाई तक शहद के छत्ते में मक्खियों की तरह एक पर एक छतों पर चढ़कर हजारों आदमी चिपके हुए थे। सभा में लालाजी और अम्बाला के वकील लाला दुनीचन्द के सिवा पण्डित मालवीयजी भी पधारे थे। ताड़ की ऊँचाई को भी भुला देनेवाले सामने के देवदार उन मनुष्यों से खचाखच भरी हुई छतों को सुशोभित कर रहे थे। अध्यक्ष-पद पर लालाजी विराजमान थे। पहले गांधीजी को नगर-निवासियों की तरफ से एक मानपत्र दिया गया।

परीक्षा लिये बिना ईश्वर कुछ नहीं देता

गांधीजी का आज का भाषण महत्त्वपूर्ण था। आरम्भ में उन्होंने इस बारे में सफाई दी कि वाइसरॉय से भेट क्यों हुई; और कहा : "हमारी बातों का क्या कोई परिणाम होगा ? मैं कहता हूँ कि वह हो या न हो, हमें तो जो कुछ करना है, वह खुदा की मदद माँगकर कर लेना है। मैंने वाइसरॉय को हमारा मामला सुनाया। उन्होंने बहुत धीरज और प्रेम से लम्बे समय तक उसे सुना। मैंने भी उनका कहना सुन लिया है। मैंने उनसे अंग्रेजी हुकूमत की कठिनाइयाँ सुनीं। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि हमने ईश्वर को साक्षी रखकर जो इकरार कांग्रेस में, सिक्ख लीग में और खिलाफत परिषदों में किया है, उसका पालन करेंगे, तो इस वर्ष में जरूर सोचा हुआ ले लेंगे। वाइसरॉय के हाथ में कुछ नहीं है। इंग्लैण्ड से क्या तार आता है, इसे भूल जाइए। हमारी लड़ाई शराफत की है, इन्साफ की है। और हम इन्साफ के लिये मरने को तैयार हैं, यह हमें संसार को बता देना है। परीक्षा लिये बिना ईश्वर कुछ भी नहीं देता और हमें कुछ भी प्राप्त करने से पहले उस परीक्षा में से गुजरना ही पड़ेगा। बदमाश से बदमाश भी अपना मनचाहा हासिल करने के लिए तैयार होते हैं, तब आप तो छह-छह फुट ऊँचे पंजाबी हैं। यदि आप फिर पेट के बल रेंगना चाहते हों, यदि आपमें से एक भी नाक रगड़ना न चाहता हो, तो जो पाठ सिक्ख भाइयों ने सिखाया, उसे ग्रहण कीजिए। उनकी तरह सिर हथेली पर रखकर धर्मकृत्य के लिए तैयार हो जाइए। महन्त नारण-दास की तरह हत्यारे न बनिए। हत्या करके स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकते; पंजाब और खिलाफत के सवाल का निपटारा नहीं करा सकते। किसीका रक्त लेकर नहीं, रक्त देकर ही आप यह चीज ले सकेंगे; लछमनसिंह की ताकत हासिल करके ही ले सकेंगे।"

'यह हुकूमत मिट जाय तो हिन्दुओं का क्या होगा ?' बाद में गांधीजी ने इस प्रश्न का उत्तर दिया : "मैं आपसे कहता हूँ कि आपके तीर्थ पठानों के हाथों भ्रष्ट होंगे, आपकी औरतों की इज्जत लूटी जायगी, इस डर से जब तक आप डरते रहेंगे, तब तक आप अपने हरिद्वार को दफना दीजिए, आप अपनी स्त्रियों को जौहर करा दीजिए। आप पठानों को मार न सकें तो भी उनसे भाग जाने के बजाय उनके सामने खड़े रहकर मर जाने की शक्ति तो आपमें होनी ही चाहिए। अफगानों से न डरिए, मुसलमानों से न डरिए; केवल ईश्वर का डर रखिए। पैगम्बर साहब के

जमाने में भी सामने से आनेवाले हमलों को देखकर कुछ डरपोक लोगों ने कहा था कि 'हम अकेले हैं, कैसे लड़ेंगे ?' तब पैगम्बर साहब ने जवाब दिया था, 'नहीं, तुम अकेले नहीं; तुम्हारे साथ खुदा है !' मैं भी आपसे कहता हूँ कि आप अपने को पामर मत समझिए। आप बहादुर होंगे तो आपके साथ अफगान भी पाक हो जायेंगे। मैं अफगानों को जानता हूँ। दक्षिण अफ्रीका में उनमें से बहुत-से मेरे मुवक्किल थे। उनकी शराफत की मुझे जानकारी है। वे बुरे हों तो भी मेरे खयाल से खुदा से डरनेवाले हैं। यदि आप मुसलमानों को भाई समझते हों, अगर उन पर आपको एतबार हो, तो आप पठानों की दहशत जरा भी न रखिए। यदि पठान आयेंगे तो उनके साथ भी असहयोग करनेवाला मैं मौजूद ही हूँ। भारत का एक टुकड़ा भी उनके हाथों में नहीं जाने दूँगा। मुझे खुदा उस समय ताकत देगा कि मैं उन्हे टुकड़ा लेने देने से पहले अपनी जान दे दूँ। हम एक-दूसरे के अविश्वास से गुलाम बने हैं। यदि मुसलमान इसलाम को ऐब लगायेंगे, यदि करोड़ों मुसलमान विश्वासघात करेंगे, तो इसलाम मिट जायगा। हमारा और उनका सौदेबाजी का नहीं, शराफत का व्यवहार है।

डायर के लिए सार्वजनिक प्रार्थना

"सब धर्मवालों से मैं कहता हूँ कि हम एक-दिल होना चाहते हैं। क्या ईसाइयों के साथ हम एक-दिल नहीं हैं ? एण्ड्रूज और स्टोक्स जैसे हमें सहायता पहुँचाते हैं, तो क्या हम उसे स्वीकार नहीं करते ? हम किसीको दुश्मन नहीं बनाना चाहते। हम अपना खून देना चाहते हैं। अंग्रेज नौकर बनकर रहें, भाई बनकर रहना चाहें, सरदारी छोड़कर रहना चाहें तो भले ही रहें, नहीं तो चले जायँ।

"चाहे जो हो, शान्ति के बिना कुछ नहीं होगा। यदि आप शान्ति छोड़ देंगे, तो बाजी हार जायेंगे। अपने दिल में मैंने जनरल डायर या माइकल ओडवायर के लिए सजा की इच्छा नहीं की। और आज ईदगाह की इस पवित्र जगह पर मैं खुदा से प्रार्थना करता हूँ कि खुदा उनके दिलों को साफ करे।"

अन्त में सिक्खों को गुरु नानक और गुरु तेगबहादुर की तरह स्वयं मर जाने का मंत्र देकर स्वदेशी पर विवेचन किया था।

एक मजेदार घटना

इसके बाद लालाजी उपसंहार करने खड़े हुए । उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता और निडरता-सम्बन्धी गांधीजी के वचनों पर अधिक जोर दिया । 'देश में अशान्ति फैल रही है', इस आक्षेप का उन्होंने एक ही वाक्य में खण्डन कर दिया : "दुनिया में इतनी आबादीवाला क्या एक भी देश आप बता सकते हैं, जो ऐसी लड़ाई में भारत जैसी शान्ति रख सका हो ?" स्वराज्य का मंत्र लोग कितना पी गये हैं, यह श्रोताओं को बताते हुए उन्होंने कहा : "भगवान् न करे, और महात्मा गांधी स्वराज्य से कुछ कम ले लें, तो वह भी हम स्वीकार न करें । महात्माजी हमें धोखा दें तो हमें महात्माजी भी नहीं चाहिए ।" इन वचनों को श्रोताजन भी मजाक में ही ले रहे थे और तुरन्त 'महात्मा गांधी की जय' पुकारकर उनका स्वागत करते थे ! बाद में मालवीयजी ने मजाक में लालाजी से कहा : 'इस बेअदबी के लिए गांधीजी से माफी माँगिए ।' लालाजी ने इस प्रकार क्षमा चाही : 'लोग तो स्वराज्य—शुद्ध स्वराज्य—के लिए गांधीजी जहाँ ले जायँ, वहीं उनके पीछे चलने को तैयार हैं ।' इससे लोगों में बड़े हर्षनाद होते रहे और बार-बार होनेवाले 'महात्मा गांधी की जय' से चारों ओर के पहाड़ कुछ मिनट तक गूँजते रहे !

३

गांधीजी की मनोदशा

गांधीजी अब जो दौरा कर रहे हैं, वह केवल बेजवाड़ा का कार्यक्रम ३० जून से पहले पूरा करने के लिए ही कर रहे हैं । आजकल उनके भाषण ऐसे होते हैं, जिससे स्थान-स्थान पर कार्यक्रम को उत्तेजन मिले । परन्तु इसके सिवा प्रत्येक स्थान पर जाने की उनकी पहली शर्त तो यह होती है कि वहाँ अच्छा चन्दा इकट्ठा किया जा चुका हो या अच्छे चन्दे की आशा दिलायी जाय । मौलाना शौकतअली तो अपनी मजाक की भाषा में इस चन्दे को 'फीस' कहते हैं, और हर जगह जाने का निमंत्रण देनेवालों से कह देते हैं : 'इतने हजार रुपये फीस हमारी है, इतने हजार फीस महात्माजी की है; जिसे चाहें उसे ले जाइए !'

इस फीस के लिए ही गांधीजी को अंबाला ले जाया गया था। वहाँ चार हजार रुपये वसूल किये जा सके। इसके लिए चार घंटों में चार सभाएँ करनी पड़ीं; दो स्त्रियों की और दो पुरुषों की। पंजाब में सूत के ढेरों का तो पार नहीं, परन्तु अभी तक खादी का इस्तेमाल कम ही है। चार बहनें सच्चे दिल से गांधीजी के सामने अपनी कठिनाइयाँ बता रही थीं और खादी का उपयोग स्त्रियों में जारी कराने की प्रतिज्ञा लेकर गयी थीं।

अंबाला से चलकर खंडवा पहुँचे। कह सकते हैं कि वहाँ चन्दा ठीक हो गया था। वहाँ से भुसावल के लिए प्रस्थान किया। सफर दिन का था। स्टेशन पर तिलक स्वराज फंड का चन्दा तो जमा होता ही था। एक स्टेशन पर लोगों का भारी हल्ला हुआ। उन्हें सम्बोधन करके कहे गये गांधीजी के वचनों का सार यहाँ दे देता हूँ। (उन्हें समय हो तो हर जगह एक-दो मिनट तो अवश्य बोलते हैं, परन्तु यहाँ लगभग पाँच मिनट तक बोलने का समय मिल गया था।)

गांधीजी अधीर बने

"स्टेशनों पर आनेवालों को रुपया लेकर ही आना चाहिए। हमें इस वर्ष तीन उपाधियों से मुक्त होना है। इसके लिए बेजवाड़ा में उपाय तय किये गये। ३० जून तक एक करोड़ रुपया नहीं होगा तो नाक कट जायगी, और यदि ऐसा होने का अवसर आया तो मैं जरूर कहूँगा कि इस वर्ष स्वराज्य नहीं मिलेगा। स्वदेशी आन्दोलन चल रहा है, तो भी देखता हूँ कि कुछ लोग तो केवल स्वदेशी टोपी पहनकर ही अपने को स्वदेशी कहलाना चाहते हैं। मैं आपको अब स्पष्ट कहता हूँ कि जो विदेशी कपड़े छोड़ना न चाहते हों, उनसे मैं मिलना नहीं चाहता। जब तक खादी शरीफों की पोशाक नहीं बना दी जाती, तब तक स्वराज्य नहीं मिलेगा। यदि यह बात सही हो कि यह लड़ाई आत्मशुद्धि की है तो खादी पहनने के अलावा आप शराब छोड़िए, व्यभिचार छोड़िए, ईमानदार बनिए, मालेगाँव के लोगों की तरह पागल न बन जाइए, भंगी-चमारों को अस्पृश्य न मानिए; उनकी और ब्राह्मणों की समान सेवा कीजिए। फूल न लाइए; स्वराज्य के लिए फूलों के बजाय रुपया लाइए।"

इन थोड़े-से ठोस वाक्यों में गांधीजी के बहुत-से भाषणों का निचोड़

आ जाता है। इनसे उनकी मौजूदा काम से हो रही अधीरता स्पष्ट दिखाई देती है। इतने वर्षों में गांधीजी की दूसरी हलचलों का जिसने अध्ययन किया है, उसे इस मनोदशा से आश्चर्य नहीं होगा। वे एक लक्ष्य बनाकर उसके लिए तन्मय हो जाते हैं और दूसरे सभी को तन्मय बना देना चाहते हैं। लोग वैसे तन्मय नहीं बनते हैं, तो ये सहज अधीर हो जाते हैं। मुझे याद है कि रंगरूट-भरती करते समय कोई मिलना चाहता या उनसे कहा जाता कि अमुक मनुष्य अच्छा है, तो वे कहते : 'रंगरूट बन सकता है?' उसके बाद सत्याग्रह के समय के एक भाषण में उन्होंने कहा था, 'मैं तो स्वदेशी के लिए पागल हो गया हूँ, जैसा नल के लिए दमयन्ती हो गयी थी। मेरे लिए दूसरा विचार ही नहीं।' यही दशा उनकी इस वक्त है। वे स्वराज्य के पीछे पागल हो गये हैं और देश को भी उसके पीछे पागल बन जाने को कह रहे हैं।

यह मनोदशा इससे बाद के अधिकांश अवसरों पर दिखाई देती थी। भुसावल २० तारीख को पहुँचे। भुसावल में भाई दास्ताने ने भरसक मेहनत करके चन्दे से कोई डेढ़ हजार रुपया जमा किया था। वहाँ के भाषण के दो-चार उद्गार यहाँ दे दूँ :

"आप लोकमान्य के पुजारी हैं। यहाँ आपने लोकमान्य को साक्षी बनाया है। (मराठी प्रदेश में सर्वत्र लोकमान्य की मूर्ति या तस्वीर सभा-स्थल पर होती ही है।) जो स्वराज्य की आत्मा थे, स्वराज्य जिनका मंत्र था, उनकी आत्मा आपसे पूछती है कि आप स्वराज्य के लिए कितना करने को तैयार हैं? क्या आप उनके नाम को अमर रखने के लिए एक करोड़ रुपया इकट्ठा नहीं कर सकते? जब तक विदेशी कपड़े को निकाल नहीं सकते, तब तक स्वराज्य के दर्शन नहीं होंगे। जो खादी नहीं पहनता, जिसका बारीक मलमल के वस्त्रों के बिना काम नहीं चलता, उसके द्वार पर मैं नहीं जाऊँगा। अब तक सरकार से कहा है कि तुम यह करो। अब लोगों को कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा यह कर्तव्य है। मैं तो जनता का गुलाम हूँ। परन्तु लोग मुझे खास शर्त पर ही गुलाम बना सकते हैं। जो शर्तें मैंने लोगों के सामने रखी हैं, उनका पालन करके ही वे मेरी सेवा की आशा रख सकते हैं। **पैर छूने में तो पतन ही है।"**

भुसावल से संगमनेर आये। ऐसी बातें की जाती थीं कि संगमनेर तो हजारों आदमी आयेंगे, वह एक मध्यस्थान है। परन्तु सब बातें झूठी

निकलीं। वहाँ के जैसी अव्यवस्था या कुव्यवस्था कहीं भी नहीं देखी। बहुत ही वक्त गँवाना पड़ा, ऐसा लम्बा जुलूस निकाला गया था। उसमें कान फोड़ डालनेवाले नारे लगाये जाते थे, निवास-स्थान का कोई ठिकाना नहीं था; एक मन्दिर में ले गये; वहाँ सैकड़ों आदमी चले आये और जरा भी शान्ति नहीं रही। ये हालात अधीरता उत्पन्न करनेवाले थे। वहाँ के भाषण में गांधीजी का अन्तर्वर्ती तीव्र दुःख ही दिखाई देता है।

"आज हम संसार की सबसे महान् हुकूमत से मुकाबला कर रहे हैं। तीन महाप्रश्नों का निपटारा करना है। परन्तु हमारे लक्षण कुछ भी करने के मालूम नहीं होते। मुझे आज के दृश्य से विचार आया कि सारे भारत में यदि इसी प्रकार काम हो रहा हो, तो भारत स्वराज्य के लिए अयोग्य है। मैं भारत में स्थान-स्थान पर मिलनेवाले प्रेम के सागर में नहा रहा हूँ। परन्तु जब तक प्रेमाग्नि से शक्ति उत्पन्न न हो, तब तक वह प्रेम निकम्मा है। मुझे अपनी पूजा पसन्द नहीं है, **मुझे चरण-स्पर्श अच्छा नहीं लगता। मुझे वह अत्यन्त अप्रिय है। इसमें भारत का पतन ही है। भारत चरण-स्पर्श से स्वराज्य नहीं ले सकेगा। मैं भारत को सीधा खड़ा हुआ देखना चाहता हूँ।** मैं यह देखना चाहता हूँ कि वह संसार के सब देशों के सामने सीधा खड़ा रहे। मुझे न तो गांधीराज चाहिए, और न व्यक्तिराज चाहिए। मुझे केवल एक स्वराज्य ही चाहिए। इसलिए मुझे चरण-स्पर्श नहीं चाहिए।"

उपर्युक्त पैरेग्राफ में मोटे टाइप में दिये गये उद्‌गार मैं सर नारायणराव चन्दावरकर को समर्पित करता हूँ। उन्होंने 'टाइम्स' पत्र में आक्षेप किया है कि 'गांधीजी अपने को अवतार मानने देते हैं, अपने चरण-स्पर्श करने देते हैं, उसके विरुद्ध उफ तक नहीं करते।' मालूम होता है कि वे महाशय 'यंग इंडिया' पत्र तक नहीं पढ़ते। तब ये उद्‌गार उन तक कैसे पहुँचेंगे? (परन्तु न पहुँचें तो इसमें दोष किसका?)

वर्णसंकर कारोबार

मालूम होता है कि गांधीजी को पहनाया गया हार किसी रंगीले माली के यहाँ से लाया गया था, इसलिए उस पर खासी जापानी रेशम की गुलाबी पट्टियाँ थीं! इससे स्वाभाविक रूप में गांधीजी का जी दुखी हुआ।

"हमने यूरोपीय सुधार की नकल उसकी अतिशयता में ही की। इसके बजाय हम उसकी सुन्दरता की नकल करते, तो अच्छा था। इस फीते का उपयोग तो केवल औरतों के लिए ही होता है। आपको जब यह भी खयाल नहीं कि कौन-सी चीज कहाँ काम में ली जाय, तब उसे काम में ही क्यों लेते हैं? आपने यह मान लिया कि पुष्प के साथ फीते की शोभा बढ़ती होगी। यह बताता है कि भारत में हमारा वर्णसंकर कारोबार चल रहा है। इस कारोबार से बचने का उपाय कांग्रेस बता रही है। आप जो कुछ कर रहे हैं, उसमें न विवेक है और न विचार। क्या आप तिलक महाराज की पूजा करते हैं? तिलक महाराज ने तो एक ही मंत्र दिया है। यही मंत्र जपते हुए उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। तिलक महाराज का उत्तराधिकार तो भारत के लिए था, परन्तु भारत के अन्य भागों की अपेक्षा आपका कर्तव्य अधिक है। पहली अगस्त के दिन आप उनकी आत्मा को क्या उत्तर देंगे? पूर्ण स्वदेशी तो बन जाइए। मन्दिरों में विदेशी चीजों का उपयोग मत कीजिए। पुजारियों से कहता हूँ कि आप मुझे विदेशी कपड़ों से सजाये हुए मन्दिरों में ले जाते हैं, इससे मुझे दुःख होता है।" संगमनेर में १,६०० रुपये हुए।

यावल

यावल ने तो बड़ी निराशा उत्पन्न की। वहाँ की अव्यवस्था की भी हद नहीं थी। रात को ग्यारह बजे पहुँचे; साफ इनकार कर देने पर भी जुलूस निकले; दो बजे सभा हुई! और सभा होने पर क्या हुआ, यह तो गांधीजी पिछले अंक में खुद ही कह चुके हैं। वहाँ के धर्म-संकट की जो बात कही, वह भुलायी नहीं जाती।

बार्शी

अहमदनगर से निकलकर शोलापुर जिले में आये। बार्शी में श्री यशवन्तप्रसाद देसाई के यहाँ निवास था। वे एक बुनने-कातने की मिल चलाते हैं, इसलिए खादी के प्रचार में भी बड़ी दिलचस्पी लेते हैं और यह निश्चित रूप से मानते हैं कि आर्थिक दृष्टि से खादी ही उद्धारक है। उन्होंने मिल के मजदूरों के लिए चरखे भी रखे हैं। उनकी मिल के मैदान में अनेक चरखे चलते हैं और उनसे खादी बनती है। इन मजदूरों और मिल के नौकरों ने मिलकर गांधीजी के लिए एक थैली तैयार

रखी थी। यह थैली १,७००) रु० की होगी। शहर का बाकी का चन्दा मुश्किल से इतना ही होगा।

शाम को बार्शी में सभा हुई। वहाँ के श्री सुलाखे वहाँ के कार्य का वर्णन करने खड़े हुए और शान्त चित्त से कुछ अभिमानपूर्वक कहने लगे कि हमारा बार्शी ताल्लुका कृतकृत्यता का अनुभव करता है, क्योंकि उसके अपने हिस्से के ४,२००) रुपये तो अब लगभग पूरे होने आये हैं; लगभग पचीस चरखे चलते हैं! और उनके सूत से खादी बनती है, इतना ही नहीं, वह बुनी भी जाती है और पूना बिकने जाती है! इस कृतकृत्यता की गांधीजी ने अपने भाषण में खूब खबर ली। सारा भाषण बहुत महत्त्वपूर्ण है और प्रान्त के प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए सोचने योग्य है।

"हमारे भाई ने आनन्द से कहा कि बार्शी जिला खुशी से अपना काम सम्पन्न कर लेगा। मैं भाई सुलाखे के हिसाब को धन्यवाद नहीं दे सकता। प्रत्येक जिला, ताल्लुका, फिरका ऐसा उल्टा हिसाब करने लगे, तब तो भारत के प्रति व्यक्ति दो पैसे के अनुपात से भी हिसाब निपट जाय! परन्तु इन तीस करोड़ में से तीन करोड़ तो ऐसे हैं, जिन्हें एक दिन का भी पूरा खाना नहीं मिलता। ऐसे तीन करोड़ से दो-दो पैसे कौन लेगा? भारत के अपंगों से कौन दो-दो पैसे लेगा? बम्बईवाले कह दें कि हमारा हिस्सा पूरा हो गया और बैठ जायँ, तो हम अपना काम कभी पूर्ण नहीं कर सकेंगे। उस हिसाब को छोड़ने में ही कल्याण है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को समझ लेना चाहिए कि भारत में एक करोड़ रुपया इकट्ठा करने के लिए प्रत्येक को स्वयं कितना निकालकर देना चाहिए। मैं तो यह पूछता हूँ कि आपके जिले के लोगों की शक्ति कितनी है? तिलक महाराज के जीवन को पूजते हैं, तो उससे कुछ तो बोध लेना चाहिए। क्या उन्होंने भी आपकी तरह यह विचार किया था कि जितना प्रत्येक भारतीय दे, उतना ही मैं भी देश को देकर चुप हो जाऊँ? उन्होंने तो अपना सर्वस्व दे दिया था। मैं आपसे पूछता हूँ कि इस तरह सर्वस्व देनेवाले कितने हैं? खैर, सर्वस्व तो जाने दीजिए। आप जितना दे **सकते** हैं, उतना भी दे चुके हैं? परमेश्वर किसीसे उसकी शक्ति या मर्यादा से अधिक नहीं माँगता। जो शक्ति के अनुसार न दे, वह देश का, गाँव का द्रोही है। आप अपने द्रोही न बनें। मैं चाहता हूँ कि आप अपने को धोखा न दें। हमें एक बड़ी हुकूमत के विरुद्ध लड़ना है। हमें उसने धोखा दिया,

हमारे साथ विश्वासघात किया; इसने हमें पेट के बल चलाया। इस सल्तनत को हम धोखा देकर या शैतानियत करके नहीं मिटा सकते। विश्वासघात का इलाज शालीनता है; शैतानियत का उपाय खुदा की भक्ति है। आप अपने हृदय को न फुसलाइये। आप तिलक महाराज की स्मृति कायम रखना चाहते हों, तो उनकी सालगिरह दुबारा आने से पहले आपको जन्मसिद्ध अधिकार का जो शास्त्र आज बताया गया है, उसके अनुसार हिसाब लगाकर पूरा कर दीजिए।

पचीस चरखे और खादी बम्बई जाय !

"जब आपने यह कहा कि पचीस चरखे हैं और खादी बम्बई, पूना चली जाती है, तो मेरा हृदय रोने लगा। यहाँ से खादी के बाहर जाने का अर्थ तो यह है कि आपको बारीक कपड़ा चाहिए, इसलिए आप खादी काम में नहीं ले सकते और बाहर भेज देते हैं। आपका स्वदेशी-व्रत तो यह है कि आप अपना देख लें, बम्बई का विचार ही न करें। मेरा स्वदेशाभिमान कहता है कि मैं पहले अपने घर को, फिर शहर को और बाद में अपने प्रान्त को स्वतन्त्र बनाऊँ। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि पचीस चरखों से आप बड़ी हुकूमत का मुकाबला नहीं कर सकेंगे। हम कांग्रेस को मानते हों, तो स्वदेशी-तत्त्व अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। वकीलों ने वकालत नहीं छोड़ी, इसका मुझे दर्द है; परन्तु वकीलों के निर्भय या धार्मिक बन जाने मात्र से ही सारा देश निर्भय और धार्मिक नहीं बन जाता; फिर भी अच्छे-अच्छे वकीलों ने तो त्याग किया और शालीनता दिखायी है। दूसरे वकील भी, जो अश्रद्धा से भरे हैं, कुटुम्ब-पालन का जिन्हें भय है, वे भी भविष्य में निकल आयेंगे। परन्तु स्वदेशी के लिए तो यही बात है कि जब तक देश उसे ग्रहण नहीं करेगा, तब तक विदेशी कपड़ा आना बन्द नहीं होगा। मैं अपने दिल को धोखा नहीं दे सकता। अभी तक तीस करोड़ तक मेरी आवाज नहीं पहुँची है। मिल का कपड़ा तो गरीबों के लिए है, जिन तक मेरी आवाज नहीं पहुँच सकती। उन गरीबों के लिए ही रहेगा, तभी मिल-मालिक कुलीन रहेंगे। जिन तक मेरी आवाज नहीं पहुँचती, उनके लिए सिवा इसके और उपाय नहीं कि वे यहाँ कपड़ा बनाकर उसका इस्तेमाल करें। इसमें द्रव्य, यज्ञ या होशियारी की जरूरत नहीं। इसके लिए हार्दिक भावना की जरूरत है।

पचीस चरखों से क्या हो ?

मौ० मुहम्मदअली ने कहा कि "चरखे को बेचकर हमने गुलामी की नींव डाली। यदि आप गुलामी मिटाना चाहते हैं, तो चरखा लीजिए। चरखे के बिना भारत के अत्याचार और दारिद्रय को मिटाना असंभव है। इसलिए आपसे कहता हूँ कि आप मिथ्याभिमान न मानिए कि पचीस चरखों से हमारा उद्धार हो गया। मैं तो यहाँ किसीको खादी पहने हुए नहीं देख रहा हूँ। खादी की टोपी ही पहनकर पचास करोड़ का व्यापार बन्द नहीं किया जा सकता। आपको खादी का भार उठाना ही पड़ेगा!

हमारे बुजुर्ग महीन पहनने में शरमाते थे

"आपको महीन कपड़ा चाहिए, तो आप अपनी स्त्री, लड़के और लड़की को महीन कातना सिखाइए। तीस वर्ष पहले तो हमारे बुजुर्ग महीन कपड़ा पहनने में शरमाते थे। मुझे अपनी माता का पवित्र स्मरण अभी तक है। वह अपनी बहू के लिए महीन कपड़े रखती थी; खुद पहनने में शरमाती थी। आप भारत की प्राचीन सादगी ग्रहण न करेंगे, तो भारत की महीन मलमल का उद्धार नहीं कर सकते। आप ४,२०० सदस्य भरती करके सन्तोष मान लेंगे, तो बिहार के भूखों को कौन भरती करेगा? जब आप १,२०,००० की आबादी में से ५० हजार जमा करेंगे, तब काम होने की आशा रहेगी। उल्टा हिसाब छोड़कर सीधा हिसाब कीजिए।"

इस महत्त्वपूर्ण भाषण का मैंने इतना अंश दे दिया। अन्य विषयों पर वे जो बोले, वह अंश नहीं लिया। छोटे-से-छोटे और लम्बे भाषणों से गांधीजी का हार्द समझ में आ गया होगा। गांधीजी की जो अधीरता यहाँ दिखाई देती है, वह उनके भड़ौंच प्रान्तीय परिषद् के महत्त्वपूर्ण भाषण में अधिक खटकनेवाली दिखाई देगी। क्या देश इस अधीरता का उत्तर नहीं देगा?

४

एक महत्त्वपूर्ण घटना

भाई एच० पी० मोदी के अनुरोध पर गांधीजी पिछले सप्ताह पारसी सेन्ट्रल असोसियेशन से मिले। उसके सदस्य तो सौ से ज्यादा हैं, परन्तु इस अवसर पर दस-पन्द्रह से अधिक उपस्थित नहीं थे। अन्य लोग असो-

सियेशन से बाहर के पारसी सज्जन थे। फिर भी इतने छोटे-से समारोह में हुई बातचीत का मैंने 'एक महत्त्वपूर्ण घटना' के नाम से परिचय देना सोचा है। ऐसा क्यों, इसे आगे समझाने का प्रयत्न करूँगा।

सर्वप्रथम इस प्रसंग की कुछ कल्पना दे दूँ। शुरू में गांधीजी ने पारसी जाति की शराफत, उदारता, चारित्र्य-बल और सत्यप्रियता की बड़ी तारीफ की। बाद में उस जाति में उत्पन्न हुए देशभक्तों के साथ के अपने सम्बन्ध के पुण्य-स्मरण कह सुनाये। सर फीरोजशाह के साथ के प्रथम प्रसंग का तो गांधीजी की भाषा में ही उल्लेख करता हूँ: "मैं नया-नया बैरिस्टर बनकर आया था। एक बार राजकोट में पोलिटिकल एजेण्ट ने मेरा अपमान किया। सर फीरोजशाह वहाँ एक मुकदमे में आये थे। मैंने उन्हें एक मित्र द्वारा सूचित किया कि मैं पोलिटिकल एजेण्ट को नोटिस देना चाहता हूँ। उन्होंने मुझसे कहा, तुम बेवकूफ हो, ऐसी कड़वी घूँटें तो कितनी ही पीनी पड़ेंगी। तब से आज तक मैंने उनका उपदेश सँजो रखा है कि अपने निजी स्वार्थ के लिए लड़ाई करने में बहुत सावधानी रखनी चाहिए। और उस सीख को मानकर मैं सैकड़ों निजी मान-अपमान सहन कर चुका हूँ।" इतना कहकर जैसे संस्कृत नान्दी में नाटककार नाटक का रहस्य अव्यक्त रूप में बता देता है, वैसे ही गांधीजी ने कह दिया कि वर्तमान लड़ाई निजी स्वार्थ की नहीं है और न किसी सह्य अपमान के विरुद्ध है, परन्तु सारे देश के प्रति हुए असह्य अपमान के विरुद्ध है। आगे चलकर उन्होंने बताया: "गहरे अध्ययन के बाद मैं कह सकता हूँ कि भारत की आर्थिक और नैतिक स्थिति ब्रिटिश शासन में जैसी कमजोर है, वैसी कमजोर कभी नहीं थी, किसी भी जमाने में ऐसी गिरी हुई हालत नहीं थी। मुझे लगता है कि सिर से पैर तक यदि कोई बादशाहत भारत को दबा सकी हो, तो वह यही है।" इस बादशाहत में बड़े-बड़े तीसमारखाँ लोगों को भी झुकना पड़ता है और अपमान सहने पड़ते हैं, यह तो भारत के स्व० दादा और गोखले कह गये हैं। इसी हुकूमत में लाला हरकिशनलाल जैसे नरम आदमी को अशान्ति रोकने का प्रयत्न करने पर कालेपानी की सजा हुई थी और लाला दुनीचन्द जैसे कभी सार्वजनिक रूप में न बोलनेवाले ने भी यही सजा पायी थी; इसी हुकूमत में बहादुर और चतुर लॉर्ड सिंह जैसे को सिविल सर्विस घोलकर पी गयी है और आज बिहार सर्विस की लगाम जितनी ढीली हुई है, उतनी कहीं भी नहीं है।

यह सख्त लड़ाई हो रही है, फिर भी अभी आसाम में दूसरा जलियाँवाला होने की बात सुन रहे हैं। जिस दूषित प्रथा के कारण यह सब हो रहा है, उसे मिटाने या सुधारने का मेरा मन्थन चल रहा है। मैं चाहता हूँ कि पारसी जाति, जिसने किसी भी जाति का भेद किये बिना बड़े-बड़े दान दिये हैं और जो पचास वर्ष से नेतृत्व करती रही है, वह उसे न छोड़े। मैं चाहता हूँ कि बलिदान करने की शक्ति रखनेवाली, चतुर और हिसाब लगाकर काम करनेवाली आपकी जाति भारत का सिंहासन ले ले।

इतनी बातचीत के बाद 'आपको कैसा स्वराज्य चाहिए ?' 'क्या हम धीरे-धीरे स्वराज्य प्राप्त करें ?' ऐसे, अब पुराने हो चुके, प्रश्न पूछे गये। इन प्रश्नों का दो-टूक जवाब यही हो सकता था कि 'जिस राज्य में उपर्युक्त हैवानियत न हो, ऐसी कंगाली न हो, वैसा स्वराज्य हमें चाहिए।' परन्तु गांधीजी तो दो-टूक उत्तर देने नहीं गये थे। उन्हें एक जाति को अपना बनाना था, उससे लड़ाई में अपना हिस्सा दिलवाना था, इसलिए उन्होंने विस्तार से उत्तर दिया : 'मुझे जो स्वराज्य चाहिए, वह आसानी से मिल नहीं सकता। परन्तु आज मैं जो माँग रहा हूँ, वह पार्लमेण्टरी स्वराज्य है। सेना और पुलिस की और कानून बनाने की सत्ता हमारे हाथ में आ जाय, प्रधान सेनापति की नियुक्ति भी हम कर सकें। एक भी सिपाही हमारी मरजी के बिना बाहर न भेजा जा सके। इतना हो तो, उसी क्षण स्वराज्य हमारे पास है। हमारा मंत्री अंग्रेज हो या भारतीय, परन्तु वह हमारा ही चुना हुआ होगा। जो अंग्रेज अफसर मुझ पर हुकूमत करना चाहता है, उसे मैं निकाल सकूँ। टॉमसन पंजाब में अयोग्य सिद्ध हुए, उन्हें वॉइसराय साहब ने शिमला में ऊँची जगह देकर वहाँ से हटा लिया, ऐसी जगह लेने की उनसे प्रार्थना की गयी। ऐसा न्याय स्वराज्य में नहीं हो सकता।'

'परन्तु' सामने से सवाल उठा : 'क्या सचमुच हम स्वराज्य के लिए लायक भी हैं ? आप ही कहते हैं कि हम स्वदेशी का इस्तेमाल नहीं करने लगेंगे, तो स्वराज्य नहीं मिलेगा; हम अहिंसा का पालन नहीं करेंगे, तो स्वराज्य नहीं ले सकेंगे; हम बेजवाड़ा का कार्यक्रम पूरा नहीं कर लेंगे, तो स्वराज्य नहीं ले सकेंगे। तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि आज हम स्वराज्य के लिए योग्य हैं ?' गांधीजी ने इसके उत्तर में एक सादा दृष्टान्त देकर योग्यता और शक्ति का भेद समझाया : 'एक भिखारी से आप उसकी रोटी

छीन लें, तो उसे वापस लेने का उसे अधिकार है और साथ ही उसकी योग्यता भी है; परन्तु ऐसा हो सकता है कि उसे लेने की उसमें ताकत न हो। यही बात हिन्दुस्तान के बारे में है। उसमें आज स्वराज्य लेने की योग्यता है, सामर्थ्य नहीं है।'

फिर यह सवाल उठा : 'हम कानून, सेना आदि पर काबू कैसे पायेंगे? हमने डेढ़ सौ वर्ष तक सिर्फ मुंशीगिरी ही की है। हममें से कोई कप्तान नहीं हुआ, कमांडर नहीं हुआ।'

गांधीजी ने और स्पष्ट किया, 'मैं यह माननेवाला हूँ कि मनुष्य-जाति ने अपनी रक्षा करने की शक्ति किसी काल में नहीं खोयी थी। हम इंग्लैण्ड की शर्त पर ही काम करेंगे, तो मुझे कल्पना नहीं हो सकती कि हमें कितने वर्षों तक मुंशीगिरी करते रहना पड़ेगा। मुझे मुंशीगिरी नहीं चाहिए। हम भूलें करेंगे, परन्तु हम ही अपनी भूलें सुधार लेंगे। अंग्रेजी सत्ता चली जायगी, तब किसीको चढ़ाई करने की फ़ुर्सत नहीं होगी। भारत स्वावलम्बी बन जाय, तो उसे जल-सेना नहीं चाहिए। बहुत-सी हुकूमतों के पास जल-सेना नहीं है।'

अन्त में एक भाई ने ईमानदारीपूर्वक अपनी भावना इस प्रकार व्यक्त की : 'इस लड़ाई से पारसी जाति को लाभ है या नहीं? हमारा तो खयाल है कि स्वराज्य में पारसी जाति को कष्ट सहन करना पड़ेगा। हमें अंग्रेज सरकार का राज्य किसी भी राज्य से अच्छा मालूम होता है। ब्रिटिश सरकार का प्रभुत्व चला जाय, तो पारसियों को कोई लाभ नहीं हो सकता।'

इसका उत्तर गांधीजी ने दिया : 'आप सोचिए कि इस हुकूमत के १५० वर्ष के शासन से पहले पारसियों की क्या स्थिति थी? यदि आपको ऐसा लगे कि वह बुरी थी और यह खयाल हो कि आज उनकी हालत अच्छी है, तो आप असहयोग में शरीक न होइए। हिन्दू-मुसलमान जातियाँ करोड़ों की संख्या में हैं। इसलिए हिन्दू-मुस्लिम संज्ञा का उपयोग करते हैं, वैसे इस ऐक्य में सभी जातियों का ऐक्य आ जाता है। इन दोनों की एकता किसी पर भी मनमानी करने के लिए नहीं है। कांग्रेस में वर्षों तक किसने स्वराज्य भोगा है? पारसियों ने अपने पराक्रम के बल पर राज्य किया है। जिस जाति में इतनी शक्ति, इतनी योग्यता है, उस जाति का कोई क्या बिगाड़ सकता है? छोटी

जाति का बड़ी जाति में हमेशा मेल बैठ जाता है और रक्षा होती है। परन्तु मैं आपको हिम्मत बँधाने नहीं आया हूँ। आपका यह खयाल हो कि हिन्दू-मुसलमानों की चक्की के दो पाटों के बीच आप अनाज की तरह पिस जायेंगे, तो आप असहयोग में हरगिज शामिल न होइए।'

इस बातचीत का प्रारम्भ और अन्त एक ही ध्वनि से हुआ। शुरू में सेठ होरमसजी एडनवाला ने कहा था कि 'जब तक गांधीजी वफादार रहेंगे, तब तक पारसी जाति सदा उनकी आभारी रहेगी और उनके काम की पूर्ण विजय चाहेगी और उनके काम में मदद भी देगी।' अन्त में भाई डुमसिया ने भी यही बात और खोलकर कही : 'पारसी जाति मानती है कि अंग्रेजों ने उन्हें आश्रय दिया है। (गांधीजी के सिर पर टँगे हुए सम्राट् महोदय के चित्र की ओर इशारा करके) पारसी तो संसार में अमन रखनेवाले पंचम जॉर्ज को ही--जो कि आपके सिर पर बैठे हैं--मानेंगे। वफादारी के भीतर रहकर आप जो कुछ करेंगे, उसमें हम तन-मन-धन से सहायता देंगे। जब तक हम पर पंचम जॉर्ज की छत्रच्छाया है, तब तक हम पर जो दुःख आयेंगे, जो विपत्ति पड़ेगी, वह बर्दाश्त करेंगे, परन्तु उस राज्य को नहीं निकालेंगे।'

संक्षेप में मैंने यह गांधीजी और पारसी भाइयों की बातचीत का सार दे दिया। मेरे खयाल से उस बातचीत में उस स्थिति का हूबहू चित्र मिल रहा था, जो इस समय भारत में विद्यमान है और इसीमें इस प्रसंग का महत्त्व है। पारसी-जैसी छोटी जाति को जो भय है, वही अन्य छोटी जातियाँ भी रख रही हैं। वफादारी के जो उद्गार हमने सुने, वही उद्गार प्रकट करनेवाला धनी वर्ग हिन्दू-समाज में, मुसलमान-समाज में भरा पड़ा है; 'हम स्वराज्य के लिए योग्य नहीं हैं' यह विचार रखनेवाले लोग हरएक कौम में मौजूद हैं। फिर भी यह बात तो है ही नहीं कि किसी जाति में से असहयोगी नहीं निकले। पारसी जाति में जाने-अनजाने अनेक भाई इस लड़ाई में अवश्य ही अच्छा भाग ले रहे हैं। 'एक गरीब पारसी का स्वराज्य फण्ड के लिए चन्दा', 'एक गरीब पारसी स्त्री के शेअरों का लाभांश स्वराज्य कोष के लिए' इस प्रकार के पत्रों के साथ गांधीजी के पास पारसी भाइयों की ओर से सहायताएँ चली ही आ रही हैं। जो निराशा हमने उपर्युक्त सज्जन के उद्गारों में देखी, वह इस सम्राट् के प्रताप से हममें से अभी तक बहुतों को बनी हुई है।

इसका इलाज क्या ? "इस आत्मशुद्धि की लड़ाई में हिस्सा लेकर देखिए" यही उत्तर मिले बिना नहीं रहता। धनिक वर्ग से गांधीजी कहते हैं कि तुम्हारे उद्योगों से गरीबों का पेट नहीं भरता। गरीबों को भूखों मारकर सम्पन्न बनने की बात छोड़ दो। ऐसा होने के साथ ही गरीब-अमीर के झगड़े बन्द हो जायेंगे। यह बात समझ में न आयी हो सो बात भी नहीं। 'आप पाँच वर्ष बाद मुझे कहेंगे कि भारत में बोल्शेविज्म को किसीने रोका है तो गांधी ने।' इन उद्गारों का सबने तालियों से स्वागत किया था। गांधीजी ने जो पारसियों से कहा, वही दूसरी जगह भी कहा है कि अहुरमज्द और अह्रिमान, ईश्वर और शैतान दो विरोधी तत्त्व सभी धर्मों में हैं और प्रत्येक धर्म का उपदेश है कि एक को भजकर दूसरे को छोड़ो। अभी तक इस दूसरी वफादारी के सामने ईश्वर की वफादारी को ताक पर रखनेवाले हममें बहुत-से लोग हैं। एक अमेरिकी पादरी से भी गांधीजी ने कहा था कि 'आप सरकार की दया के पात्र रहेंगे तो ईसा के सेवक बनकर (किसी समय) सरकार की उल्टी सलाह पर चलनेवाले बन जायेंगे।' यह सलाह सबकी समझ में न आयी हो सो बात नहीं। गांधीजी जब ये उद्गार प्रकट करते हैं, तो उनका सर्वत्र स्वागत होता है।

प्रश्न यह है कि हममें से बहुतों को यह अन्दाज नहीं कि हम कितने पानी में हैं, हममें से बहुत लोग अपने मन में निश्चय नहीं कर पाये हैं। यह आन्दोलन यदि बुरा है, तब तो इसे छोड़ना ही होगा। यदि अच्छा है, तो उसके लिए करोड़ रुपये जमा करने ही होंगे। यह विधान हमें रोशनी की तरह साफ दिखाई देना चाहिए, वैसा अभी तक दिखाई नहीं दिया। यह समझ में न आने के कारण ही जिस जबर्दस्त जाति के सरताज सर फीरोजशाह और भारत के दादा जैसे लोग थे, उसमें भी कुछ लोग ऐसा कायर का-सा भय अनुभव कर रहे हैं कि अंग्रेजी सरकार के आश्रय के बिना हम कैसे टिक सकेंगे। यह समझ में न आने से ही हममें से बहुतेरे जबर्दस्त आदमी अभी तक सारे मान-अपमान सहकर वफादारी का ककहरा घोख रहे हैं। करोड़ों नंगे-भूखे तड़प रहे हैं, तो भी ऐसी शंकाएँ कर रहे हैं कि 'स्वराज्य के लिए हम योग्य नहीं', 'स्वराज्य मिल जायगा तो कहीं हम सर्वस्व न खो बैठें'; और अपने कर्तव्य का विचार छोड़कर भयभीत दशा में गांधीजी से पूछते हैं : 'आपको माँगा हुआ रुपया मिल जायगा ?' यह सवाल तो गांधीजी से कोई अंग्रेज ही पूछ सकता है, हमारे

पूछने का नहीं हो सकता। 'मुझे रुपया कैसे मिले? आप करोड़पति पारसी, करोड़पति खोजे, करोड़पति मारवाड़ी तो मुझसे दूर भागते फिरते हैं, मुझे तो अब अपने जैसे भंगी से ही लेना होगा।' इस करुण वचन पर विचार करना चाहिए। जनता का प्रत्येक भाग---दानवीर, पहले बड़े बलिदान और सेवा से प्रसिद्ध हुई जातियाँ—क्या बाकी के भाग को ही स्वराज्य की लड़ाई सौंपकर खुद हाथ बाँधे बैठा रहेगा? इस समय जो भयभीत अवस्था फैली हुई है, उससे निकलने की एकमात्र कुंजी श्रद्धा है। ●

[ता० १२-२-'२१ के बाद आगे की डायरी १८-१-'२४ से शुरू होती है। इस तरह सन् १९२१ से '२४ तक की लगभग तीन साल की डायरी नहीं है। इसका कारण यह है कि इस काल में गांधीजी आदि की गिरफ्तारियाँ हुईं और महादेवभाई भी पं० मोतीलालजी नेहरू के पास 'इण्डिपेण्डेण्ट' अखबार में काम करने के सिलसिले में अलाहाबाद चले गये थे और उनकी भी गिरफ्तारी आदि हुई थी। इस सम्बन्ध में प्रस्तावना में विशेष प्रकाश डाला गया है।]

१८-१-'२४

शाम के ठीक चार बजे वल्लभभाई के साथ मुलाकात । बापू दायीं तरफ के कमरे में थे । बहुत ही दुबले लगते थे । हमें देखा तो वल्लभभाई की तरफ देखकर कहा : "आइए, बोरसद के राजा !"[1] फिर खूब हँसे और उनकी पीठ थपथपायी । "बोरसद में तो खूब किया ।" यह बात कही कि उनकी अपनी तन्दुरुस्ती में कैसे खराबी शुरू हुई, पेट में दर्द कैसे होने लगा । कर्नल मरे[2] के बारे में कहा : "बहुत ही कुशल आदमी है । आई० एम० एस० के सिवा एम० डी० है और अन्य डॉक्टरी डिग्री लिये हुए है । पोर्ट ब्लेयर में भी था । वह मुझ पर बड़ी ममता रखता है । मुझसे हमेशा कहता है कि तू अपने पर रोज इस प्रकार प्रयोग करता है, यह अच्छा नहीं; मेरे निर्देशानुसार तुझे खाना-पीना चाहिए । मैंने उसे अब्दुल गनी[3] के बारे में समझाया ।" वह कहता है :

---

१. बोरसद में 'हैडिया-कर' के विरुद्ध सत्याग्रह का उसी समय विजयी अन्त हुआ था । इस बारे में देखिए सरदार वल्लभभाई पु० १ प्रकरण २२ ।

२. यरवड़ा सेन्ट्रल प्रिजन के सुपरिण्टेण्डेण्ट ।

३. जनाब अब्दुल गनी यरवड़ा-जेल में बापू के साथी कैदी थे । उनके बारे में जिस प्रसंग का यहाँ उल्लेख किया गया है, वह निम्नलिखित जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट के नाम बापू के पत्र से स्पष्ट हो जाता है । यह पत्र 'नवजीवन' में प्रकाशित हुआ, तब बापू ने उसके नीचे एक टिप्पणी लिखी थी, वह भी यहाँ दी गयी है ।

यरवड़ा सेन्ट्रल जेल
१२ नवम्बर, १९२३

सुपरिण्टेण्डेण्ट,
यरवड़ा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

भाई अब्दुल गनी को आपने बताया था कि जितने खर्च की इजाजत है, उससे अधिक कीमत की खुराक जेल के नियमानुसार आपको नहीं मिल सकती । तब मैंने आपको बताया था कि आपके पहलेवाले सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मेरे सब साथियों को और मुझे अपनी-अपनी खुराक का प्रबन्ध कर लेने की स्वीकृति दी थी । मैंने आपको यह भी बताया था कि भाई अब्दुल गनी को जो सुविधा नहीं मिल सकती, उसे प्राप्त करना मुझे ठीक नहीं लगता, इसलिए मेरी खुराक भी कम करके जिस हिसाब से भाई अब्दुल गनी को खुराक दी जाती

"अब्दुल गनी तेरे जैसा हो, तो जरूर उसे भी वैसी ही खुराक दी जायगी, जैसी तुझे देते हैं।" मैंने कहा : "तब मैं यह नहीं चाहता कि जो मुझे देते हैं, वह उन्हें दें। मैं चाहता हूँ कि जैसे उन्हें रखते हैं, वैसे मुझे रखिए।" वह बोला : "आप कहते हों तो आपकी खातिर मैं उसे भी वैसी ही खुराक दूँ, परन्तु यह नियम के विरुद्ध है।" मैंने कहा : "नहीं, नियम के विरुद्ध करने की जरूरत नहीं। उन्हें साथ रखा है, तो नियम ही वैसा बनवाइए।"

जो हुआ सो हुआ, परन्तु इसमें कुछ बुरा नहीं हुआ। फल वगैरह का त्याग किया तो शरीर तो दुबला होता ही। फिर तो शनिवार को खूब दर्द होने लगा। मरे ने सारे पेट की जाँच की। बार-बार अपैंडिक्स सामने

हो, उसी हिसाब से मुझे खुराक दी जाय। आपने शराफत से सुझाव दिया था कि अभी तो मैं मौजूदा खुराक लेता रहूँ और थोड़े समय में जेलों के इन्स्पेक्टर जनरल आनेवाले हैं, तब उनसे आप इस बारे में चर्चा कर लें। अब इस बात को दस दिन हो गये। मुझे अपने मन की शान्ति बनाये रखनी हो, तो मुझे लगता है कि अब अधिक इन्तजार किये बिना मुझे अपने प्रस्ताव पर अमल करना चाहिए। कुछ भी हो, मुझे तो इन्स्पेक्टर जनरल के साथ कोई चर्चा करने की जरूरत ही नहीं है। भाई अब्दुल गनी के सम्बन्ध में किये गये आपके प्रस्ताव के विरुद्ध मुझे उनके सामने शिकायत तो करनी ही नहीं है। मैं समझता हूँ कि मेरे साथी को सहायता देने की आपकी इच्छा हो, तो भी वैसा करने का आपको अधिकार नहीं। इसी तरह मेरा इरादा नहीं कि खुराक सम्बन्धी जेल के नियमों में कोई परिवर्तन कराना चाहिए। मुझे जो विशेष सुविधाएँ मिलती हैं, उन्हें छोड़ देने की ही मेरी इच्छा है। आपने भलमनसाहत से यह भी बताया था कि मेरी खुराक शायद आपके पहलेवाले सुपरिण्टेण्डेण्ट ने डॉक्टरी कारण से निश्चित की होगी। परन्तु वास्तव में मुझे मालूम है कि यह बात सही नहीं है, क्योंकि मेरी खुराक तो मैं जब से जेल में आया, तभी से लगभग ऐसी ही रही है। खास मुद्दे की बात तो यह है कि जैसा मैं पहले बता चुका हूँ, उसके अनुसार खर्च का विचार किये बिना मेरे साथी को और मुझे अपनी-अपनी खुराक की व्यवस्था इच्छानुसार कर लेने की अब तक इजाजत थी।

इसलिए आगामी बुधवार से मैं नारंगी और अंगूर लेना बन्द कर दूँगा। फिर भी निश्चित हिसाब से मेरी खुराक बढ़ेगी। मुझे मालूम नहीं कि मुझे चार पौण्ड बकरी के दूध की जरूरत है या नहीं, परन्तु यदि आप मुझे मेरी खुराक निश्चित स्तर के अनुसार हो जाने तक उसे कम करने में सहायता न दें, तो मुझे अपना चार पौण्ड दूध और दो खट्टे नीबू लेना, अपनी इच्छा के विरुद्ध, जारी रखना पड़ेगा।

आपको विश्वास दिलाने की शायद ही जरूरत होगी कि मैं जो अपनी खुराक घटाना चाहता हूँ, सो किसी क्षोभ के कारण नहीं। भाई अब्दुल गनी के बारे में आपका प्रस्ताव

आया। मैं कहता कि वहाँ दर्द होता है। तब उसे शंका हुई। फिर दर्द हलका हुआ। फिर १२ तारीख को दर्द उठा, तो उसने कर्नल मॅडक*

मैं खूब समझ सकता हूँ। मैं तो यह परिवर्तन केवल अपने चित्त की शान्ति के लिए ही करना चाहता हूँ और इसमें मैं आपकी सहानुभूति और सम्मति चाहता हूँ।

आपका आज्ञाकारी
मो० क० गांधी
नं० ८२७

[मैं पाठकों को चेतावनी देता हूँ कि इस पत्र का कोई जरूरत से ज्यादा अर्थ न लगाये। केवल इस पत्र में लिखा हुआ वाकया समझाने के लिए ही यह पत्र प्रकाशित किया गया है, क्योंकि इस विषय में बहुत-सी बातें और तर्क-वितर्क होते हैं और यह कहा जाता है कि फल छोड़ देने से मेरा स्वास्थ्य जल्दी गिर गया। इसलिए मुझे स्पष्ट कर देना चाहिए कि मैंने फल छोड़े, तो वह सुपरिण्टेण्डेण्ट ने भाई अब्दुल गनी की माँग स्वीकार नहीं की, इसके विरोध में नहीं। और भाई अब्दुल गनी को विशेष वर्ग के नियमों के अनुसार फल और अन्य जो कुछ चाहिए, सो बाहर से मँगवाने का हक था। परन्तु उन्होंने, भाई याज्ञिक ने और मैंने यह निश्चय किया था कि बाहर से कुछ भी मँगवाना उचित नहीं। इसलिए मैंने जो त्याग किया और उसका जो परिणाम हुआ, उसके लिए अधिकारियों को कोई दोष नहीं दिया जा सकता। सुपरिण्टेण्डेण्ट और इन्स्पेक्टर जनरल ने मुझे समझाने का प्रयत्न किया था कि मैं अपने निश्चय को अमल में न लाऊँ। उन्होंने मुझे इसलिए भी चेतावनी दी थी कि इसके गम्भीर परिणाम होंगे। परन्तु अपने चित्त की शान्ति के लिए मुझे यह जोखिम उठानी पड़ी। इतनी गम्भीर बीमारी भोगने के बाद भी मैंने जो कदम उठाया था, उसके लिए मुझे बिलकुल अफसोस नहीं होता।

और मैं चाहता हूँ कि भाई गनी ने अपनी खुराक बदलने की जो माँग की थी, उसके लिए पाठक उन्हें कुछ भी दोष न दें। उन्होंने यह माँग मेरे साथ अच्छी तरह परामर्श करके ही की थी। मैंने उन्हें यह माँग करने दी, क्योंकि उस समय मुझे मालूम नहीं था कि नियमों के अनुसार सुपरिण्टेण्डेण्ट को यह परिवर्तन करने देने का अधिकार नहीं। यह मान लेने की मैंने भूल की, इसका कारण तो जैसा मैंने पत्र में बता दिया है, यह था कि पहलेवाले सुपरिण्टेण्डेण्ट ने भाई याज्ञिक और दूसरे कैदियों को समय-समय पर आहार बदल लेने दिया था। भाई अब्दुल गनी को ऐसा करने की इजाजत नहीं मिली, उसके बाद फलों का त्याग करने का मैंने निश्चय किया। तब इस भाई ने मुझे ऐसा न करने को समझाने में कोई कसर नहीं रखी। परन्तु जब तक मुझे यह यकीन न हो जाय कि फलों के बिना मैं जी ही नहीं सकता, तब तक मुझसे यह प्रयोग छोड़ा नहीं जा सकता था।

—मो० क० गांधी]

* पूना के सासून अस्पताल के सिविल सर्जन।

को बुलाया। उससे कहा कि "दर्द अपेंडिक्स का है।" परन्तु वह सहमत नहीं हुआ। उसने कहा कि पुरानी पेचिश का विकार होगा। दूसरे दिन जब दर्द अत्यन्त असह्य हो गया, तब फिर मॅडक आया और उसने निश्चय किया कि मुझे बाहर ले जाया जाय। वह अपनी ही मोटर में मुझे यहाँ लाया। उस समय यहाँ तो कोई व्यवस्था नहीं थी। व्यवस्था करने के बाद मशविरा किया और निश्चय किया कि मेरा ऑपरेशन किया जाय। मैंने कहा: "मैं राजी हूँ।" फिर जिन मित्रों को मौजूद रखने की इच्छा हो, उनके नाम माँगे। मैंने शास्त्रीयार वगैरह के नाम दिये तथा मैंने सोचा कि खादी का काम करनेवाले डॉक्टर फाटक को भी बुला लूँ। (देवदास ने कहा था कि कोई भंगी यहाँ होता तो उसे भी बुलाते, परन्तु कोई था ही नहीं।)

"शास्त्रीयार के साथ हुई बातचीत का उन्होंने ठीक अन्दाज नहीं दिया। मैंने उनके सामने तीन प्रस्ताव रखे थे। मैंने कहा था कि लोग या तो मुझे अपने बल पर छुड़वायें या सरकार यह मानकर मुझे छोड़े कि मैं निर्दोष हूँ और मैं प्रत्येक अंग्रेज को चाहता हूँ या मेरा और उनका झगड़ा जारी है ही, इसलिए छह वर्ष के अन्त में छोड़ें। उनको खयाल था कि इस तरह रखने से कहीं मेरे छुटकारे में बाधा न पड़े, इसलिए उन्होंने इस तरह न रखकर दूसरी तरह रखा।*

"मेरी सेवा-शुश्रूषा का तो यहाँ पार नहीं। खूब सँभाल रखी गयी है। हमारे आदमियों की अपेक्षा भी अधिक अच्छी सँभाल यहाँ रखी गयी है।

"ज्यों-ज्यों सोचता हूँ त्यों-त्यों लगता है कि मेरा संयम अभी कच्चा है। अफ्रीका में मैंने अपना शरीर जेल के अधिकारियों को पूरी तरह सौंप दिया था। यहाँ तीन बार बीमार हुआ। मैंने हमेशा माना है कि तलवार की धार पर रहता हूँ, परन्तु यह तलवार की धार भोंथरी होगी।"

मुनि जिनविजयजी के साथ बातें करते हुए बोले: "कितना ही संयम हो, परन्तु मनुष्य एक बार फिसल जाय तो फिर मरा ही है। किसी समय ऐसा लगता था कि मुझे कोई रोग हो ही नहीं सकता, छींक या सरदी की बात दूसरी है, परन्तु मैं मानता था कि मुझे कोई भी रोग नहीं होगा। मगर अब देखता हूँ कि इतने संयम के बावजूद मैं तीन बार बीमार पड़ गया।"

---

* देखिये श्री शास्त्रीयार का निवेदन, परिशिष्ट २।

मेरी ओर देखकर कहते हैं : "तुम्हें तो कई बार निराशा हुई, मुझसे मिल ही न सके। कोई बात नहीं, इसमें तुम्हारा भी भला है, हमारे कार्य को भी लाभ होता है। तुम्हें ठीक चार बजे बुलाया, तो अब मैं किसीसे भी कह सकूँगा कि मैंने वल्लभभाई और महादेव से जल्दी मिलने से इनकार कर दिया, तुम भी न आओ।[1] तुम्हारे बारे में मैंने सुना है। तुम तो युधिष्ठिर के कुत्ते की तरह वल्लभभाई जो कहते हैं, वह कर रहे हो। वे दिन को रात बताते हैं, तो रात कहते हो। और रात को दिन बतायें, तो दिन कहते हो।" मुझे यह बहुत अच्छा लगा। इसी तरह काम होता है। दुर्गा के समाचार पूछे। बोरसद में खूब किया, परन्तु अभी वहाँ काम तो करना बाकी है। नरहरि के समाचार पूछे। मैंने तीन क्षेत्रों के नाम दिये। यह बताया कि "बोरसद आप आयें तो तैयार होगा।" इस पर बहुत खुश हुए।

१९-१-'२४

बापू फिर मिले, इस दिन बातचीत में मैंने कहा : "बापू, आप पिछली बीमारी में इतने कमजोर नहीं हुए थे।" बापू ने कहा : "हाँ, होगा। जेल में दूसरा कोई दुःख तो था नहीं, परन्तु उन्होंने मानसिक दुःख देने में कसर नहीं रखी।" कृपालानी के बारे में पूछा : "वे तो बढ़िया काम करते ही होंगे। उनमें विद्यार्थियों को अपना बना लेने की शक्ति है और उन्हें इस काम-काज और शिक्षण का अनुभव भी है।" विनोबा के बारे में पूछा : "क्या 'महाराष्ट्र धर्म'[2] निकल रहा है ? उन्होंने अपने उपनिषद्-विषयक लेखों में तो हद कर दी है। अगाध अध्ययन है। मुझे वे पढ़ने को तो नहीं मिलते थे। परन्तु जेल में जो मुझे मिलता है, वह दूसरे को नहीं मिलता और दूसरों को जो मिलता है, वह मुझे नहीं मिलता। इन्दुलाल के पास उसकी फाइल थी। वह मैंने पढ़ी। प्रासंगिक टिप्पणियाँ तक सब बहुत अच्छी ही हैं। परन्तु उपनिषदों के अध्ययन में तो कमाल कर दिया है।"

---

१. अस्पतालों में आम तौर पर बीमारों से शाम के चार से छह बजे तक मिलने दिया जाता है।

२. उस समय विनोबाजी इस नाम का मासिक चलाते थे।

मजहरुल हक[1] के बारे में पूछा । 'फकीरी भोगते हैं', ऐसा कहने पर कुछ आश्चर्य हुआ। अपने उर्दू अध्ययन की बातें कीं। उर्दू तो खूब ही कर ली । उस्व ऐ साहबा (पैगम्बर साहब के साथी) शिबली का मुहम्मद का जीवन-चरित्र, उमर का चरित्र—ये सब पढ़ लिये। उर्दू तो बहुत ही अच्छी हो गयी है। मुसलमानों से कहना कि अब मैं मौलवी बनकर आऊँगा, उनका यह भय सच होनेवाला है ।

कोकोनाड़ा-कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष कौन थे, यह पूछा। मैंने कहा : "कोण्डावेंकटप्पैया थे। उन्होंने अपना भाषण हिन्दी में पढ़ा, यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए।

कार्यसमिति के सदस्य कौन हैं, यह पूछा। उन्हें प्राप्त मतों की बात की। इस पर कहा कि देशबन्धु दास आये, यह ठीक हुआ और उन्हें इतनी कम रायें मिलीं, यह भी अच्छा हुआ ।

केलनबेक[2] की बात करते हुए उनका यह वाक्य कहा : "आपने मेरे भीतर जो प्रकाश जगाया था, वह बुझने ही वाला है।"—The light that you kindled in me is on the point of extinction. फिर कहते हैं कि "मैं समझ सकता हूँ कि वह क्या कहना चाहता है।"

२०-१-'२४

आज सबेरे लालाजी आये। उन्हें 'आइए, पंजाब के केसरी' कहकर बुलाया। उन्होंने जवाब दिया : "पंजाब का केसरी नहीं रहा हूँ।" बापू की अशक्ति देखकर स्तब्ध हो गये। उनकी आँखों से आँसू तो नहीं गिरे, परन्तु उनका हृदय रो रहा था। वे कुछ नहीं बोले, तो बापू ने स्वयं मित्रों के हालचाल पूछे, अपनी बीमारी के कारणों की बात कही और अपनी दिनचर्या का वर्णन करते हुए कहा : "रोज ४ बजे से ७ बजे तक के एक-एक मिनट का हिसाब दे सकता हूँ। मेरे लड़कों की मेरे विरुद्ध शिकायत है कि मैंने उन्हें शिक्षा नहीं दी। खास तौर पर रामदास को मुझे बताना था कि ५५ वर्ष की उम्र में मेरे जैसा आदमी १५ घंटे अध्ययन

१. बिहार के एक नेता। पटना में बड़े बैरिस्टर थे। असहयोग करके महल जैसा अपना बँगला छोड़कर पटना में गंगा के किनारे सदाकत आश्रम स्थापित करके रह रहे थे।

२. दक्षिण अफ्रीका के बापू के बड़े दिली दोस्त। उनके विशेष परिचय के लिए देखिए 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास', (गुजराती) नवजीवन द्वारा प्रकाशित। खासकर पृष्ठ २०४-५, तीसरा संशोधित संस्करण, सन् १९५०।

कर सकता है। संस्कृत का मेरा अध्ययन अच्छा तो नहीं कहा जा सकता था, इसलिए भण्डारकर की पुस्तकों का अध्ययन किया और उनकी सहायता से संस्कृत पढ़ी।"

शाम को लालाजी फिर आये। अपने दिल का गुबार सुबह नहीं निकाल सके थे, इसलिए अब उसे निकाला। "क्या कहूँ? अब जल्दी बाहर आइए। आप बाहर आकर फिर से हमारा नेतृत्व करेंगे, इस आशा पर आधार रखकर हम बैठे हैं। आपकी अनुपस्थिति में हम गुरु के बिना विद्यार्थियों की तरह हैं। छोटे बच्चों की तरह हम अन्दर-अन्दर लड़ रहे हैं।"

बापू ने पेट पकड़कर कहा: "मेरी पेट भरकर हँसने की इच्छा हो रही है। परन्तु हँसी दबानी पड़ रही है। मेरा यह पेट मुझे हँसने नहीं दे रहा है। मेरा पक्का विश्वास है कि जेल में रहकर मैं देश की उतनी ही सेवा कर रहा हूँ। बाहर करता था, उससे ज्यादा नहीं तो उतनी तो अवश्य ही।"

लालाजी खिन्न-हृदय आये थे, परन्तु बापू की बात सुनकर हँसते-हँसते विदा हुए।

एक अंग्रेज कैप्टेन टॉड हमेशा फूल लेकर आता है। वह कहता है: "मुझे अपना भाई समझिएगा।" बापू ने कहा: "हाँ, ऐसे बहुत-से अंग्रेज हैं, जिन्हें मैं अपने भाइयों से भी ज्यादा मानता हूँ।"

२१-१-'२४

देवदास से सबेरे पूछा: "हमारा पहलेवाला टाइपिस्ट कहाँ है?" देवदास बोले: "क्यों पूछते हैं?" बापू: "शायद मैं छूट जाऊँ तो उसकी जरूरत पड़ेगी।"

इमाम साहब से कुछ मुसलमान भाई-बहनों के समाचार पूछे। बाद में मुझसे 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' के बारे में पूछा। कैसी हालत है? ग्राहक-संख्या की बात सुनकर जरा विस्मय हुआ। मैंने कहा कि ऐसा मैं आपसे नहीं कहूँगा। तो बोले: " 'यंग इण्डिया' की केवल पाँच प्रतियाँ ही बिकती हों तो क्या उससे मुझे बुखार चढ़ जायगा? बिलकुल नहीं।" हिन्दी नवजीवन के समाचार पूछे। 'नवजीवन' या 'यंग इण्डिया' तो मिलते नहीं थे। राजा की डायरी पढ़ी थी। 'हिन्द स्वराज' देखने को नहीं मिला। यहाँ है? काका ने अगले 'नवजीवन' में विविधता बढ़ेगी, ऐसा कहा। तो बोले: "जरूर! तब तो 'नवजीवन' बढ़ेगा भी सही।

उर्मिलादेवी* तो भूल ही गयीं क्या ?" यह प्रश्न भी पूछा। "पंजाब में खादी तो बन्द ही हो गयी होगी ?" यह प्यारेलाल से पूछा।

२३-१-'२४

बापू की जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल मरे आज बापू से मिलने आये। उनकी नम्रता और कोमलता से मैं भी चकित हुआ। बापू से हाथ मिलाकर कहने लगे : "मि० गांधी, आपको ऐसा तो नहीं लगता कि मैं आपको भूल गया ? परन्तु मुझे खयाल हुआ कि आपके आराम में बाधा न पहुँचाऊँ। इतने दिनों बाद आपको देखता हूँ, तो आपमें खूब सुधार हुआ मालूम होता है। आपके चेहरे पर भी बहुत स्फूर्ति दिखाई देती है।" बापू ने कहा कि "मुझे अफसोस है कि आप पर अखबारों में बहुत बुरे हमले हुए हैं।" कर्नल ने हँसकर जवाब दिया : "इसकी जरा भी चिन्ता न कीजिए। जो मुझे जानते हैं, उन्होंने ये हमले नहीं किये।"

बापू ने अपने जेल के साथियों के समाचार पूछे। उन्होंने उत्तर दिया : "आपको सब याद करते हैं। आपके साथी मि० गनी ने कहलवाया है कि आपका चार बजे उठने का नियम बराबर पालन कर रहा हूँ। इन्दुलाल वगैरह सब सकुशल हैं। सबको आपका अभाव खटकता है और (जरा मुँह बनाकर) आशा रखता हूँ कि उन सबको हमेशा आपका यह अभाव खटकता रहे।" बापू हँसकर बोले : "ठीक है, परन्तु कर्नल, आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे अच्छा हो जाने के बाद फिर आपकी देख-रेख में रहकर अपना काम करना जितना अच्छा लगेगा, उतना और कुछ भी नहीं लगेगा।" कर्नल के मुख पर शर्म की रेखाएँ पड़ गयीं। "जल्दी स्वस्थ हो जाइए और सेवा बताइए" इतना कहकर उन्होंने बिदा ली। तब बापू बोले : "देखो तो इसका मुँह ही कैसा है! कितनी शुद्धता और भलमनसाहत है!" कर्नल मरे को देखकर बापू की जेल की कोठरी प्रेम के वातावरण से भर गयी होगी, इसका खयाल आया और जो सरकार इस प्रेम के प्रकाश को एक कमरे में बन्द करके रखने का प्रयत्न कर रही है, उसके अज्ञान पर दया आयी।

२४-१-'२४

जिन विजयजी और पुंजाभाई आये। उनके साथ बातों में कहा : "उपनिषद् पढ़े, परन्तु इससे मेरी मान्यताओं में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

* देशबन्धु दास की बहन।

हाँ, कहीं-कहीं पुष्टि मिली। मैं उन्हें पढ़ने तब लगा, जब कि राजचंदभाई के बारे में लिखने बैठा। छह प्रकरण लिखे और फिर धर्म के सम्बन्ध में लिखने को मेरी कलम चली ही नहीं। इसलिए पढ़ना शुरू किया।"

जिन० "आप और राजचन्दभाई के बीच इतना तादात्म्य है कि आप उनके साथ अन्याय कर ही नहीं सकते।"

बापू : "मैं अन्याय न करूँ, परन्तु लोग यह मान सकते हैं कि मैंने अन्याय किया है। अब मैंने खुद यह सब देखा हो, तो लोगों को वैसा कहने का कारण नहीं रह जाता।"

विनोबा आये। उनसे भी कहा कि "धर्म-ग्रन्थ खूब पढ़े, परन्तु ज्ञान में तिलभर भी फर्क नहीं पड़ा।"

श्वैब, शेरवानी वगैरह आये। रात को अनसूयाबहन से गाने के लिए कहा। हम गये तब स्वयं भी खूब उत्साह से 'अबकी टेक हमारी' गा रहे थे और अनसूयाबहन कड़ी चूक जातीं तो उसे पूरा करते थे। बापू को गाते पहली बार सुना।

...... के पत्र के बारे में ... ने बातें की होंगी, इससे जरा दुःखी हुए। देवदास से कहा : "... को वहीं का वहीं तुम्हें कहना चाहिए था अथवा पत्र भेजना था। महादेव तो जन्म से ही मक्खी को भी चोट न पहुँचा सकनेवाले कोमल ठहरे और तू इतना छोटा कि तुझे खयाल हुआ होगा कि ...... जैसे बड़े आदमी का विरोध कैसे किया जाय? परन्तु कोई बात नहीं, जो हुआ सो हुआ। .... के बारे में मुझे शंका नहीं कि इस लड़ाई में पड़ेंगे तो जीतेंगे। तुम दोनों को कुछ लिखना ही नहीं है।"

रात को देवदास के साथ बापू की बातचीत हो रही थी : "मुझे तो पढ़ने की धुन सवार हुई। अपने शरीर का भान नहीं रहा। किसी चीज का भी भान नहीं रहा। पढ़ता ही रहा। जितना निश्चित किया हो, उतना पढ़े बिना शान्ति ही नहीं मिलती थी। गनी से इतनी उर्दू न ले लूँ, तो कब लूँगा? संस्कृत इतना न पढ़ूँ, तो कब पढ़ूँगा? अंग्रेजी तो कर ही लेनी चाहिए। और इस प्रकार मैं पढ़ता रहा। यह मानकर कि पाखाने का समय भी व्यर्थ जाता है, मैं कमोड (पाखाने की पेटी) पर भी पढ़ने लगा और गीजो पाखाने में पूरा किया। वेल्स की तो जैसे कोई गिनती ही नहीं थी, परन्तु गीजो तो फिलॉसॉफिकल; गिबन पूरा किया, बफल पूरा किया। बस, अंग्रेज इन्हींमें हमें पराजित कर देते हैं। हम यह मानते हैं

कि इतना मैं न करूँ तो कौन करेगा ? यह मानकर हम शरीर की भी परवाह नहीं करते। सन् '१४ की लड़ाई में एस्क्विथ जरा बीमार हुआ, लड़ाई शुरू तो हो गयी थी, परन्तु वह भूमध्यसागर की सैरगाह में चला गया। यह बात हममें नहीं है। ये लोग शरीर के पुजारी हैं, यह सही है। हम शरीर के पुजारी न बनें। परन्तु अच्छी वस्तु के लिए भी इतना मोह क्या ? मुझे पढ़ने का मोह हो गया। मैंने गनी को अमुक खुराक न दी जाने पर फल के बिना काम चलाने का प्रयोग किया। इसके लिए मुझे जरा भी अफसोस नहीं है। मुझे अपनी मूर्खता के बारे में महसूस होता है कि मैं अपना मोह नहीं छोड़ सका। मैंने खुराक बदल लेने पर भी पढ़ना तो पहले की तरह ही जारी रखा, इसीलिए मैं पछाड़ खा गया।"

केलकर दिल्ली जाने से पहले बापू के पास होकर गये थे। उन्होंने अपने पक्ष के बलाबल की बातें कीं। बापू ने हँसते-हँसते कहा कि "इसका अर्थ यह हुआ कि स्वतन्त्र दलवाले आपको अपनी हथेली में रखते हैं।" अन्त में बोले : "सचमुच यह परिस्थिति मनोरंजक होगी।"

रात को भोजन कर लेने के बाद नर्सें आकर हँसी-मजाक करने लगीं। एक से पूछा : "तुझे गाना आता है ?" उसने कहा कि "गाना आता तो था, परन्तु आज नहीं गाया जायगा।" तो बापू बोले : "जाओ, तुम नर्स नहीं कहला सकती। नर्स की एक जरूरी योग्यता उसकी गायन-शक्ति है। मुझे जिस पहली ही नर्स से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह बड़ी गानेवाली थी—वह पेशेवर नर्स नहीं थी, वह मि० डोक की पुत्री ओलिव थी। मेरे एक घाव हो गया था, बेहद दर्द हो रहा था, तब ओलिव से Lead kindly light (लीड काइण्डली लाइट) गाने के लिए कहा। उसने इतने बढ़िया ढंग से गाया कि उसके स्वर अब भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। मेरा दर्द कहीं भाग गया।" फिर दूसरी नर्स ने कई बहाने बनाये। गले में ऑपरेशन कराया है वगैरह।

अंग्रेज नर्स ने कहा : "आज कुत्ते को लेकर सैर करने जाऊँगी। आपको कुत्ते पसन्द हैं ?" बापू ने कहा : "हाँ, बहुत ही पसन्द हैं।" वह बोली : "कभी-कभी कुत्ते बड़े सुन्दर साथी होते हैं।" बापू ने कहा : "बहुत ही दुःखी हों, तब बड़े साथी होते हैं।" फिर वह वर्णन करने लगी कि कुत्ते कैसी अनुकम्पा दिखाते हैं।

२५-१-'२४

सुबह तैयबजी, जयकर वगैरह आ गये थे। दोपहर को दरबार साहब आये। भक्तिबहन जरा पहले आयी थीं। उन्हें देखकर कहा : "आपको मैंने पहले नहीं देखा? आपकी बातें बहुत सुनी हैं। बोरसद की ही नहीं, परन्तु और भी। (बा की ओर देखकर) तेरा मुझ पर कोई हुक्म चलता है? भक्तिबहन की तो दरबार साहब पर सत्ता चलती है। (वे शरमायीं) परन्तु एक बात में नहीं चली, यह भी सुना।" इस पर मैंने कहा : "दरबार साहब बीड़ी को तो क्षम्य कुलक्षण मानते हैं।" बापू ने फिर कहा : "आप सत्ता चला रही हैं, परन्तु हिन्दू-धर्म को शोभा देनेवाले ढंग से चला रही हैं, यही बड़ी बात है।"

इतने में दरबार साहब आ पहुँचे। उनसे कहा : "आइए! आपने तो बोरसद को खूब सुशोभित किया। ऐसी जीत भारत में हमें एक भी नहीं मिली। और आप न होते तो वल्लभभाई अकेले क्या कर सकते थे?" इस पर दरबार ने पंड्या और रविशंकर की बात की। बापू : "हाँ, ये लोग तो पुराने जोगी हैं। परन्तु बोरसद में वे अकेले क्या कर सकते थे? आप थे तो ताल्लुके को तैयार कर सके। परन्तु आपके विरुद्ध शिकायत भी आयी है, भला! कहा जाता है कि आपने दूसरों पर तो बड़ा काबू पाया है, परन्तु अपने-आप पर बहुत थोड़ा पाया है। और लोकनायक तो अपने पर काबू पाये बिना नेतृत्व कर ही नहीं सकता। आपने बीड़ी के मामले में भक्तिबहन को खूब सताया है, उपवास भी कराये हैं, यह बात सच है न?

"यह न समझें कि मुझसे किसीने अभी शिकायत की है। मुझे तो आपके बारे में यह शिकायत जेल में मिली है (गोपालदासभाई लज्जित हुए) और किसने कहा कि यह क्षम्य कुलक्षण है?" गोपालदासभाई ने कहा कि "नवजीवन में ऐसा आया है।" बापू बोले : "चाय के लिए तो मैंने कहा है, परन्तु बीड़ी के लिए नहीं।" गोपालदासभाई ने कहा : "बीड़ी के लिए भी।" बापू : "तब तो उस समय मेरी बुद्धि चरने चली गयी होगी।" फिर दरबार साहब ने अपनी सफाई पेश की। "३३-३४ बार छोड़ी और फिर शुरू कर दी। इसे छोड़ने का काम बड़ा कठिन है।" इस पर बापू ने बीड़ी छोड़ने के बारे में बातें कीं : "बीड़ी छोड़ना भी बहुत कठिन काम है, शराब छोड़ने से भी। आप कभी मानेंगे कि मैं

चोरी करूँगा ? परन्तु मैं ११ वर्ष का था, तब मुझे बीड़ी के जले हुए टुकड़े पीने की आदत पड़ी। मगर इससे क्या तृप्ति होती है ? इसलिए नौकर की जेब से पैसे चुराना शुरू किया। अब यह नहीं लगता कि शराब पीने की आदत पड़ी होती तो मैं चोरी भी करता। परन्तु बीड़ी छोड़ने का बड़े-से-बड़ा उदाहरण तो ···भाई का है। वे किसी समय खूब बीड़ी पीते थे। परन्तु मित्र वगैरह कहने लगे : "आपके जैसे मनुष्य को बीड़ी पीना शोभा नहीं देता !" इसलिए बहुत महसूस हुआ और उस दिन बीड़ी छोड़ी सो छोड़ी। इस प्रकार एक बार लग जाना चाहिए और सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। आज इतनी पी लें, कल इतनी पी लें, परसों उससे कम पियें, इस तरह करके बीड़ी नहीं छूट सकती। इसका एकदम त्याग करना चाहिए। परन्तु मैंने आपको भाषण सुनने नहीं बुलाया था। मुझे तो यह खयाल हुआ कि आपको बधाई दे दूँ। आपने बड़ा काम किया। आप दोनों को मेरी ओर से खूब-खूब बधाई।"

शाम को विनोबा मिलने आये। उनसे : "आश्रम में सन्देशा देना कि सबको याद करता ही रहता हूँ। प्रातः ४ बजे अथवा अभी तो अनियमित हो गया हूँ, इसलिए दो बजे, तीन बजे जब आँख खुले तब बिस्तर पर पड़े-पड़े प्रार्थना करता हूँ, शाम को भी प्रार्थना तो होती ही है और भजन भी।" बालकोबा के बारे में कहा : "उससे कहना कि मेरे छूटने की बातें चल रही हैं, सो मैं साबरमती आऊँ, तब तक ठहर जाय और बाद में मैं आकर वहाँ की सारी बातें जान लूँ, देख लूँ, फिर हम विचार करेंगे कि उसे साबरमती में रहना है या वर्धा में। वैसे उसे मेरे पास आना ही हो तो भले ही आये। मेरी इच्छा तो यही है कि मुझसे मिलने आने के लिए कोई अपनी जगह हरगिज न छोड़े, परन्तु यह भी सच है कि किसीको ऐसा लगे कि मुझसे मिल लेना ही चाहिए, फिर न मिला जा सके; कदाचित् मुझे जेल में भेज दिया जाय, तो वह भले ही मिल जाय।" इस पर मैंने कहा कि विनोबा से आपको कुछ पढ़वाकर सुनने की इच्छा हो तो रह जायँ। "हाँ, यह मैंने अपने मन से पूछ लिया। उस समय की* बीमारी तो दूसरी चीज थी, मुझे उस समय लग गया था कि 'अब मैं नहीं जिऊँगा, अब मैं मेहमान रह गया, इसलिए जितनी घड़ियाँ रह गयी

* सन् १९१८ की।

हों, उतनी देर और कुछ नहीं सुनना है; एक ही बात की रटन रहे, इसलिए तुम सबसे सुन लेता' ।"

इससे पहले देवदास ने पूछा : "क्या आपने मुहम्मदअली का भाषण पढ़ लिया ?" "हाँ, आधा पढ़ा, परन्तु जैसा अभी राजाजी कहते हैं, दादाभाई से भिन्न तो मुझे नहीं लगता। उसमें कोई विशेष विचार अथवा शैली हो, सो बात नहीं। कांग्रेस के पिछले सभी भाषण 'Classical' (उत्कृष्ट साहित्य कृतियाँ) कहलायेंगे। उनके साथ आप सहमत न हों, तो कोई बात नहीं, परन्तु वे भाषण बहुत बढ़िया थे। गोखले का भाषण लीजिए, सुरेन्द्रनाथ का लीजिए। सारा मौखिक है। शिक्षा पर बोला हुआ। एक सम्पूर्ण विचार लेकर उस पर लिख डाला हुआ। ह्यूम का लो, वेडरबर्न का लो—अरे पुराना यूल का ले लो। ये सब भाषण 'Classical' थे। सिंह का भाषण 'Superb' (भव्य) कहा जायगा। इन सबकी बराबरी यह भाषण नहीं कर सकता। इसकी शैली भी अच्छी नहीं कही जायगी। अमृतसर के समझौते के लिए ये श्रेय लेते हैं, परन्तु वह इनको नहीं मिल सकता। वह तो जयरामदास के हिस्से जाता है। और इसमें उनका अहं तो जहाँ देखो वहीं नजर आता है।" फिर मैंने बात बदलकर 'Non-violent coercion' (अहिंसक जबर्दस्ती) नामक पुस्तक के बारे में पूछा। "हाँ, इसमें से पिछले दो प्रकरण पढ़े। अन्तिम नहीं पढ़ा। इस आदमी ने खूब पढ़कर सामग्री इकट्ठी की है। परन्तु रोमां रोलां जैसा नहीं। कुछ-कुछ 'Scrappy' (असम्बद्ध) भी कहा जा सकता है। तिलक की तुलना में रोलां की सच्ची आर्षदृष्टि है। कवि वहाँ द्रष्टा नजर आता है। केवल कवित्व नहीं, परन्तु सच्चा दर्शन है। यह कोई चीज इस पुस्तक में नहीं।"

२६-१-'२४

आज कर्नल मॅडक ने खूब खानगी बातें कीं। एण्ड्रूज के पास से दो पुस्तकें आयी थीं, उन्हें लेकर मैं गया, तब बापू ने ही बात निकाली। इन लोगों का फिर झगड़ा चल रहा है। सरकार का पत्र आया है कि "गांधी अब स्वस्थ होता जा रहा है, इसलिए अब उसके सम्बन्धियों के सिवा दूसरे मित्रों से उसे क्यों मिलने देना चाहिए ?" मैंने (बापू ने) कहा कि "मुझसे मित्र मिलने आते हैं, परन्तु उनसे कोई राजनैतिक बातें मैं नहीं करता। और मेरे मित्र ही मेरे सम्बन्धी हैं। उन्हें मिलने की

इजाजत न मिलती तो मैं किसी सम्बन्धी से भी मिलना नहीं चाहता।" मँडक ने कहा : "मुझे आपसे यह बात करनी ही नहीं चाहिए, परन्तु मैं कर रहा हूँ। इन लोगों ने मुझे खूब दबाया, परन्तु अब मैं नहीं दबूँगा। पचीस बरस तक नौकरी की है, अब दो महीने बाकी हैं और फिर मैं निवृत्त हो जाऊँगा। इसलिए मुझे क्यों दबना चाहिए ? मैं तो उन्हें फोन कर दूँगा। परन्तु आप इसी तरह व्यवहार करें कि जैसे आपको कुछ मालूम ही नहीं, अपने मन पर कोई असर न होने दें। मैं उनसे लड़ता रहूँगा।"

बापू से मैंने पूछा : "तब छोड़ने की बातें तो गप्पें ही हैं।" बापू बोले : "तब क्या ? यह आदमी बहुत ही उम्दा इन्सान है। इसकी स्वतन्त्रता का पार नहीं। इस स्थान पर कोई भारतीय इतनी स्वतन्त्रता नहीं दिखाता !"

आज सुबह जाने से पहले भक्तिबहन और दरबार साहब बिदा लेने आये। तब बापू ने कहा : "आपसे कल बात करने के बाद मुझे लगा कि मैंने गोपालदास को इतना क्यों कहा। मैं चाहता हूँ कि सारा हिन्दुस्तान मेरे विचार का हो जाय, परन्तु मेरे सभी साथी अपना रहन-सहन बदल डालें, यह आशा मैं कैसे रख सकता हूँ ? परन्तु मैंने प्रेम के वश होकर आपसे कह दिया।" इस पर गोपालदासभाई ने कहा कि "३३ बार छोड़ने के बाद आपके सामने प्रतिज्ञा करने का साहस नहीं होता और अगर वह फिर टूट जाय, तो उससे बहुत दुःख होगा। परन्तु मैं ऐसा विचार करके जा रहा हूँ।" बापू ने कहा : "मुझे भी दुःख होगा।" फिर बापू ने कहा : "आपने बड़ा काम किया। आप दोनों ने जितना किया, उतना सारा हिन्दुस्तान करे, तो आज देश को विधानसभा द्वारा माँग नहीं करनी पड़ती कि गांधी को छोड़ दो, परन्तु मैं यों ही छूट जाऊँगा। यरवड़ा की कुंजी आपके हाथ में आ जाय। आज मुझे छोड़ दिया जाय, तो भी मुझे उसमें उमंग नहीं। जाइए, चरखे का काम, हिन्दू-मुसलमानों की एकता और अन्त्यजों की अस्पृश्यता मिटाना—इतना करेंगे तो काफी है। जाइए, आपने तो सुशोभित किया।" और भक्तिबहन की ओर देखकर "आपने हिन्दू-धर्म की शोभा बढ़ायी।"

आज बहुत लोग मिल गये। प्रातः रंगस्वामी ऐयंगार आये। उन्हें बापू ने बातों में कहा : "मेरा खयाल नहीं है कि मैं छूटूँ, तो भी उससे राष्ट्र के भविष्य में कोई फर्क पड़ेगा, परन्तु उससे मेरे नियत अध्ययन में तो जरूर बाधा पहुँचेगी।"

संस्था रुपये के अभाव में बन्द नहीं होती

फिर रंगस्वामी मुझसे मिले। उन्होंने कहा कि "वे जेल जाने के मामले में जैसे निःस्पृह थे, वैसे ही छूटने के मामले में हैं।" कल शास्त्री आकर गये थे। उन्होंने नमस्कार करके जाते-जाते कहा था : "सारा देश धन्य हुआ है और उसमें मैं खास तौर पर।" कल शाम को देवदास ने सरकार द्वारा नियुक्त सदस्यों की बात कही। बापू ने कहा : "अच्छी शोभा में रहे। लोगों ने नहीं चुना और फिर सरकार की कृपा से जाने में क्या शोभा ?" आज दूसरे मुलाकातियों में श्रद्धानन्दजी, शारदाबहन महेता, डॉ० सुमंत, रायमल (कुर्दुवाड़ीवाले), मौ० मुहम्मदअली (कसूरवाले), शंकरलाल, जमनालालजी वगैरह थे।

रंगस्वामी ऐयंगार की मुलाकात बड़ी हृदयस्पर्शी थी। बेचारे बापू पर हाथ फेरने लगे और रो रहे थे। कोट से आँसू पोंछते थे। देवदास ने पूछा : "दिल्ली कब जा रहे हैं ?" उन्होंने जवाब दिया : "मेरा वहाँ कोई काम नहीं।" शाम को फिर अपनी माँ के साथ आये। जाते-जाते बोले : "ये छूटेंगे तो मैं उनके साथ हो जाऊँगा।"

कल डी० वी० गोखले मिलने आये थे। उनसे बापू ने तिलक विद्यालय के बारे में पूछा। उन्होंने कहा कि "हमारे पास सब कुछ है। कोष भी है, परन्तु लड़के कम होते जा रहे हैं। रुपये की कमी कभी नहीं हुई।"

इस पर बापू ने कहा : "मेरा तो दृढ़ मत है कि कोई संस्था रुपये के अभाव में बन्द नहीं होती। कार्यकर्ताओं के अभाव में अवश्य बन्द हो जाती है। अथवा कोई संस्था अपने जमाने से आगे हो, अर्थात् उस संस्था के लिए स्पष्ट आवश्यकता मौजूद न हो, तो भी वह नहीं चल सकती।"

२७-१-'२४

पण्डित मोतीलालजी सुबह आये। फिर शौकतअली और उनका झुण्ड। मोतीलालजी के साथ लगभग पौन घण्टे खानगी बातें हुईं। देवदास मौजूद था। मोतीलालजी ने कुछ अपनी सफाई दी : "हमें यह मार्ग (स्वराज्य दल स्थापित करके विधानसभाओं में जाने का) अपनाना पड़ा। यह आपकी गैरहाजिरी में ही। आप बाहर होते तो उसकी बात ही नहीं थी। और आप बाहर आयें तो फिर हमारा एक ही नेता रहता है और आप जैसा कहें, वैसा हम करेंगे। मैंने अनेक दिन और रात विचार करने के बाद ही निश्चय किया कि मैं इसी मार्ग द्वारा सेवा कर सकता हूँ।"

इस पर बापू ने कहा कि "मैं देखता ही रहता हूँ कि आप और दास जो कर रहे हैं, वह ठीक है या नहीं। अभी आपको मुझे समझाना है कि आप जो बात कहते हैं, वह ठीक है।" मोतीलालजी ने कहा: "मैंने तो लोगों से कहा था कि गांधीजी बाहर होते तो यह स्थिति उत्पन्न न होती। शायद ९९ फी सदी गांधीजी हमें समझा देते या १ फी सदी हम गांधीजी को समझा लेते। आज मैं स्वीकार करता हूँ कि हममें भी मतभेद हैं। खुद दास के साथ मेरा तीव्र मतभेद है। बंगाल में कैदियों को छोड़ने का प्रस्ताव लाने के मैं विरुद्ध था। परन्तु दास ने मेरी नहीं मानी। एक प्रश्न मैं पूछना चाहता हूँ। 'आपने शास्त्री से कहा कि मेरे छुटकारे के लिए आन्दोलन हो, तो ठीक ढंग से होना चाहिए, इसका क्या अर्थ ?' " इस पर बापू ने समझाया कि शास्त्री से उन्होंने क्या कहा था। तब पण्डितजी कहते हैं: "ये तीन ही तरीके क्यों ? चौथा तरीका भी हो सकता है ! मान लीजिए कि ये लोग अलग-अलग सजाएँ साथ-साथ भोगने की बात करें।" बापू ने कहा: "हाँ, मगर यह मुझे छुड़ाने का तरीका नहीं। यह तो सरकार मुझे किस ढंग से छोड़े सो आप कह रहे हैं।" मोतीलालजी ने फिर कहा: "हाँ, यह ठीक है, परन्तु हम प्रस्ताव लायें और प्रस्ताव के परिणामस्वरूप छोड़ें।" बापू बोले: "इसमें मुझे उत्साह नहीं हो सकता।" परन्तु मोतीलालजी ने फिर कहा: "परन्तु आपको छोड़ दें, तो फिर किस उपाय से छोड़ा जाय, इससे मेरा क्या सरोकार, जब तक आपको इसमें कुछ न करना पड़े ?" बापू ने कहा: "हाँ, इसमें मेरा कोई वास्ता नहीं। परन्तु जो कुछ हो, उसमें 'शान', 'इज्जत' होनी चाहिए, गौरव होना चाहिए।" तब मोतीलालजी बोले: "गांधीजी को फौरन् छोड़ देना चाहिए और सारे प्रश्नों के निपटारे के लिए गोलमेज परिषद् बुलायी जाय, यह प्रस्ताव हम करें तो इसमें आपको गौरव लगेगा या नहीं ?" बापू बोले: "हाँ, इसमें गौरव तो है।" पण्डितजी ने कहा: "आपको इतना तो विश्वास है न कि मैं ऐसा कोई काम नहीं करूँगा, जो आपके गौरव और सम्मान के प्रतिकूल हो।"

बाद में अपने दल के बलाबल के बारे में बातें कीं। यह भी बताया कि स्वतंत्र दल के साथ किन-किन बातों में मत देना पड़ेगा। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि खूब सफाई के साथ बातें हुईं।

इतने में शौकतअली की फौज आ गयी। इधर-उधर की बातें चलीं।

शौकतअली ने अपने काम की बातें कीं। उठते हुए बापू के पैर चूमे, यह दृश्य हृदयद्रावक था।

पण्डितजी तीन बजे जानेवाले थे, परन्तु बापू सो रहे थे और उनसे न मिल सकने के कारण वे तीन बजे की गाड़ी से वापस आये। बम्बई के भोजन वगैरह के निमंत्रण को छोड़ा। मिले बिना मैं जा ही कैसे सकता हूँ? इसलिए वापस आया। बमनजी पहले आये और कहने लगे: "गांधीजी, मुझे एक सवाल पूछना है। आपने कौन्सिलों में तो जाने दिया। अब एक मंजूरी नहीं देंगे? ये बेचारे भूखों मर रहे हैं, वकालत न करें तो खायें क्या?" बापू ने कहा: "मेरी मंजूरी? मैं कौन मंजूरी देनेवाला? आप बाहर बैठे हैं तो आपको जैसा ठीक लगे, वैसा कीजिए। मैं कोई सलाह दे ही नहीं सकता। मैं कहूँ वैसा ही हो तो वह गांधीराज होगा। और गांधीराज होनेवाला हो तो अभी जो राज है, वह क्या बुरा है? गांधीराज हो तो शायद एक गांधी अच्छा हो सकता है, परन्तु और दस गांधी खराब आयेंगे। यह मैं नहीं चाहता। लोग भूल करेंगे, यह मैं समझ सकता हूँ, परन्तु एक हजार बार भूल करके एक हजार एकवीं बार वे जो करनेवाले होंगे, वही करेंगे। और यह मेरा मत आज का नहीं, कई वर्षों का है। यह मेरी चौथी जेल है। दक्षिण अफ्रीका में तीन बार जेल गया, तब कारावास के दौरान में मैंने कोई सलाह दी ही नहीं। हाँ, मैं बाहर होता तो जरूर चाहता कि लोग मेरी बात समझें। परन्तु न समझें तो मैं अकेला अपनी राय से सन्तोष मानकर बैठूँगा। इसी तरह मुझे करोड़ों मत मिलें, तो उससे मैं छलक नहीं जाऊँगा। जिस वकील को वकालत करनी हो, वह खुशी से करे। वह मंजूरी क्यों चाहता है?"

पण्डित मोतीलालजी को यही बात हिन्दी में समझायी तो इस पर पण्डितजी ने अपनी एक घटना सुनायी: "परन्तु लोग तंग करें तो आपको मालूम है, मैं कैसा व्यवहार करता हूँ? क्या आप मेरी कमजोरियाँ जानते हैं? एक बार इस बारे में बड़ी बहस हो रही थी। मैंने खीझकर कहा कि आप लोगों को नाहक मजबूर करेंगे तो मैं एक दिन अदालत में जाकर खड़ा हो जाऊँगा। दूसरे दिन जवाहर ने आश्चर्य से पूछा कि आप ऐसा क्यों कह रहे थे? मैंने उससे कहा कि मैं तो मजाक कर रहा था!"

खादी की बातें हुई। "हमें यह लालच दिखाया गया था कि आप मिल-उद्योग का समर्थन करें तो हम आपको खूब रुपया देंगे। मेरे और

जवाहर के बीच लड़ाई कराने की बड़ी कोशिशें हुई हैं।" फिर जमनालालजी से पूछा : "क्या मेरे भाषणों से इस भावार्थ के उद्‌गार निकालने के प्रयत्न नहीं किये गये कि मैं गांधी के विरुद्ध हूँ ? हाँ, मैंने एक बार जरूर कहा था कि मैं सबका––हकीमजी, दास, महात्माजी वगैरह सबका आदर-पात्र हूँ।" बापू बोले : "आपका यह दावा बिलकुल सही है।"

इसके बाद राजाजी आये। बापूजी को देखकर कहने लगे : "आपका शरीर आधा रह गया है।"

उन्हें उल्टे बापू ने सलाह दी : "आप चार महीने आराम लेकर पूरी तरह ताजे हो जाइए। इतनी देर में भारत में कोई उथल-पुथल नहीं हो जायगी। परन्तु यदि आप अपना स्वास्थ्य बिगाड़ेंगे तो जरूर देश में उथल-पुथल हो जायगी। इस मामले में हमें अंग्रेजों से बहुत सीखना है। आप कल्पना कीजिए कि जब युद्ध अभी शुरू ही हुआ था, तब एस्क्विथ जैसा आदमी स्वास्थ्य के लिए भूमध्य सागर में सैरगाह पर चला गया था। इस बारे में गोखले के साथ मेरा रोज झगड़ा होता था। मैं स्वीकार करता हूँ कि उन्होंने अपनी थोड़ी-सी जिन्दगी में सौ वर्ष के बराबर काम कर डाला। परन्तु मैं मानता हूँ कि खींच-खींचकर काम करके हमें बीमार नहीं होना चाहिए।"

फिर राजाजी ने कहा : "मुझे महसूस होता है कि अब आपका स्वास्थ्य सुधरेगा। 'अपेंडिक्स' निकल गया, यह बहुत अच्छा हुआ।"

बापू : "मुझे शंका है। अपेंडिक्स बेकार है। यह डॉक्टरों की राय गलत है, ऐसी मान्यता मेरे खयाल से बढ़ती जा रही है। कुछ लोग मानते हैं कि अपेंडिक्स को भी कुछ खास काम करना होता है।"

बाद में राजाजी ने पूछा : "क्या आपको अखबार मिलते हैं ?" बापू ने कहा : "हाँ, परन्तु पढ़ता नहीं। अफ्रीका में भी नहीं पढ़ता था। जेल में कभी-कभी मिल जाते हैं, तब भी नहीं पढ़ता। मेरे मन की भूमिका ही ऐसी हो गयी है।" फिर कर्नल मॅडक द्वारा कही गयी बात बतायी कि "एक महीना यहाँ रहना पड़ेगा और तीन महीने किसी पहाड़ पर आराम के लिए जाना आवश्यक है।"

फिर मुहम्मदअली के भाषण के बारे में बातें चलीं। बापू ने कहा : "आपके दिये हुए प्रमाण-पत्र के बारे में देवदास की बात सुनने के बाद सारा भाषण पढ़ लिया। आपसे सहमत नहीं हो सकता।"

मुहम्मदअली का महत्त्वपूर्ण भाषण

राजाजी ने कहा : "मैं तो इतना ही कहना चाहता था कि दादाभाई के बाद यही एक पढ़ने योग्य भाषण है। दूसरे कांग्रेस-अध्यक्षों के भाषण उकतानेवाले हैं। आपने शायद दूसरे भाषण पढ़े न हों।"

बापू ने आगे कहा : "क्यों नहीं ? मैंने पढ़े हैं। गोखले का बाँकीपुर का भाषण देखिए। सुरेन्द्रनाथ का भाषण लीजिए। अद्‌भुत हैं। आठ पन्नों के भीतर कितना अध्ययन भरा है ? वह एक भव्य कृति है। और वह जरा भी भारी नहीं। उल्टे, मुझे तो ऐसा लगता है कि मुहम्मद-अली का भाषण भारी है। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह भाषण अच्छा है, शुभ हेतुवाला है, उसमें कोई विचार-दोष नहीं, परन्तु उसके पीछे कोई अध्ययन नहीं है। इसमें अनावश्यक परिश्रम है। अपना वक्तव्य जहाँ दो वाक्यों में कहा जा सकता है, वहाँ उन्होंने बीस वाक्य इस्तेमाल किये हैं। मुझे दिखाया होता तो मैं उसे काटकर आधा कर डालता, फिर भी कहने लायक सब कुछ उसमें रहता।"

राजाजी : "हाँ, संक्षिप्तता मुहम्मदअली का गुण नहीं।"

शाम को पाँच से लगभग साढ़े सात बजे तक मथुरादास के साथ बात-चीत हुई। उसे मथुरादास के ही शब्दों में यहाँ दिया है :

बापू के फलाहार कर लेने के बाद अनसूयाबहन सायंकाल के भजन की तैयारी करने लगीं। इतने में बापू को पाखाने जाना पड़ा। यह काम हो जाने के बाद बहन ने तीन भजन गाये। बापू ने भी एक भजन का राग बताने के लिए थोड़ा-सा गाया। उन्हें गाते मैंने पहली ही बार देखा। भजन पूरा होने पर थोड़ी देर रहकर बहन और बा चली गयीं। बापू के पास मैं अकेला था। नर्स तो थी ही। दो-तीन मिनट यों ही कोई बातचीत किये बिना बीत गये। बम्बई में गो-रक्षा का प्रश्न उठा है, उसके बारे में बात करने का लोभ हुआ। बात करने या न करने का थोड़ा-सा मंथन हुआ। अन्त में बात छेड़ी।

"बापू, बम्बई में भी गो-रक्षा का प्रश्न उठा है। कॉरपोरेशन में ऐसा प्रस्ताव हुआ है कि आठ वर्ष के भीतर की गाय या भैंस कसाईखाने में न भेजी जाय। इस प्रस्ताव का समर्थन कुछ मुसलमानों ने भी किया था। परन्तु बाद में शहर में चर्चा उठ खड़ी हुई। हिन्दू गो-वध बिलकुल बन्द करने की माँग करने लगे हैं। मुसलमान कॉरपोरेशन का प्रस्ताव रद्द करने की माँग करने लगे हैं। इस प्रकार सरौते के बीच सुपारी जैसी

स्थिति हुई है। कॉरपोरेशन ने इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की है। उसमें मैं भी हूँ। मैंने यह सुझाव दिया है कि कॉरपोरेशन अभी फिलहाल प्रस्ताव पर एक वर्ष के लिए अमल करे और यह देखे कि आर्थिक दृष्टि से उसका क्या असर होता है? यदि प्रस्ताव के अमल से मुसलमानों के कष्ट का पता लगे तो उस पर पुनर्विचार किया जाय। परन्तु यह सुझाव भी मुसलमानों के गले नहीं उतरता। और मियाँ छोटानी-जैसे भी मुझ पर क्षुब्ध हुए हैं। जिन्होंने समर्थन किया था, वे भी अब खिसक रहे हैं। इसमें मुझे जबरदस्ती लगती है और इसलिए मैंने जो सुझाव दिया है, उस पर डटे रहने की इच्छा होती है।"

यह बात सुनकर बापू विचार में पड़ गये और कहने लगे .

"मुसलमानों को छोड़कर हम बहुमत से गो-रक्षा नहीं कर सकते। उनकी दृष्टि हम एक दिन में नहीं बदल सकते। यदि वे सहमत न हों, तो यह बात हम छोड़ दें, परन्तु विचारपूर्वक, न कि दुर्बलता से। और हम समझदार होंगे, तो हम उनसे बार-बार हार खायेंगे, तो भी अन्त में वे हमारे वश में होंगे। उन्हींको लगेगा कि यह क्या? हिन्दू विरोध क्यों नहीं करते? जबर्दस्ती का डर रखने की जरूरत नहीं। और तुम्हें इस बात में से धीरे से निकल जाना चाहिए। मेरे जैसा कुछ भी करेगा या कर सकेगा। तुम्हारी स्थिति कठिन है, यह मैं जानता हूँ। यह तो तुम जानते हो कि जहाँ कीचड़ हो वहाँ से कैसे निकला जाय।

"हिन्दू-धर्म और दूसरे धर्मों में बहुत कुछ समानता होगी, परन्तु हिन्दू-धर्म का विशेष तत्त्व अहिंसा है। ईसाई-धर्म को आज दो हजार ही बरस हुए। इसलाम को तो तेरह सौ ही हुए। इतने वर्ष किस गिनती में? इसलाम-धर्म ने अपना काम कर लिया है। जंगली जातियों में संयम-नियम नहीं थे, उन जातियों को संयम सिखलाया। हिन्दू-धर्म को तो अभी बहुत कुछ साधना है।

"इसलाम-धर्म में एक ऐसी कथा है कि लड़ाई में पैगम्बर ने दया करके कत्ल बन्द कराया। परन्तु तुरन्त उन्हें आयत मिली कि तूने भूल की है, दया न की जाय। इसलिए पैगम्बर ने फिर कत्ल शुरू कर दी। आयत का अर्थ है सन्देश और वह और कुछ नहीं, केवल अन्तर्नाद है।

"यह बात मैं तुमसे इसलाम को नीचा दिखाने के लिए नहीं कह रहा हूँ।

"हमारे ऋषि-मुनियों ने हमारा आहार-विहार-आचार दूसरी जातियों

से अलग ही प्रकार का बनाया है। इसलिए हम दूसरों की प्रतियोगिता में नहीं उतर सकते। औरों का अनुकरण नहीं कर सकते।

"आत्मा और शरीर का विकास एक साथ नहीं हो सकता। ज्यों-ज्यों आत्मा का विकास होता है, त्यों-त्यों शरीर कृश होता है। आत्म-विकास के लिए केवल मिताहार काफी नहीं। परन्तु अल्पाहार करना चाहिए। मैंने माना था कि मैं दोनों को निभा लूँगा, परन्तु इसमें मैंने भूल की। जेल में मैंने खूब पढ़ा। अपना मस्तिष्क मैंने खपा डाला। और साथ ही खुराक पहले जितनी रखी, इसलिए मैं पटकनी खा गया।

"मुझे विश्वास है कि जगत् को सत्य प्रदान करने के लिए मैं जो मन्थन कर रहा हूँ, वह मरनेवाला नहीं है।

"ऑपरेशन के समय भी मुझे ऐसा नहीं लगा कि मैं मर जाऊँगा तो! उस वक्त भी मेरा बाल तक नहीं हिला। मुझे जो करना था, वह मैंने कर लिया है और ईश्वर को इस शरीर से विशेष कार्य कराना होगा तो करा लेगा।"

बातचीत लम्बी होने से मैंने उसे बन्द करने के लिए कहा, तो बापू ने कहा :

"आज दूसरी बहुत सारी बातें हुईं। इसमें बहुत रुचि नहीं होती। तुमसे बात करता हूँ, तो उसमें रस आता है। और तुम्हारे जैसा पात्र मिले, तो फिर क्या? तुम्हारे जैसे पाँच-सात युवकों को यदि मैं विचार भलीभाँति समझा सकूँ और वे उस ढंग पर विचार करने लग जायँ, तो मुझे सन्तोष होगा।

"मैं तो गुरु के बिना भटक रहा हूँ। इसलिए मेरी कठिनाइयों का अन्त नहीं।"

२८-१-'२४

नरहरि, जुगतराम और छगनलाल जोशी बारडोली से आये। कर्नल मॅडक ने सबेरे मुझे बुलाकर मुलाकातियों के बारे में, बापू को किसी अच्छी जगह भिजवाने की अपनी सिफारिश के बारे में और बापू की राजनीति के बारे में बातें कीं। बापू man of action (कर्मयोगी) हैं, इसलिए अंग्रेज उन्हें चाहते हैं, यह कहा। अहिंसा के बारे में बातें कीं। इतिहास में किसी समाज की रचना अहिंसा के आधार पर हुई हो, ऐसी

जानकारी नहीं मिलती, परन्तु आजकल के सुधार बिलकुल व्यर्थ सिद्ध हुए हैं, वगैरह उद्‌गार प्रकट किये। 'मैं तो चाहता हूँ कि बापू छूटें', परन्तु यह भी बताया कि 'सरकार क्या करेगी, यह कुछ नहीं कहा जा सकता। गवर्नर से नहीं मिला, मिलना चाहता भी नहीं। मार्च में मैं निवृत्त होने-वाला हूँ', इत्यादि बातें कीं।

दोपहर को मुहम्मदअली वगैरह आये। उन्होंने अंगोरा, हिन्दू-मुस्लिम झगड़े वगैरह की बातें कीं। अंगोरा डेपुटेशन के बारे में बापू ने कुछ बातें पूछीं। मैं ठीक-ठीक नहीं समझा सका, इसलिए इन लोगों के पास जाकर अच्छी तरह समझ लेने को मुझसे कहा। फिर परस्पर अविश्वास के बारे में, जयरामदास की वृत्ति के बारे में, शौकतअली का जयरामदास के प्रति अविश्वास वगैरह बातें कीं। अब्दुल बारी के ऐलान के बारे में, लालाजी द्वारा की गयी बातों के बारे में, उन्होंने हसन निजामी के बाबत जो कुछ कहा था, उसके बारे में बातें हुईं।

बाद में बापू ने मुझसे कहा : "इसका निपटारा कैसे हो ? क्या शौकत-अली मुहम्मदअली से होगा ? शौकत मुहम्मद हमेशा ऐसी जो भी बात निकलती है, उसे झूठी साबित करते रहते हैं। यदि ऐसा हो तो कैसे अन्त होगा ? शौकत और मुहम्मद ने कुछ अपराध किया है क्या ? और मान लो कि ये लोग ऐसी बात न करें तो क्या करना चाहिए ? तो धो डालें ? तुम यह बात अच्छी तरह समझो, इसलिए तुमसे कहना चाहता हूँ कि हमें इस बात की परवाह ही नहीं रखनी है कि ये लोग क्या करते हैं। ये लोग कुछ भी करें, हमें तो यही देखना है कि हमारा व्यवहार ठीक है या नहीं ? ये लोग कहें कि हम तो गाय जरूर काटेंगे, तो हम उनसे कहें कि गाय भले ही काटो। ये लोग कहें कि बाजे न बजाओ, तो हम कहें कि हम कहीं भी बाजा बजाना नहीं चाहते। थोड़े-से हिन्दू कट जायँ या मर जायँ, तो इससे हिन्दू-धर्म या हिन्दुस्तान की कोई हानि नहीं होगी। परन्तु एक बरस तक तुम ऐसा कर लो तो सारे सवाल का निपटारा हो जायगा। हिन्दू-धर्म का तत्त्व ही मुझे तो आत्म-त्याग और अहिंसा लगता है। और जब तक तुम यह चीज अच्छी तरह समझ नहीं लोगे, तब तक तुम पिछड़े रहोगे। जहाँ लोग तुम्हारी न सुनें, वहाँ खड़े न रहो। क्या मुझे दुःख नहीं होता कि काली के सामने

बकरा काटा ज़ाता है ? मेरे लिए तो गाय और बकरी दोनों के प्राणों का समान मूल्य है। परन्तु हिन्दुओं को गाय के प्रति बड़ा आदर है, इसलिए गाय की बात कर रहा हूँ। आज गाय को बचा लिया, तो कल बकरी को भी बचा सकेंगे।"

इतने में राजाजी और शंकरलाल आये। उन्हें अंग्रेजी में कहने लगे :

"मैं महादेव से कह रहा था कि यह (हिन्दू-मुसलमान का) सवाल ऐसा है, जिसमें प्रतियोगी (responsive) सहयोग नहीं चल सकता। इसमें प्रतियोगी सहयोग का स्थान ही नहीं है। प्रेम के सभी मामलों में सामनेवाले मनुष्य से निरपेक्ष व्यवहार रखना पड़ता है। दो में से एक पक्ष सारी शर्तों का पालन करे, तो काफी है। इसमें सामनेवाले के साथ अदला-बदली करने की वृत्ति हो ही नहीं सकती। मैं तुम्हें इस-लिए नहीं चाहता कि तुम मुझे चाहने को तैयार हो। तुम्हें मैं चाहता हूँ, क्योंकि यह मेरा धर्म है। मैं जब मौलाना अब्दुल बारी से मिला, तब उन्होंने मुझसे पूछा था कि मुसलमानों के सहयोग के बदले में हिन्दू क्या अपेक्षा रखते हैं। मैंने कहा, 'किसी बात की भी नहीं। मुसलमानों को अपना धर्म महसूस हो, उसके अनुसार करें। इसमें कोई अदला-बदली की बात हो ही नहीं सकती।' ऐसा ही प्रश्न गया में खड़ा हुआ था। मौ० अबुल कलाम आजाद ने मुझसे पूछा कि मुसलमान आपकी मदद करने में असफल सिद्ध हों अथवा आपकी अपेक्षाएँ पूरी करने से इनकार करें, तो आप क्या करेंगे ? मैंने कहा कि कुछ नहीं। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि मैं कोई अदला-बदली का समझौता करना नहीं चाहता। जब मैं कहता हूँ कि मुझे बदले में कुछ नहीं चाहिए, तब मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुसलमानों से बदले में कुछ नहीं माँगता। परन्तु ईश्वर से मेरी अपेक्षा पूरी हो जायगी। ईश्वर मेरी मेहनत और मेरे त्याग का फल मुझे देगा, ऐसी अपनी पूरी श्रद्धा के साथ अपने सिद्धान्त के लिए मरूँगा। फिर मौ० अबुल कलाम आजाद ने जिन शब्दों में मैंने हिन्दुओं की स्थिति बतायी थी, ठीक उन्हीं शब्दों में मुसलमानों की स्थिति का विवेचन किया।

"मेरा धर्म मुझे यह सिखाता है कि कोई मुझे हानि पहुँचाये, तो मुझे बदले में उसे हानि नहीं पहुँचानी चाहिए, परन्तु और हानि को निमंत्रण देना चाहिए। लालाजी, श्रद्धानन्दजी और पं० मालवीयजी इससे उल्टी बात करते

हैं। फिर भी मैं अपनी बात पर ही डटा रहता हूँ। हिन्दू-मुसलमानों की एकता के मेरे मार्ग में आज वे ही सबसे बड़े बाधक हैं। परन्तु मुझे ऐसा लगे कि उनके प्रान्तों में लोग मेरी बात सुनने को तैयार नहीं हैं, तो मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मुझे तो इन नेताओं को ही अपने विचार का बनाना है। इसके लिए मुझे जितना हो सके, उतना प्रयत्न करना ही रह जाता है। हम उनके प्रान्तों में जाकर दूसरा मंच खड़ा नहीं करेंगे। आप जानते होंगे कि जब तक लालाजी को मैंने अपने विचार का (असहयोग के मामले में) नहीं बना लिया, तब तक मैं पंजाब नहीं गया था। आप यह भी जानते हैं कि पंजाब मेरी बात सुनता, क्योंकि पंजाब में मेरी साख बन गयी थी। पंजाब के लोग मेरे बिना अपने यहाँ कांग्रेस के जलसे के लिए तैयार नहीं थे। फिर भी मैंने प्रतीक्षा की। आप कहते हैं कि लालाजी में समाधान-वृत्ति नहीं है। मैं मानता हूँ कि वे ऐसे ही हैं। परन्तु उनके बारे में आप हमेशा विश्वास नहीं रख सकते। वे दूसरे ही दिन अपनी राय बदल भी लेंगे। वे अत्यन्त आवेगवान् और प्रामाणिक मनुष्य हैं। कल ही जो बातें वे मुझसे कह गये, वे बातें उनसे सुनने की मैंने कभी आशा नहीं रखी थी। उन्होंने कहा कि 'बड़ी अंधाधुंधी मची हुई है, आपके बिना हम कुछ नहीं कर सकते। आपके बाहर आते ही सब ठीक हो जायगा।' (इस बारे में अपनी कार्य-पद्धति का विरोध करनेवाले और उस समय के धुरन्धर महा-पुरुषों के बारे में) यह बात नहीं कि इन लोगों की बुद्धि तो सत्य को देख सकती है, परन्तु उनके आवेग उन्हें दूसरे मार्ग में खींच ले जाते हैं। नहीं, इस मामले में उनकी बुद्धि ही धुँधली हो गयी है। इस बारे में मेरे विचार साफ और निश्चित हैं। मैं इस समय यरवड़ा-जेल में बन्द हूँ और बाहर सन्देश नहीं भेज सकता, फिर भी यह मैं आपसे कह रहा हूँ, क्योंकि मेरे लिए यह जीवन-मरण का सवाल है। मैं इसीके लिए जी रहा हूँ। हिन्दू-मुसलमान के सवाल का निपटारा अहिंसा से हो सकता है, यह सन्देश मैं चाहे जहाँ से दे सकता हूँ। आप कहते हैं कि उन्होंने तो जनसंख्या का हिसाब पकड़ लिया है। इतना फी सदी हमें मिलना चाहिए, ऐसी माँग वे करते हैं। मैं कहता हूँ कि आप उनसे कह दें कि हमें तो शून्य प्रतिशत चाहिए। इस मामले में आप उनके हाथ में कलम सौंप दीजिए। हम असफल रहे हैं और असफल रहेंगे, यदि हमारी अन्तर्दृष्टि निर्मल नहीं हो जायगी और इस बारे में हममें श्रद्धा की कमी

रहेगी कि सत्य और अहिंसा की सर्वत्र और सदैव विजय ही है। इस मामले में आपको अपने मन में निश्चय कर लेना है। बाकी की बातें आप उन पर छोड़ दीजिए।

"यह चीज मुझे अनुभव से मिली है। वह मैं आपके सामने रख रहा हूँ। इस सिद्धान्त के स्वीकार करने से ही मुझे दक्षिण अफ्रीका में विजय प्राप्त हुई थी। हिन्दुस्तान में भी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की जो एक छोटी-सी लहर उठती दिखाई दी थी, वह भी इसी सिद्धान्त के स्वीकार करने के प्रताप से। मुसलमानों-जैसे शरीर से बलवान् होने की,* अखाड़े खोलने की और नागरिक संरक्षक-दल खड़े करने की बात वाहियात है। ये सब व्यर्थ के प्रयास हैं। हिन्दू कहते हैं कि मुसलमानों से ज्यादा बलवान् बनो। इसके उत्तर में मुसलमान भारत से बाहर के अपने स्वधर्मियों के साथ जुड़ने का विचार करेंगे। फिर हम चीन, जापान और दूसरे एशियाई देशों के साथ संधि करने की योजनाएँ करेंगे। इस तरह कहाँ अन्त आयेगा? एक बार शरीर-बल के उपयोग को स्वीकार कर लेंगे, तो फिर देखते-देखते आप सारे देश को सैनिक छावनी में बदल डालेंगे। आप स्वयं अपनी रक्षा न कर सकते हों, तो किराये के गुण्डे रखने लगेंगे! दूसरा कदम पुलिस की मदद लेने का होगा। फिर बाहर के राष्ट्रों की सहायता लेने का विचार करना पड़ेगा। इस प्रकार इसका अन्त नहीं होगा।

"मुझे बचपन से ही ऐसी बातों से घृणा है। हमारी पाठशाला में दल हो गये थे। कमजोर पक्ष हमेशा बदमाशों का सहारा ढूँढ़ता था। परन्तु मैं उनसे अलग रहता। चुपचाप सीधे पाठशाला जाता और छुट्टी होते ही तुरन्त घर दौड़ आता। अब तो यह चीज मेरे जीवन का नियम बन गयी है। आपको तो सिर्फ वे जो माँगें सो दे देना है। ऐसा करके आप कुछ खोयेंगे नहीं। वे कहें कि हमें गाय को मारना है। तो भले ही वे मारें। वे गाय को मारने का आग्रह रखें, इसीके लिए आप उन्हें तो नहीं मारेंगे न? यह तो आप हरगिज नहीं चाहेंगे कि वे अपना धर्म बदलकर आपका धर्म स्वीकार कर लें। मैं जानता हूँ कि मेरा यह सिद्धान्त लोगों से मनवाने में आपको कठिनाई होगी।

"मेरा एक मित्र था। वह धर्मशास्त्रों का बड़ा पण्डित था। उसने

* प्रतिपक्षी जैसे शरीर या संख्या में बलवान् होने का मोह।

योग का अभ्यास भी किया था । अपने बँगले के पास पर्णकुटी बनवाकर थोड़े समय वहाँ रहने को गया था । इन सब धार्मिक प्रयोगों के अन्त में वह इस निर्णय पर पहुँचा कि अहिंसा परम धर्म नहीं, परन्तु परम अधर्म है । उसने मुझे लिखा भी कि दूसरा हो ही नहीं सकता । परन्तु हम दूसरी बातों में चले गये । आपको तो दिल से निश्चय कर लेना है कि जिस वस्तु को हमने धर्म माना है, उससे तिलभर भी विचलित नहीं होंगे । मेरा सिद्धान्त सदा के लिए है । यदि कोई मेरी नहीं सुनता तो इसमें मेरा क्या जायगा ? बुद्ध के उपदेशों का अभी फल नहीं निकला । परन्तु इससे कौन कहेगा कि बुद्ध असफल हुए ? अभी तो केवल २५०० वर्ष की अवधि बीती है । ईसाई-समाज ने व्यवहार में ईसामसीह के उपदेशों से इनकार किया है । ऐसा ही मुहम्मद पैगम्बर का हुआ है । आज के मुसलमान लड़ने की झूठी शेखी बघारने के सिवा और क्या करते हैं ? उनमें मुहम्मद और उनके बाद के चार खलीफाओं का त्याग, सादगी, ईश्वर-निष्ठा कहाँ दिखाई देती है ? मुझे यह भी नहीं लगता कि मुहम्मद का सन्देश अब अन्तिम सन्देश है और शाश्वत काल के लिए है । जिस देश में और जिस काल में वह सन्देश दिया गया, उस देश और काल के लिए वह बहुत अच्छा था । परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वह परिपूर्ण और खालिस है । मैं यह भी नहीं मानता कि मुहम्मद आखिरी पैगम्बर हो गये और अब दूसरा पैगम्बर आयेगा ही नहीं ।"

२९-१-'२४ से
१-२-'२४

हकीमजी, मुहम्मदअली और शौकतअली मिले । यह प्रसंग भी वैसा ही हृदयद्रावक था, जैसा शौकतअली के आने के समय था । मुहम्मदअली ने पैर चूमे, परन्तु ओढ़े हुए कपड़े के साथ । हकीमजी से बापू ने ही प्रणाम किया और हाथ मिलाया । हकीमजी ने बापू से पूछा : "तकलीफ तो बहुत हुई होगी ?" "हाँ, क्या पूछना ?" "होने का सबब क्या ?" बापू ने कहा : "गुनाह किया होगा, उसका नतीजा खुदा दे रहा है ।" मुहम्मदअली तो बैठे ही थे, उनकी आँखों से आठ-आठ आँसू बह रहे थे ।

शौकतअली ने जाते-जाते कहा : "आप खूब खाइए । भूखों न मरिए ।" बापू ने कहा : "खाकर मोटा हो जाऊँगा तो फिर आप जेब में कैसे रख सकेंगे ?" मुहम्मदअली बोले : "कर्नल मॅडक से नहीं कहा जा सकता कि शौकत को काटकर आपके शरीर पर कलम (graft) चढ़ा दें ?" बापू ने कहा : "कर्नल बेचारा तो इनके शरीर से भयभीत जो हो गया है ?"

बहुत बातें हुईं । उनके बीच में मुहम्मदअली ने पूछा : "बापू, एक इजाजत चाहिए । विदेशों में प्रचार के लिए नहीं, लेकिन वहाँ जो कुछ गलत प्रचार होते हैं, उनको मिटाने के लिए ।" इस पर बापू ने जो बमनजी से कहा था, वही कहा और बताया कि "मैं इजाजत देनेवाला कौन ? मुझे गांधीराज नहीं बनाना है", इत्यादि । फिर भी उन्होंने आग्रह किया, तब उनसे कहा कि "आप जो करेंगे वह सोचकर करेंगे, मैं आकर आपको उलाहना नहीं दूँगा । मेरी अपनी राय तो यह है कि बाहर कोई प्रचार करने की जरूरत नहीं ।"

जवाहरलाल ने तीन-चार बातों का स्पष्टीकरण चाहा :

(१) अंगोरा डेपुटेशन के लिए। बापू को आश्चर्य हुआ कि हिन्दू भी इस डेपुटेशन में जा रहे हैं । हमारा इससे क्या सम्बन्ध ? पोलैण्ड को स्वराज्य मिले तो क्या हम उन्हें बधाई देने के लिए डेपुटेशन भेजेंगे ? हम खुद स्वतन्त्र हों तो दूसरी बात है, परन्तु आज तो हम-हिन्दुओं को इसमें शामिल होना ठीक नहीं लगता । किसी विशेषण का उपयोग करना चाहते थे, परन्तु विशेषण मिला नहीं । inappropriate शब्द सूझा, परन्तु वह भी ठीक नहीं, जवाहरलाल ने uncalled for कहा तो बोले, यह शब्द भी मैं नहीं सोच रहा था । फिर अन्त में बोले कि यह हमें शोभा नहीं देता । मैंने कहा : "छोटे मुँह बड़ी बात करने जैसा होगा ।" बापू कहते हैं : "हाँ, कुछ ऐसा ही ।" फिर जवाहरलाल से कहा : "इस ढंग से किसीसे न कहना कि यह मैं तुम्हें सन्देश के रूप में कह रहा हूँ । पर पिताजी से बात करना ।"

जवाहरलाल ने मुहम्मदअली से बात कर ली थी । उन्हें कुछ निराशा हुई । जवाहरलाल को लगा कि हिन्दुओं को मोहरों के तौर पर इस्तेमाल करना चाहते हैं ।

(२) सिक्खों के बारे में जवाहरलाल ने बहुत बातें कीं । सब सुनने

के बाद बापू ने कहा : "हम उनका केवल नैतिक समर्थन कर सकते हैं। इससे अधिक कुछ भी नहीं कर सकते ।"

(३) स्वयं म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष रहें या नहीं, इस बारे में प्रश्न पूछा। बापू ने कहा : "दोनों जगह—कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी और चेयरमैन दोनों पद रखने योग्य हैं। म्युनिसिपैलिटी का काम तो हरगिज नहीं छोड़ा जा सकता। यह एक बड़ी जिम्मेदारी है और तुम्हें उसमें रहकर जितना काम हो, उतना करना ही है । जनरल सेक्रेटरी का पद भी नहीं छोड़ना है । इस काम में तुम दो-तीन सहायक रख सकते हो, परन्तु म्युनिसिपैलिटी का काम न छोड़ना।

२-२-'२४

सबेरे मि० एण्ड्रूज आये। बापू से बिस्तर पर बैठे-बैठे मिले। फिर बहुत बातें कीं। वे केनिया हो आये थे। इसलिए वहाँ की बातों से भरे थे । उन्होंने भारत-सरकार के दंभ की बातें कीं और फिर पूछा : "क्या सचमुच मुझे दिल्ली जाना है ?" बापू ने कहा : "क्या होनेवाला था ? कोई जरूरत नहीं।" फिर ब्रिटेन की नयी मजदूर सरकार के बारे में एण्ड्रूज ने बातें कीं। बापू बोले : "शायद नरम दलवालों से भी बुरे साबित हों। इन्हें तो केवल मजदूर के हित-साधन की चिन्ता होगी। और बातों में वे दूसरे दलों के साथ समझौते की वृत्ति रखेंगे।" एण्ड्रूज ने कहा : "सही है।" फिर यह कहा कि "मैं मँचेस्टर गार्डियन का तार से समाचार देनेवाला संवाददाता बन गया हूँ। स्कॉट सम्पादक हैं और उसे ज्यादा खबरें मैं ही पहुँचाऊँगा, इसलिए सच्चे समाचार मिलते रहेंगे।" आगे चलकर इस बारे में बातें कीं कि इंग्लैण्ड के लोगों के बापू के विषय में क्या ख्यालात हैं। उन्होंने बताया कि "केण्टरबरी के आर्चबिशप भी ऐसा मानते हैं कि आपने अहिंसक प्रतिकार छोड़कर हिंसा ग्रहण की, इसलिए आपको पकड़ा गया। मैंने आर्चबिशप को बताया कि यदि आप ईसाई धर्म छोड़ दें तो गांधी अहिंसा छोड़ें।" इस पर बापू ने कहा : "तब भी गांधी अहिंसा छोड़ ही देगा, सो बात नहीं; परन्तु उस समय शायद यह सम्भव हो।" फिर रोमां रोलां के समाचार सुनाये। उनकी बहन उनका घर सँभालती है। वह अंग्रेजी जानती है और रोलां नहीं जानते, इसलिए उनकी सेवा करती

है। फिर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बात चली। एण्ड्रूज कहते हैं : "गुरुदेव को भारी विजय मिली। काठियावाड़ में एक लाख से अधिक रुपया मिला।" बापू ने आश्चर्य से कहा : "काठियावाड़ से ?" एण्ड्रूज बोले : "हाँ।" इस पर बापू ने कहा : "नहीं, काठियावाड़ से नहीं, काठियावाड़ के राजाओं से मिला। भाई इन्दुलाल से मैंने यह बात सुनी, तब मुझे आनन्द भी हुआ और दुःख भी हुआ। आनन्द इसलिए कि गुरुदेव को इतनी बड़ी रकम मिली। परन्तु दुःख इसलिए कि इसमें तो सरकार की कृपा थी। प्रत्येक ठाकुर ने जो चन्दा दिया होगा, उसके पीछे पोलिटिकल एजेण्ट की स्वीकृति होनी ही चाहिए।" जमनादास ने खबर दी कि "पोलिटिकल एजेण्ट ने चन्दे में ५० रुपये देकर श्रीगणेश किया।" मैंने कहा कि "पोलिटिकल एजेण्ट की अच्छी सहायता थी। उसके सुझाव पर चन्दे में रकमें भरी गयी थीं।" फिर बापू ने बात जारी रखी : "आपको पता नहीं कि ऐसे चन्दे लेने जब लोग आते हैं, तब राजा कितने घबराते हैं। गोखलेजी के स्मारक के लिए चन्दा माँगने मैं उनके पास गया था, तब उनकी वृत्ति इस तरह की थी कि 'यह आफत कहाँ से आ गयी ?' इसलिए इस चन्दे की मेरे मन में कोई कीमत नहीं। मैंने जब सुना कि जामसाहब का चन्दा सबसे बड़ा है, तब तो मैंने सारी ही चीज भाँप ली।"

एण्ड्रूज इस सारी बातचीत में दिङ्मूढ़ जैसे बैठे रहे। एक भी उत्तर नहीं दिया।

× × ×

शाम को बंगाल के सुप्रसिद्ध नाटककार स्व० द्विजेन्द्रलाल राय के पुत्र श्री दिलीपकुमार राय आये। उन्होंने भारत के एक सुप्रसिद्ध गायक के रूप में ख्याति प्राप्त की है। वे सबेरे आ गये थे, और शाम को आकर गाना सुनाने का वचन दिया था। रात के कोई आठ बजे होंगे, श्री दिलीपकुमार सितार लेकर आये। कमरे में काफी श्रोता इकट्ठे हुए थे। गांधीजी के पलंग के सामने एक सोफे पर बैठकर दिलीपकुमार ने गाना शुरू किया :

"दीनदयाल गोपाल हरि वृन्दावन मोय बुला तो सही,
रो लूँ चरण पखार पलक टुक प्रेम प्रसाद चखा तो सही।

दूसरा भजन

तोर छोड़ के कोनकी आस करूँ, तेरे नगर में नित्य निवास करूँ,
दिन-रात यही अरदास करूँ, मोये बंसी की टेर सुना तो सही।

ब्रजदेश में तू परदेश में मैं, एक जोगी वियोगी के भेष में हूँ,
उपदेश में हूँ कलेश में हूँ मोये झाँकी विशाल करा तो सही।

बिरहावश नयन सुखाय रहे, रो-रो के समुद्र बहाय रहे,
दिन जाय रहे, अकुलाय रहे, अय नाथ मोर प्राण बचा तो सही।

मैं तोब नफल खाय के बैठ रहूँ, तोसे भूख-पियास कछू न कहूँ,
तोर प्रेम के जल में सदा मैं बहूँ, मेरे दुःख को आन मिटा तो सही।

ब्रज की बुहारि दिया ही करूँ, ते सेवा व पूजा किया ही करूँ,
तेरे धो-धो के चरण पिया ही करूँ, मेरी नाव को पार लगा तो सही।"

इस भजन के भाव, गानेवाले के स्वर की कोमल मोहकता और श्रोताओं की इस भजन के प्रति अनुकूल वृत्ति के कारण सारा वातावरण मानो थोड़ी देर के लिए उपर्युक्त प्रेमभीनी प्रार्थना से भर गया। इस जादूभरी जगह में सब लोग बैठे-बैठे गा रहे थे :

"मैं तो बनफल खाय के बैठ रहूँ, तोसे भूख-पियास कछू न कहूँ,
तेरे प्रेम के जल में सदा मैं बहूँ, मेरे दुःख को आन मिटा तो सही।
...मेरी नाव को पार लगा तो सही।"

परन्तु उसके प्रभाव से हृदय के तार झंकृत हो ही रहे थे कि इतने में इसी भाव का मीराबाई का सुप्रसिद्ध भजन इस भाई ने गाना आरम्भ कर दिया :

नोकर राखोजी—

चाकर राखो, बाग लगासूँ, नित उठ दर्शन करशूँ
साँवलिया गिरधारीलाल—
तमे नोकर।

राठोड़ घर दीकरी ने गिरधर वरनी नार,
तेरे भजन के कारणे मैं छोड़ दियो संसार—
तमे नोकर।

कहेरे मीरांबाई गिरधरना गुण, गोरखने गंभीर
एक ग्वालणने दर्शन दीधां जल जमनाना नीर—
तमे नोकर।

सब लोग जलजमना के नीर में वह रहे हों, ऐसा वातावरण हो गया। थोड़ी देर खूब शान्ति रही। फिर श्री दिलीपकुमार ने बात छेड़ी और जो चर्चा उत्पन्न की, उसका अक्षरशः वर्णन उन्होंने भेजा है :

"महात्माजी, पाठशालाओं और विद्यालयों में संगीत की बड़ी अवहेलना हुई है।"

बापू बोले : "हाँ, मेरी तो यही शिकायत है।"

"सचमुच मैं तो अब तक मानता था कि आप संगीत जैसी सभी ललित कलाओं के विरुद्ध होंगे। परन्तु आज आपकी राय सुनकर मुझे खुशी हुई।"

"संगीत के विरुद्ध में ?" इस प्रकार एकाएक गांधीजी बोल उठे, मानो उनके साथ भयंकर अन्याय हो रहा हो। "हाँ, हाँ, परन्तु मुझे मालूम है कि मेरे बारे में लोग कई गप्पें हाँकते हैं, जो इतनी अधिक बढ़ गयी हैं कि उनको फैलने से रोकना लगभग असंभव हो गया है। इसलिए जब मैं कहता हूँ कि मैं कला-कोविद हूँ, तब सबको हँसी आती है।"

"यह तो अच्छा है। मैंने ऐसा माना था कि आपने तपस्या को ही प्रधानता दी है और उसमें संगीत की शायद ही गुंजाइश हो।"

इस पर गांधीजी ने आग्रहपूर्वक कहा : "हाँ, परन्तु मैं तो कहता हूँ कि तपस्या इस जीवन में सबसे बड़ी कला है। संगीत के विरुद्ध तो मैं हो ही कैसे सकता हूँ ? मैं तो भारत के धार्मिक जीवन का विकास संगीत के बिना सोच ही नहीं सकता। मैं संगीत और साथ ही तमाम कलाओं का शौकीन हूँ। कला के नाम से आजकल कई चीजें चल रही हैं, उनके विरुद्ध में जरूर हूँ। इस कला के लिए हृदय चाहिए, इसे समझाने के लिए

कोई शिक्षा और ज्ञान नहीं हो सकता। आप सत्याग्रहाश्रम जायँ तो वहाँ दीवारें खुरदरी चूने में धुली हुई ही देखेंगे। परन्तु इससे कोई यह बात नहीं कि वहाँ कला नहीं। कारण यह है कि दीवार का हेतु सरदी और धूप से रक्षा करना है। मेरे लिए तो सृष्टिकर्ता के बनाये हुए नभोमण्डल में कला के अनन्त भण्डार भरे हैं। उन्हें देखकर आँखें कभी थकती ही नहीं, हर बार कुछ-न-कुछ नया देखने को मिलता रहता है। आप कितना ही भव्य चित्र बनायें, परन्तु वह क्या अगणित तारिकाओं से जटित नभोमण्डल की भव्यता को पा सकता है? उनका असर ही और है। ईश्वर की इस श्रेष्ठ कलाकृति के सामने मनुष्य की तुच्छ कला की क्या गिनती है?"

दिलीपबाबू ने कहा : "मैं भी यह नहीं मानता कि कला जीवन से अधिक है।"

इस पर बापू ने अपनी बात जारी रखी और गीता के इस वचन को कि **'योगः कर्मसु कौशलम्'** अर्थात् कर्म में कुशलता ही योग है, बदलकर कर्म में कुशलता ही उत्तम कला है, इस तात्पर्य के अनुसार यों कहा : "जीवन सब कलाओं से अधिक है। मैं तो मानता हूँ कि जिसने उत्तम जीवन जीना जान लिया, वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवन की पृष्ठभूमि के बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है? कला का मूल्य जीवन को उन्नत बनाने में है। जीवन ही कला है। कला जीवन की दासी है और उसकी सेवा करना ही उसका काम है। इस अर्थ में मैं कला को मानता हूँ, उसकी कद्र करता हूँ। कला को विश्व के प्रति जाग्रत होना चाहिए, कला को जीवन के प्रति जाग्रत होना चाहिए।"

[उपर्युक्त संवाद महादेवभाई की हस्तलिखित डायरी में से दिया गया है। बापू पूना के सासून अस्पताल में थे, तब तत्सम्बन्धी कुछ लेख उन्होंने 'नवजीवन' में लिखे हैं। वे नीचे दिये जाते हैं। जो बातें ऊपर के वर्णन में आ जाती हैं और लेखों में दोहरायी जाती हैं, वह भाग छोड़ दिया गया है। फिर भी कुछ पुनरुक्ति तो हो ही जाती है। —सं०]

२४-१-'२४

बापू के दर्शन

(नवजीवन, ता० २७-१-१९२४)

पिछले सप्ताह बापू के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सेवा करने का तो नहीं ही मिला, क्योंकि अंग्रेज और एंग्लो-इण्डियन नर्सें आजकल उनकी सेवा कर रही हैं।

आठ दिन हुए श्री वल्लभभाई के साथ बापू के प्रथम दर्शन किये। २६ महीने के बाद ये पहले दर्शन थे। बम्बई के उत्पात के समय* उन्हें देखा था। उसके बाद पिछले सप्ताह दोबारा देखा। उस दिन तो उनकी अशक्ति का पार नहीं था। उनका धीरे-धीरे बातचीत करना देखकर घबराहट होती थी। बिस्तर पर चादर में से केवल उनका मुँह ही बाहर दिखाई देता था। बाकी शरीर मानो इतना सूक्ष्म हो गया था कि ढूँढ़ने से नहीं मिलता था। उन्हें बोलने को प्रेरित करना या बोलने देना भी निर्दयता थी। परन्तु उनका प्रेम-सागर रोकने से भी कैसे रुकता? हमें देखते ही वह सागर उनके हास्य के रूप में उमड़ पड़ा और अपने-आप ही अपनी स्थिति की बात शुरू कर दी। अथ से इति तक कैसे अस्पताल में आये, यह हमें बताया। दूसरों के कहने से हमने जाना होगा, यह तो वे जानते ही होंगे, परन्तु प्रेम की अतिशयता तो वही बात हमें अपने मुँह से दुबारा सुनाने में थी। इस प्रेम के हम पात्र हुए, इससे क्या मैं अपने को बधाई दूँ? हरगिज नहीं। सूर्य का प्रकाश तो पृथ्वी की दसों दिशाओं में और हरएक कोने में बराबर ही पड़ता है। हमें यह प्रेम प्राप्त हुआ, यह हमारा सौभाग्य तो है ही।

क्योंकि अहमदाबाद से चलते समय मिलने की आशा नहीं थी। सरकार इजाजत देगी या नहीं, अस्पताल के अधिकारी मिलने देंगे या नहीं, यह शंका होती ही रहती थी। परन्तु यहाँ आने के बाद सारी

---

* सन् १९२१ के नवम्बर-दिसम्बर में महादेवभाई अलाहाबाद में पकड़े गये थे और उन्हें ता० २३-१२-'२१ के दिन एक साल की सजा हुई थी। इसलिए सन् १९२२ के मार्च में जब बापू को सजा हुई, उस वक्त महादेवभाई बाहर नहीं थे।

शंकाएँ उड़ गयीं। बापू को जिनसे मिलने की इच्छा हो, उनसे मिलने की अनुमति डॉक्टरों ने दी है।

उसके बाद तो आज तक बापू के कमरे से बाहर पहरा देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और तीन बरस पहले बीमारी के समय में इसी प्रकार पहरा लगाता था, वे दिन याद आते हैं।

इन आठ दिनों के दरमियान बापू को दिन-दिन इतना सुधरते देखा है कि आज इतना लिखने का धीरज मुझमें रह सकता है। पहले दिन एक पंक्ति तक लिखने का धीरज भी नहीं था।

अपनी सेहत की कथा कहते हुए उन्होंने बीच-बीच में उनकी सेवा और—उन्हींका शब्द-प्रयोग करूँ तो—लिहाज के लिए अधिकारियों के गुणगान किये। 'इतनी बढ़िया सेवा-शुश्रूषा हमसे हरगिज नहीं हो सकती।' इन अधिकारियों को, नर्सों को अपने प्रेम से ओतप्रोत कर दिया है, इसलिए उनके कमरे में इसी प्रेम का वातावरण प्रकट हो रहा है। जिस कोमलता से डॉक्टर उनके पास आते हैं, जिस मिठास से उनके समाचार पूछते हैं, उसे देखकर कठोर-से-कठोर पर भी असर पड़े बिना नहीं रहता। एक अंग्रेज स्त्री नर्सों की मुखिया है। वह तो मानो बड़े समुद्र की लहरों पर हिलोरें लेती हुई नाव की तरह जब आती है, तब हँसती ही रहती है उसे देखकर बापू से भी हँसे बिना नहीं रहा जा सकता था। बापू की आँख शीतल हो, इस तरह से कमरे को खुद सजाती, सुन्दर रोशनीवाले कलश लाकर उनमें फूल रखकर गांधीजी को कमरे का अपना किया हुआ श्रृंगार सराहने के लिए कहती! रात-दिन सेवा करनेवाली दो जवान एंग्लो-इण्डियन बहनें हैं। दिन में सेवा करनेवाली के साथ मेरा अच्छा परिचय हो गया है। उसके प्रेम का पार नहीं। "यह मेरा पहला ही निजी मामला है। चार वर्ष अध्ययन करके मैं अस्पताल से जा रही थी कि इतने में गांधीजी आ गये और पहला केस मुझे उन्हींका मिला। मेरे सेवा-कार्य का यह कैसा मंगल प्रारम्भ! बीमार की सेवा करने में हमेशा ही मजा नहीं आता, अक्सर अरुचि भी होती है। परन्तु सेवा में सच्ची लज्जत आयी हो तो इस रोगी की सेवा में।" ये उस बहन के उद्गार हैं। उसकी रिपोर्टें डॉक्टर देखते हैं और देखकर क्या कहते हैं, इस बारे में मुझे एक बार कहने लगी :

"आज डॉक्टर ने मुझसे कहा कि 'तुम अपनी रिपोर्टें ऐसे मोती के दाने जैसे अक्षरों में तो कभी लिखती नहीं थीं!' मैंने उनसे कहा : 'क्योंकि कभी ऐसे रोगी भी नहीं मिले थे", बाहर जाने के बाद अपनी सहेलियों के साथ मिलना हो तब वहाँ भी गांधीजी की ही बात करती है। इस पर कभी-कभी वे बहनें मजाक करके कहती हैं: 'क्यों, आज क्या गांधीजी की कोई बात नहीं करनी है? तुम तो अपने रोगी पर मोहित हो गयी हो!' वह तुरन्त उत्तर देती है: 'तुम गांधी को जान लो तो तुम भी हमेशा उसीकी बात करती फिरोगी।'

डॉक्टरों की क्या बात कहूँ? बड़े डॉक्टर से छोटे तक सब उन पर मुग्ध हैं। कर्नल मॅडक सरकारी अधिकारी के नाते अपनी जिम्मेदारी समझते हैं। परन्तु वे भी गांधीजी के प्रेम से घायल हैं। 'मेरे नाम उपकार, आभार और बधाई के तार पर तार और पत्र पर पत्र आ रहे हैं। मैं सबको किस प्रकार उत्तर दूँ? अखबारों के द्वारा दूँ? मैंने क्या सेवा की है? मैंने तो अपना कर्तव्य-पालन किया है', यह कहते-कहते उनके मुँह पर शर्म की शिकन पड़ जाती है। सब भूल गये हैं कि यह कोई सरकार का कैदी आया है। तमाम यह मानते दीखते हैं कि किसी महापुरुष की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

× × ×

बापू के स्वास्थ्य की बात कह दूँ। बापू में शक्ति आती जा रही है। घाव जो लगभग नौ इंच का चीरा और एक इंच गहरा गढ़ा है, भरता आया है। वह नौ इंचवाला चीरा चमड़ी के ऊपर का ही है; उसके टाँके तोड़ दिये गये हैं। गढ़े में से अभी जरा-जरा पीप निकलती है, इसके अन्दर रखी हुई बत्ती अभी जारी है। यह पीप जब तक आती है, तब तक बिलकुल आराम नहीं कहा जा सकता, परन्तु बुखार अब बिलकुल नहीं है। ९८ के बजाय ९७, ९७।। के करीब तापमान रहता है और यह तापमान बापू का साधारण तापमान है। पहले उनकी उँगली और हाथ काँपते थे, अब दोनों में ताकत आयी है। पलंग पर एक जंजीर लटका दी गयी है। उसे दोनों हाथों से पकड़कर अब स्वयं ही बिस्तर में बैठ सकते हैं। भोजन में एकदम सबेरे ही थोड़ा गरम पानी और नीबू, बाद में पाँच बजे गरम पानी और दो-तीन चम्मच शहद या गरम दूध, कोई तीन

घंटे बाद दूध अथवा जरा-सी काफीवाला दूध और एक नारंगी; दोपहर में भी यही; शाम को पाँच बजे दूध, नारंगी और मुनक्का। खुराक धीरे-धीरे पहले के बराबर हो जायगी। अब दो से ढाई पौण्ड दूध लेने लगे हैं। पहले पेट के बड़े घाव के कारण अँतड़ियाँ साफ होने के लिए एनिमा की जरूरत पड़ती थी। यह सफाई अब अपने-आप हो जाती है। दो दिन हो गये, एनिमा की आवश्यकता नहीं पड़ती। जेल में कभी नींद नहीं ली होगी, उसका बदला आजकल ले रहे हैं। नींद आठ-साढ़े आठ घंटे अच्छी तरह आती है और दिन में आधा-पौन घंटा आती होगी सो अलग।

इस प्रकार सब तरह से स्थिति संतोषजनक है। बिस्तर से उतरकर कुरसी पर बैठने की शक्ति आने में अभी देर लगेगी और घूमने-फिरने के लिए तो शायद महीने-दो महीने लग जायँ; परन्तु यह तो कहा जा सकता है कि बीमारी और जोखिम दोनों चली गयीं।

मैंने नर्सों और अधिकारियों के प्रेम का चित्र ऊपर दिया है। लोगों के प्रेम की तो बात ही नहीं की। क्योंकि वह तो इतना जगजाहिर है कि उसकी बात करने की जरूरत नहीं। परन्तु इस प्रेम के प्रकारों का वर्णन कर दूँ। जाने-अनजाने लोगों के सुबह से रात तक तार आते हैं, जिनके जवाब देने में ही देवदास की दिनभर की सेवा पूरी हो जाती है। परन्तु यह प्रेम तारों और पत्रों में ही समाप्त नहीं हो जाता। एक दिन तिरुवाड़ी (तंजोर) से वहाँ के निवासी लिखते हैं कि हमने अमुक देवता के मन्दिर में अभिषेक और अर्चना की थी और पंचनदीश्वर की विभूति और धर्मवर्द्धिनी अंबा का कुंकुम प्रसाद गांधीजी के लिए भेज रहे हैं, तो दूसरे दिन काशी से समाचार आते हैं कि काशी के ब्राह्मणों ने मृत्युञ्जय महादेव के मंदिर में जाप किये थे और गांधीजी अच्छे हो जायँ, तब तक प्रतिदिन अनुष्ठान करेंगे। साथ ही गंगाजल का ताम्रपात्र तथा महादेव को चढ़ाया हुआ निर्माल्य होता है। एक दिन शियाली (तिरुपुर) जैसे प्राचीन तीर्थ से अबीर-गुलाल आती है, तो दूसरे दिन डिंडीगल जैसे स्थान से पवित्र भस्म आ जाती है। एक रोज कोई पारसी बहन अपना खून भेजने की इच्छा प्रकट करती है, तो कोई अंग्रेज बहन बताती है कि मैं हर रोज आपके लिए प्रार्थना करती हूँ। खादी की पुजारिन अवन्तिकाबहन लिखती है कि जब तक बापू बीमार हैं, तब तक बापू के बजाय दो घण्टे

अधिक कातूँगी। कोई बहन चुपचाप एकाशन करती है, तो कोई अंग्रेज महिला खाने में कई तरह की सावधानी रखने का सुझाव देती है। जो सैकड़ों मनुष्य प्रतिदिन बापू के दर्शन करने आते हैं और जिन्हें इनकार करना पड़ता है, उनमें से एक अंग्रेज है। इस बूढ़े को कोई इनकार कर ही नहीं सकता। हर दूसरे दिन अपने बाग के सुन्दर-से-सुन्दर गुलाब लेकर यह अंग्रेज आता है, गांधीजी को फूल देता है और दो-तीन वाक्यों में अपना प्रेम उँड़ेलकर चला जाता है। 'ओ हो, आज तो आप परसों से बहुत ही अच्छे लगते हैं। चिन्ता न कीजिए, जल्दी ही जैसे थे वैसे फिर हो जाइए। आप स्वस्थ हो जायँगे, इसमें मुझे तो शंका ही नहीं। देखिए, मैं कितने वर्ष का हो गया, जानते हैं? ८२ का हो गया। आपको कितने हुए? (बापू बोले, '५५') ओ हो, यह तो कुछ भी उम्र नहीं। जल्दी अच्छे हो जाइए।' वह एक पेन्शनर है और अब भी सरकारी नौकरी करता है। एक दिन तो कहता है: 'कहिए मि० गांधी, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?' बापू बोले: 'नहीं, मेरे लिए प्रार्थना कीजिए, इतनी ही सेवा चाहता हूँ।' वह कहता है: 'प्रार्थना तो करता ही हूँ, परन्तु क्या कोई और सेवा नहीं कर सकता? मुझे अपना भाई समझिए।' इस पर बापू ने कहा: 'जरूर, मेरे अनेक अंग्रेज मित्र ऐसे हैं, जिन्हें मैं अपने भाई से अधिक मानता हूँ।' बाहर निकलते ही मुझसे कहता है: 'यह तो अद्भुत मनुष्य है। मैं दिन में तीन बार इसके लिए प्रार्थना करता हूँ कि वह मेरे जैसा बूढ़ा हो। अनेक अंग्रेज प्रार्थना करते हैं, अनेक अधिकारी इसके समाचार पूछते हैं।'

प्रेम का यह चित्र एक प्रसंग का उल्लेख किये बिना अधूरा ही रहेगा। छोटे-बड़े बहुत मिल गये हैं—लम्बी बातें तो बापू कर सकें, ऐसी स्थिति नहीं, केवल दर्शन करने के लिए और एक-दो बोल उनके मुँह से सुनने के लिए अनेक लोग दूर-दूर से आते हैं—हकीमजी, मौ० अबुल कलाम आजाद, मुहम्मदअली और जवाहरलाल जब पूछते हैं कि 'बापू से मिल तो सकेंगे?' तब श्री जयकर जैसे लिखते हैं कि 'अब तक जान-बूझकर नहीं आया। अब आने का इरादा रखता हूँ, सो केवल इतने भर के लिए कि मेरे मित्र नटराजन दूर से उनके दर्शन कर सकें।'

हरगिज नहीं जा सकता।' श्री० वमनजी को वापस उतारा गया, जल्दी-जल्दी गाड़ी में से सामान निकलवाया गया और पण्डितजी वापस आये। सासून अस्पताल पहुँचे तो बापू उठ गये थे।

सबको लग रहा था कि शौकतअली आयेंगे तब क्या होगा? वे आये, इसकी खबर तो सारे अस्पताल में फैल गयी। बगल में लकड़ी डालकर उस पर (बैसाखी के सहारे) चलनेवाले और पहियेदार कुर्सी में बैठकर चक्कर लगानेवाले बीमार भी उनके समाचार सुनकर दौड़ आये और हम जिस कमरे में बैठते हैं, वह कमरा बीमारों से भर गया। सबके साथ शौकतअली ने हाथ मिलाया। बापू के पास जाने पर पहली बात करने का हक तो बी अम्मां का ही था। वे दुआ दे चुकीं, तब तक शौकतअली ज्यों-त्यों करके अपना उभार रोके रहे। इसके बाद अपने सफर की बातें, अपने खादी का ढोल बन जाने की बातें और दूसरी कई बातें करके उन्होंने बापू को हँसाया। इतना ही कहूँ तो वर्णन पूरा नहीं होगा। ऐसा कहा जाता है कि हँसने से इन्सान का खून बढ़ता है। शौकत-अली के शरीर के हिसाब से बापू का खून बढ़ाने की उनकी जिम्मेदारी तो थी ही। और उनकी एक बड़ी खूबी थी। वे शायद ही आपको बोलने देंगे। स्वयं ही अधिकतर बातें करते थे। बिछौने में पड़े हुए बापू तो बोलते ही क्यों? इसलिए न बोलने के बावजूद खिलखिलाकर हँसते ही रहे हों, ऐसा दिन बापू का ऑपरेशन के बाद यह पहला ही निकला और सबसे ज्यादा हँसाकर बापू का थोड़ा खून बढ़ाने का दावा बड़े भाई जरूर कर सकते हैं। परन्तु हँसा तो कोई मसखरा ही सकता है। शौकतअली के साथ मुलाकात की बात अभी अधूरी है। लालाजी के उत्पन्न किये हुए करुणा के वातावरण को हलका करने का काम बापू ने ही ले लिया था। बापू को और उनके आसपास के सभी को खूब हँसा-कर उन्हें गम्भीर बनाने का काम तो शौकतअली ने ही किया। जाते-जाते बापू के पैर सहलाने लगे। 'महात्माजी इतने दुबले हो गये हैं कि पैर तो दिखाई नहीं पड़ते हैं।' सचमुच ओढ़े हुए में बापू के रक्त-मांस-रहित पैर ढूँढ़ निकालना कठिन था। अन्त में मिल गये तो ओढ़ा हुआ सब कुछ उठाकर पैरों को खुला करके अत्यन्त प्रेम और करुणाभरी आँखों से दोनों पैरों को चूम लिया।

बाद में राजगोपालाचार्य आये, जमनालालजी आये, शंकरलाल आये। इन सब प्रेम के पागलों के चित्र देने लगूँ तो मैं स्वयं मनुष्य न रहकर निष्ठुर कला का उपासक बन जाऊँ। कुछ बातों की शोभा न कहने में ही है। राजगोपालाचार्य और बापू की भेंट के भीतर जरा दृष्टिपात करने में औचित्य का भंग नहीं होता, यह समझकर एक छोटा-सा प्रसंग कह देता हूँ। बापू राजगोपालाचार्य की तबीयत पूछने लगे। उनकी बार-बार आनेवाली खाँसी में ही बापू को अपना उत्तर मिल जाता था। अन्त में बापू के प्रश्न बढ़ने लगे, तो राजगोपालाचार्य ने पलटकर सवाल किया :

'परन्तु आप आहार कब बढ़ायेंगे ?'

बापू बोले : 'तो क्या आपको बात बदलनी है ? सही बात है। कठौत कुण्डी पर क्या हँसे ?'

इस पर राजगोपालाचार्य ने कहा : 'नहीं, नहीं, मगर आप तो बिलकुल आधे हो गये दीखते हैं। मैं आशा रखता था कि आप इससे तो अच्छे ही होंगे।'

बापू बोले : 'हाँ, परन्तु मैं शायद जितना हूँ, उससे भी दुबला था। लेकिन आपको तो जैसा होना चाहिए, आप उससे भी दुबले हैं।'

इस प्रकार राजगोपालाचार्य का मुँह बन्द करनेवाले की वृत्ति हकीमजी के सामने दूसरी ही थी। हकीमजी मुहम्मदअली के साथ आये थे। साथ ही बड़े भाई ने भी फिर से आने का अवसर ले लिया। हकीमजी खुद बहुत दुबले हो गये हैं। बापू ने उनसे कुशलता पूछी।

हकीमजी ने पूछा : 'तकलीफ तो बहुत हुई होगी ?'

बापू : 'हाँ, क्या कहना ?'

इस पर हकीमजी ने फिर पूछा : 'सबब मालूम हुआ ?'

बापू ने कहा : 'सख्त गुनाह किया होगा, उसकी सजा खुदा दे रहा है।'

मुहम्मदअली स्तब्ध बैठे थे, अब और स्तब्ध हुए, आँखें पोंछने लगे। 'जिसे मानव-समाज निष्कलंक मानता है, उसे भी खुदा ऐसी सजा देता होगा, उससे भी अपराध होते होंगे, तब तो पामरों की क्या बात ?'

सभी यह जवाब सुनकर स्तब्ध हुए और अपने अन्तर से ऐसा ही कुछ प्रश्न पूछने लगे। और भी थोड़ी-सी बातें हुईं, परन्तु वे सब ऐसी ही

उदासी से होती रहीं। इस उदासी को कौन तोड़ता ? इसे बड़े भाई, छोटे भाई और बापू तीनों ने ही तोड़ा। शौकतअली जाते-जाते कहने लगे :

'महाराज, अच्छी तरह से खाइए। हम तो आपके बिना काम चला लेंगे, लेकिन आपको अच्छा हो जाना चाहिए। आप बहुत कम खाते हैं। आप ज्यादा खाइए।'

बापू : 'हाँ, खाऊँगा; लेकिन मोटा हो जाऊँगा, तो फिर आप मुझे जेब में कैसे रख सकेंगे ?'

इस पर मुहम्मदअली ने कहा : 'बापू, कर्नल मॅडक से कहिए कि शौकत को काटकर थोड़ा टुकड़ा आप पर लगा दे।'

बापू हँसकर बोले : 'कर्नल बेचारा शौकत को देखकर डर रहा है तो ?'

इस प्रकार सबको हँसाकर बापू उन्हें अपने सम्बन्ध में चिन्ता करने से मुक्त कर रहे हैं। परन्तु बापू को देखकर सचमुच हँसने का समय आने में बहुत देर लगेगी। बापू अभी बिस्तर पर ही हैं। घाव अब और भर गया है, परन्तु पूरा नहीं भरा है, अभी आधा इंच तक गहरा है, जितने भाग में टाँके लगाये गये थे, वह भाग भर गया है। परन्तु जब तक पूरा न भर जाय, तब तक डॉक्टर बिस्तर से उठने नहीं देंगे। अभी बिस्तर से उठकर बैठने के लिए सिर पर की जंजीर पकड़नी ही पड़ती है। खुराक बढ़नी चाहिए थी, परन्तु बढ़ी नहीं। कुछ कब्ज हो गया, इसलिए फिर पेट की सफाई होने के लिए कुछ दवा लेनी पड़ी। पाँच चीजों का व्रत तो जारी ही है। केसकेरा और पैराफीन लें, तो खाने की चीजें तीन ही रह जाती हैं! सर्जन बेचारा कह रहा था कि खाने के इन कड़े नियमों के कारण हम इन्हें पोषण किस तरह दे सकते हैं ? 'इन्हें बिलकुल अच्छा होने में तो बहुत समय लगेगा और वह भी तभी, जब कोई अच्छा डॉक्टर हमेशा साथ हो।' इस प्रकार खुराक तो पहले से कुछ कम हुई है। परन्तु बापू को ऐसा लगता है कि शक्ति कुछ-कुछ बढ़ती जा रही है।

बापू के स्वास्थ्य के विषय में बोलते हुए एक बात कह दूँ ? बहुतों को लगा होगा कि केवल लँगोटी में रहनेवाले गांधीजी इस बड़ी बीमारी में कैसे रहे होंगे ? इसका उत्तर मुझे दे देना चाहिए। बापू को जेल में तो खादी की लँगोट और खादी की चादर वगैरह इस्तेमाल करने दी जाती

थी। परन्तु अस्पताल में क्या हो ? वहाँ माँग तो हो ही नहीं सकती। जेल में भी माँग तो हरगिज नहीं हुई थी। बकरी का दूध न दें, तो उसके बिना काम नहीं चल सकता। खादी के कपड़े न दें, तो उसके बिना भी काम नहीं चल सकता। सरकार गाय का दूध देने को तैयार हो, तो उसे नियम की बात कहकर बकरी का देने के लिए कहा जा सकता है। परन्तु सरकार खादी दे, यह आग्रह तो हरगिज उचित नहीं कहा जा सकता। अस्पताल में तो ऐसा आग्रह सर्जनों और डॉक्टरों को परेशान कर दे, उन्हें बेकार साबित कर दे। और खादी की कहाँ-कहाँ माँग की जाय ? मरहम-पट्टी के लिए खादी की पट्टी की माँग की जाय ? परन्तु बापू ने सर्जनों और नर्सों, सबको निर्भय कर दिया। उन्होंने अस्पताल के कपड़े पहने, अस्पताल की चादर ओढ़ी, अस्पताल में जो मिला, उसे स्वीकार किया। बकरी का दूध पीते हैं, उसमें चीनी विदेशी होती है। विदेशी चीनी बहुत समय से बापू इस्तेमाल नहीं करते। परन्तु स्वदेशी चीनी की माँग कैसे की जाय ? इसलिए दूध चीनी के बिना पीते हैं। इस प्रकार अपनी स्वाभाविक मधुरता का पल-पल में परिचय देते हुए बापू सबको धन्य कर रहे हैं। श्री शास्त्री जब दिल्ली जाते हुए बिदा लेने आये, तब इस स्थिति का एक वाक्य में हृदयंगम वर्णन कर गये थे : 'सारा देश धन्य हुआ है—परन्तु सबसे अधिक धन्य मैं हुआ हूँ।'

मेरा खयाल है कि श्री शास्त्री के वाक्य का दूसरा भाग तो सभी कह सकते हैं। और यों कहते-कहते जिन असंख्य प्रसंगों से मैं धन्य हुआ हूँ, उनमें से अस्पताल के एक प्रसंग का उल्लेख करने को जी चाहता है। एक रात अस्पताल में बापू के कमरे में मंद-मंद संगीत चल रहा था। पास जाकर देखा तो बापू धीमे-धीमे गा रहे थे और पास बैठकर गानेवाले को कड़ी पूरी करके दे रहे थे :

'अब की टेक हमारी लाज राखो गिरिधारी'

बापू को गाते देखने का मेरे उनके साथ के लम्बे समागम के बावजूद यह पहला ही मौका था।

इस प्रकार गिरिधारी को लाज रखने की प्रार्थना करते हुए बापू देश की लाज रखने की प्रार्थना कर रहे हैं।

× × ×

वे जेल में बैठे थे, उनके बिना घबराकर कर्तव्य-विमुख बने हुए हमको ईश्वर ने फिर से उनके दर्शन कराये, क्या यह काफी नहीं है ? यह दर्शन ही अमूल्य अवसर है। कोई-कोई सन्देश माँगने के लिए ठहरे होंगे, तो अनेक इस दर्शन से ही प्राण पाकर सचेत होकर अपने मार्ग पर आगे बढ़े हैं। श्री जयकर ने बापू के कमरे से लौटकर कहा था : 'बापू के दर्शन हो गये, यह क्या कम है ?' जो लोग बापू के जमाने में जनमे और जिये हैं, उनका क्या कम सौभाग्य है ? इस सौभाग्य से भारत चाहे तो अपने को मुक्त कर सकता है।

ये दिन

(नवजीवन, ता० १०-२-१९२४)

बापू छूटे। ५ फरवरी १९२४ के सबेरे ८ बजे। यह दिन भी १८ मार्च १९२२ की तरह ही याद रहेगा। १८ मार्च का दिन घोर अन्याय का था, ५ फरवरी कुछ हद तक न्याय का कहा जा सकता है। हाँ, इस न्यायकृत्य में करनेवाले की इच्छा नहीं थी और इच्छा न हो तो मधुरता तो कैसे कही जाय ?

सन् १९१९ के मार्च मास में जब 'यंग इण्डिया' के एक लेख के लिए गांधीजी और मुझ पर हाईकोर्ट में मामला चला और अदालत की मान-हानि का हम पर आरोप लगा, तब मुकदमा शुरू होने के दूसरे दिन लेबर्नम रोड, गामदेवी में उल्लेखनीय घटनाएँ घटी थीं। बहुत-से मित्र गांधीजी के पास आकर उनसे प्रार्थना करने लगे थे :

"गांधीजी, इस बार आप माफी माँग लीजिए। माफी नहीं माँगेंगे, तो हम आपका बचाव नहीं कर सकेंगे। कानून की दृष्टि से आपने अपराध किया है और अदालत आपको सजा देने के लिए बाध्य होगी। ऐसे ही मामले में इंग्लैण्ड में पार्लियामेण्ट के सदस्यों को छह-छह महीने की सजा हो चुकी है। सरकार आपको किस आधार पर छोड़ेगी ? और सरकार आपको न छोड़े, तो हम कानून जाननेवाले सरकार को दोष नहीं दे सकते !" यह दलील उस समय मिलने आये हुए श्री जिन्ना के शब्दों में ही रख रहा हूँ।

परन्तु गांधीजी ने उन्हें जो उत्तर दिया, वह भी उतना ही स्पष्ट था : 'आपकी बात सही है। कुछ भी हो, परन्तु माफी नहीं माँगी जायगी और मेरा कहना मानें तो सरकार मेरा कुछ नहीं कर सकेगी।' श्री जिन्ना स्तब्ध रह गये। उन्होंने केस-रिपोर्ट निकालकर बताया कि 'गांधीजी, आप गलत आग्रह कर रहे हैं।' परन्तु गांधीजी टस से मस नहीं हुए और अन्त में गांधीजी ही सही निकले और उनकी चिन्ता करनेवाले मित्रों की चिन्ता व्यर्थ साबित हुई। सरकार कुछ नहीं कर सकी थी। जब-जब मुझसे पूछा जाता कि इस बार सरकार बापू को छोड़ेगी या नहीं, तब-तब मैं सबसे कहता : 'बुद्धि नहीं कहती कि सरकार छोड़ेगी, परन्तु अन्तर में से आवाज आती है कि छोड़ेगी, क्योंकि बापू इस बार कहते हैं कि सरकार का साहस नहीं कि वह मुझे फिर से जेल में ले जाय।' और बापू फिर एक बार सही निकले। उस समय जेल में जाने का बादल मँडरा रहा था, तब वे जितने शान्त थे, उतने ही शान्त वे तब भी थे, जब मामला खत्म होने के दो दिन बाद मालूम हुआ कि सरकार ने कुछ नहीं किया। इस बार भी ५ फरवरी को सबेरे वे उतने ही शान्त थे, जितने १८ मार्च को थे—शायद उनकी उमंग १८ मार्च जैसी न हो।

इन घड़ियों का वर्णन करने के लिए तो मैं पूना नहीं रह सका था। थोड़े ही घण्टे पहले मुझे वहाँ से चल देना पड़ा था। परन्तु उनका वर्णन करने के लिए मुझे अपने से अधिक अच्छे साक्षी मिल गये हैं। भाई एण्ड्रूज बुधवार को ही यहाँ आये—बापू का सन्देश लेकर और उन्होंने मुझे उस समय का हू-ब-हू चित्र दिया है, जब हुक्म मिला।

सुबह के साढ़े सात बजे थे। भाई एण्ड्रूज घर से चाय पिये बिना बापू के पास आकर बैठ गये थे। उन्होंने बापू से कहा : 'देखिए, मैं कितना संयम पालन कर रहा हूँ। आज चाय पिये बिना आया हूँ।'

बापू ने पूछा : 'किसलिए ?'

एण्ड्रूज बोले : 'आपके पास दो घड़ी जल्दी आकर बैठने के लिए।'

इस पर बापू ने मधुर कटाक्षयुक्त उत्तर दिया : 'हुं। मतलब, एक इच्छा का त्याग किया, परन्तु दूसरी इच्छा के कारण ही न उसका त्याग किया ?' एण्ड्रूज खिलखिलाकर हँस पड़े।

इसके बाद एण्ड्रूज के एक लेख को ध्यान में रखकर बापू ने कहा : 'इस लेख में लिखी हुई अधिकांश बातों से मैं सहमत हूँ। हमारे जैसा उत्तम सुखी विवाहित जीवन का उदाहरण आपको कहाँ मिलेगा ?' और वे पूज्य बा के गुण गाने लगे। परन्तु यह गुण-गान करके भी आखिर तो बापू ने एण्ड्रूज को बताया कि 'हमारा सुख तो तब से बढ़ने लगा, जब से ब्रह्मचर्य-जीवन शुरू हुआ और आज वह पराकाष्ठा को पहुँच गया है।'

एण्ड्रूज को पता लगा कि इस अन्तिम वचन में विवाहित जीवन पर बापू की समीक्षा आ जाती है।

यह विनोद हो रहा था कि इतने में एक अनोखी बात हो गयी। ७।। बजे कर्नल मॅडक कैसे ? हर रोज तो ९ बजे घाव धोने और पट्टी बाँधने आते हैं। आज ७।। बजे उनके दर्शन कैसे ? परन्तु वे तो आ गये। उनके हाथ में एक पत्र था लाल मुहर लगा हुआ। ऐसा लग रहा था कि वे हाँफते-हाँफते आये थे। बापू के मन में आया कि चलो, दो भले अंग्रेजों का परिचय करा दें। इसलिए बापू ने कहा : 'कर्नल मॅडक, ये मेरे परम मित्र मि० चार्ली एण्ड्रूज हैं।' यह वाक्य पूरा होने से पहले ही सर्जन ने अधीर होकर कहा : 'हाँ, परन्तु मैं इतनी जल्दी आया हूँ तो डॉक्टर के नाते नहीं आया। मैं एक खुशखबरी लेकर आया हूँ। सरकार ने आपको बिना शर्त छोड़ दिया है।' बिना शर्त शब्द पर उन्होंने खास जोर दिया। 'अब आप यहाँ से जहाँ चाहे जा सकते हैं।'

बापू थोड़ी देर शान्त रहे और जरा मुस्कराकर बोले : 'मैं आपका आभारी हूँ। परन्तु मुझे आशा है कि मैं थोड़े दिन आपका बीमार और मेहमान तो रह ही सकूँगा।'

सर्जन भी जवाब में हँसे और बोले : 'जरूर, बड़ी खुशी के साथ। परन्तु एक शर्त है, वह यह कि आपने जैसे डॉक्टर के नाते मेरा हुक्म माना है, वैसे ही आगे भी मानेंगे। आप कैदी नहीं रहे, परन्तु मेरे बीमार तो हैं ही।'

बापू भी खिलखिलाकर हँसे और बाद में एण्ड्रूज ने बापू से कहा कि आपको जवाब देने में सर्जन दिमागवाला मिला। इसके बाद यों ही बातें हुईं।

सर्जन ने जाते-जाते कहा : 'मैं आशा रखता हूँ कि जैसे यह सन्देश

पहले-पहल देने का सौभाग्य मुझे मिला है, वैसे ही आपको सकुशल अस्पताल से विदा करने का सौभाग्य भी प्राप्त होगा ।'

इसके पश्चात् जो शान्ति फैली, उसका कौन वर्णन कर सकता है ? भाई एण्ड्रूज ने मुझसे कहा : 'यह खबर सुनते ही फौरन् सब कमरे में आ गये । हँसी-खुशी होती रही । सब पागल हो रहे थे और सबसे अधिक पागल तो मैं था । परन्तु सरल, शान्त, अक्षुब्ध, सुरम्य बापू तो ज्यों के त्यों बैठे थे । मुझे उनको देखकर खयाल हुआ कि हमारी तरफ देखकर वे मन ही मन हँस रहे होंगे कि ये तितलियाँ क्या कर रही हैं ?'

परन्तु अभी और दृश्य मेरे लिए तैयार हो रहे थे । बापू के आसपास के लोग तो नाचें-कूदें, इसमें आश्चर्य ही क्या ? परन्तु यह खबर तो अस्पताल में भी पहुँचने लगी थी । बापू के पड़ोस में चार बीमार हैं । वे बेचारे पीड़ित अपने दुःख में भी बापू का स्मरण करते हुए बिस्तर पर पड़े रहते थे । आज तक वे शायद ही किसी दिन बिस्तर से बाहर निकले होंगे । भाई एण्ड्रूज तो सच्चे सेवक होने के कारण उनसे मित्रता जोड़ चुके थे । इसलिए वे गये और उनके कमरे में जाते ही उन्हें यह खुशखबरी सुनायी ।

'खुदा का शुक्र है', यों कहकर वे उठे और बापू के कमरे की तरफ बढ़े । एण्ड्रूज उन्हें बापू के कमरे के सामने ले गये, उन्होंने चरण-स्पर्श किया और तुरन्त ही बेचारे भागने लगे । नर्स कहीं उन्हें वहाँ से हटे हुए देखेगी, तो धमकाने लगेगी, यह समझकर भाई एण्ड्रूज उन्हें झटपट ठिकाने ले गये । यह दृश्य देखकर एण्ड्रूज-जैसे सहृदय की आँखें छलछलायें, तो इसमें क्या आश्चर्य ?

नौ बजे सर्जन वापस आये—घाव धोने के लिए । घाव धोकर एण्ड्रूज से कहने लगे : 'देखिए, अब ही बहुत सावधानी और देखभाल रखनी है । अभी तक तो हमने रखी, अब आपको रखनी होगी । क्योंकि अब लोगों की भीड़ होगी और गांधीजी की ऐसी स्थिति नहीं कि वे बहुत लोगों से मिल सकें । अब घाव बिलकुल भर जाय, तब तक तो इनकी शान्ति अखण्ड रहनी ही चाहिए । घाव भरने के लिए गांधीजी की शक्ति पूरी तरह सुरक्षित रहने की विशेष आवश्यकता है । और यदि बहुत-से लोग मिलकर और बातें करके उन्हें थकायेंगे, तो वे जितनी जल्दी अच्छे हुए हैं, उसमें कमी होगी ।' एण्ड्रूज ने इन सूचनाओं का अक्षरशः पालन करने का निश्चय

किया है और वे गुरुवार को ही वापस पूना के लिए रवाना हो गये हैं। वे बोले : 'देवदास बेचारा पत्रों की डाक से नहीं निपटता, इसलिए मुझे पहरा लगाने के लिए वहाँ चला ही जाना चाहिए।'

इसके बाद बापू को अस्पताल की पहली मंजिल के कमरे से नीचे लाकर बाहर के एक छोटे-से बंगले में रखा गया है। बंगले का भीतरी भाग खुला होने के कारण वहाँ खूब रोशनी और धूप आती है। बापू जब चाहें, धूप में बैठ सकते हैं। बरामदे के आसपास कैंचीनुमा खपच्चियों की जाली है। यह मकान शान्त सुरक्षित माना जाता है, परन्तु मुझे भय है कि यह ऊपर के कमरे की अपेक्षा लोगों के हमलों से कम सुरक्षित है। कोई भी आदमी जाली में से झाँक सकता है और हमारे लोगों की शुष्क कुतूहल-वृत्ति इतनी अधिक अदम्य है कि भाई देवदास को भीड़ को रोकने में कितनी कठिनाई होती होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है।

इस विषय में भाई एण्ड्रूज ने लोगों से जो प्रार्थना की है, वह उन्हीं के शब्दों में दे रहा हूँ :

'महात्माजी अभी अत्यन्त कमजोर हैं। हमें ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए, जिससे उनके स्वस्थ होने में विघ्न पड़े। आनेवाले पखवाड़े में मिलनेवाला शान्ति का एक-एक दिन उनके स्वस्थ होने में बहुत मूल्यवान् सिद्ध होगा। इसलिए मैं इतना ही कहूँगा कि ईश्वर की खातिर, और कुछ नहीं तो, जिन्हें महात्माजी के स्वास्थ्य के लिए जरा भी चिन्ता हो, उन्हें डॉक्टरों की सूचनाओं का पूरी तरह अमल करने में मदद देनी ही चाहिए। और मैं अखबारों के प्रतिनिधियों से भी कहूँगा कि महात्माजी आपसे बिलकुल नहीं मिल सकते। उन्हें आप कष्ट न दीजिए।'

और इसमें मैं क्या वृद्धि करूँ? इतनी ही कि बापू को छोड़कर सरकार मुक्त हुई है। अब बापू के स्वास्थ्य की रक्षा की जिम्मेदारी सरकार की नहीं रही, हमारी हो गयी है।

× × ×

इस जगह का जादू

(नवजीवन, ता० १०-२-१९२४)

दो अंकों से बापू के अस्पताल के दिनों के बारे में लिख रहा हूँ। यह तीसरा लेख है। परन्तु मुझे यह लिखते हुए उकताहट नहीं होती और न यह डर लगता है कि पाठक इससे उकतायेंगे। यह भावना क्यों हो ? यदि कभी-कभी कोई खास चीज बताने के लिए सूर्य और दीपक की तुलना करना क्षम्य माना जा सकता है तो मैं कहूँगा कि तुलसीदास को रामचरित-मानस लिखते समय क्या ऐसी उकताहट हुई या शंका हुई होगी कि कोई इसे पढ़ेगा या नहीं ? उसी तरह मुझे भी बापू के बारे में कुछ भी लिखते हुए न तो उकताहट होती है या और न ऐसी शंका कि लोग पढ़ेंगे या नहीं। यह कोई नयी बात नहीं है। बापू के प्रवास में तो मैं 'नवजीवन' के प्रत्येक अंक में उनके प्रवास का वर्णन करता ही था, वही स्थिति एक हद तक आज हमारे सौभाग्य से उत्पन्न हुई है।

पूना छोड़े पाँच दिन हुए। परन्तु एक क्षण भी **'तेहि नो दिवसा गताः'** की प्रतिध्वनि हुए बिना नहीं रही। अनेक बार याद आती है कि इतने बजे बापू क्या करते होंगे, यह उनका आराम का समय होगा, शायद कोई मुलाकाती उन्हें तकलीफ दे रहे होंगे, इस वक्त शायद उस बूढ़ी नर्स के साथ मजाक हो रहा होगा, तो कभी मेरे सिवा दूसरे सेवकों को बापू के आसपास घेरा डाले देखकर उसे ईर्ष्या होती होगी और वह कहती होगी : 'क्यों, बहुत-सी नर्सों के बीच घिरे हुए हैं, गांधीजी ?' परन्तु बापू तो इस प्रकार की आसक्ति भी सहन नहीं कर सकते। एक दिन उन्होंने कहा : 'इस जगह के जादू में सब फँसते हैं, यह मैं देख रहा हूँ। परन्तु सबसे मैं कहता हूँ कि खबरदार, कोई अपने काम में न चूके। अनसूयाबहन से कहता हूँ कि आप अपने मजदूरों को भूलकर तो यहाँ नहीं बैठी हैं न ?' इसमें कैसा विरोधाभास है ? इस स्थान का जादू मिट जाय तो मुग्ध भी यहाँ से हट सकते हैं। परन्तु मुझे तो निकलना ही पड़ा—मन से, बेमन से चल देना पड़ा। इसलिए वहाँ के जादू का अंश पाठकों को भी देने का, पहले से जरा कम मधुर काम आज आ पड़ा है।

उस जादू की जगह, उस तीर्थ-स्थान पर अनेक यात्री और प्रवासी आकर चले गये। वे लगभग सभी प्रान्तों से आये, तमाम दलों के प्रति-

निधि वहाँ आकर गये, सब धर्मों, वर्णों और जातियों के प्रवासी वहाँ आकर गये। नहीं आये कुछ कार्यरत व्यक्ति, जिन्होंने काम न छोड़ने की बापू की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया और जादूगर के जादू के वश न होकर जादूगर को भी मोहित कर दिया। जो आते थे, वे कैसा असर लेकर जाते थे, उसका वर्णन मैं कर चुका हूँ। सब नानक के इस सुप्रसिद्ध पद का प्रत्यक्ष अनुभव करके जाते थे, यह कहूँ तो भी हर्ज नहीं :

'बिसर गयी सब तात परायी,
जब से साधु संगत हम पायी।'

बाहर जाकर वे फिर 'परायी' का अनुभव करने लगते हों, तो उसमें आश्चर्य नहीं। तात्कालिक प्रभाव शाश्वत होने के लिए केवल क्षणमात्र की साधु-संगति की ही आवश्यकता नहीं होती, अन्य अनेक बातों की जरूरत रहती है।

इस अवसर पर एक बहुत करुण प्रसंग दे रहा हूँ। मद्रास के बड़े जमींदार श्री के० वी० रंगस्वामी आयंगार, जो 'कौंसिल ऑफ स्टेट' के सदस्य हैं और शान्ति के लिए आगाखाँ को 'नोबल प्राइज' दिलवानेवालों की जिन्होंने दो-तीन दिन पहले खूब खबर ली थी, वे दिल्ली जाते हुए बापू से मिलने आ गये थे। उनकी निर्मलता का तो अन्त नहीं, उनकी उम्र भी बहुत कम है। वे एक दिन सुबह आये। वे कुछ ऊँचा सुनते हैं, इसलिए बापू ने जोर से कहा : 'आपके साथ बातें करूँ, यह आशा आप बिलकुल न रखें। मैं इतने जोर से नहीं बोल सकता।' बेचारे चुपचाप खड़े रहे। बापू के शरीर पर हलके-हलके हाथ फेरने लगे, जरा-जरा पैर दबाने लगे। 'शरीर कैसा आधा हो गया है' इतना ही उद्गार उनकी मुखाकृति कह रही थी, परन्तु वे इस दशा में भी अधिक समय खड़े नहीं रह सके। वहाँ से हटकर, जरा दूर जाकर खड़े रहे। कठिन प्रयास के बावजूद उनकी आँखों ने उनके मन का कहा न माना। जेब में रूमाल ढूँढ़ने लगे, रूमाल न मिलने पर कोट के छोर से आँखें पोंछ लीं। उनका जी बहलाने को किसीने पूछा : 'दिल्ली कब जा रहे हैं ?' उन्होंने दुःख से उत्तर दिया : 'वहाँ करना क्या है, जो दिल्ली जाऊँ ?' फिर कुछ समय चुपचाप खड़े रहे और यह कहकर चले गये कि शाम को अपनी माताजी को लेकर आऊँगा। शाम को आये, तब उन्हें दिल्ली के

लिए प्रस्थान करने की जल्दी थी, इसलिए केवल बिदा लेने और अपनी माताजी को गांधीजी से मिलाने के लिए वे आये। बाहर निकलकर फिर प्रातःकाल की तरह ही गद्गद होकर बोल: 'वे छूटें तो उन्हींके कदमों पर चलूँगा'--यह कहकर बिदा ली।

कुछ मजेदार मुलाकाती भी आते हैं। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि सब प्रान्तों से बापू से मिलने लोग आये--मुझे 'बहुत देशों से' कहना चाहिए था। एक दिन दो अमेरिकी बहनें आयी थीं। उन बेचारियों का उस बूढ़ी नर्स से पाला पड़ा। दरवाजे पर ही वह नर्स मिली। उन्हें लगा होगा कि गोरी चमड़ी की होने के कारण वह हमें जरूर गांधीजी के पास ले जायगी। नर्स और उनके बीच का संवाद इस प्रकार है:

प्रश्न: आप किससे मिलना चाहती हैं?

उत्तर: गांधीजी से।

प्र०: गांधीजी आपके रिश्तेदार हैं?

उ०: नहीं।

प्र०: गांधीजी आपके मित्र हैं?

उ०: नहीं।

प्र०: गांधीजी आपको जानते हैं और मिलना चाहते हैं?

उ०: नहीं। हमें तो उनका चित्र (स्नैप शॉट) लेना है। हम अखबारों की तरफ से आयी हैं और उनके फोटोग्रॉफ की जरूरत है।

अब नर्स का मिजाज बिगड़ा। वह बोली:

'यह अस्पताल है, गांधीजी यहाँ बीमार हैं। यहाँ प्रदर्शनी नहीं लगी है। गांधीजी कोई प्रदर्शन की वस्तु नहीं हैं। भागिए यहाँ से। अनुमति लेनी हो तो सर्जन के पास जाइए।'

वे जान बचाकर भागीं।

एक और घटना। एक दिन एक फ्रेंच अखबार का प्रतिनिधि अपनी स्त्री के साथ आया। एक बार तो देवदास ने उन्हें समझाकर लौटाया। परन्तु बाद में वे किसी और मित्र को लेकर आये, जिनका देवदास को लिहाज हो गया। उस नर्स की चपेट में नहीं आये थे, इसलिए गांधीजी के पास वे जा पाये। गांधीजी के पास जाकर उन्होंने क्या कहा, उसे

सुनकर सबको आश्चर्य होगा। वे बेचारे गांधीजी को इतना ही आश्वासन देने आये थे कि 'अंग्रेजों के लिए आपको जितना तिरस्कार है, उतना ही तिरस्कार हरएक फ्रांस-निवासी को है।' देवदास को लगा कि इन्हें कहाँ से अन्दर ले आया? बापू हँसे, परन्तु उन्हें किस प्रकार जरा-सी देर में समझाया जा सकता था कि अंग्रेजों के प्रति फ्रांस के तिरस्कार में बापू की या भारत की कभी हिस्सेदारी नहीं थी और न ऐसी इच्छा ही की जाती है?

अक्सर बाहर से मिलने आनेवालों के साथ काफी तकलीफ होती थी। आज तो भाई देवदास को बड़ी तकलीफ हुई होगी। एक दिन श्रीमती अवंतिकाबाई गोखले मिलने आयीं। उन्होंने यह सब देखकर हँसते-हँसते सुझाव दिया: 'दो घण्टे कातनेवालों को ही आपसे मिलने की इजाजत होनी चाहिए।' बहुत चौंके। अवंतिकाबाई ने यह योग्यता प्राप्त कर ली थी, इसीलिए वे इसका आग्रह करती थीं, सो बात नहीं; परन्तु उनका खयाल था कि इसी शर्त से बहुत लोगों को आने से रोका जा सकेगा। परन्तु यह शर्त लगाये कौन? मिलने आनेवाले स्वयं ही अपने मन से शर्त कर लें, तब तो ऐसी एक नहीं, सैकड़ों शर्तें हैं, मिलने आनेवाले अपने अधिकार का विचार करने लगें तो मिलने के लिए उनका मन मान ही नहीं सकता। परन्तु कठिन स्थिति तो द्वारपालों की है। मीठे मिजाजवाले द्वारपाल जब खुश करके निकालते हैं, तब वह नर्स थप्पड़ मारकर निकालती है। परन्तु कभी-कभी मिठास से भी कहीं गहरे पानी में उतरना पड़ता है। एक-दो से कहा गया: 'आप खादी भी पहनकर न आयें, तो आप गांधीजी को कैसे खुश करेंगे?' बहुत नम्रता से कहा गया था। परन्तु तुरन्त जवाब मिला: 'शास्त्रीजी खादी पहनते हैं?' मैं परेशान हुआ। मैंने कहा: 'शास्त्रीजी को मुझसे पूछकर गांधीजी से मिलने नहीं जाना था। उनसे तो गांधीजी ही मिलना चाहते थे। आपको गांधीजी बुलाते हों, तो जरूर जाने दूंगा।' तब एक भाई ने कहा: 'मैंने खादी पहनी है, मुझे क्यों नहीं जाने देते?' इस प्रकार तर्कशास्त्र के विद्यार्थी का खूब मनोरंजन करनेवाली दलीलें दी जा रही थीं। एक भाई ने मुझसे कहा था: 'आप ही रोकते हैं। महात्माजी तो इतने दयालु हैं कि सबको मिलने देते हैं।' उसे उत्तर देना पड़ा: 'सच है, मैं भी उतना

दयालु होता, तो मैं महात्मा बन जाता और आप मेरे ही दर्शन करके तृप्त होते। परन्तु महात्मा तो गांधीजी ही हैं और मैं तो केवल पहरेदार हूँ।'

यह तो मैं थोड़े विनोद में उतर गया। अब हम जरा गंभीर हो जायँ। अपने छूटने के बारे में गांधीजी की कैसी वृत्ति थी, यह एक-दो प्रसंगों से ठीक व्यक्त होता है। पहले दिन बापू ने वल्लभभाई को 'बोरसद के राजा' इसी नाम से सम्बोधित किया था। वल्लभभाई और बोरसद के सरदार को देखकर बापू के आनन्द का पार नहीं था। गुजरात अपना तेज दिखा रहा है और अब तक न होनेवाली जीत गुजरात ने की है, यह कहकर बापू ने बड़ा आनन्द प्रकट किया। 'अब जो आत्मशुद्धि का कार्य करना आरम्भ किया गया है, उसे बोरसद पूरा कर देगा, तो सारा गुजरात तैयार हो जायगा।'

× × ×

अन्य साधारण विषयों की चर्चा में तो छूटने न छूटने की चिन्ता किये बिना पूरे विनोद के साथ बातें करते। कुत्तों की जातियों के सम्बन्ध में और साथी के रूप में उनकी सेवा के बारे में बात करते हों तो भी क्या और पैर दबवाने के बारे में शास्त्रीय चर्चा करते हों तो भी क्या। श्री राजगोपालाचार्य अमुक दवा लें या न लें, इसकी चर्चा करते हों या अमुक म्युनिसिपैलिटी में रहने या न रहने के बारे में निर्णय देते हों, संगीत और कला की बातें करते हों या भाई एण्ड्रूज के सामने भगवद्-गीता और अहिंसा के विषय में विवेचन करते हों—इन सभी प्रसंगों में बापू की अनोखी समयसूचकता, उनका निश्चय, उनकी तलस्पर्शी दलीलें, उनका हृदयस्पर्शी आग्रह और उनके अमृतरसपूर्ण कटाक्ष तो होते ही हैं।

× × ×

७-२-'२४

अपनी रिहाई के बाद बापू ने अस्पताल से पहला पत्र ता० ७ फरवरी को कांग्रेस के अध्यक्ष मौ० मुहम्मदअली को लिखा :

¶ मेरे प्यारे मित्र और भाई,

एकाएक छूट गया, इसलिए हमारे देशबन्धु मुझसे कुछ शब्दों की आशा रखते हैं, यह मैं समझता हूँ। और वे मैं आपके कांग्रेस-अध्यक्ष होने

के कारण, आपके ही द्वारा भेज रहा हूँ। मेरी बीमारी के कारण सरकार ने मुझे मीयाद से पहले छोड़ दिया, इससे मुझे दुःख हो रहा है । ऐसे छुटकारे के बारे में उत्साह क्या हो सकता है, क्योंकि मैं मानता हूँ कि किसी भी कैदी की बीमारी उसे छोड़ने के लिए निमित्त नहीं हो सकती।

जेल और अस्पताल के अधिकारियों ने मेरी बीमारी में मेरी सार-सँभाल रखने में कोई कसर नहीं रखी, यह मैं आपको और आपके द्वारा देश को बताने में चूकूँ तो मैं कृतघ्नता का अपराध मोल लेता हूँ। मेरी बीमारी गम्भीर है, यह पता लगते ही यरवड़ा-जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल मरे ने कर्नल मॅडक को मदद के लिए बुला लिया और मेरी देख-भाल के लिए प्रत्येक संभव उपाय करने में उन्होंने न तो किसी प्रकार का विलम्ब किया और न कोई कसर रखी। सासून अस्पताल में मुझे जितना जल्दी ले जाया गया, उससे जल्दी ले जाना संभव ही नहीं था। कर्नल मॅडक और उनके सहायकों ने मुझ पर अपार ममता दिखायी है और अत्यन्त सावधानी से मेरी सेवा की है। नर्सों को तो मैं भूल ही कैसे सकता हूँ? उन्होंने बहन-जैसी चिन्ता रखकर मेरी शुश्रूषा की है। मैं जानता हूँ कि यह अस्पताल अब मैं छोड़ सकता हूँ, फिर भी और कहीं इससे अच्छी सार-सँभाल नहीं हो सकती, इसलिए मैंने तो स्नेही कर्नल मॅडक की अनुमति से घाव भरने तक और दूसरी डॉक्टरी सहायता की आवश्यकता न रहने तक, उनकी देखरेख में ही रहने का निश्चय किया है।

इससे लोग आसानी से समझ सकेंगे कि कुछ समय तक शरीर से काम करने के लिए मैं सर्वथा अयोग्य रहूँगा। इसलिए जो यह इच्छा रखते हों कि मैं तेजी से काम करने लगूँ, उन्हें अपने मन में मिलने की स्वाभाविक इच्छा को स्थगित रखना चाहिए। मुलाकात करनेवाले बहुत होंगे तो उनसे मिलने के लिए मैं आज अशक्त हूँ और कुछ हफ्तों तक अशक्त ही रहूँगा। मुझे मित्रों का प्रेम अधिक अच्छा तभी लगेगा, जब कि वे आज जो राष्ट्र-कार्य कर रहे हैं, उसमें और खास तौर पर कातने में अधिक समय और अधिक ध्यान देंगे।

यह न मानिए कि अपने छुटकारे से मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। छूटने से पहले जेल के नियमों का पालन करना और अधिक सफल सेवा के

लिए तालीम पाना, इन दो कामों के सिवा मुझ पर कोई और जिम्मेदारी नहीं थी, परन्तु आज जिन जिम्मेदारियों को निभाने की मेरी शक्ति नहीं, उनके विचार मात्र से मैं घबरा उठता हूँ। मुझ पर बधाई के तारों की वर्षा हो रही है। इससे मुझे आनन्द और आश्वासन मिलना स्वाभाविक है। परन्तु बहुत से तारों में मुझसे ऐसी बड़ी सेवाओं की आशा रखी गयी है कि उन्हें पढ़कर मैं सन्न रह गया हूँ। मेरी आँखों के सामने जो काम पड़ा है, उससे निपटने की मेरी अशक्ति के विचार से मेरा गर्व नष्ट हो जाता है।

यह बात सही है कि देश की वर्तमान परिस्थिति से मैं बहुत कम परिचित हूँ। परन्तु मुझे इतना पता है कि बारडोली के प्रस्ताव के समय देश के सामने प्रश्न जितने विकट थे, आज उससे अधिक विकट हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी और ईसाई तथा दूसरे धर्मों के भारतीयों की एकता के बिना स्वराज्य की तमाम बातें बेकार हैं। सन् १९२२ में हिन्दुओं और मुसलमानों में इस प्रकार की एकता हुई थी, यह मैंने अपने मन को समझा लिया था, परन्तु मुझे लगता है कि उसे बहुत बड़ा धक्का पहुँचा है। एक-दूसरे के प्रति विश्वास के बजाय अविश्वास दिखाई देता है। तमाम जातियों में अखण्ड मित्रता हो, तभी स्वराज्य मिल सकता है। लोग आज मेरे छुटकारे के लिए जो आभार प्रकट कर रहे हैं, उस आभार-वृत्ति को यदि वे भिन्न-भिन्न जातियों के बीच अखण्ड मैत्री स्थापित करने में लगा दें, तो किसी भी डॉक्टरी देखभाल या आराम किये बिना वह मैत्री मुझे अधिक स्वास्थ्य प्रदान करेगी।

जब मैंने जेल में कुछ स्थानों पर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच वैमनस्य की खबरें सुनीं, तब मेरा दिल बैठ गया। उपर्युक्त ऐक्य के अभाव का भारी बोझ मेरी छाती पर बना रहे तो आराम लेने की आज मुझे जो सलाह दी जाती है, वह मुझे नहीं मिलेगा। मेरे प्रति जिनको प्रेम है, उनसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि जिस एकता की हम इच्छा कर रहे हैं, उसकी स्थापना करने में वे उस प्रेम का उपयोग करें। ऐसा करना कठिन है। परन्तु ईश्वर के प्रति हमें जीवन्त श्रद्धा हो, तो कुछ भी कठिन नहीं। हम अपनी दुर्बलताएँ समझकर 'उस'की शरण में जायँ, तो 'वह' जरूर मदद करेगा। दुर्बलता भय की जननी है और भय अविश्वास का जनक

है। हम दोनों भयों को तिलांजलि दे दें तो कितना अच्छा रहे? परन्तु मैं जानता हूँ कि हममें से एक भी भय-रहित हो जाय, तो हम लड़ना बन्द कर देंगे। इतना ही नहीं, मैं आपकी कारगुजारी का मूल्य उस काम से ही आँकूँगा, जो आपने एकता के लिए किया होगा। मैं जानता हूँ कि हम दोनों एक-दूसरे को भाई की तरह चाहते हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप मेरी चिन्ताओं में हिस्सेदार बनें और बीमारी में मेरे हृदय का भार हलका करें।

देश की बढ़ती हुई दरिद्रता का हमें यथार्थ दर्शन हो और हमें यह प्रतीत हो कि उसका एकमात्र उपाय चरखा है, तो चरखा चलाने में लीन हो जायँ; तब हमारा समय लड़ने में बरबाद नहीं होगा। पिछले दो वर्षों के दौरान मुझे खूब चिन्तन करने के लिए काफी समय और एकान्त मिला था। इसलिए उस चिन्तन के परिणामस्वरूप मेरी यह श्रद्धा अधिक दृढ़ बनी है कि स्वराज्य के लिए अलग-अलग जातियों में एकता, चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और हमारे पारस्परिक व्यवहार के लिए विचार, वाणी और आचरण में अहिंसा आवश्यक है। इसलिए बारडोली-कार्यक्रम ही हमारे लिए रामबाण इलाज है। इस कार्यक्रम को हम श्रद्धापूर्वक और पूर्ण रूप से पूरा करें, तो हमें सविनय-भंग का कभी आश्रय न लेना पड़े और मैं आशा रखता हूँ कि उसकी कभी जरूरत नहीं पड़ेगी। परन्तु मुझे कह देना चाहिए कि हार्दिक प्रार्थनापूर्वक एकान्त चिन्तन के फलस्वरूप सविनय-भंग की सफलता और धर्म्यता के बारे में मेरी श्रद्धा जरा भी नहीं घटी है। जब देश की आत्मा के हनन की जोखिम में हम होते हैं, तब प्रत्येक व्यक्ति अथवा जनता के लिए सविनय-भंग अधिकार और धर्म-कृत्य हो जाता है, यह मैं पहले से आज अधिक मानता हूँ। मुझे यकीन है कि हिंसक लड़ाई की अपेक्षा इसमें कम जोखिम है। हिंसक युद्ध के अन्त में जहाँ हारनेवाला और जीतनेवाला दोनों बर्बाद होते हैं, वहाँ सविनय-भंग के अन्त में दोनों पक्षों का भला होता है।

कांग्रेस के सदस्य विधान-सभाओं में गये हैं, तत्सम्बन्धी कठिन प्रश्नों पर आप मुझे कुछ भी राय देने को नहीं कहेंगे, ऐसी मैं आशा रखता हूँ। विधान-सभाओं, अदालतों और सरकारी शिक्षा-संस्थाओं के बहिष्कार के बारे में मेरे विचार जरा भी नहीं बदले हैं। फिर भी दिल्ली में बनाये

गये कार्यक्रम में परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई राय देने के लिए मेरे पास कोई साधन नहीं और हमारे जिन नामांकित देशबन्धुओं ने विधान-सभाओं का बहिष्कार रद्द करने की देश के हित में जरूरत समझी, उनके साथ इस प्रश्न की चर्चा किये बिना मैं अपना अभिप्राय व्यक्त नहीं करूँगा।

अन्त में जिन-जिन लोगों से मुझे बधाई के तार मिले हैं, उन सबका मैं आपके मारफत आभार मानता हूँ। प्रत्येक तार का अलग उत्तर देना मेरे लिए बिलकुल संभव नहीं। इन तारों में बहुत से नरम दल के भाइयों के भी सन्देश हैं, इससे मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मेरा और सभी असहयोगियों का उनके साथ कोई झगड़ा नहीं; हो भी नहीं सकता। वे भी देश के हितचिन्तक हैं और अपनी बुद्धि के अनुसार वे भी उसकी सेवा करते हैं। यदि हमें ऐसा लगता हो कि उनकी भूल हो रही है, तो केवल मित्रता और शान्ति से चर्चा करके ही हम उन्हें जीत सकते हैं, गालियाँ देकर नहीं। इतना ही नहीं, अंग्रेजों को भी हमें तो मित्र ही मानना है। शत्रु समझकर उनके साथ अन्याय नहीं करना है। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आज हमने जो लड़ाई छेड़ रखी है, वह लड़ाई उस प्रथा के विरुद्ध है, जिसके आधार पर यह सरकार टिकी हुई है। हमारी लड़ाई उस प्रथा पर अमल करनेवाले अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं है। हममें से बहुत-से लोग इस मूल भेद को नहीं समझते और हमेशा भूल कर बैठते हैं। इसी कारण और उस हद तक हम पिछड़ जाते हैं और उससे हमारे कार्य को हानि पहुँचती है।

आपका सच्चा मित्र और भाई

मो० क० गांधी

८-२-'२४

आज लाला लाजपतराय को इस प्रकार पत्र लिखा। उसमें भी मुख्य बात कौमी एकता की थी।

सासून अस्पताल

पूना ता० ८-२-'२४

¶ प्रिय लालाजी,

मैंने आपको पत्र लिखने का वचन दिया था, परन्तु उसका मैं अभी तक पालन नहीं कर सका। मेरा हाथ अभी तक अशक्त है। मैं पत्र लिखवाना चाहता था; परन्तु मेरे पास कोई सहायक नहीं थे।

मुझे पता नहीं कि मैंने कभी श्री प्रकाशम् से कहा हो कि आप पूना आकर मुझसे मिल जायँ। परन्तु जितना जल्दी हो सके, आपसे मिलकर आपके साथ हिन्दू-मुस्लिम एकता, हिन्दू-सिक्ख-एकता, विधान-सभाओं, अन्त्यजों वगैरह प्रश्नों पर खूब बातें करना चाहता हूँ। परन्तु यह तो तभी होगा, जब आप बिलकुल अच्छे हो जायँ और मेरी तबीयत ऐसी हो जाय कि लम्बी बातें करने का श्रम बर्दाश्त कर सकूँ। आपकी तबीयत ठीक न हो और लम्बी रेल-यात्रा से आपका स्वास्थ्य गिर जाय, ऐसी परिस्थिति में मैं आपको यहाँ आने का कष्ट करने को कह ही कैसे सकता हूँ? और जब आप आयें, तब भी मैं चाहूँगा कि आप पूरे तीन दिन के लिए आयें। शायद हमें थोड़ी-थोड़ी करके बातें पूरी करनी पड़ें। मैं शायद अगले बुधवार तक बातें करने लायक हो जाऊँ, परन्तु घाव में कोई छिपे हुए टाँके अथवा और कोई कसर रह गयी हो तो भगवान् जाने।

आपका

मो० क० गांधी

ऊपर के पत्र से जान पड़ता है कि बापू अब हरएक मामले का अध्ययन करने लग गये हैं। भाई देवदास लिखते हैं:

"देर-सवेर 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' शुरू कर देने का उनका निश्चय है। अभी से उन्होंने कुछ-न-कुछ लिखने का निश्चय कर लिया है। परन्तु कल उन्होंने देखा कि अभी वे किसी प्रकार का श्रम बर्दाश्त नहीं कर सकते। इसलिए अभी थोड़े दिन वे कुछ भी लिखने का काम नहीं करेंगे।"

(नवजीवन, १७-२-१९२४)

पिछले सप्ताह भाई एण्ड्रूज से मिलने के बाद बापू के अस्पताल में बदले हुए निवासस्थान और बापू के समाचारों के विषय में मैंने कर्नल मॅडक को पत्र लिखा था। उनका ८ तारीख का उत्तर इस प्रकार है:

"गांधीजी को जिस नये स्थान में ले जाया गया है, उसके बारे में आपको कोई चिन्ता करने का कारण नहीं है। वह हर तरह से सुविधापूर्ण है और गांधीजी की इच्छानुसार उसे खानगी, आधा खानगी या सार्वजनिक बनाया जा सकता है। बाहर के बरामदे के चारों ओर लकड़ी की जाली है और दरवाजे सब भीतर से अच्छी तरह बन्द होनेवाले हैं।

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा काम केवल मेरे मित्र (गांधीजी) को जल्दी-से-जल्दी अच्छा करना है, ताकि वे समुद्र-तट पर जाकर थोड़े दिन पूर्ण शान्ति प्राप्त करके बिलकुल तन्दुरुस्त हो जायँ।"

इसके बाद पूना से एक पत्र मिला था। उसमें यह खबर थी कि अकसर टाँकों से होनेवाली फुन्सियाँ बापू को होने लगी हैं। उसके बाद भाई देवदास का १० तारीख का पत्र मिला है, जिसमें वे लिखते हैं :

"बापू को अब घाव के भीतर टाँकों के कारण फोड़े होने लगे हैं, जिससे कल ९९ डिग्री बुखार भी था।"

(नवजीवन, २४-२-१९२४)

कर्नल मॅडक ने जिस प्रेम से गांधीजी की शुश्रूषा की है, वह जगजाहिर है। वे मुझे समय-समय पर गांधीजी के स्वास्थ्य के बारे में समाचार भी देते रहे हैं। १५ तारीख को उनका लिखा हुआ पत्र टाँकों के बारे में भी अच्छा प्रकाश डालता है :

"इन टाँकों के बारे में कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं। ऐसे मामलों में यह एक बहुत मामूली पीड़ा है। परन्तु जो पीड़ा थी यानी लगभग चार टाँके थे, वे निकाल दिये गये हैं और आज तो एक भी पीड़ाजनक टाँका होने का अंश तक मालूम नहीं होता। घाव हर रोज अधिक साफ होता और सूखता जा रहा है और जरा भी शंका नहीं कि महात्माजी पहले से अधिक शक्तिमान् हुए हैं और अधिक अच्छे दिखाई देते हैं। ९ तारीख की शाम को केवल ९९ डिग्री ज्वर था और मेरे खयाल से वह भी अधिक मनुष्यों के मिलने आने के कारण थकान का परिणाम होगा या सोमवार को निकाले हुए एक टाँके का परिणाम होगा।

"मेरी एकमात्र चिन्ता उन्हें बहुत अधिक श्रम से थक जाने से रोकने की रहती है। हम सब इस मामले में खूब सावधानी रखते हैं। महात्माजी-जैसे मस्तिष्क के बारे में इतनी सावधानी रखना कितना कठिन है, यह आप समझ सकेंगे। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार चिन्ता करने का कुछ भी कारण नहीं।"

यह पत्र जब अहमदाबाद आया, तब मैं गांधीजी से मिलने पूना गया हुआ था। १८ तारीख को मैं उनसे मिलकर आया। उनका शरीर पहले से ज्यादा अच्छा लगता है, यद्यपि घाव का मुँह नये टाँके से सी देने के कारण

वे पहले की तरह कमरे में चल-फिर नहीं सकते। यह टाँका घाव पर नयी चमड़ी जल्दी लाने के लिए लगाया गया है और उसके भरने पर वे फिर अच्छी तरह चलने-फिरने लगेंगे। मैं गया, उस दिन उन्हें इस टाँके के कारण वेदना थी, परन्तु मैं जिस काम के लिए गया था, उस पर उन्होंने तुरन्त ध्यान दिया और दो जरूरी पत्र अपने हाथ से ही लिख दिये। काम में तो उनका ध्यान गये बिना कैसे रहता? यह तो कर्नल मॅडक ने अच्छी तरह बताया है। दक्षिण अफ्रीका के 'क्लास एरियाज बिल' पर उनका लिखाया हुआ लम्बा लेख इसकी गवाही देता है। नया टाँका लगने से पहले लिखे हुए भाई देवदास के एक पत्र में गांधीजी की बढ़ती हुई शक्ति का सुन्दर वर्णन है :

"बापू की तबीयत पिछले दो दिन से बहुत ही अच्छी है। प्यारेलाल से दरवाजा न खुला, तो खुद उठकर खोलने गये!"

घाव बिलकुल भर जाने के बाद शक्ति वापस आयेगी ही। इस बीच कोई पन्द्रह दिन तो अस्पताल में बिताने ही होंगे। भाई देवदास एक बात लिखते हैं, उसके विषय में गुजरात के पाठकों का 'नवजीवन' द्वारा ध्यान आकर्षित करता हूँ :

'डाक का बोझ बढ़ता जा रहा है। परन्तु उसके बारे में हम काफी प्रबन्ध रख रहे हैं। मेरे नाम आपका एक ही पत्र बापू को बताया था। दूसरे भी वे जरूरी पत्र ही देखते हैं। कम महत्त्व के पत्रों के बारे में उनसे पूछ लिया जाता है।'

एक भाई ने गांधीजी को लिखे जानेवाले पत्रों के निपटारे के बारे में मुझसे पूछा था, इसलिए ऐसे लोगों के लिए पत्र का यह भाग देता हूँ। पत्र-लेखकों को गांधीजी और उनकी सेवा करनेवालों पर भी दया रखनी चाहिए। किसी पत्र का उत्तर न जाय, तो आशा है वे सज्जन क्षमा करेंगे।

पिछले तार से मालूम होता है कि फिर नये टाँके निकले हैं और घाव के मुँह पर लगाया हुआ टाँका तोड़ना पड़ा है। इस प्रकार घाव के भरने में अभी कितना समय लगेगा, यह कहना कठिन है। इस परिस्थिति में गांधीजी पर हर तरह दया रखने की प्रार्थना अधिक जोर से करनी पड़ रही है।

(नवजीवन, २-३-१९२४)

पूना के अन्तिम समाचार चिन्ता कम करनेवाले हैं। गांधीजी अब धीरे-धीरे चौक में टहलते हैं और अखबार वगैरह नियमित रूप से पढ़ते हैं। घाव पर अब टाँके नहीं रहे और पहली बार 'आयोडीन' लगाया गया है।

भाई देवदास लिखते हैं :

"घाव के अब जल्दी ही भर जाने की आशा है। थोड़े दिनों में यहाँ से चल दें, तो आश्चर्य नहीं। जो होगा, बहुत चुपके से होगा—आपको भी सूचना नहीं मिलेगी।"

(नवजीवन, ९-३-१९२४)

गांधीजी की तबीयत खूब सुधर रही है। शाम को एक घण्टा रोज टहलते हैं—अन्धेरा हो जाने के बाद। उनके हस्ताक्षरों की मोड़ पर से मालूम होता है कि उनके हाथ में भी कुछ ज्यादा ताकत आयी हो। थोड़े दिनों में पूना से डेरा उठ जायगा।

(नवजीवन, १६-३-'२४)

गांधीजी चुपचाप चले जानेवाले थे। उसके बजाय उन्होंने लोगों को बताकर ही पूना छोड़ना ठीक समझा। पूना की वैद्यकीय पाठशाला के विद्यार्थियों ने उन्हें दिनांक १०-३-'२४ के रोज अभिनन्दन-पत्र दिया। उनसे खादी की प्रतिज्ञा लिवाकर वे वहाँ से १० तारीख की रात को निकल ११ तारीख को सुबह दादर स्टेशन पर पहुँचे। लोगों ने स्टेशन पर या रास्ते में कहीं भी उन्हें नहीं सताया, सफर बढ़िया रहा और दादर स्टेशन से शान्ति के साथ मोटर में बैठकर जुहू पहुँच गये। उस स्थान की भव्य शान्ति सागर के सुन्दर गान से मधुर बन रही थी। यह स्थान कराची जैसे स्थानों के बजाय पसन्द करने का कारण गांधीजी ने यह बताया है कि जिन मित्रों को उनसे मिलने की जरूरत हो, उनके लिए इस मध्यस्थ स्थान पर आना सुगम होगा। हमारी सुविधा गांधीजी को देखनी है! हम गांधीजी की ही सुविधा देखें, तब तो गांधीजी 'गांधी' न रह जायँ और हम 'हम' न रह जायँ। कविवर टागोर ने गांधीजी को एक पत्र लिखा था, उसमें लिखा था कि 'आपके छूटने से प्रसन्न हुआ। परन्तु

साथ ही साथ आपको पूरा कष्ट देने की हमारे देशबन्धुओं को भी छूट मिल गयी, इसका अफसोस है' और मानो अफसोस करने की स्थिति की आवाज आने लगी है। आज जुहू से पत्र आया है कि दर्शनाभिलाषियों की भीड़ के हमले होने लगे हैं। लिखनेवाले को इस भीड़ को रोकने में कितनी मेहनत करनी पड़ती है, यह पत्र से स्पष्ट दिखाई देता है। परन्तु सारा पत्र दिया नहीं जा सकता। जरूरी भाग ही दे देता हूँ :

"एक भाई नवसारी से आये। सुबह नौ बजे के करीब आये, जाने को कहा, परन्तु मानते काहे को ? 'दर्शन के बिना वापस हर्गिज नहीं जाऊँगा', कहकर हठ पकड़कर खड़े रहे। देवदास ने कहा : 'आप चार बजे तक खड़े रहें तो ठीक होगा ? सैकड़ों आदमी आपकी तरह आकर बंगले में बैठे रहें तो बापू को कितना कष्ट हो ?' परन्तु वे तो डटे ही रहे। देवदास ने दलील बदली : 'आप ४ बजे तक यहाँ रहें तो हमें आपको खाना खिलाना चाहिए, क्योंकि इस निर्जन स्थान में आपको और कहाँ खाने-पीने को मिलेगा ? और हम यहाँ एक बड़ी अतिथिशाला रखें, यह तो आप नहीं चाहेंगे न ?' वे बोले : 'हमें कितनी बार खिलायेंगे ? नवसारी से पूना गये, पूना से वरसोवा गये, वहाँ से धक्का खाकर यहाँ आये, अब आप यहाँ से वापस धकेल दें, यह कैसे सहन हो ?' 'तब, भले मानुस, आपको पत्र तो लिखना चाहिए था। आप धूप में इतना चलकर आये, उससे पहले इतना कष्ट तो करते ?' परन्तु वे शाम तक बैठे रहे। तपस्या में भी तो आनन्द है न ? परन्तु दो बजे बाद ज्वार आने लगा। सान्ताक्रुज, दादर से विद्यार्थियों का झुण्ड चला। वे भी रोके न रुके। चार बजे उन्हें ले जाया गया। उस समय भी बापू बहुत काम में तो थे ही। परन्तु क्या होता ? अब जो हुआ, उसके बारे में बापू का एक-एक शब्द देकर वर्णन किया जाय तो कैसा रहे ? ये शब्द देश में सबके कानों तक पहुँचें और सब उन्हें हृदय में उतारें, तो कैसा रहे ? मैं एक-एक शब्द देने का प्रयत्न तो करूँगा। कहीं अधूरापन लगे तो उसे मेरा समझें। सब बापू के पैरों पड़े। बापू ने प्रणाम करके 'मुलाकात' शुरू की :

'क्यों भाई, कुछ काम है ?'

'जी नहीं।'

दूसरे को सम्बोधन कर 'आपको ?'

'जी नहीं।'

तीसरे की तरफ मुड़कर 'आपको कुछ कहना है ?'

'किसीको कोई काम नहीं। केवल मुझे देखने ही आप आये हैं ?'

'जी हाँ।'

'हुँ। तब अगर आपमें से किसीको मुझसे कोई काम नहीं है, तो मैं आपके साथ कुछ काम ढूंढ़ लेता हूँ। मुझे आपसे कुछ कहना है। कहूँ ?'

सब चुप रहे। वे नवसारीवाले बोले : 'मैं सुबह का आया हूँ' (दर्शन का काम कोई ऐसा-वैसा थोड़े ही है !)

बापू ने पूछा : 'नवसारी से आप ही आये हैं न ?'

'जी हाँ।'

'अच्छा, तो मुझे आपसे यह कहना है कि किसी काम के बिना मुझे देखने आना पाप है। मुझे देखने में आपको कुछ नहीं मिल सकता और मुझे भी कुछ नहीं मिलता। यदि इतने दिन से मैंने जो कुछ कहा है, वह आपकी समझ में न आया हो, तो आप खुद देख लेंगे, इसमें आपकी समझ में क्या आ जायगा अथवा मैं आपको क्या समझा सकूँगा ? मुझे जिससे कुछ कहना हो और मुझसे जिसको कुछ पूछना हो, वह मेरे पास आये, यह समझ में आने-जैसा है, परन्तु आप लोग मुझे देखने के लिए घण्टों समय नष्ट कर डालें, यह कैसे सहन हो सकता है ? यदि आप अच्छी तरह समझ गये हैं कि एक क्षण भी मेरा नहीं या आपका नहीं, हमारा एक-एक क्षण देश का है, तो आप वह प्रत्येक क्षण देश को अर्पित कीजिए। मेरा तो खैर ज्यादा समय नहीं बिगड़ेगा, क्योंकि आपके आने पर मैं आपको कह दूंगा कि 'जाइए, मुझे काम है।' वैसे आप इतने मील चलकर आयें और चलकर वापस जायें और मेरे पास आने का मौका मिलने तक बैठे रहें, यह अलग। विचार कीजिए, इस सारे समय में आपने काता होता तो आपमें से हरएक आदमी कितना कात लेता ? और फिर उसे तैंतीस करोड़ से गुणा कर डालें। यदि इतना कर लें तो और कुछ करने की जरूरत ही न रहे। मुझे देखने के लिए आने की तो बात ही नहीं।'

इंदुलाल आये

सैनिकों के सरदार इन्दुलालभाई आये। उनकी चाल और सीने में पहले-जितना ही सिपाहीपन है। जेल में भी उन्होंने अपनी प्रिय साइकिल मँगा ली थी और आश्रम से साइकिल पर बैठकर ही अहमदाबाद आये। जिस प्रकार सिपाही कूच करने के पहले अच्छी तरह भोजन कर लेता है, उसी प्रकार उन्होंने जेल से कूच करते समय अपना अन्तिम नाश्ता ठीक तरह कर लिया था। उनका स्वागत करने के लिए भी साइकिल पर आरूढ़ सैनिकों का लश्कर ही था। परन्तु उनका शरीर अत्यन्त कृश लगता था। उनका वजन पचीस पौण्ड कम हो गया है, उनका मुँह सूखा हुआ लगता है और दुबले होने पर भी अच्छे दिखाई देते हैं। उन्होंने ऐसा बताया कि जेल में तो मुझे किसी तरह की चिन्ता नहीं थी या किसी तरह की तकलीफ नहीं हुई, वहाँ मैं कल्लोल करता था। जेल के खुराक का क्या असर हुआ? कुछ नहीं। जेल के बारे में उनकी कोई शिकायत नहीं थी। चौबीसों घण्टे सैनिक की तरह कूच करनेवाले इन्दुलाल को कूच करने को नहीं मिला होगा, इसीलिए सूख गये होंगे। जिस समय वे जेल गये, उस समय उनके लिए काम का जो अंबार पड़ा था, उतना ही अब भी तैयार है। इसलिए हम उन्हें ऐसी आशा दिला सकते हैं कि बाहर आने पर अब उनका शरीर अच्छा होगा।

'ट्रेजर चेस्ट' नामक बच्चों का एक मासिक है, जिसे बँगलोर से कुमारी रूथ रॉबिन्सन नाम की एक अंग्रेज महिला चला रही हैं। गांधीजी के छुटकारे के बारे में उसमें एक टिप्पणी है, जिसमें बताया गया है कि गांधीजी के कार्य के बारे में गोरों की दृष्टि भी कैसे बदलती जा रही है :

"पिछले दो वर्षों में गांधीजी के कार्य को बाहर के लोग अधिक अच्छी तरह समझने लगे हैं। चार बरस पहले दंगे-फसादों के लिए जो उन्हें दोष देते थे, वे अब देखते हैं कि वह सब कारस्तानी तो उनकी थी, जो उनके उपदेशों के विरुद्ध थे और इनका प्रभाव न होता तो शायद झगड़े कई गुना अधिक होते। सन् १९२१ की सरकारी रिपोर्ट में सरकार ने भी यह बात स्वीकार करते हुए बताया था कि अराजकता के जो अपराध बन्द हो गये हैं, वे अधिकतर गांधीजी के प्रयासों के कारण ही। बड़ी

नाजुक घड़ी में उन्होंने सारे स्वराज्य-आन्दोलन को अहिंसा के मार्ग पर मोड़ दिया। जो घटनाओं का मूल्यांकन आध्यात्मिक तराजू पर करते हैं, उन्हें तो महसूस होना चाहिए कि यह बहुत बड़ी बात हुई।

"गांधीजी के प्रभाव की चावी क्या है, इस प्रश्न का कुछ उत्तर हाल ही में प्रकाशित इटली सम्बन्धी एक पुस्तक से मिलता है: 'एसिसी के सन्त फ्रांसिस (St. Francis of Assisi) ने दूसरे सब धर्म-संस्थापकों की तरह मनुष्य-स्वभाव के बारे में बहुत ऊँची राय बना रखी थी।' गांधीजी के बारे में भी यही कहा जा सकता है। उन्होंने अपने देश-बन्धुओं से लगभग असंभव-जैसी बात की आशा रखी। उन्होंने उनसे अपना राजनैतिक ध्येय आत्म-संयम और शान्ति के मार्ग से पूरा करने की अपेक्षा रखी। यह बहुत कड़ी माँग थी। परन्तु उसका जवाब जगत् के और सब भागों की अपेक्षा कहीं बड़ी मात्रा में मिला, इसलिए गांधीजी के छुटकारे से प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक धर्म के मनुष्यों को जो आनन्द हुआ, वह केवल उनके चरित्र के कारण नहीं, परन्तु उन्होंने हिन्दुस्तान के लिए जो कार्य किया, उसके लिए भी है।"

ऊपर के उद्धरण में भारत को भी न्याय मिला है। गांधीजी की प्रशंसा करके उनके अन्यायियों को कोसने की वृत्ति इसमें नहीं है, परन्तु वस्तु-स्थिति का यथार्थ दर्शन करने का प्रयत्न है। डॉ० मेनली होल नामक एक प्रसिद्ध अमेरिकी ने कलकत्ते में एक सुन्दर भाषण दिया था। उसमें दूसरी दृष्टि थी। उन्होंने न्याय करने की दृष्टि से नहीं, परन्तु उपदेशक की दृष्टि से बात की है और वह भी ऊपर की टिप्पणी के बराबर सद्भाव से ही कही गयी है। उन्होंने कहा था: 'महात्मा गांधी ऐसे महापुरुष हैं, जो आपका नेतृत्व अवश्य करेंगे, परन्तु यदि नेतृत्व की अपेक्षा करनेवाले जानें ही नहीं कि हमारा नेतृत्व किस तरह किया जाता है, तो गांधीजी को क्या लाभ? उनके कार्य का हार्द आप न समझ सकें तो उन्हें और आपको भी क्या फायदा? कारागार पत्थर की दीवारों से नहीं बनता, अज्ञान से बनता है। जिन्हें सत्य का दर्शन हुआ है, उनके लिए बन्धन नहीं; जो सत्य का दर्शन नहीं करते, उनके लिए मुक्ति नहीं। महात्मा गांधी ने जो उत्तमोत्तम ध्येय रखा है, उसके लिए यदि आप उनकी सेवा करना चाहते हैं, तो आपको महात्मा गांधी-जैसे बनना चाहिए अर्थात् उन्होंने जो महान् कार्य उठाया है, उसके लिए आपको समझ-बूझकर मेहनत करनी चाहिए, नहीं

तो वह काम पूरा नहीं होगा। क्या दो घोड़ों की कहीं सवारी होती है ? क्या यह संभव है कि एक दृष्टि दुनिया के भोग-विलास की तरफ रखें और दूसरी सत्य की ओर ? आपको सत्य के लिए त्याग करना ही चाहिए। ···महात्मा गांधी को एक चिन्ता नहीं, अनेक हैं। उनकी एक महान् चिन्ता यह है कि लोग क्या करेंगे ? वे खुद क्या करेंगे, इसका उन्हें भरोसा है, परन्तु दूसरे क्या करेंगे, इसकी उन्हें चिन्ता है। सारे किये-कराये पर कोई विचारहीन व्यक्ति पानी न फेर दे, इसकी उन्हें चिन्ता है। उसका असर फैलने में देर लगेगी, परन्तु वह फैलेगा जरूर। लेकिन जो उन्हें नहीं पहचानते, उनके काम को नहीं समझते, उनसे वे डरते हैं। यदि भारत के लोग उन्हें जानें और पहचानें, तो महात्मा गांधी आराम से सोयें और उनका कार्य सिद्ध हुए बिना न रहे।'

पूना से पिछली ४ तारीख को श्री गंगाधरराव के नाम लिखा गया गांधीजी का पत्र अखबारों में प्रकाशित हुआ है। भाई मजली कोई चार मास पूर्व दूसरी बार जेल में गये थे और अभी एकाएक चित्त-भ्रम की व्याधि के कारण उन्हें छोड़ दिया गया है। इस भाई की बात से गांधीजी को बड़ा दुःख हुआ है और उन्होंने गंगाधरराव को बताया है कि मजली को समुद्र के किनारे भेज दें, जहाँ मैं रहने जानेवाला हूँ। मैं उनकी सार-सँभाल करूँगा। गांधीजी की सार-सँभाल से भाई मजली का चित्त शान्त हो जाय, तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि गांधीजी के लिए उनकी व्याकुलता प्रसिद्ध है। भाई मजली के किस्से को ध्यान में रखकर गांधीजी लिखते हैं: 'हमारे ध्येय के लिए हमें जो कुर्बानियाँ देनी हैं, उनमें ऐसी पीड़ाएँ भी आ ही जाती हैं। एपेंडीसाइटिस हो जाय और उससे भी अधिक भयंकर पागलपन हो जाय तो भी जेल से हमें भड़कना नहीं है। क्या हममें से कुछ को जेल के बाहर भी पागलपन और एपेंडीसाइटिस नहीं होता ?'

कर्नाटक प्रान्तीय समिति ने आगामी कांग्रेस बेलगाँव में करने का निश्चय किया है और श्री गंगाधरराव ने एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित करके लोगों को चेतावनी दी है कि इस कांग्रेस को किस प्रकार सफल बनाया जाय। गांधीजी ने गंगाधरराव की मदद में दौड़कर कर्नाटक के

लोगों को अपने सन्देश से खास तौर पर उत्साहित किया था। उपर्युक्त पत्र में ही गांधीजी लिखते हैं :

"आपकी कठिनाइयाँ बड़ी हैं। मेरा मन आपकी तरफ ही आकर्षित हो रहा है, परन्तु मुझे विश्वास है कि ईश्वर आपको उन्हें पार करने का बल अवश्य देगा। खादी की दृष्टि से कर्नाटक प्रान्त हमारे तमाम प्रान्तों से अधिक आशा दिलानेवाला है। विदेशी कपड़े का बहिष्कार होकर देश में सर्वत्र खादी दिखाई न दे, तब तक भारत अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिए अगली कांग्रेस का अधिवेशन कर्नाटक में होगा, यह अच्छा हुआ है और प्रान्तीय समिति बेलगाँव की अपेक्षा अधिक अच्छी जगह शायद ही ढूँढ़ सकती थी। इस समय उत्तर के सारे प्रान्तों के लिए बेलगाँव असुविधापूर्ण जरूर है, परन्तु बीजापुर और मंगलोर तो उससे भी अधिक प्रतिकूल पड़ते।

"आपके यहाँ हिन्दू-मुसलमानों का प्रश्न ही नहीं, यह कितना अच्छा! इसलिए ब्राह्मण-अब्राह्मण और लिंगायतों के झगड़े का भी आपके यहाँ नाम न हो और अस्पृश्यता की गन्ध तक न रहे, तब तो कुछ कहने को ही नहीं रह जाता। सारे स्थानीय भेद मिट जायँ और प्रत्येक कार्यकर्ता शान्ति और उत्साह से सौंपे हुए काम में लग जायें, तभी आपका प्रान्त कांग्रेस के रचनात्मक कार्य का प्रत्येक अंग पूरा कर सकेगा।"

गांधीजी के नाम एक पत्र आया है, जिसका मार्मिक अंश नीचे दिया जाता है। पत्र लाहौर के बरकतराम थापर नामक सज्जन का ता० १० फरवरी का है :

"इस पत्र के साथ सौ रुपये का नोट भेज रहा हूँ। यह मेरी लड़की सरलादेवी, जो सोलह वर्ष की आयु में गत ६ तारीख को स्वर्गवासी हो गयी, उसकी इच्छानुसार भेज रहा हूँ। अपनी मृत्यु के पहले ही आपके छूटने की बात सुनकर वह बहुत खुश हुई थी। पिछले साल अप्रैल में वह बेचारी शिमला गयी। उससे पहले उसकी तबीयत साधारण ठीक रहती थी। मेरे साथ सैर करने आती, तब वह चलती भी तेज थी और वह बड़ी खुश-मिजाज थी। उसकी बुद्धि भी तीव्र थी और वह अपने कुटुम्ब और अपने प्यारे देश के प्रति अपना कर्तव्य अच्छी तरह समझती थी। सन् १९२१ के अगस्त महीने में उसने खादी की प्रतिज्ञा ली थी और उस समय

अपनी माता और बहन को साक्षी रखा था। माता खादी की प्रतिज्ञा के विरुद्ध थी, क्योंकि उसे डर था कि कुमारी लड़की ऐसी प्रतिज्ञा लेकर विवाह के बाद उसका पालन न कर सके तो? परन्तु सरला ने अपनी माता के भय को हँसी में उड़ा दिया। दुर्भाग्य से बड़ी बहन ३० जुलाई १९२२ को गुजर गयी और सरला बेचारी भी पिछले वर्ष की १७ अगस्त को बीमार हो गयी। हमारे दो जवान लड़के और एक बड़ी लड़की तो हम खो ही चुके थे, इसलिए मेरी पत्नी का हृदय तो घायल हो ही रहा था, उस पर इस बेचारी की बीमारी आ गयी। मरते समय उसने अपनी माँ से कहा: 'खादी की प्रतिज्ञा का पालन हो सका, यह कितना अच्छा हुआ! मेरे सारे कपड़े किन्हीं निराधार लड़कियों को दे देना।' इसके बाद मेरी तरफ देखकर टूटी हुई आवाज में उसने मुझे आपके पास १०० रुपये स्वराज कोष के लिए भेज देने को कहा। अपना देश पूर्व की महिमा और स्वतन्त्रता प्राप्त करे, यह उस बेचारी की बड़ी तमन्ना थी। ईश्वर उसकी तमन्ना पूरी करे।"

यह करुण कथा खादी के लिए देश के कोने-कोने में कैसा चुपचाप काम चल रहा है, उसकी सुन्दर साक्षी देती है और नया जमाना कैसा आ रहा है, बालक और बालिकाएँ कैसी लगनवाली होने लगी हैं, इसका भी इस पत्र में दर्शन होता है। माता का भय भी कितना उचित मालूम होता था, फिर भी उस बालिका का नम्र आग्रह भी कैसा था! जब अन्य लोग मृत्यु के समय अप्राप्त लाभों और अधूरी आशाओं का विचार करते हैं, तब यह बहन स्वराज्य की माला जपती थी और देश की बेड़ियाँ कब टूटेंगी, इसका खयाल करती थी। खादी और स्वराज्य के बारे में कितनी भक्ति और कितना समर्पण! स्व० सरलादेवी की छूत सब जगह फैल जाय तो कितना अच्छा हो!

('नवजीवन', ता० २३-३-१९२४)

गांधीजी के समाचार समय-समय पर मिलते रहते हैं। उनका सेहत के मूल स्थिति पर आने में कितना समय लगेगा, यह कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु इतना कहा जा सकता है कि जुहू की शान्ति, गांधीजी के हृदय-सागर की प्रतिध्वनि करता हुआ सागर, उस सागर का मधुर गान और उस वातावरण में शाम आध घण्टे का भ्रमण, ये सब उनके स्वास्थ्य के

अनुकूल हैं। कर्नल मॅडक को आशा है कि कोई तीन महीने में गांधीजी पहले की हालत में आ जायँगे। डॉ० दलाल ने, जो गांधीजी की सेहत को पहले से जानते हैं, गांधीजी की पुनः जाँच की है और उन्हें भय है कि गांधीजी के शरीर में खून बहुत कम है, इसलिए सन् १९१९ की शल्यक्रिया के बाद वे जो इंजेक्शन देते थे, वही अब देना शुरू करेंगे।

गांधीजी की दिनचर्या संक्षेप में यह है : प्रातः ४ बजे उठकर प्रार्थना, भजन, फिर जरा आराम करते हैं। लगभग ७ बजे मि० एण्ड्रूज के साथ समुद्र-तट पर रेत में सैर करने निकलते हैं, आध घण्टे लकड़ी के सहारे घूमते हैं। नाश्ते के बाद दो-तीन घंटे जरूरी काम-काज के लिए मुलाकात आदि में बीतते हैं। ११ बजे भोजन के बाद बारह से चार बजे तक पत्र और लेख आदि लिखवाने का काम होता है। जो मिलने आये हों, उनसे चार से पाँच तक मुलाकातें। शाम को आधे घण्टे की सैर। सायंकाल की प्रार्थना के बाद कुछ महत्त्व की चर्चा करनी हो, तो एकाध घण्टा जागते हैं और ९।। बजे आराम। सोमवार का मौन फिर शुरू हो गया है।

'टाइम्स ऑफ इण्डिया' पत्र के एक प्रतिनिधि ने गांधीजी की मुलाकात का सरस वर्णन किया है। गांधीजी की दिनचर्या के विषय में तो जो ऊपर लिखा गया है, उससे अधिक कुछ नहीं है। केवल इतनी खबर खास तौर पर नयी है कि 'थकावट हुए बिना जरा बैठ सकूँ, ऐसा होते ही कातना शुरू कर दूँगा।'

नयी मजदूर-सरकार के सम्बन्ध में पूछे जाने पर उन्होंने कहा : 'यह सरकार कितने दिन टिकेगी ? वह दूसरे दलों की मरजी पर टिकी हुई है और टिके रहने के लिए उसे अपने मतदाताओं को सन्तोष देना होगा और अपने अन्दरूनी प्रश्नों का निपटारा करना होगा। चूँकि अन्दरूनी प्रश्नों के निपटारे के लिए दूसरे दलों के मत प्राप्त करना आवश्यक है, अतः भारत, दक्षिण अफ्रीका और केनिया के भारतीयों सम्बन्धी ब्रिटिश नीति वह दूसरे दलों के अधीन रहकर ही निर्धारित करेगी। इनकी कमजोरी इतनी अधिक है कि मजदूर-सरकार पिछली सरकारों से भारत के लिए अधिक खराब निकले तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा, परन्तु वह कुछ भी करे, उसकी मुझे चिन्ता नहीं, क्योंकि भारत को अपने बल पर ही खड़ा रहना है। भारत पूरी तरह बलवान् और स्वाश्रयी हो जाय, तब फिर ब्रिटिश-

मंत्रिमण्डल किसी भी दल का बना हो, तो भी उसका झुके बिना काम नहीं चल सकता।'

उनसे विधान-सभाओं के बारे में भी पूछा गया, परन्तु इस मास के अन्त में स्वराज्य दल के मित्रों से मिले बिना उन्होंने कुछ भी राय न देने से इनकार कर दिया।

केनिया-कमेटी के बारे में बोलते हुए उन्होंने बताया : 'असहयोगी के नाते मेरे विचार अलग रहे, फिर भी मुझे यह तो लगता है कि कमेटी स्वीकार करूँ तो भी उसमें भी श्री शास्त्रियार, तेजबहादुर सप्रू और मि० एण्ड्रूज जैसे इस प्रश्न के जानकार लोग नहीं, इसलिए मुझे उपर्युक्त कमेटी के निर्णय के बारे में अविश्वास तो रहेगा ही।'

दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में वहाँ की सरकार ने 'क्लास एरियाज बिल' केप कालोनी प्रान्त पर लागू न करने का प्रस्ताव किया है। इसके बारे में गांधीजी ने नीचे लिखे अनुसार राय दी : 'यह तो वहाँ के डच लोगों के स्वार्थ का नमूना है। वहाँ के घरों में सब नौकरानियाँ मलाया की स्त्रियाँ हैं और यदि वहाँ भी कानून लागू कर दिया जाय, तो गोरी गृहिणियों को घर के काम में मदद कौन देगा? इसलिए उन्हें रखने के लिए अर्थात् बहुत से गोरों के स्वार्थ के लिए, केवल दस हजार भारतीयों को वहाँ से निकालकर अपने अभिमान को सन्तुष्ट करना छोड़ दिया।'

कुछ विद्यार्थी गांधीजी से मिलने आये और उनके साथ हुई बातचीत पिछले अंक में दी थी। आज शेष अंश देता हूँ :

"इन विद्यार्थियों में आधे गुजराती नहीं समझ सके, इसलिए उन्होंने अंग्रेजी में कहने की माँग की। उन दक्षिणी और मद्रासी विद्यार्थियों को बापू ने अंग्रेजी में सारी बात समझायी।

"क्या मेरा खादी का मंत्र आप लोगों ने समझा है?"

सब शुद्ध विदेशी कपड़ा पहने हुए थे, इसलिए घबराये और एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। "आप घबराइए मत। चरखे का मर्म आपके हृदय में बसा है या नहीं, यही मैं आपसे पूछता हूँ। यदि बसा हो, तो आपने खादी क्यों नहीं पहनी, यह मैं इसके बाद के प्रश्न में पूछूँगा। पहले तो आपसे इतना ही चाहता हूँ कि मेरा कहना आप निःशंक रूप में समझे हैं या नहीं? समझे हों तो मैं आपको उस पर अमल करने में मदद दे

सकता हूँ, क्योंकि मेरी और कॉलेज के प्रोफेसरों की पहचान है। मैं पकड़ा गया, उससे थोड़े ही समय पहले हमारी बातें हुई थीं।"

"हाँ जी; हम समझे हैं। परन्तु हममें दृढ़ता नहीं।"

"अर्थात् क्या कॉलेज में आपको इसे पहनने की मनाही है?"

"नहीं, कॉलेज में तो आजादी है। हम पहले खादी पहनते थे, परन्तु बाद में छोड़ दी। इसलिए दृढ़ता प्राप्त करने के लिए हम आपके पास आये हैं।"

"यानी मुझे देखकर दृढ़ता प्राप्त करोगे, यही न?"

"आपसे हमें प्रेरणा मिलेगी, इसलिए हम आये हैं।"

"हुँ। यदि इस तरह आपको प्रेरणा मिलती हो और खादी धारण करने को तैयार हों तो जरूर आप मेरे पास आइए और अब तो प्रतिज्ञा लेकर जाइए। मैं अच्छा होकर जब पुनः आपको देखूँ, तब आपको खादी पहने हुए देखूँ, और साथ ही यह भी मान लेता हूँ कि आप यहाँ से कातने की भी प्रतिज्ञा लेकर जा रहे हैं।"

"जी हाँ, हम प्रयत्न करेंगे।"

"शुरू में कॉलेजों में और दूसरी जगहों पर खादी पहनना कठिन था, परन्तु अब तो यह कठिनाई बिलकुल नहीं रही।··· आपको यह जानकर खुशी होगी कि सासून अस्पताल के साथ के मेडिकल स्कूल के डेढ़-दो सौ विद्यार्थियों ने मेरे आने के दूसरे दिन कर्नल मॅडक के सामने खादी पहनने और कातने का मुझे वचन दिया और वे भी अधिकांश पालन करेंगे।"

इससे चकित होकर अधिक आश्चर्य में या कुतर्क करने की आजकल की शिक्षा में सीखी हुई बुरी आदत के कारण एक भाई ने पूछा: "क्या कर्नल मॅडक ने भी प्रतिज्ञा ली है?"

"नहीं, उन्होंने नहीं ली। परन्तु यदि मैं और रहा होता तो वे अपने घर में बराबर खादी जरूर इस्तेमाल करने लग जाते। परन्तु यह हमें नहीं देखना है। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि मैं अपने तमाम देशी भाइयों को खादी पहना सकूँ तो पलभर में इन लोगों को पहना सकूँगा।" इतना सुनकर सबने बिदा ली।

ये विद्यार्थी तो सरकारी अथवा अर्ध-सरकारी कॉलेजों के थे। परन्तु राष्ट्रीय विद्यालयों के विद्यार्थी भी खादी पहने बगैर गांधीजी के पास

जाते नहीं शरमाते। वे जब पूना में थे, तब बम्बई के कुछ विद्यार्थी उनसे मिलने गये थे। ज्यादातर मिल के कपड़े पहने हुए थे। उन्हें तो गांधीजी ने एक ही वाक्य में छुट्टी दे दी थी। "आप खादी न पहनें, इससे तो बेहतर है कि विद्यालय में केवल दीवारें ही खड़ी हों!"

गांधीजी छूटे, उस दिन का कुछ चित्र तो मि० एण्ड्रूज से प्राप्त करके दिया गया था, परन्तु उस दिन की एक बात अभी तक जानकारी में नहीं आयी। छूटने के बाद डॉक्टर के साथ की बातचीत, छोड़ने का हुक्म सुनते समय की अक्षुब्ध शान्ति वगैरह के ब्योरेवार वर्णन आ गये, परन्तु एक बात मालूम नहीं हुई थी। गांधीजी ने छूटने के बाद पहली बात यह की कि उन्होंने अस्पताल में जो कपड़े पहने हुए थे—जिनका इशारा पहले किया ही जा चुका है—उनका त्याग करके खादी के वस्त्र पहने। जेल में कैदी के नाते जो कपड़े पहनना गांधीजी ने स्वीकार किया था, उनका संकेत अस्पताल के जीवन-सम्बन्धी लेखों में मैं कर चुका हूँ। छूटने के साथ ही धर्म बदल गया। धर्म के बारे में जितनी जाग्रति, उतनी ही उसके आचरण में तत्परता।

मि० एण्ड्रूज गांधीजी के पास बैठे-बैठे अनेक प्रकार की सेवा कर रहे हैं। उनकी देखभाल तो बालक की देखभाल करनेवाली ममतामयी माँ के जैसी है। परन्तु इसके सिवा पिछले दो वर्षों की कितनी ही हकीकतों से भी वे गांधीजी को परिचित कर रहे हैं; और उन पर हुए आक्षेपों वगैरह की याद दिलाकर उनसे कई मामलों पर स्पष्ट विचार प्रकट करा रहे हैं। इसका नमूना भारत-सरकार की अफीम की नीति पर गांधीजी का लिखा हुआ लेख है। इस लेख में मि० केम्पबेल के जिस आरोप की बात है, उसका पता 'नवजीवन' के पाठकों को होना चाहिए। पिछले साल के १२ जुलाई के विशेषांक में 'श्री शास्त्रियार का सहवास' नामक एण्ड्रूज का लेख है, जिसमें भारत-सरकार की अफीम-नीति के दंभ का मि० एण्ड्रूज ने अनेक उदाहरणों द्वारा पर्दाफाश किया है और भारत-सरकार ने श्री शास्त्रियार को धोखा ही नहीं दिया है, बल्कि गांधीजी की अनुपस्थिति में उन पर झूठा दोषारोपण किया है, इसका उस लेख के अन्त में उल्लेख है।

(नवजीवन ता० ३०-३-१९२४)

जब गांधीजी अस्पताल में थे, तब हमने वहाँ के जीवन के कुछ चित्र

देने का प्रयत्न किया था। उनके छूटने के बाद पूना में केवल एक बार और वह भी दो घण्टे के लिए मैं उनसे मिला था और उसके पश्चात् जुहू में अभी मिला। सबसे बड़ी खुशखबरी मुझे पहली यह मिली कि उन्होंने 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' दोनों के संचालन का भार अगले सप्ताह से अपने हाथ में लेने का निश्चय किया है। मैंने पूछा : 'क्या सम्पादक के रूप में आपका ही नाम रखा जाय ? अर्थात् सारी जिम्मेदारी आप ही लेंगे या केवल मुख्य विषयों पर ही आप थोड़ा-सा लिखेंगे ?' 'नहीं, सम्पादक के तौर पर मेरा ही नाम रहेगा। अब मुझसे बैठा नहीं रहा जायगा और अनेक प्रश्न खड़े होते ही जा रहे हैं, होते जायँगे, इसलिए अब ठहरना नहीं हो सकेगा। मात्र लोग शान्ति से रहने देंगे तो यह बात कठिन नहीं है।' दो बरस से घबराये हुए, व्याकुल, गांधीजी के लेखों के बिना तिलमिलाये हुए कितने ही लोग हैं, उनका और अपना विचार करके मैं प्रसन्न हुआ। गांधीजी जब जेल गये, तब 'नवजीवन' के ग्राहक २३१४२ और 'यंग इण्डिया' के २१५०० थे। उनमें से पहले के १५९५५ और दूसरे के १८५०० तो थककर दोनों पत्रों से अपना सम्बन्ध तोड़ बैठे। उनका भी अब फिर ताजा सम्बन्ध करने का समय आयेगा, यह जानकर मैं खुश हुआ। और विचित्र संयोगों के कारण जो अस्वाभाविक स्थान ले बैठा था, उससे अब हटा जा सकता है, इस भावना से भी मेरे आनन्द का पार नहीं रहा। अखबार चलाते हुए सत्य और अहिंसा का जाने-अनजाने कितना भंग होता है यह मेरा जी ही जानता है, इसलिए अलाहाबाद में जेल जाते हुए मुझे जितना आनन्द हुआ था, उतना ही आज हो रहा है। परन्तु गांधीजी का विचार करते हुए अभी मैं घबरा रहा हूँ। आशा है, गांधीजी ने जो अनुरोध किया है, उसका अक्षरशः पालन करके लोग उन्हें इन दोनों पत्रों को चलाने योग्य शान्ति देंगे। बिदा लेते और देते आम तौर पर दुःख होता है। परन्तु मेरे पाठकों से बिदा लेने के संयोग ऐसे मधुर हैं कि उन्हें बिदा देते और मुझे लेते हुए समान ही सुख का अनुभव हो रहा है। यह घड़ी इतनी जल्दी आयी, इसके लिए हम सब कृपालु परमेश्वर का आभार मानते हैं।

विलेपारले के भाई तो पहले ही समय निश्चित कर गये थे। उनकी पाठशाला में अस्पृश्यता के प्रश्न के कारण कुछ कठिनाई खड़ी हो गयी है।

यह पाठशाला बहुत बड़ी है, काम सुन्दर ढंग से होता है, परन्तु अभी कुछ समय से शिक्षकों ने अछूतों को दाखिल करने का प्रश्न उठाया है, इस पर बालकों के वैष्णव माता-पिताओं में खलबली मची है। पाठशाला की प्रबन्ध-समिति के सदस्यों में से कुछ तो अनुकूल हैं, परन्तु कुछ प्रतिकूल हैं। ये सब भाई निपटारे के लिए गांधीजी के पास आये थे। कुछ बहनें भी थीं। गांधीजी ने विलेपारले के स्वास्थ्य के बारे में बात करके आरम्भ किया। मैं सारे प्रसंग का सार देने की कोशिश करूँगा :

"ऐसी सुन्दर जगह, जहाँ मकानों की तंगी नहीं, जहाँ हवा-रोशनी का पार नहीं, जहाँ बम्बई की गन्दगी और भीड़ से भागकर आप आते हैं, वहाँ निमोनिया के केस क्यों? वहाँ बीमारी और प्लेग क्यों हो? मैं तो समझ ही नहीं सकता। मैं स्वयं रोगी होते हुए आपको इसके लिए उलहना दूँ, इसकी अपेक्षा तो स्वीकार कर लूँ और आपको समझाने का प्रयत्न करूँ, यही अच्छा है कि इस स्थिति के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं। मैं मानता हूँ कि मच्छर, खटमल, मक्खी वगैरह, जिनके कारण रोग फैलते हैं, प्रकृति के तैयार किये हुए चाबुक हैं। ये चाबुक न हों, तो हम किस तरह सावधान रहें? मैं यहाँ रहकर जितनी अधिक चाहूँ उतनी गन्दगी बढ़ा सकता हूँ। मक्खी, मच्छर आदि भी जितना चाहे उतना पैदा कर सकता हूँ। परन्तु आप देखते हैं कि यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। यहाँ मैं आया, उसी दिन मैंने कह दिया था कि हमें भंगी नहीं चाहिए। अब भंगी तो यहाँ है, मगर यहाँ का आधा मैला उठानेवाले और साफ-सफाई रखनेवाले देवदास, प्यारेलाल और कृष्णदास-जैसे बालक हैं। यदि आप इसमें कोई कमी देखते हों तो वह इन बालकों से कभी-कभी गफलत हो जाने के कारण ही होगी। परन्तु यदि मैं गन्दगी होने दूँ तो आप समझ सकते हैं कि कुदरत का सारा मजा ही चला जाय। आप यह भी समझ लें कि गन्दगी दूर करने के साथ स्वराज्य का भी कितना सम्बन्ध है। मान लीजिए, हमें स्वराज्य मिल गया। उसके बाद हम प्रमादी रहें, अपने स्वास्थ्य के बारे में ला-परवाह रहें, तो अंग्रेज हमें फिर लात मारकर निकाल देंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। और इसके साथ ही साथ चमार और भंगी का सवाल आता है। हम चमार और भंगी से छुआछूत करते रहेंगे, उन्हें अस्पृश्य मानते रहेंगे तो हम किस मुँह से अंग्रेजों से समानता माँग

सकेंगे ? समानता की बातें करने से पहले यह चीज समझ लेना बहुत जरूरी है।

"अब इस बारे में धर्म की बातें मैं आपके सामने क्या करूँ ? मुझे इतना ही लगता है कि हमारे धर्म में जो कुछ लिखा हो, याज्ञवल्क्यादि ऋषि-मुनियों ने इधर-उधर कुछ भी लिखा हो, वह सभी अमर और स्थायी नहीं। वह जमाना अलग था, आज का जमाना अलग है। नहीं तो द्रौपदी को हम अलौकिक स्त्री मानते हैं, प्रातःकाल उसका नाम लेते हैं, पाँचों पाण्डवों को पूज्य मानते हैं, इसलिए क्या आज हम द्रौपदी की तरह पाँच पति करनेवाली को सती मानेंगे ? हम उन्हें पूजते हैं तो उनके कामों के कारण। हमें गुणग्राही बनना चाहिए और उनके कुछ गुण अलौकिक थे, इसलिए हमने उनका स्मरण संग्रह कर रखा है। यह तो महाभारत की बात हुई। रामायण से अधिक प्रिय पुस्तक मेरे लिए कोई नहीं। फिर भी तुलसीदास ने शास्त्र की जो अनेक बातें की हैं, वे क्या सभी प्रमाणभूत हैं ? मनुस्मृति तो बड़ा प्रमाण-ग्रन्थ है। परन्तु मनुस्मृति में तो मांसाहार का साफ उल्लेख है। तो क्या आप मांस-भक्षण करेंगे ? आपके सामने ऐसी बातें करूँ, तो आप चौंकते हैं। कोई मांस-भक्षण करता होगा तो चोरी-छिपे करता होगा, यह अलग बात है। परन्तु मनुस्मृति में तो मांस-भक्षण शरमाकर करने की बात नहीं कही गयी, खुले-आम करने की बात कही गयी है। फिर भी हमने उसे त्याज्य माना है। कलियुग में जिस वस्तु के बारे में मनाही, उसकी सतयुग में अनुमति ? सुवर्ण-युग में अभक्ष्य भक्ष्य हो सकता है और इस कलियुग में नहीं, क्या यह विचित्र मालूम नहीं होता ? बात यह है कि धर्म को किस दृष्टि से देखा जाय, यही मुख्य वस्तु है। और उसमें दो बातें हैं : एक यह कि धर्म की बातों की चर्चा बुद्धि से नहीं, हृदय से की जाय; और दूसरी यह कि धर्म के नाम पर अधर्म न चलाया जाय। आपको जानना चाहिए कि महाभारत का भी अनर्थ हो सकता है। दुर्योधन पर भीम की गदा चली, इसलिए ऐसा कहनेवाले हो जायँ कि भाई-बन्धु एक-दूसरे को शत्रु समझकर मार डाल सकते हैं, तो मैं कहूँगा कि आपको महाभारत ठीक तरह पढ़ना नहीं आता। यह विषय ही केवल हृदय का है। मेरा धर्म बुद्धि पर आधार रखनेवाला नहीं, केवल हृदय पर रखनेवाला है, और आपसे मैं हृदय टटोलने की प्रार्थना करता हूँ।"

इसके बाद गांधीजी ने सबसे चर्चा करने का आग्रह किया। थोड़ी देर तक कोई तैयार नहीं हुआ। इसलिए गांधीजी ने कहा : "मेरे सामने छोटा बच्चा भी बोल सकता है, मुझसे डरने की कोई बात ही नहीं है। यदि मुझसे कोई डरता है, तो मेरा अहिंसा-धर्म नष्ट हो जाता है।" इस पर एक भाई आगे आये। खादी का कोट था, कोट के बटन पर गांधीजी का चित्र था, ब्राह्मण थे। उन्होंने अपनी कठिनाई बताने की कोशिश की :

"मैं सब धर्मों को माननेवाला हूँ, गांधीजी को माननेवाला हूँ। मेरा कहना तो यह है कि सब सर्वानुमति से होना चाहिए। मैं नहीं कहता कि अछूतों को न पढ़ाया जाय। मैं तो कहता हूँ कि उनकी अलग पाठशाला खोलिए। उसमें जो शिक्षक पढ़ाने जाय और वह शिक्षक हमारे बच्चों को पढ़ाने न आये। मैं इतना चाहता हूँ। मार्केट में इस मामले की खूब चर्चा हुई थी और बहुतों ने जो बात की, वह मैं आपके सामने पेश कर रहा हूँ। बहुत-से तो रुपयों की बातें भी कर रहे थे।"

गांधीजी ने बीच में कहा : 'नहीं, रुपये का प्रश्न नहीं। रुपया तो भले ही लोग देना बन्द कर दें। परन्तु रुपया देना बन्द हो जाय तो क्या हम अछूतों के बच्चों को पढ़ाना बन्द कर दें?'

वे भाई भी गांधीजी की दृष्टि से सहमत हो गये, परन्तु तात्पर्य दूसरा निकाला : 'नहीं, रुपये का प्रश्न नहीं। बहुत-से कहते हैं कि अछूतों के बच्चों को भरती नहीं करेंगे, तो कांग्रेस कमेटी रुपया नहीं देगी। मैं कहता हूँ, कोई बात नहीं, न दें तो रुपया तो कहीं से भी मिल जायगा।'

गांधीजी हँसे। उन्होंने पूछा : 'अच्छा, आप कांग्रेस को मानते भी हैं या नहीं? आप अछूतों को न आने देंगे तो आप कांग्रेस के निश्चय के विरुद्ध व्यवहार करते हैं।'

'नहीं, मैं कांग्रेस के इस निश्चय को नहीं मानता। आपने सर्वसम्मति से निश्चय किया होगा, परन्तु यहाँ सर्वसम्मति से कहाँ होता है? यहाँ तो अनेक विरुद्ध हैं और फिर भी आप आग्रह करेंगे, तो मैं तो अपने लड़के को हटा लूँगा।'

गांधीजी : 'यह तो कोई बात नहीं हुई। मैं मानता हूँ कि मेरा धर्म आपके लड़के को पढ़ाने की अपेक्षा अछूतों के लड़कों को पढ़ाना अधिक

है, क्योंकि आपके बच्चों को तो कहीं भी पढ़ने को मिल जायगा, परन्तु अछूतों के बच्चों को कहाँ मिलेगा?'

'मैं कहाँ कहता हूँ कि अछूतों के लड़कों को न पढ़ाइए। परन्तु उन सबको इकट्ठे करें तो इसमें हमारी जाति जाती है, सब जगह खलबली मच जाती है। मैं तो आपको भी प्रसन्न रखूँ और अपने जाति-भाइयों को भी राजी रखूँ। आप तो सब कुछ बिगाड़ डालनेवाले हैं।'

गांधीजी: 'अरे भाई, एक तो बिगड़े बिना रहेगा नहीं।'

'अरे साहब, फूट से स्वराज रुक जाता है। इस प्रकार सर्वसम्मति न होने पर भी काम लेने से क्या स्वराज मिलेगा? एकता से ही स्वराज मिल सकता है।'

सब लोग इस दलील से खिलखिलाकर हँस पड़े। मगर गांधीजी उसे हँसी में नहीं उड़ा दे सकते थे।

गांधीजी: 'बाप-बेटे के बीच क्या मतभेद नहीं होता?'

'इसमें तो सब बिगड़ गया है।'

गांधीजी: 'मेरे और मेरे लड़के के बीच अन्तर रहा है, फिर भी क्या फूट थोड़े ही है? क्या मतभेद कोई फूट है?'

'परन्तु इसमें दूसरे को दुःख देने की बात तो है ही न?'

गांधीजी: 'नहीं, दुःखी तो हरगिज नहीं करना है; परन्तु सत्य कहने से मेरे लड़के को दुःख हो, तो उसकी परवाह किये बिना मुझे उससे सत्य ही कहना चाहिए।'

'सत्य से दुःख हो ही नहीं सकता, उसमें असत्य का भाग होगा, तभी दुःख होगा।' पिछले नवरात्र का एक किस्सा सुनाकर उन्होंने कहा कि 'उस अवसर पर सब शान्त रहे थे, किसीने अस्पृश्यता मिटाने की बात नहीं की थी, तब तक सब ठीक था।'

गांधीजी: 'शान्ति किस बात से रही? दूसरों ने अपना धर्म छोड़ा इससे? धर्म छोड़कर भी कहीं शान्ति प्राप्त की जा सकती है?'

इतने में एक भाई ने गांधीजी को बताया कि 'नहीं, शान्ति तो कितनी थी सो मैं आपको बताऊँ। गरबा में कुछ मारवाड़ी बहनें थीं। उन्हें देखकर अनेक लोगों को शंका हुई कि अछूत बहनें होंगी। परन्तु कोई बोला नहीं।

बाद में कानाफूसी हुई, अन्त में मालूम हुआ कि वे तो मारवाड़ी बहनें थीं। अछूत बहनों को इस तरह पहचानना भी मुश्किल होता है।'

इस पर गांधीजी ने कहा : 'नहीं; परन्तु यहाँ तो जिन बहनों ने गुजराती पोशाक नहीं पहनी होगी और जिनका मुँह गुजराती बहनों जैसा अच्छा नहीं दीखता होगा, वे इनके हिसाब से अछूत।' इस पर हँसी-दिल्लगी रही।

गांधीजी ने दूसरी दलीलें शुरू कीं। 'अच्छा, क्या आप वसन्तराम शास्त्री को भी जानते हैं या नहीं? वे भी आपको इस मामले में समझायेंगे कि आपका दुराग्रह उचित नहीं। आप क्या मालवीयजी को कम सनातनी हिन्दू मानते हैं? वे तो अछूतों को छूते ही नहीं, उन्हें लेकर कुएँ पर गये और उसमें से उन्हें पानी भरने दिया, और सबने पानी पिया।' यह सुनकर तो वे दंग रह गये, जरा घबराये और बोल उठे : 'हाँ, हाँ, मैं जानता हूँ कि थोड़े अरसे में सब कुछ एकमेक हो जानेवाला है।'

फिर हँसी हुई। तब फिर उन्हें धीरज दिलाने के लिए गांधीजी ने विषय बदला :

'आप कहाँ के हैं?'

'पोरबन्दर के पास का ही हूँ।' इस उत्तर से फिर हँसी रोकना असंभव हो गया।

गांधीजी : 'अच्छा, तो आप लड़के को पाठशाला में तो भेजिए, परन्तु उसे नहलाइए।'

वे भाई : 'अरे, सारी बात ही बिगड़ जायगी, फिर नहाना क्या और धोना क्या? अछूत को छूने की बात करते हैं, सो तो कोयले को धोने जैसी बात लगती है।'

इस भाई की बात-बात में गोकुलनाथजी महाराज का, जिन्हें वे मानते हैं, नाम आता था।

गांधीजी : 'अच्छा, आप अपने गोकुलनाथजी महाराज से कहें कि लड़के को पाठशाला में भेजूंगा और नहला दूँगा, वे आपको मना नहीं करेंगे।'

वे : 'गोकुलनाथ बाबा कहें कि ऐसा कर, तो जरूर मानूँगा।' (परन्तु इसमें भी ऐसे खिंचे, मानो बड़ी स्वीकृति हो रही हो और बोले :) 'परन्तु वे ऐसा कह ही नहीं सकते।' फिर हँसी।

गांधीजी : 'अच्छा, आप किसीका भी अंकुश स्वीकार करते हैं या नहीं ?'

वे : 'उचित हो तो स्वीकार करूँ; परन्तु गोकुलनाथजी ऐसा कहेंगे ही कैसे ?'

गांधीजी : 'हाँ, हाँ, परन्तु वे कहें, तब तो आप नहलायेंगे न ?'

वे : (कुछ परेशान होकर) 'परन्तु स्नान कितनी बार कराया जाय ? लड़का कई बार नहाकर बीमार हो जायगा ।'

गांधीजी : 'ओहो; जब हम छोटे-छोटे थे, तब हमें प्याज बहुत भाता था; मेरी माँ वैष्णव ठहरी; वह बेचारी बाहर प्याज पकाती और हमें ऊँचे से परोसती। हम उसे चिढ़ाते, तंग करते, उसे छूते और वह नहाती। तब से मैंने अपनी माँ से प्रेममय असहयोग सीखा। यह तो पैंतीस बरस पहले की बात है। उसे एक जमाना हो गया। उस समय भी अछूतों को छूकर हम नहा डालते। हमारी माँ हमें अनेक बार नहलाती। तो आज यह क्या मुश्किल है ?'

वे : 'गोकुलनाथजी कहें तो फिर देखूँगा।'

गांधीजी : 'देखना, देखना।'

परन्तु सारा संवाद कहाँ देने बैठूँ ? हिन्दू-समाज अगर यह समझ ले कि इस संवाद में उसका चित्र आ गया है, तो वह चेत जायगा। यह स्थिति कैसी हास्यास्पद और भोंडी है, यह फौरन् महसूस हुए बिना नहीं रहेगा। इतना होने के बाद अधिक बात करने को रह ही नहीं जाती। और बातें पूरी होने से पहले तो श्री केशवराव देशपाण्डे ने साधक आश्रम के विद्यार्थियों को लेकर गाते-गाते प्रवेश किया। उन्हें बिठाकर गांधीजी ने वह प्रकरण समाप्त करना शुरू कर दिया। एक और ब्राह्मण सज्जन आये। शुद्ध सफेद खादी के काठियावाड़ी अँगरखाधारी और ललाट पर चन्दन का आड़ा तिलक लगाये हुए। ऐसा मालूम हुआ कि ये सज्जन कुछ प्रखर हिन्दुत्व बतायेंगे। परन्तु उन्होंने साफ दिल से पहले ही कह दिया : 'मैं ब्राह्मण हूँ, परन्तु अस्पृश्यता मुझे अन्तःकरण से गलत मालूम होती है।' इसके बाद कुछ कहने की बात नहीं थी। उनकी आपत्ति तो इतनी ही थी कि 'जब अछूत पढ़नेवाले नहीं हैं, तो इतनी खलबली, केवल सिद्धान्त का प्रश्न उठाकर क्यों खड़ी की जाय ?' इस पर एक भाई ने बताया कि अनेक भंगी पढ़ने की माँग कर रहे हैं। तीसरे सज्जन आये।

उन्होंने 'हिन्दू समाज का चित्र' शब्द जो मैंने पहले दिया है, उसकी पुष्टि की। 'पहले महाराज जो कुछ कह चुके हैं, उससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है। मुझे गोकुलनाथजी जो कहें, सो सब मंजूर है।' चौथे सज्जन ने एक व्यावहारिक आपत्ति उठायी। 'सबके बच्चे अछूतों के बच्चों के साथ बैठें, तो बैठने में तो आपत्ति नहीं, परन्तु दोपहर को नाश्ते के समय सब एक साथ नाश्ता करेंगे तो जाति-बन्धन कहाँ रहेगा ? हम तो, साहब, अछूतों का छूना मान लेते हैं, परन्तु शिक्षा तक यह बात आप क्यों ले जाते हैं ? इस बात के सुनते ही फौरन् घाटी लोगों ने एक बार हड़ताल की थी।'

अन्त में गांधीजी ने फैसला दिया कि 'भले ही अभी पाठशाला अलग खोलो।'

इस पर महाराज बोल उठे : 'परन्तु शिक्षक तो अलग चाहिए।'

गांधीजी : 'शिक्षक तो हरगिज अलग नहीं हो सकते। परन्तु एक रास्ता है। आप शिक्षक बन जायँ। बनेंगे ?'

वे : 'नहीं, नहीं, क्या ऐसी बात हो सकती है ? किसी ईसाई, मुसलमान को शिक्षक बनायें तो कोई आपत्ति नहीं।'

गांधीजी : 'यह तो आपने बड़े अनर्थ की बात की। मैं चाहता हूँ, आप यह बात वापस ले लें।'

महाराज को वापस ले लेने में तो कोई पैसे लगते नहीं थे, जिस भाव से उन्होंने यह कहा था कि 'गोकुलनाथजी कहेंगे तो देखूँगा', उसी तरह यह कहकर खड़े हो गये कि 'लो, वापस ले ली। परन्तु मैं तो अछूतों के स्पर्श के ही विरुद्ध हूँ।'

लगभग ९-९॥ बजे थे। कोई बातें करते अघाता नहीं था और हर नवागन्तुक को बातें करने की उतावली रहती थी। विलेपारलेवालों के जाने के बाद श्री केशवराव देशपाण्डे ने अपने साधक आश्रम के विद्यार्थियों में से प्रत्येक का परिचय दिया, और अपने कार्यक्रम का वर्णन किया। खादी के सिवा मुझे और कोई बात अच्छी ही नहीं लगती, यह गांधीजी सबसे कहते हैं और इन भाइयों के सामने भी उन्होंने खादी की ही बातें कीं। भाई करंदीकर की, जो तलेगाँव में खादी का ही काम कर रहे हैं, खूब बातें कीं और कहा कि ऐसा कार्य करें तो मुझे अच्छा लगता है। भाई

करंदीकर आश्रम में एक बार रह गये हैं। उन्होंने वहाँ दो सौ से अधिक कत्तिनों को इकट्ठा किया है, उनसे कतवाकर बुनवाते हैं। परन्तु कतवाकर बुनवाते हैं, इतना कहने में उनका सारा काम नहीं आ जाता। ये कत्तिनें कातने की बहुत मजदूरी माँगती हैं, उन्हें १५ आने सेर तक मजदूरी देकर भी वे कतवाते हैं, क्योंकि वे अच्छा बुननेवाले हैं और अपने और अपने बुननेवालों के लिए दस आने सेर तक बुनाई की मजदूरी कमा लेते हैं।

साधक आश्रम के भाई और बहनें अपना भोजन अपने साथ बाँधकर लायी थीं, इसलिए वे धूप होने पर राष्ट्र-गीत सुनाकर बिखर गये। इसी बीच गांधीजी बातें करते-करते अपना दूसरी बार का भोजन ले चुके थे। उसे समाप्त करने के बाद ऊपर गये। उससे पहले तो कुछ मुलाकात करनेवाले नीचे बैठकर प्रतीक्षा कर रहे थे। गांधीजी कितनी ही अपीलें प्रकाशित करें, परन्तु सब तक वे पहुँचती नहीं, बहुत से आनेवाले ऐसे होते हैं कि उन्हें इनकार करने को गांधीजी का जी नहीं हो सकता, इसलिए इस प्रकार ऐन वक्त पर—सूचना दिये बिना—मुलाकात करनेवाले भी बहुत होते ही हैं। इन्हें निपटाने में लगभग ११॥ बजे होंगे। ऊपर जाकर अपने बीमारों को देखा। गांधीजी के बीमार कौन ? परन्तु गांधीजी को अपने आसपास रोगी रखने का शौक है। 'मैं यहाँ समुद्र की हवा खाऊँ और मेरे साथ काम करनेवाले बीमार हों तो उनकी चिन्ता मुझे करनी पड़ती है। इससे यह अच्छा है कि उन्हें साथ रखकर उनकी कुछ सेवा हो जाय और जलवायु का जो लाभ मिले, उसमें उनके साथ शरीक हो जाऊँ, यह मेरा धर्म है'—ऐसी उनकी दलील है। और चूँकि ऐसा करना उनका स्वभाव हो गया है, इसलिए बीमारों की सँभाल रखने में उन्हें कोई विशेष कष्ट नहीं होता, उल्टा आनन्द आता है, ऐसा कहूँ तो हर्ज नहीं। जब तीन वर्ष पहले वे सिंहगढ़ गये थे, तब ऐसे बीमारों में एक मैं था। उनकी सेवा करने में उन्हें आनन्द आता है और कुछ अभिमान होता होगा, क्योंकि गांधीजी अपने को राजनीति की अपेक्षा प्रकृति के नियमों का पालन करने और कराने में अधिक कुशल मानते हैं। इन बीमारों में से एक बीमार श्री मजली तो जुहू के अस्पताल में आने से पहले ही केवल गांधीजी के प्रेममय पत्रों के इलाज से ही अच्छे होने लगे हैं। उनकी पूछ-ताछ और सँभाल के बाद खुद स्नान करते हैं और उसके

बाद आकर बैठते ही भोजन सामने आ जाता है और अखबार पर जरा नजर डाल लेते हैं या पास के कमरे में बैठे हुए एण्ड्रूज आकर कुछ समाचार सुनाते हैं। इस प्रकार खाते-खाते अखबार पढ़ लेते हैं अथवा शायद पाव घंटा दे सकें तो अलग भी दे देते हैं। इसके बाद घड़ीभर करवट बदल लेते हैं।

इस प्रकार एक बज जाता है। जिस दिन का मैं वर्णन कर रहा हूँ, उस दिन तो उन्होंने पहलेवाला ही चरखा मँगाया। उसे ठीक-ठाक करने में कुछ समय लगा। वह 'जीवन चरखा' था। उसके ठीक होते ही आश्रम का खास बड़े चक्करवाला चरखा उनके सामने पेश हुआ। आज से फिर उस पर नियमित कातना शुरू हुआ। कातते समय मौन रखने की उनकी सलाह होती है। कातते-कातते राम-नाम की धुन लगाने और उसमें तन्मय हो जाने का जिन्हें अनुभव हो, वे यही सलाह देंगे। परन्तु आज तो मौन नहीं था। उनके मित्र केशवराव देशपांडे विद्यार्थियों को नीचे बिठाकर ऊपर आये हुए थे। उनके साथ कुछ-कुछ बातें हो रही थीं। गुजरात प्रान्तीय परिषद् के अध्यक्ष-पद की बातें करते हुए यह बात निकली कि अध्यक्ष के रूप में कैसे आदमी को नियुक्त किया जाय, गांधीजी ने कहा : 'स्त्रियों की सभा हो, वहाँ कदाचित् श्रीमती जाइजी पीटिट जैसी बड़ी संस्कारी और सुशिक्षित बहन मिल जाय तो उन्हें मैं अध्यक्ष बनाऊँ, नहीं तो फिर खादी का काम करनेवाली सूरजबहन को——नहीं तो बा का ——कस्तूरबा का——नाम मैं जरूर सुझाऊँ। परन्तु और कोई बहुत पढ़ी-लिखी होते हुए भी काम में कुछ भी दिलचस्पी न लेती हो, तो उसका नाम मैं नहीं सुझाऊँगा।' इस बात से बढ़िया काम करनेवालों की बातों पर पहुँचे और पहला नाम उनके मुँह पर एक अस्पृश्य बहन गंगाबहन का आया। उनका गुणगान वे अनेक मित्रों के सामने कर चुके हैं, इसलिए मैं प्रकाशित कर दूँ तो क्षम्य माना जायगा। 'जिस दिन से वह आश्रम में आयी है, उस दिन से इनके जैसी अपने काम में तल्लीन स्त्री कोई नहीं देखी। ये तो योगिनी हैं, यह कहूँ तो भी हर्ज नहीं। चौबीसों घंटे उसे बुनाई की ही धुन सवार रहती है। इसके सिवा उसे दूसरी बात अच्छी ही नहीं लगती। वह अच्छी तरह कमा सकती है। मगर कमाने का उसे लालच नहीं।'

श्री केशवराव आश्चर्यचकित होकर सुनते ही रहते थे, क्योंकि इस

बहन का नाम अखबारों में कभी नहीं आया, उसे तो उसके साथ रहे हुए लोग अथवा आज रामेसरा के लोग जानते हैं।

देशपांडेजी को सम्बोधन करके गांधीजी कहने लगे: 'छह फुट ऊँची यह गंगाबाई जैसी प्रौढ़ लगती है, वैसी दूसरी बहुत कम लगती होंगी। उसके पास मैं खड़ा रहूँ तो उसके लड़के जैसा लगूँ। फिर भी वह फौलाद-जैसी है। और इतना काम करते हुए भी उसमें कोई अभिमान नहीं पाया जाता। वह अपनी मर्यादा अच्छी तरह समझती है। यहाँ आयी हो और मैं कहूँ कि कुर्सी पर बैठो, तो कभी न बैठे, एक छोटा-सा कोना ढूँढ़कर, कोई न देखे, इस ढंग से बैठ जायगी। इसका जन्म तो धन्य है। जैसा नाम है, वैसा ही इसका काम है।' इस प्रकार गंगाबहन के गुण गाते-गाते कातना समाप्त हुआ।

वहाँ से उठकर डाक देखने लगे। गांधीजी की डाक का अर्थ है दुनिया की दसों दिशाओं की डाक। स्वदेश से बहुत डाक आये, यह तो स्वाभाविक ही है, परन्तु विदेशों की डाक का भी ढेर लग जाता है। कोई पुस्तकें भेजता है, तो कोई अपने देश की स्थिति की बात करता है। इतना कह दूँ कि विदेशों से आनेवाले पत्र ज्यादातर 'शान्तिवादियों' के होते हैं। गांधीजी को अप्रसिद्ध रखने और उनकी ओर होनेवाला लोगों का आकर्षण रोकने की सर ज्यॉर्ज लॉइड की मुराद पूरी नहीं हुई। मुझे लगता है कि जेल जाने से पहले गांधीजी के नाम जितनी विदेशी डाक आती थी, उसकी अपेक्षा आज कई गुनी बढ़ गयी है। गांधीजी विदेशों के प्रश्नों में तो पड़ते ही नहीं, विचार भी प्रकट नहीं करते। एक अखबार के प्रतिनिधि ने उनसे विदेशों के प्रश्नों के बारे में सवाल पूछा। गांधीजी ने कहा: 'इसमें मैं अपनी कोई राय नहीं दे सकता।'

उसने कहा: 'परन्तु आपके-जैसे सूक्ष्म अवलोकन करनेवाले की कुछ भी राय न हो, यह क्या कोई मानेगा? कुछ तो कहिए।'

गांधीजी ने तुरन्त कहा: 'हाँ, मैं सूक्ष्म अवलोकन करनेवाला हूँ, इसीलिए गहरे और सूक्ष्म अध्ययन के बिना किसी वस्तु के बारे में राय नहीं देता। और विदेशों का अध्ययन करने का तो मुझे आज अवकाश ही नहीं।'

फिर भी इतने विदेशी पत्र-व्यवहार करते हैं, उनके सामने 'अहिंसा' के

सिवा और कोई चीज नहीं रखते। 'मेरा तो विश्वास दिन-दिन इसीमें बढ़ता जा रहा है। आपका देश भी हमारे देश में हो रही प्रवृत्ति को देखे, समझे और उस मार्ग में कुछ सीखने जैसा हो तो सीखे।' बस, वे इतना ही लिखनेवाले हैं।

मैं दो दिन से ठहरा हुआ था, परन्तु मेरे साथ बातें करने के लिए वे एक क्षण भी नहीं निकाल सके थे। इसलिए आज थोड़ी-सी बातें करने के लिए मुझे समय दिया। 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'-सम्बन्धी बातों के अलावा और कुछ बातें कर रहा था, इतने में तो बाहर से लोग आने लगे। एक भाई एक संन्यासी को लेकर आये। उनके साथ थोड़ी-सी बातें कीं। वे हिंसा-अहिंसा के पुराने प्रश्न पर उतर पड़े। गांधीजी ने चर्चा में पड़ने से इनकार कर दिया और स्वामीजी से क्षमा माँग ली। परन्तु इतना करने में भी समय तो लगता ही है। इसके बाद एक अंग्रेज महिला आयीं। उन्होंने पहले ही मिलने की अनुमति ले ली थी। उन्हें काले रेशम की पोशाक पहने देखकर गांधीजी ने स्वाभाविक प्रश्न किया: 'यह काली पोशाक क्यों?' इस पर उन्होंने शरमाकर कहा: 'मेरी एक बहन पेरिस में है। उसे मैं सदा प्रत्येक ऋतु में एक-एक पोशाक भेजने को कहती हूँ। यह पोशाक पेरिस का नया-से-नया फैशन है। मैं शरमाती हूँ, परन्तु क्या करूँ, हम तो ऐसे ही हैं।' फिर और कई बातें करके कहने लगी: 'सरोजिनी देवी ने मुझे खादी की कुछ चीजें दिलवायी हैं और वे भी मैं पहनती हूँ।'

गांधीजी ने कहा: 'तब तो मेरा दुर्भाग्य ही है न कि मुझसे मिलने आप खादी की पोशाक में नहीं आयीं और यह पहनकर आयीं?'

वे और शरमायीं, और बोलीं: 'अरेरे, मैं सोचती थी कि आपसे मिलने आने के लिए तो मुझे अपने बढ़िया-से-बढ़िया कपड़े पहनने चाहिए, इसलिए यह पहनकर आयी। अब फिर कभी आऊँगी तो खादी के पहनकर आऊँगी। जरा पीले-से रंग के हैं, सफेद तो नहीं, आपको अच्छे लगेंगे?'

गांधीजी: 'रंग कैसा भी हो, खादी होगी तो अच्छी ही लगेगी।'

इनके साथ बातें पूरी होते ही एक पारसी भाई आ गये। उन्होंने भी नये-से-नये फैशन की विलायती पोशाक पहन रखी थी। उन्होंने मिलने के लिए पहले से पुछवा लिया था। पहले तो उन्होंने अपने मंडल का एक मासिक दिखाया, और गांधीजी से प्रार्थना की: 'पारसी युवकों को संदेश

के रूप में यदि दो शब्द भेज दें, तो हम अगले अंक में छापना चाहते हैं।' यह प्रार्थना करके वे जाना चाहते थे ।

परन्तु गांधीजी ने उनसे पूछा : 'आप क्या करते हैं ?'

'मैं सॉलिसीटर की परीक्षा में बैठा हूँ । धन्धा कराची में करनेवाला हूँ और अब कराची जा रहा हूँ ।' कुछ रुककर वे बोले: 'गांधीजी, इजाजत हो तो एक सवाल पूछना चाहता हूँ ?'

'बेशक पूछिए ।'

'मेरा सवाल यह है कि आपने असहयोग किया, उस समय कितनी आशा रखी थी और आज आप कितने सफल हुए ? बड़ी आशा रखी, इसलिए क्या बड़ी निराशा नहीं हुई ?'

गांधीजी : 'निराशा' शब्द मेरे शब्दकोष में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। मुझे एक वर्ष में स्वराज्य मिलेगा, ऐसा विश्वास इस एक शर्त पर था। 'यदि लोग इतना करें तो यह होगा' यह शर्त थी । और आपसे यह भी कह दूँ कि मेरी शर्त विवेकशून्य नहीं थी । कोई कहे कि एक पर एक सीढ़ी चढ़ें तो आकाश पर चढ़ा जा सकता है । यह शर्त मूर्खतापूर्ण कही जायगी, परन्तु ऐसा नहीं लगता कि मैंने बिना विचारे शर्त रखी ।'

'आपने जो आशा रखी थी, वह क्या लोगों की शक्ति से बाहर की नहीं थी ?'

गांधीजी : 'नहीं, बिलकुल नहीं । मैंने अपनी आँखों से दिसम्बर महीने में देखा था कि अहमदाबाद में तो स्वराज्य मिल गया है, ऐसा सबको लगता था । और सब सोचा हुआ मिल जाता । परन्तु चौरी-चौरा आ गया । वह आ गया सो भी सुन्दर हुआ । ईश्वर की कला अकल्पनीय है। वह जो करता है सो अच्छे के लिए होता है । यदि स्वराज्य हाथ में आ गया होता, तो शायद परिणाम बुरा होता । पिछले दो वर्ष में जो अनुभव हुए हैं, उन पर से हमारा कुशल ही दिखाई देता है । मुझे यह हरगिज नहीं लगता कि आज हमने लड़ाई हारी है ।'

वे : 'हार में ही जीत है, यही न ?'

गांधीजी : 'हाँ, जितनी मंजिल पार की है, उतनी जीत है । आज हम अपनी शक्ति अधिक अच्छी तरह जानते हैं ।'

वे : 'परन्तु गांधीजी, आपको तो लोग हवाई किले बनानेवाले कहते

हैं । मुझे तो लगता है कि अच्छा वकील सब कुछ देख-भालकर ही काम करनेवाला होता है । इसलिए आप भी अच्छे वकील होने के साथ गहराई में जानेवाले हैं । निराशा हो तो कोई बात नहीं, आज आपने जो कदम उठाया है, वह उठाना ही चाहिए, यह समझकर ही उठाया है न ?'

गांधीजी : 'आपकी और सब बात सच है; एक ही गलत है—मुझे निराशा थी ही नहीं । मुझमें निराशा हो, तो मैं लड़ूंगा ही नहीं । और आपसे कहता हूँ कि मेरी जीवनभर की वकालत इसी प्रकार हुई है । मैं जानता कि मामला साफ है, इसमें मेरा मुवक्किल जरूर जीतेगा, तभी मामला लेता और अक्सर ऐसा होता था कि आधे रास्ते जाकर मुझे पता लगता कि मामला कमजोर है, मुवक्किल का कुछ न कुछ काला है, तो मैं विनयपूर्वक मजिस्ट्रेट से कह देता, 'मामले का फैसला मेरे विरुद्ध दीजिए', और मुवक्किल को भी उस फैसले से सन्तोष मानने को समझाता । इसके परिणामस्वरूप मैं बहुत ही थोड़े मुकदमों में हारा हूँ । ऐसा ही मेरा यह मामला था । मैंने कुछ कुर्बानियों की आशा रखी थी ।'

वे : 'तो क्या आपने यह सोच ही लिया था कि आप जितनी कुर्बानी चाहते हैं, उतनी लोग अवश्य देंगे ?'

गांधीजी : 'इस बारे में शंका नहीं ।'

इससे उस भाई को सन्तोष हुआ या नहीं, यह तो ईश्वर जाने, परन्तु एक प्रश्न पूरा होने के बाद दूसरा करने को वे तैयार हुए ।

वे : 'गान्धीजी, आपका खादी का मंत्र मैं नहीं समझा । जो 'राजनीति' का काम करना चाहता है, वह क्या खादी के बिना कर ही नहीं सकता ?'

गांधीजी : 'हरगिज नहीं । यह सवाल आपने मुझसे पहले ही पूछा होता, तो मुझे अधिक अच्छा लगता ।'

वे : 'मुझमें देश के लिए भावना है, जोश है; मुझे खादी की क्या जरूरत है, क्या खादी के बिना काम नहीं हो सकता ?'

गांधीजी : 'आपमें जोश है, देश के लिए भावना है, मेरे जितनी ही है, परन्तु आपमें ज्ञान नहीं । ऐसा कहते समय मैं अभिमान का अनुभव नहीं करता, परन्तु आज तीस वर्ष के अनुभव से कहता हूँ कि आपको देश की स्थिति का ज्ञान नहीं और ज्ञान न होने का प्रमाण तो आप अपने प्रश्न से ही दे रहे हैं । आपको स्वराज्य चाहिए, वह किसके लिए चाहिए ? सबल के

लिए या निर्बल के लिए ? और निर्बलों की जरूरतें क्या आप जानते हैं ? हमें उनके प्रति भावना है, यह बतानेवाली कोई निशानी तो चाहिए न ? खादी वह निशानी है । मैं कहता हूँ कि भारत में उसे वेदवाक्य समझें कि करोड़ों के लिए पहनने को लँगोटी तक नहीं है । मैंने तो इतना अंग ढँक रखा है, परन्तु वे तो जो भाग ढँके बिना काम ही नहीं चल सकता, उसे भी मुश्किल से ढँक पाते हैं । सौ बरस पहले ऐसी स्थिति नहीं थी, क्योंकि भारत को जिन्दा रखनेवाले दो धंधे, उसका पोषण करनेवाले दो रोजगार—बुनाई और खेती—उस समय थे । मगर उसके बाद क्या हुआ ? आज ही मॉर्ले द्वारा उद्धृत बर्क का एक वाक्य मेरे पढ़ने में आया, जो आपको और मुझे दोनों को रुला देगा ।

'जिस आदमी ने कातनेवालों का कातना बन्द किया और बुननेवालों के हाथ करघे से अलग किये, जिसने बंगाल के किसान का खाने का मुट्ठी-भर अनाज लूटा और नमक लूटा, और जिस अफीम से वह बेचारा इन पीड़कों और उनके उत्पीड़न को थोड़ी देर के लिए भुला सकता था, वह अफीम भी लूटी, उसकी बर्क ने जलते हुए अंगारों जैसे शब्दों में कड़ी निन्दा की है ।' उस कम्पनी के चपरासियों के कृत्यों का, उनके पापों का प्रायश्चित्त अब करना है । यह हम निर्बलों के साथ तादात्म्य स्थापित किये बिना नहीं कर सकेंगे । और कोई उपाय नहीं । क्या कोई यांत्रिक इलाज है ? इससे थोड़े-से मिलमालिक या करोड़पति हमें मिल जायँगे, परन्तु उन्हें क्या मैं घोलकर पियूँ ? उनसे स्वराज्य नहीं मिलेगा । मैं तो आपसे कहूँगा कि आप हरएक गरीब का पेट भर दें—और उसका उपाय केवल वही है, जो मैंने बताया है—तो मैं लिखकर दे दूँगा कि स्वराज्य आपको मिल जायगा । मगर बात यह है कि हमारी आँखों के आगे आवरण है—पर्दा है, जिससे हम दीपक जैसी वस्तु को भी अनदेखी कर जाते हैं। आज ही एक अंग्रेज स्त्री आकर गयी है (जिसका मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ) । वह कहती है कि 'अपने पति के साथ मैं जेल में छापाखाना देखने जाती थी । एक बार वहाँ कोड़ों की आवाज आयी । कुछ दिखाई नहीं देता था, इसलिए मैंने अपने पति से पूछा कि यह क्या है ? उसने मुझसे कहा कि कैदी को कोड़े लग रहे हैं। मैंने कान बन्द कर लिये और कहा, यहाँ से चलिए, मुझसे यह सहन नहीं होगा। मेरे पति ने मुझे समझा-

कर कहा, यह आदमी बदमाश है, कोई अपराध किया होगा, इसलिए क्या कोड़े लगाये बिना काम चल सकता है ? परन्तु मैंने तो कह दिया कि कुछ भी हो, मुझसे यहाँ खड़ा नहीं रहा जाता, यह आवाज मुझसे सुनी नहीं जाती ।' वह महिला और कुछ नहीं कर सकी । उसको खयाल हुआ कि अधिक आवाज सुनूँगी तो मेरी आत्मा व्याकुल होगी, उन कैदियों को देखूँगी, तो मेरी अँतड़ियाँ व्याकुल होंगी । और अँतड़ियाँ व्याकुल होंगी, तब तो फिर वह सजा बन्द कराने का विचार करना चाहिए । यह कैसे हो ? इसलिए उसने कान बन्द कर लिए । यही स्थिति आपकी है । यह स्थिति मेरी थी । हम सब आँखें बन्द करके चलते हैं । अब मेरी यह स्थिति नहीं रही । सर एम० विश्वेश्वरैया जैसे अर्थशास्त्री मेरी यह बात नहीं सुनते, क्योंकि उसे सुनना उन्हें पसन्द नहीं । उनका खयाल है कि मैं अतिशयोक्ति कर रहा हूँ । आपको अपना धन्धा नहीं छोड़ना है, आपको तो उसी तरह चलाना है, जिस तरह चलता रहा है, इसलिए शायद आप मुझसे कहें कि मैं ढोंग कर रहा हूँ । परन्तु मैं आज आपको ऐसी जगह ले जा सकता हूँ—देश के ऐसे भाग दिखा सकता हूँ, जहाँ एक भी कपड़ा बदलने को नहीं मिलता । इसलिए वहाँ लोग एक ही कपड़े में, नहाये बिना सालभर काम चलाते हैं, जहाँ लँगोटी पहनने को नहीं मिलती । और लँगोटी अर्थात् क्या ? एक पैसे का कपड़ा । वह भी नहीं मिलता । इस प्रकार कितनी दरिद्रता होगी ? यह दरिद्रता खादी के बिना, मेरे और आपके जैसों के काते बिना नहीं मिटायी जा सकती । और उसे नहीं मिटायेंगे तो स्वराज्य का क्या अर्थ है ?'

वे भाई परेशान हो रहे थे । उनसे शायद यह वर्णन उस महिला की तरह सुना नहीं जा रहा था ।

इसलिए कहा : 'तब तो मैं इजाजत लूँ । मैं एक समय खादी पहनता था, परन्तु मेरे माँ-बाप बीच में आ गये ।'

गांधीजी : 'तब तो यह बात नहीं कि आप समझते नहीं थे । आप तो अपने माँ-बाप के दोष के कारण नहीं पहनते । पारसियों में इतनी जीवट होती है कि लड़का बाप को समझा सकता है और बाप लड़के को । आपको भी समझाने का प्रयत्न करना चाहिए, और वे समझेंगे ।'

वे : 'यदि उनके जड़ विचार हों तो कैसे बदले जायँ ?

गांधीजी : 'अरे, माँ-बाप के विचार जड़ हो ही नहीं सकते । आप आजमाकर तो देखिए ।'

वे : 'जरूर आजमाकर देखूँगा । अच्छा, साहब, कराची जा रहा हूँ। वहाँ का कोई काम-काज हो तो कहिए । किसीको कोई सन्देश भेजना हो तो वह भी ले जाऊँ ।'

गांधीजी : 'कराची खादी पहने, यह सन्देश दिया जा सके तो दीजिए ।'

इसके बाद तो जो बड़ी भीड़ नीचे बैठी हुई थी, उसमें से लोग एक के बाद एक अधीर होकर आने लगे । सबसे पहले थोड़ी-सी बहनें आयीं । एक जर्मन बहन थी । उन्होंने खादी की साड़ी पहनकर माथे पर बिन्दी लगा रखी थी ! उनके साथ अनेक बातें हुई होंगी, परन्तु हर वक्त सब बातें सुनने का मुझे कोई अधिकार है ? वे इतनी देर तक बैठीं कि गांधीजी का सैर करने का वक्त भी हो चुका था । उनसे छूटकर वे टहलने निकले। सैर करते समय भी कुछ न कुछ बात करनेवाले उनके साथ चले । आम तौर पर गांधीजी सैर का समय बातचीत के लिए नहीं देते । परन्तु उन्हें अपवाद-स्वरूप दिया । आठ बजे लौटे । प्रार्थना हुई । और साढ़े आठ बजे उन्हें कुछ शान्त होने का मौका मिला । इस शान्ति में फिर गांधीजी को अपना जुहू में खड़ा किया हुआ घर सँभालना होता था, किसी को अहिंसा, अपरिग्रह समझाना होता, तो किसी के आगे अपने आत्म-निरीक्षण के अनुभव रख देने होते । इस तरह उनका दिन बीतता है । जो यह जान ले, वह व्यर्थ उनका एक मिनट भी न ले । और इसी तरह उनके सब दिन बीतेंगे, तब तो शायद उन्हें एक के बजाय दो दिन मौन के रखने होंगे ।

(**'नवजीवन' ता० ६-४-१९२४**)

त्रावणकोर के सत्याग्रह के सम्बन्ध में थोड़ा आगे-पीछे की हकीकत दे देना असंगत नहीं होगा । ता० १३ मार्च को श्री केशव मेनन, मंत्री, केरल प्रान्तीय समिति ने गांधीजी को एक पत्र लिखकर इस सत्याग्रह के सम्बन्ध में उनका संदेश माँगा था । उस पत्र में उन्होंने बताया था :

"जिस सड़क पर जुलूस निकालने का विचार किया है, वह सार्वजनिक धन से पक्की रखी जाती है और आजकल ईसाई, मुसलमान और शिष्ट हिन्दू उसका बेरोक-टोक उपयोग करते हैं ।"

इस पत्र का गांधीजी ने ता० १९-३-१९२४ को उत्तर देते हुए लिखा था :

"आपने जुलूस निकालने का विचार किया है, यह एक प्रकार का सत्याग्रह ही कहा जायगा । इस सत्याग्रह की शर्तों के बारे में आपका ध्यान आकर्षित करने की जरूरत नहीं है । यदि जुलूस को हमारे कोई आदमी रोकें, तो बिलकुल बल-प्रयोग तो हो ही नहीं सकता । आपको झगड़ा किये बिना अवश्य झुक जाना है और मार पड़े तो उसे सहन कर लेना है । जुलूस में भाग लेनेवाले प्रत्येक मनुष्य को यह शर्त जान लेनी चाहिए और उसका पालन करने को तैयार होना चाहिए । किसी भी तरह की उद्दण्डता तो होनी ही न चाहिए और आपको लगे कि जुलूस में शरीक होनेवाले शर्त पूरी नहीं करते, तो आपको जुलूस रोकने में भी संकोच नहीं करना चाहिए । मुझे डर है कि हमने सुधार-विरोधियोंके साथ बहुत मशविरा नहीं किया; इसलिए हमें अधिक सावधानी की जरूरत है । प्रश्न विकट है और मेरे द्वारा बिस्तर पर पड़े-पड़े आपको सलाह देना आसान है । इसलिए सावधानी के बारे में इशारा करके आपकी सफलता चाहकर ही सन्तोष कर लूँगा ।"

इसके बाद मालूम होता है कि कुछ स्थानीय भाई गांधीजी से मिले। उनसे मिलने के बाद गांधीजी ने श्री केशव मेनन को १ अप्रैल को इस प्रकार पत्र लिखा है :

"भाई शिवराम आयर और वंचेसुरा आयर आपके सत्याग्रह के सम्बन्ध में मुझसे मिलने आये हैं । वे बताते हैं कि जिन रास्तों से जुलूस जाता है, वे खानगी हैं और जिस मंदिर को वे जाते हैं, उसी मंदिर के हैं । वह मन्दिर ब्राह्मण-ट्रस्टियों के एकाधिकारी स्वामित्व का है, जो इन भाइयों के कथनानुसार मार्ग पर के आवागमन पर नियंत्रण रखने के हकदार हैं । मैंने उनसे पूछा कि ये रास्ते ब्राह्मणों के ही निजी स्वामित्व के हों, तो उन पर ब्राह्मणेतर जाते हैं या नहीं ? उन्होंने स्वीकार किया कि 'जाते हैं ।' इसके बाद मैंने उनसे कहा कि जब तक एक भी ब्राह्मणेतर इन रास्तों पर जा सकता है, तब तक कथित अस्पृश्यों और बहिष्कृतों को भी वही हक होना चाहिए । वे मेरे साथ सहमत हुए और उन्होंने बताया कि मन्दिर और रास्तों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले ट्रस्टियों और ब्राह्मणों को

ठीक-ठीक समझा सकने में कुछ देर लगेगी। और पं० मालवीयजी भी दो महीने में दक्षिण में जानेवाले हैं। यदि मंदिर के ट्रस्टी अपने और अछूतों व बहिष्कृतों के प्रतिनिधि आपके झगड़े का निपटारा पं० मालवीयजी को पंच बनाकर कराना मंजूर कर लें और उनका फैसला अमुक समय में दिया जाना निश्चित हो जाय, तो मैं आपको सलाह दूँगा कि फिलहाल आप सत्याग्रह स्थगित रखें। ऐसा करते हुए आप लोगों को यह भी घोषित कर देना चाहिए कि केवल पंच नियुक्त करने के कारण सत्याग्रह बन्द रहेगा। स्पष्ट है कि यह सलाह यह मानकर ही दी गयी है कि आयर बन्धुओं की दी हुई सारी जानकारी सही है। वे कहते हैं कि सुधार करने के लिए वे भी हमारी तरह ही आतुर हैं और यदि उनका कहना सच हो तो हमारे सिद्धान्त को बाधा न पहुँचे, इस तरह हमें उनके सामने झुक जाना चाहिए।"

इस पत्र-व्यवहार से यह भी समझ में आयेगा कि गांधीजी सत्याग्रह की कैसी और कितनी मर्यादा रखते हैं।

('नवजीवन' ता० १७-४-१९२४)

वाइकोम (त्रावणकोर) में श्री केशव मेनन वगैरह के गिरफ्तार होने के बाद वहाँ की सरकार ने सत्याग्रहियों को पकड़ना बन्द करके उसके बजाय उन्हें वर्जित मार्गों पर जाने से रोकना शुरू किया। इसके विरुद्ध उन्हें पकड़ने या रास्तों पर जाने देने के लिए मजबूर करने को सत्याग्रही दिन-रात उसी स्थान पर बैठकर उपवास करने लगे। श्री ज्यॉर्ज जोसफ ने उस समय नेतृत्व सँभाला था। उनके पत्र के उत्तर में गांधीजी ने उन्हें नीचे लिखा पत्र भेजा था :

'उपवास बन्द कर दें; परन्तु बारी-बारी से पकड़े जाने तक सत्याग्रह के स्थान पर खड़े रहें अथवा बैठ जायँ।' इस प्रकार का तार मैंने आपके तार के जवाब में भेजा है। सत्याग्रह में उपवास की भी निश्चित मर्यादाएँ हैं। जालिम के विरुद्ध उपवास नहीं हो सकता, क्योंकि यह तो उस पर एक प्रकार की हिंसा ही है। उसकी अज्ञा का उल्लंघन करने की सजा आप उससे माँग लें, मगर वह सजा न दे और आप सजा के पात्र बनें, इस तरह आपको आज्ञा-भंग न करने दे तो जान-बूझकर कम सजा लेने का

आपको अधिकार नहीं। उपवास तो स्नेही के विरुद्ध किया जा सकता है और वह भी कोई हक प्राप्त करने के लिए नहीं, परन्तु उसे सुधारने के लिए, जैसे कि शराबी पिता के विरुद्ध पुत्र उपवास करे। बम्बई और बारडोली में मैंने जो उपवास किये थे, वे इसी प्रकार के थे। मुझे चाहनेवालों को सुधारने के लिए मैंने उपवास किये थे। परन्तु जो मुझे नहीं चाहता, बल्कि जो मुझे अपना दुश्मन मानता है—उदाहरण के लिए जनरल डायर–उसके विरुद्ध मैं हरगिज उपवास नहीं करूँगा। क्या आप मेरी बात समझे? आपको धीरज रखना चाहिए। आप देशी राज्य में हैं, इसलिए दीवान अथवा महाराज के पास आप डेपुटेशन भी ले जा सकते हैं। जो सनातनी हिन्दू आपके आन्दोलन के प्रति सहानुभूति रखते हों, उनका हजारों हस्ताक्षरोंवाला प्रार्थना-पत्र भी दिलवा सकते हैं। अपने विरोधियों से भी मिलें। इस प्रकार अपने सौम्य सत्याग्रह द्वारा आप कई तरह से मदद कर सकते हैं। सत्याग्रह करके आपने जनता का ध्यान तो खींचा ही है। कोई अनशन से मर न जाय अथवा उतावला होकर अत्याचार न करे, इस बारे में जरूर सावधानी रखें।

अहमदाबाद की महासमिति

('नवजीवन' ता० ६-७-१९२४)

गांधीजी महासमिति में जो प्रस्ताव पेश करनेवाले थे, उनसे लोगों को शायद ही आश्चर्य हुआ होगा। जो प्रस्ताव डेढ़ वर्ष पहले या बारडोली के प्रस्ताव के बाद तुरन्त ही आने चाहिए थे, उन्हें पेश करते और उनका सिद्धान्त स्वीकार कराते समय तथा अन्त में जिस रूप में वे स्वीकार हुए, उसमें भी उन्हें पास कराने में गांधीजी को कितनी मेहनत करनी पड़ी, उससे प्रकट होता है कि हम पिछले दो वर्षों में कितने पिछड़ गये थे। इस प्रकार ये प्रस्ताव क ख ग से पुनः आरम्भ करने जैसी ही बात हुई।

× × ×

पेश किये गये मूल प्रस्तावों और पास हुए प्रस्तावों में पाठक बहुत परिवर्तन देखेंगे। इन प्रस्तावों की चर्चा गांधीजी के महासमिति-सम्बन्धी लेख

में* विस्तार से हुई है। उसमें जिन बातों की चर्चा नहीं की गयी, उन्हींका यहाँ उल्लेख करने और अखबारों में आनेवाली कुछ गलत खबरों को सुधारने की जरूरत है।

पहले प्रस्ताव में से शिक्षा का प्रबन्ध करनेवाला भाग निकाल दिया गया है। इसके हालात थोड़े में दे दूँ। प्रस्ताव पर मत लिये जाने से पहले ही गांधीजी ने मत देनेवालों को अच्छी तरह से सावधान कर दिया था, यह जान लेने का आग्रह बता दिया था कि शुद्ध मत कितने डाले जाते हैं, और गांधीजी ने शुरू से ही बता दिया था कि जो समिति की कार्रवाई से अप्रसन्न होकर चले गये हैं, उनकी रायें भी जरूर गिननी चाहिए। 'जो चले गये, वे अपने मत अपनी जेब में रखकर चले गये हैं, परन्तु हमें तो गिनने ही होंगे' यह उन्होंने बता दिया था। ये मत गिनने के लिए किसीका सुझाव नहीं था, मगर गांधीजी को खुद ही यह बात स्फुरित हुई और मत-गणना करते समय उन्होंने आग्रहपूर्वक जानेवालों के मतों की गिनती की, पास हुए प्रस्ताव में भी सुधार कराया।

शिक्षा का प्रस्ताव गिर गया, इससे कुछ भी बुरा नहीं हुआ। यदि निजी बात बता देने की छूट लूँ, तो शिक्षा के प्रस्ताव से कुछ लोग चिढ़ गये थे और वह हटा दिया जाय, तो मूल प्रस्ताव पर अमल करने के लिए सब तैयार थे। यह बात बतानेवाले कार्यसमिति में सबसे पहले आदमी मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब थे। बाद में महासमिति में जब प्रस्ताव आया, तब भी उन्होंने यही बात जाहिर की थी कि और यह भी बताया था कि शिक्षा का प्रस्ताव न हो, तो मैं मूल प्रस्ताव पर अमल करने की स्वीकृति देता हूँ और इस बात का आश्वासन देता हूँ कि अमल न करनेवाले अपने स्वाभिमान के लिए त्याग-पत्र दे देंगे। पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने भी यह बात कही थी। उन्होंने पूरे प्रस्ताव का समर्थन किया था। वे तो शिक्षा का प्रस्ताव पास हो या न हो, तो भी उससे बँधे हुए हैं। जिन्होंने शिक्षा के प्रस्ताव का विरोध किया, वे मौलाना साहब की स्वीकृति से बँधे हुए हैं।

दूसरे प्रस्ताव में हुए संशोधन नाम मात्र के हैं। प्रान्तीय समितियों के मंत्री के कसूर पर महासमिति को कार्रवाई करने का अधिकार मूल

---

* देखिये परिशिष्ट ३।

प्रस्ताव में दिया गया था। नये प्रस्ताव में यह अधिकार नहीं ले लिया गया, परन्तु इतना परिवर्तन किया गया कि एक बार प्रान्तीय समिति अपनी भूल सुधारने की कार्रवाई करे और वह न करे तो ही यह अधिकार काम में लाया जाय।

तीसरे प्रस्ताव के बारे में गांधीजी का अपना ही विवेचन सम्पूर्ण है। उसकी भाषा अटपटी है और 'समाधान' का प्रस्ताव होते हुए भी उसकी इतनी आलोचना की जा सकती है कि सीधे दिलवालों का उससे समाधान नहीं हो सकता। परन्तु जिन परिस्थितियों में वह किया गया, वे उसके बचाव के लिए पर्याप्त हैं। दूसरी बात यह है कि उसमें किया गया अनुरोध स्वीकार न करनेवाले के लिए तो उसकी भाषा सीधी होती या अटपटी होती, यह दोनों समान ही हैं।

चौथे प्रस्ताव के विषय में गांधीजी के विवेचन के अतिरिक्त दो-चार बातें और कहना चाहता हूँ।

चौथा प्रस्ताव बाद में अनियमित करार दिये जाने के कारण अस्वीकृत हो गया था। पाँचवें प्रस्ताव पर चौथे के साथ विचार करना आवश्यक है। इन दोनों प्रस्तावों के बारे में सदस्यों ने जो वृत्ति दिखायी, उससे गांधीजी के मन पर हुआ परिणाम उनके लेख में जैसा हू-ब-हू दिया गया है, उस प्रकार देने में दूसरी लेखनी असमर्थ है।

दोनों प्रस्तावों के बारे में समिति ने जो वृत्ति दिखायी, वह हमारी शिथिल तत्त्वपालन की सूचक थी। इन दोनों प्रस्तावों के सम्बन्ध में जिस ढंग से कार्रवाई हुई, उसे देखकर गांधीजी को ऐसा महसूस हुआ होगा कि हम हाथी को खोकर अंकुश के लिए झगड़ने की वृत्ति के वशीभूत हो गये हैं। गत वर्ष के कांग्रेस के विधानसभाओं के बहिष्कार के दीपक-जैसे साफ प्रस्ताव को कमजोर करनेवाले प्रस्तावों की बार-बार चर्चा करने और उन्हें स्वीकार करने में हमें जरा भी संकोच नहीं हुआ, यह एक बात; देशबन्धु दास का प्रस्ताव कांग्रेस के संकल्प का ही उच्छेदक था, यह स्पष्ट था, फिर भी उसे अनियमित ठहराने के लिए खड़ा होना किसीको नहीं सूझा, यह दूसरी बात; और जो प्रस्ताव कांग्रेस के कार्यक्रम के पोषक थे और साथ ही पाँचवें प्रस्ताव की तरह जो प्रस्ताव वर्तमान परिस्थिति के स्वीकार-सूचक थे, उन्हें उलटने के लिए कानून की जो बहस हुई, उससे गांधीजी

जितने घायल हुए, उतने और किसी बात से नहीं हुए होंगे। अदालतों का बहिष्कार करने के बावजूद कानून का जहर हमारे मन की रग-रग में कितना फैला हुआ है, इसका करुण दर्शन महासमिति के अधिवेशन के दिनों में गांधीजी ने सबसे अधिक तीव्र रूप में किया।

देशबन्धु को यह नहीं लगा कि उनका प्रस्ताव अनियमित है। इतना ही नहीं, परन्तु उन्होंने अपने और गांधीजी के प्रस्तावों का पृथक्करण करके बताया कि दोनों एक ही चीज हैं। इस पृथक्करण से हम बचपन में एक खेल किया करते थे, वह याद आ गया। एक बालक पूछता कि जिसमें 'g' 'd' और 'o' अक्षर आयें, ऐसा एक शब्द बताओ। दूसरा 'god' उत्तर देता, तीसरा कहता, नहीं, 'god'। इस पर चौथा कहता, 'दोनों सही'। यह बात मुझे याद आ गयी। देशबन्धु के प्रस्ताव का अर्थ करने का कष्ट उठाने की भी किसीको जरूरत नहीं थी। बाबासाहब परांजपे ने उस पर सुन्दर भाष्य निर्माण किया और संसार को बताया कि उपर्युक्त प्रस्ताव को स्वीकार करनेवाले उसका कैसा अर्थ लगायेंगे। परन्तु देशबन्धु ने तो हठ पकड़ ली कि मेरे प्रस्ताव में पूर्ण विराम अथवा अल्प विराम भी नहीं बदलूँगा। यह दयनीयता की पराकाष्ठा थी।

पाँचवाँ प्रस्ताव गांधीजी को किन हालात में पेश करना पड़ा, यह उन्होंने बताया है। इस बात पर मजाक पर उतर आये हुए सदस्यों का ध्यान ही नहीं था। डॉ॰ चोइथराम तो केवल निमित्त हुए। असल में डॉ॰ चोइथराम ने जो खंजर भोंका, जैसा कि गांधीजी को दु:ख से कहना पड़ा था, वह उन्होंने सारी समिति ने भोंका था, यह स्वीकार करना चाहिए, और मानो सारी समिति की तरफ से माफी माँगने के लिए ही मौलाना मुहम्मदअली अपने हृदय को कड़ा करके अन्त में फिर खड़े हुए थे और रोते-रोते गांधीजी के चरणों में पड़े थे।

गांधीजी ने अपनी बातचीत का सार अपने लेख में दिया है। जिस भाव से ये शब्द बोले गये थे, जो भाव उनके मुख पर प्रकट हो रहा था, उसे तो आज कौन चित्रित कर सकता है? **'जो दिन लोचन बरसे लोही ता दिन साजन साँचा जाणो'**, ये वचन वह करुण प्रवचन सुनकर याद आ रहे थे। उस दिन गांधीजी के लोचन से और वाणी से हृदय का खून बरसता हुआ सबने देखा। पिछले सात वर्षों में ऐसा प्रसंग मेरे देखने में

नहीं आया। दक्षिण अफ्रीका में उनके साथ रहनेवाले कहते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में भी ऐसा प्रसंग हम लोगों ने कभी नहीं देखा था। इस बात से गांधीजी की पीड़ा की गहराई की कुछ-कुछ कल्पना हो सकेगी और हमारी तत्त्वनिष्ठा की अवनति की अगाधता का भी कुछ अनुमान हो जायगा। कुछ शब्द गांधीजी के ही यहाँ दे दूँ :

"गोपीनाथ साह के प्रस्ताव के बाद जो कुछ देखा, उससे मेरा जरा विनोद भी हुआ और दुःख भी हुआ। मुझे लगा कि मैं आपसे क्या कहूँ? 'यंग इंडिया' द्वारा बाद में कुछ कहूँगा। मुझे जो अत्यन्त दुःख हुआ, वह किसलिए? इसलिए कि हम सब स्वराज्य लेने की प्रतिज्ञावाले वहाँ इकट्ठे हुए थे। अहिंसामय असहयोग का ही उपाय काम में लेना स्वीकार करके बैठे थे। फिर भी हमने हिंसा की ही बातें कीं। महासमिति में हमसे हिंसा की बातें हो ही कैसे सकती हैं? कांग्रेस का जो ध्येय, जो संकल्प है, वही हमारा हो, तो ऐसी बात हमारी जबान पर नहीं आ सकती। अन्तिम प्रस्ताव पर मुझे आठ मतों से जीत मिली! जीत जैसी वस्तु मैंने दुनिया में जानी कहीं.... डॉ० परांजपे ने नयी बात नहीं की, उन्होंने तो मेरा सिद्धान्त उल्टे नरम करके बताया है, मैंने तो **'शठं प्रति सत्यम्'** कहा है। मैंने तो आपकी बहन की लाज लूटनेवाले, आपको घायल करनेवाले शत्रु के पैर चूमने की बात की है। मुझे दुनिया का राज मिले, तो भी मैं यह बात न छोड़ूँ। परन्तु हिंसा का भी मार्ग है, यह मैं मानता हूँ। इसीलिए मैंने दिल्ली में कहा था कि हमें सच्ची बात करनी चाहिए। परन्तु हमने तो आज खिलवाड़ किया। तलवार चलानी हो तो चलाइए और सचमुच चलायेंगे, तो मैं हिमालय में जाकर आपको बधाई भेजूंगा। परन्तु खिलवाड़ से मुझे पीड़ा होती है। मुझे गोपीनाथ के प्रस्ताव के बारे में बोलने की क्यों जरूरत हो? दूसरे प्रस्तावों के विषय में तो मैं जरूर बोलूँ, बहस करूँ, समझाऊँ, परन्तु जिसके भीतर कांग्रेस की जड़ है, उसके बारे में मुझे आज भाषण देना पड़े, तो हमें अपनी लड़ाई बन्द कर देनी चाहिए।

"और हिंसा का यह काम करके मैं हँसी-मजाक पर उतर आया। गंगाधरराव ने मुझसे पूछा कि 'क्या करना है?' मैंने कहा कि 'तुरन्त त्यागपत्र दे दें।' मैं तो उन्हें सारी सम्पत्ति जला देने को कहूँ। आसफ-अली आये, उन्हें भी यही बातें कहीं। उन्होंने कहा, 'वकीलों ने क्या

बिगाड़ा ?' इन परिस्थितियों में मैंने अपना प्रस्ताव तैयार किया। आपने इस प्रस्ताव का कैसा स्वागत किया, यह भी मैंने देखा। आप विरोधी बने, यह तो मुझे अच्छा लगा, क्योंकि इसे पेश करना मेरे लिए शर्म की बात थी, जहर का प्याला पीने जैसी थी, परन्तु मैंने पी लिया, क्योंकि तीस वर्ष से मैंने जिस जनता को देखने का धंधा किया है, उसकी स्थिति मैंने जान ली। मैंने हम सबकी शक्ति देखी और मुझे लगा कि मेरे लिए ऐसा प्रस्ताव तैयार करना अनिवार्य है। परन्तु मेरे विरोध में तो 'लॉ पॉइण्ट' (कानून की बारीकी) उठाया गया। तब मैं चौंका। मुझे महसूस हुआ : 'अरे जीव ! तू खुदा की बन्दगी कर रहा है या शैतान की ? तुझे यह क्या उपाधि लग गयी है ?"

डॉ० चोइथराम की बात करते-करते उनकी आँखों में बहुत देर से रुके हुए आँसू निकल पड़े, थोड़ी देर के लिए उनका गला भर आया। परन्तु तुरन्त सावधान होकर उन्होंने संक्षेप में अपने अन्तर की बात प्रस्तुत की :

"मैं सीधे आदमियों के साथ काम करना चाहता हूँ। आप सब टेढ़े ठहरे। कांग्रेस क्या चीज है ? आप इसे जैसी बनायेंगे वैसी ही वह बनेगी। आप सच्चे बनना चाहते हों, तो कांग्रेस से निकलकर गाँवों में काम कीजिए। मुझसे आप गधे की तरह बेगार करा सकते हैं, परन्तु सीधेपन से, टेढ़ेपन से नहीं। आप मुझे फुसला तो सकते हैं, परन्तु जब मैं देखूँगा कि आप मुझे बेच रहे हैं, तो फिर मैं खुदा का आसरा लूँगा और आपके पास खड़ा नहीं रहूँगा।"

इसमें से दूसरे भाग, जो गांधीजी ने दे दिये हैं, छोड़ देता हूँ। कुछ समय तक सब मंत्रमुग्ध-से रहे। बाद में मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब के कहने से एक के बाद एक ने बोलना शुरू किया। किसीमें मन की बात प्रकट करने की हिम्मत नहीं थी। प्रकट की केवल दो आदमियों ने। एक तो बंगाली सदस्य श्री मजुमदार ने और दूसरे शौकतभाई ने।

मौ० शौकतअली ने जिस धीरज से, शान्ति से और गद्‌गद हुए बिना जो थोड़े-से शब्द कहे, वे सबके अन्तरतम में उतर गये। गांधीजी के दर्द और संदेश को जितना मौलाना ने समझा था, उतना किसीने नहीं समझा; यूँ कहूँ तो मैं किसीके प्रति अन्याय नहीं करूँगा। उन्होंने कहा,

'आपने हमें गुलामों से मर्द बनाया है। अभी हममें सीधापन नहीं आया। वह तो आप ही हमारे साथ रहकर ला सकेंगे, आपके भाग जाने से वह नहीं आयेगा।' इतना ही कहकर मानो उन्होंने गांधीजी को बाँध लिया। देश मौलाना का जितना आभार माने, उतना कम है। कोकोनाडा में मौलाना शौकत वातावरण में व्यापक होकर खड़े थे। अहमदाबाद में गांधीजी के होते हुए भी शौकत ही वातावरण में छाये हुए थे, यूँ कहूँ तो गलत होगा ?

साबरमती, ता० २७-७-'२४

मौ० शौकतअली को
¶ प्रिय भाई,

आपका इटारसी से दिया हुआ तार मिल गया था। मुहम्मदअली दिल्ली में हैं, इससे खुशी हुई। मैंने उन्हें तार दिया है और कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से उनसे अनुरोध किया है कि जाँच करके वे प्रारम्भिक विवरण प्रकाशित करें। हकीमजी का तार है कि खबरें बहुत अतिशयोक्ति-पूर्ण हैं। कुछ भी हो। हम दिल्ली का काम व्यवहार-कुशलता से निपटा सकें तो बहुत-सी परेशानियों से बच सकते हैं। मैं स्वयं जल्दी वहाँ जाने के लिए उत्सुक हूँ। परन्तु मेरा दुर्बल शरीर मुझे रोक रहा है। अक्सर खयाल आता है कि किन्हीं भी परिस्थितियों में मुझे वहाँ जाना ही चाहिए और मुहम्मदअली के पास रहना चाहिए। फिर भी जब तक स्पष्ट आवाज न आये, तब तक मैं रुका हुआ हूँ।

मुझे बेलगाम-कांग्रेस का अध्यक्ष बनना चाहिए, यह आप किसलिए कहते हैं ? मैं अध्यक्ष बनूँ या न बनूँ, लोगों पर और कांग्रेस की कार्रवाई पर भी मैं असर तो डालूँगा ही। यदि मैं देश से राष्ट्र के श्रद्धेय सिद्धान्तों के रूप में हिन्दू-मुस्लिम एकता और चरखे को स्वीकार न करा सकूँ, तो मेरी कोई भी उपयोगिता नहीं रहती। आनेवाले कुछ महीनों में कातने के बारे में इच्छित उत्तर न मिल सके और हिन्दुओं तथा मुसलमानों को अधिक नजदीक न लाया जा सके, तो बेलगाम में अध्यक्ष बनकर क्या करूँगा ? उससे तो अचल अल्पमत का प्रतिनिधित्व करके बहुत काम किया जा सकता है।

मन रखनेवाले ऊपरी बहुमत से तो आन्दोलन में बाधा पड़ेगी :

स्नेहाधीन

मो० क० गांधी

साबरमती, ता० २६-७-'२४

¶ प्रिय भाई पिटीट,

मेरे पत्र के उत्तर में आपने मुझे पिछले महीने की १७ तारीख को पत्र लिखा था। उसका जवाब देने में मैंने जान-बूझकर देर की है। जेल जाने से पहले एक पत्र मैंने आपको लिखा था; उसका ब्योरा ढूँढ़ निकालने की मैं आशा रखता था। परन्तु वह मुझे नहीं मिल सका। पत्र के सम्बन्ध में श्री चतुर्वेदी को याद है। परन्तु उस पत्र का पता नहीं लगता। आपके पत्र में जिस खत का जिक्र है, वह तो श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा था। श्री बनारसीदास को स्पष्ट स्मरण है कि मेरे पत्र के उत्तर में आपने यहाँ से उन्हें दी जानेवाली रकम की आधी देने का वचन दिया था। मेरा यह सुझाव है कि श्री बनारसीदास को पूरे समय के कार्यकर्ता होने की जरूरत नहीं। इनके लिए पर्याप्त काम नहीं है। परन्तु इस विषय के निष्णात होने के कारण वे हममें से बहुतों से अधिक काम करते हैं। इनकी कुछ साहित्यिक जिम्मेदारियाँ हैं। उनमें से इन्हें कुछ मिलता नहीं और यह काम अधिक खर्च किये बिना वे बम्बई में रहकर नहीं कर सकते। आप जानते हैं कि उनका रहन-सहन बहुत सादा है। इसलिए यहाँ रहकर वे बम्बई की अपेक्षा मूल्य की दृष्टि से चौगुना अधिक काम कर सकेंगे। अपना तीन-चौथाई समय तो वे प्रवासी कार्य को देते ही हैं। इसलिए मेरी राय यह है कि इस काम के लिए सोचा हुआ रुपया उनके काम में खर्च होना उचित है। असोसियेशन के लिए भी उन्हें बम्बई में रखकर भारी वेतन देने की अपेक्षा यहाँ रहकर वे जो काम करते हैं, उसके लिए रुपया देना सस्ता पड़ेगा। अलबत्ता, जब उनकी सेवा की वहाँ जरूरत हो, तब उन्हें वहाँ बुलाया जा सकता है।

मेरा यह पत्र आप कमेटी के सामने पेश करें, उससे पहले मैं चाहता हूँ कि मैंने जो सुझाव दिया है, उसके ठीक होने के बारे में आपकी प्रतीति

हो जानी चाहिए। आप मुझे उत्तर लिखते समय कमेटी के सदस्यों के नाम मुझे भेज दें, ताकि अपने विचार मैं उनके सामने भी रख सकूँ।

सेवक

मो० क० गांधी

साबरमती, ता० २६-७-१९२४

¶ प्रिय मोतीलालजी,

आपके प्रश्नों के उत्तर:

१. मेरी राय यह है कि अपरिवर्तनवादी विधानसभा में प्रवेश के विरुद्ध सक्रिय प्रचार कर सकते हैं, परन्तु मेरा खयाल है कि राष्ट्रीय कार्य के हित की दृष्टि से ऐसा करना बिलकुल सलाह देने योग्य नहीं होगा।

२. इसी प्रकार दूसरा पक्ष भी वैसा ही कर सकता है। परन्तु दोनों पक्षों को ऐसा न करने की मैं सलाह दूँगा।

× × ×

५. बहुमत प्राप्त करने के लिए अब और भविष्य में भी मैं 'काम' करूँ, यह संभव नहीं, सिवा इसके कि इन कामों में कातना और ऐसी ही अन्य बातें आती हों।

६. अपरिवर्तनवादी कुछ करें या न करें, परन्तु मैं जरूर सोचता हूँ कि स्वराज्य दल को तमाम उचित साधनों से अपना बल संगठित करने का हक है।

७. (अ) ये सब सक्रिय संस्थाएँ होनी चाहिए। आज वे ऐसी हैं या नहीं, यह मैं नहीं जानता। जैसा मैंने उनसे कहा है, मैं यह तो सुझाऊँगा कि विधान में इतना संशोधन हो जाय, जिससे कांग्रेस का संगठन अधिक काम कर सके।

(ब) मेरा निश्चित मत है कि कांग्रेस को कारगर काम करना हो तो उसकी कार्यसमिति ऐसे आदमियों के हाथ में होनी चाहिए, जो कांग्रेस का जिस समय जो कार्यक्रम हो, उसमें विश्वास रखते हों और उस पर अमल करते हों।

मैं जरूर मानता हूँ कि मौ० मुहम्मदअली को आपके प्रश्नों के उत्तर देने चाहिए।

३० अगस्त को मैं बम्बई में रहूँगा। आपके पिछले पत्र के जवाब में मैंने आपको पोस्टकार्ड लिखा था। वह आपको मिला होगा।

स्नेहाधीन

मो० क० गांधी

साबरमती, ता० २६-७-१९२४

¶ प्रिय मित्र,*

आपके पत्र के लिए आभारी हूँ। 'यंग इंडिया' के इस अंक में अफीम के बारे में अपनी स्पष्ट राय मैं दे चुका हूँ। अफीम का व्यापार आज ही बिलकुल बन्द कर दिया जाय और उसकी बिक्री दवा के काम के लिए ही मर्यादित कर दी जाय, तो मेरा खयाल है कि उसके विरुद्ध कोई विशेष उल्लेखनीय ऊहापोह नहीं होगा। नैतिक दृष्टि से भारत सरकार की अफीम-नीति का कोई बचाव नहीं।

मेरी तबीयत साधारण रूप से ठीक रहती है। धन्यवाद।

सेवक

मो० क० गांधी

श्री चार्ल्स एफ० वेलर — साबरमती
लीग ऑफ नेबर्स — ता० २६-७-१९२४
ब्रॉड एण्ड वेस्ट, ग्रांड स्ट्रीट,
एलीजाबेथ, न्यूजर्सी, यू० एस० ए०

¶ प्रिय श्री वेलर,

आपका २२ मई का प्रेमपूर्ण पत्र आज ही हाथ में ले सका हूँ। आपके पत्र के लिए और आपके घर पर ठहरने का आपने जो सुझाव दिया है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। परन्तु अभी तो मुझे इस लोभ का संवरण करना चाहिए। इस समय मैं जो प्रयोग कर रहा हूँ, उसे मैं सफलतापूर्वक पूरा न कर लूँ, तब तक दूसरा कोई प्रयोग मुझे नहीं करना चाहिए। आज मैं सफलता

---

* किसको लिखा गया है, यह समझ में नहीं आता।

का दावा कर सकने की स्थिति में नहीं हूँ। उल्टे मेरे बहुत-से बुद्धि-प्रधान साथियों को मेरी पद्धति से असंतोष हो, ऐसा लगता है। इस वक्त तो अपनी प्रवृत्ति छोड़कर और कहीं भी जाने का मैं साहस नहीं कर सकता। जिस पौधे को मैं पाल रहा हूँ, उसमें से मजबूत वृक्ष खड़ा होगा, तो फिर और सब आसान है। इसलिए आपसे और अन्य मित्रों से मैं अनुरोध करता हूँ कि मेरे अभी के कार्य-क्षेत्र से मुझे अन्यत्र ललचाने के बजाय मेरे हाथ में लिये हुए प्रश्नों का अध्ययन करके और यदि मेरी बात सच मालूम हो, तो उसके पक्ष में दुनिया का लोकमत जाग्रत करके मेरे कार्य को सफल बनाने में मदद करें।

आपको और दूसरे मित्रों को मेरा सप्रेम नमस्कार।

सेवक
मो० क० गांधी

साबरमती, ता० २७-७-१९२४

¶ प्रिय जवाहरलाल,

मेरा ऐसा अभिप्राय है कि तुम सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करो और मनाही का कारण जान लेने का प्रयत्न करो। सरकार से कहना चाहिए कि इसमें कुछ भी आपत्तिजनक बात आप कमेटी को बता देंगे, तो हमारी कमेटी वह अंश निकाल देगी। सरकार का उत्तर संतोषजनक न लगे, तो तुम सरकार को सूचना दे दो कि इन पुस्तकों का सार्वजनिक रूप में होनेवाला प्रचार हम बन्द नहीं करेंगे।

यह तो नहीं लगता कि सरकार बालकों का कुछ कर सकती है। उसे ऐसा करना हो तो इतना ही कर सकती है कि बालकों से ये पुस्तकें ले ले। हम बच्चों को सलाह दें कि पुस्तकें ले ली जायँ, तो उसका विरोध न करें, तुम पुलिस को पुस्तकें सौंप दो। मुझे नहीं लगता कि इसमें और कोई सजा हो सकती है। फिर भी तुम कानून देखकर मुझे बता देना। मुझे ऐसा लगता है कि हममें कितनी ही शिथिलता आ गयी हो, तो भी लड़ाई हम पर लाद ही दी जाय तब लड़ाई को टालें नहीं।

इस समय हमें आक्रमणकारी सविनय कानून भंग करने की जरूरत नहीं। सामूहिक सविनय कानून भंग तो हम हरगिज न छेड़ें। परन्तु

यदि लड़ाई हमारे मार्ग में ही आ पड़े और हमारी परीक्षा का अवसर आ जाय, तो हम उसका सामना करना चाहिए। क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता? लड़ाई किस ढंग से की जाय, इसका निर्णय तुम्हें यह देखकर करना पड़ेगा कि परिस्थिति कैसी पैदा होती है।

मो० क० गांधी के आशीर्वाद

पुनश्च: मेरे स्वास्थ्य की जरा भी चिन्ता न करना। तबीयत ठीक है और मेरी गाड़ी चल रही है। तुम्हें चरखा सुधारना आना चाहिए। हत्थे के लिए एक लोहे की चकती की जरूरत है। काठ हमेशा लोहे से असहयोग करता है और हार जाता है। तुम लोहे की चकती बिठा दोगे तो तुरन्त देखोगे कि वह बराबर चलता है। यह ध्यान में रखना कि इसमें केवल कील नहीं काम देती। हत्थे का कोई भाग लोहे की धुरी के साथ घर्षण में नहीं आना चाहिए।

मो० क० गांधी

मौ० मुहम्मदअली — साबरमती
दिल्ली — ता० २७-७-१९२४

¶ प्रिय भाई,

आपका काम मुश्किल है। मुझे अक्सर विचार आता है कि स्वास्थ्य को जोखिम में डालकर भी मैं दिल्ली दौड़ आऊँ। आपको ऐसा लगे कि मेरे आने की जरूरत है, तो आपको मुझे केवल एक शब्द लिखना है। कल मेरे दोनों तार आपको मिले होंगे। आप यदि यह बोझा उठा सकें, तो मैं चाहूँगा कि आपको ब्योरेवार जाँच करनी चाहिए और अपनी राय जाहिर करनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि आप बहादुरी से काम कर सकते हैं। हिन्दुओं का या मुसलमानों का जिसका दोष हो, उन्हें आपको ढँकना नहीं चाहिए। तमाम पक्षों की बात धीरज के साथ सुनिए। उन्हें सार्वजनिक निमंत्रण दीजिए और उनसे लिखित प्रमाण लीजिए।

× × ×

पं० मोतीलालजी ने आपसे जो प्रश्न पूछे हैं, उनकी नकल मुझे भेज दी है। उन्होंने शिकायत की है कि आपने अभी तक उनके उत्तर नहीं दिये। उनका पत्र मुझे कल ही मिला। उनके सामान्य प्रश्नों के उत्तर

देने के लिए उन्होंने मुझे भी लिखा है। और मैंने तो जवाब दे भी दिये हैं। आपने अभी तक उत्तर न दिये हों, तो मेरा सुझाव है कि आपको जवाब देना चाहिए। हमारा बल हमारे काम में ही है। यही सच्चा बल है। प्यार।

आपका
मो० क० गांधी

बाबू भगवानदासजी — साबरमती
सेवाश्रम — ता० २७-७-१९२४
बनारस छावनी

¶ प्रिय बाबू भगवानदास,

आपके पत्र के लिए आभारी हूँ। आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस झगड़े के निराकरण के उपायों के बारे में मैं निरन्तर चिन्तन कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि दोनों नीतियों (अपरिवर्तनवादियों की और स्वराज्यपक्ष की) के लिए अवकाश है। परन्तु आपने बहुत योग्य शब्दों में कहा है कि दोनों केवल सबमरीनों और एरोप्लेनों की तरह काम करते हैं। दोनों के कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न होने चाहिए। (यह समझ में आ जाय तो) उन दोनों के बीच झगड़े नहीं होंगे। बल्कि दोनों एक-दूसरे के लिए सहायक होंगे। मैं किसी भी प्रकार का विस्फोट न हो, इस तरह कांग्रेस से निकल जाने का विचार कर रहा हूँ। तिलक महाराज के समय में भी मुझे अपनी रीति से काम करने में किसी तरह की कठिनाई नहीं आती थी। उनके प्रति मेरा पूज्यभाव था। और मैं जानता हूँ कि उनकी मेरे प्रति अरुचि नहीं थी। जहाँ-कहीं शक्य होता, वे मेरी सहायता करते थे।

सेवक
मो० क० गांधी

डॉ० सत्यपाल — साबरमती
ब्रेडलो हॉल — ता० २७-७-१९२४
लाहौर

¶ प्रिय डॉ० सत्यपाल,

आपका पत्र मिला। दिल्ली के मामले में मुझसे जितना हो सकता है, वह सब कर रहा हूँ। दिल्ली जाने में मेरा दुर्बल स्वास्थ्य बाधक है।

जो सदस्य कातना न चाहते हों, वे त्यागपत्र दें, तो भले ही दे दें। यदि कांग्रेसी कातने में विश्वास रखते हों और कांग्रेस के कार्यक्रम में से खादी को निकाल देना न चाहते हों, तो उन्हें कातना ही चाहिए।

किसान यदि तपस्या में से गुजरने को तैयार हों, तो उनके लिए बहुत कुछ हो सकता है।

सेवक

मो० क० गांधी

डॉ० चिमनदास
निहार जूँ गो पीर
हैदराबाद (सिंध)

साबरमती
ता० २७-७-१९२४

प्रिय भाई चिमनदास,

आपका पत्र मिला। आध घंटे काता हुआ सूत हम राष्ट्र के लिए कांग्रेस को क्यों दें, इस विषय की मेरी दलीलें आपने 'यंग इंडिया' में देखी होंगी। आप अपने लिए जरूर कातें, परन्तु राष्ट्र के लिए भी आपको कातना चाहिए।

मेरे स्वास्थ्य की कोई चिन्ता न करें।

सेवक

मो० क० गांधी

मिस एमिली होब हाउस
दि वॉरेन हाउस
कॉर्नवाल

साबरमती
ता० २७-७-१९२४

प्रिय बहन होब हाउस,

आपका ता० ८-१२-१९२२ का पत्र मित्रों ने सँभालकर रखा था। इस पत्र को देखकर आपसे मिलने जैसा आनन्द हुआ। मिस ऐडम्स से मैं कभी नहीं मिला।

जेल में मैं बिलकुल सुखी था। मुझे जितनी चाहिए उतनी पुस्तकें मिल सकती थीं, शर्त यही थी कि वे अ-राजनैतिक होनी चाहिए।

क्या आप कभी 'यंग इंडिया' भी पढ़ती हैं? यदि पढ़ना चाहें, तो मैं आपको खुशी से भेज दूँ।

आपका स्वास्थ्य कैसा रहता है?

सेवक
मो० क० गांधी

सेठ खुशीराम दरियान्दमल — साबरमती
जमींदार, जैकोबाबाद (सिन्ध) — ता० २७-७-१९२४

¶ प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं केवल सत्य पर ही दृढ़ रहने का प्रयत्न करता हूँ। मुसलमानों के बारे में (वे जो करें उसकी) पूरी अवज्ञा करने की मैं हिन्दुओं को सलाह दूँगा।

सेवक
मो० क० गांधी

बाबू धरणीधर प्रसाद — साबरमती
पो० ऑ० सीमरी (दरभंगा) — ता० २७-७-१९२४

¶ प्रिय धरणीधर बाबू,

आपका पत्र मिला, उससे आनन्द हुआ। अलग संस्था खोलकर काम करना चाहिए, इस बारे में मैं आपसे सहमत हूँ। परन्तु मुख्यतः स्वराज्यवादियों की खातिर मैं अभी (कांग्रेस के) भीतर रह रहा हूँ। परन्तु अलग संगठन के लिए अथवा ठीक-ठीक एकमतवाली कांग्रेस के लिए मैं प्रयत्न कर रहा हूँ।

मैं आशा रखता हूँ कि आपकी पारिवारिक कठिनाइयाँ जल्दी हल हो जायँगी।

मो० क० गांधी के आशीर्वाद

डॉ० पट्टाभिसीतारामैया — साबरमती
मछलीपट्टम — ता० २७-७-१९२४

¶ प्रिय डॉ० पट्टाभि,

मुझे कलाशाला के विचार आते ही थे। और आपके पत्र की मैं आशा

भी रखता था। अब इसके लिए प्रयत्न करूँगा। परन्तु आप जितनी जल्दी चाहते हैं, उतनी जल्दी में मदद न भी कर सकूँ। कदाचित् सहायता प्राप्त करने में मैं असफल भी रहूँ। क्या आप चाहेंगे कि कांग्रेस के द्वारा मदद मिले। दस हजार रुपये मिल जाने से मामला निपट जायगा या प्रान्त से बाहर की सहायता के लिए आपको सतत आधार रखना पड़ेगा? दाताओं को समझाने के लिए जहाँ तक हो सके पूरा (साहित्य) मुझे भेज दीजिए।

हाँ, कातना संक्रामक है। यहाँ एक मित्र स्वयं अकेले ही (प्रतिमास) पचास हजार गज कातने का प्रयत्न करते हैं।

सेवक

मो० क० गांधी

साबरमती, ता० २९-७-१९२४

¶ प्रिय मोतीलालजी,

आपके प्रेमपूर्ण पत्र के लिए आभारी हूँ। मैं आपकी बात जरूर मान लेता, यदि आपने ही मुझे न कहा होता कि आपके एक बहुत घनिष्ठ मित्र खूब बुखार होने पर भी विधानसभा में बैठे रहे। और डॉक्टरों की सलाह के बावजूद विधानसभा नहीं छोड़ी। विधानसभाओं की चर्चा पूरी होने के बाद भी उन्होंने आराम नहीं लिया। ऐसे घनिष्ठ मित्र को आप नहीं समझा सके, तो मुझे कैसे समझा सकते हैं? हमारी कापियों में शिक्षा का सूत्र होता है कि 'कहने से करके दिखाना बेहतर है।' परन्तु मेरे स्वास्थ्य के लिए तो सचमुच जरा भी चिन्ता करने की बात नहीं। यह बात सच है कि मैंने इतना वजन खोया है, जिससे डर पैदा हो। परन्तु जब काम का दबाव होता है, तब मैं खुराक नहीं ले सकता। उन सभाओं के बीच केवल बैठे रहने का श्रम ही मेरे लिए भारी था। बहुत कामों में मैं व्यस्त नहीं होता तो मैंने गंगा किनारे शान्ति से आराम लेने के आपके सुझाव का उत्साहपूर्वक स्वागत कर लिया होता। परन्तु दिल्ली के लोग मुझे लिखते ही रहते हैं। फिर आश्रम में बहुत से नाजुक सवाल मुझे हल करने हैं। इस बारे में आपको लिखना मुझे बहुत अच्छा लगता है। लिखकर मैं हलका होता हूँ। परन्तु यह सब लिखने का मुझे समय कहाँ है? और आप भी यह सब सुनने का वक्त कहाँ से लायें? इसीलिए मैं नहीं लिखता।

आज ही मैं आपको एक जरूरी खत लिखने का विचार कर रहा था, परन्तु कुछ मित्र मिलने की प्रतीक्षा में बैठे हैं, इसलिए आज नहीं लिखा जा सकता। कल लिखने का प्रयत्न करूँगा। मेरा आपसे अनुरोध है कि आपको काम-काज के मामले में कभी भी मुझे कुछ कहने जैसी बात लगे, तो लिखने में संकोच न करें।

मैंने मुहम्मदअली को पत्र लिखा है कि आपको जवाब दें। आपको मैंने जो उत्तर लिख भेजे हैं, उनकी नकल मैंने उन्हें भेजी है।

सेवक

मो० क० गांधी

श्रीमती वी० के० विलासिनी
हिल पैलेस,
त्रिपुणी तारा, कोचीन स्टेट

साबरमती
ता० ३१-७-१९२४

¶ प्रिय मित्र,

आपके प्रश्न के उत्तर में :

किसी भी कीमत पर सत्य को चाहें, यह तभी संभव है, जब हम प्राणी-मात्र के प्रति प्रेम रखें और उनके लिए हममें समभाव हो।

सेवक

मो० क० गांधी

मौ० शौकतअली
बम्बई

साबरमती
ता० १-८-१९२४

¶ प्यारे भाई,

आपके दो पत्र मुझे मिले। बी अम्मा के लिए मुझे अफसोस है। मैं आशा रखता हूँ कि आपको माँगी हुई इजाजत मिल जायगी। अपने ही देश में हम निर्वासित हैं, यह कैसी बात! फिर भी हम स्वराज्य का खेल खेलते हैं! यह और भी करुण है।

मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने से कारपोरेशन के मान-पत्र की तारीख ३० अगस्त को रखने के लिए मैंने विट्ठलभाई को समझाया है। इस-लिए ऐसा लगता है कि हम साधारणतः सितम्बर के शुरू में प्रवास शुरू

कर सकेंगे। परन्तु मैंने मुहम्मदअली को लिखा है कि यदि मेरी आवश्यकता हो तो मैं अभी भी दिल्ली आ सकता हूँ। मुझे प्रयत्न करके देखना चाहिए कि मैं कितनी दौड़धूप सह सकता हूँ। उन्हें मेरी जरूरत न हो, तो मुझे लगता है कि दिल्ली से ही हम अपना कार्य आरम्भ करें। १२ अगस्त को मुहर्रम आ रहा है। हमारे लिए यह एक चिन्ता पैदा करनेवाला दिन है। उस दिन हम कहाँ होंगे, यह मुझे पता नहीं। यह सब आप विचार करें और यह भी तय करें कि उस दिन हम कहाँ रहें।

खिलाफत के काम के बारे में आपकी कठिनाइयाँ मैं जानता हूँ। स्वराज के लिए और खिलाफत के लिए भी हमें मनुष्यों की बड़ी संख्या की अपेक्षा थोड़े मनुष्यों के गुणों पर अधिक आधार रखना पड़ेगा।

अध्यक्ष के चुनाव के बारे में मुझे जो कहना चाहिए, वह मैंने कह दिया है। इस समय इतने राग-द्वेष देखने में आते हैं कि ऐसा दीखता है कि बहुमत प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले के लिए स्वच्छता कायम रखना लगभग अशक्य है। यदि बहुमत कुछ भी उपयोगी हो तो वह आसानी से मिलना चाहिए। बहुमत प्राप्त करने की पश्चिम की पद्धति मुझे जरा भी पसन्द नहीं।

खिलाफत अखबार पढ़ने की कोशिश करूँगा।

प्यार।

आपका

मो० क० गांधी

जनाब आसफअली
दिल्ली

¶ प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके एक पत्र में आपने अधीरता दिखायी थी या अनौचित्य, इनमें से कौन-सा कहूँ, यह मैं नहीं जानता। कुछ भी हो, यह आपके लिए पूरी तरह स्वाभाविक था, क्योंकि आप बहुत कसौटी के हालात में काम कर रहे थे और वह ऐसे समय, जब कि आपको यह पता नहीं था कि दूसरे आन्दोलन में आपको क्या भाग अदा करना होगा। ऐसे ही हालात में यदि मैं रख दिया जाऊँ तो शायद मैं भी आपकी तरह ही करूँ और प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति का दोष निकालने की

मेरी भी इच्छा हो। हाल में जो वक्तव्य प्रकाशित किये गये हैं, मेरे खयाल से उनका कुछ असर होगा। मगर मेरी इच्छा यह है कि कांग्रेस के अध्यक्ष की तरफ से तब तक किसी भी प्रकार के बयान जारी नहीं होने चाहिए, जब तक कुछ स्पष्ट और अन्तिम रूप में न बताया जाय।

अदालतों के मुकदमे बन्द रखने का क्या कोई उपाय नहीं हो सकता? किसी खास अपराध की जाँच करना पुलिस के लिए लाजिमी हो सकता है, उसके साथ हमारा क्या लेना-देना? अन्त में यदि सम्बद्ध सभी पक्षों को मुकदमे चलाने ही न हों तो पुलिस के लिए कोई भी मुकदमा साबित करना बहुत मुश्किल होगा। आपकी तरह मुझे भी महसूस हुए बिना नहीं रहता कि यदि ये मुकदमे चलते रहेंगे तो हमें सच्ची जानकारी नहीं मिल सकेगी, क्योंकि जैसा आप ठीक ही कहते हैं, जो लोग कुछ जानते होंगे, वे हमारे पास आने में डरेंगे।

आपके माँगे हुए कागजात लौटा रहा हूँ।

आपका

मो० क० गांधी

साबरमती, ता० ६-८-१९२४

¶ डॉ० एनी बीसेंट के स्वर्ण महोत्सव के अवसर पर :

सब जानते हैं कि नीति और सिद्धान्त-सम्बन्धी कुछ विचारों के मामले में दुर्भाग्य से मैं डॉ० एनी बीसेंट से बिलकुल अलग पड़ जाता हूँ। परन्तु इससे उनके प्रति मेरे आदर में कोई कमी नहीं होती। उनके उच्च चरित्र, बढ़िया हेतु, अथक परिश्रम और अटल साहस के लिए मुझे बड़ा सम्मान है। वे एक पुत्री की भक्ति से भारत को चाहती हैं। उनके उद्योग और लगन से हम सबको ईर्ष्या हो सकती है। अपनी लोकप्रियता खो देने की कीमत पर उन्होंने असहयोग का विरोध किया, तब उनका साहस बड़ा चमक उठा था। भारत और मानवता की सेवा करने के लिए वे दीर्घायु हों।

मो० क० गांधी

साबरमती, ता० ६-८-१९२४

¶ प्रिय श्री नटराजन,

आपके पत्र के लिए आभारी हूँ। आपकी कृपापूर्वक भेजी हुई कतरन में

जरूर देख गया हूँ। जब मैंने यह तार देखा, तब जी में आया कि संवाददाता को गोली मार दूँ। परन्तु ऐसा करना मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध होने के कारण मैं नरम पड़ गया और मैंने मान लिया कि कोई समझदार स्त्री या पुरुष यह मानेगा ही नहीं कि मैं ऐसी बेहूदा नुकताचीनी करूँगा। मेरे भेजे हुए तारों में चरखे का उल्लेख कहीं भी नहीं। कैसे हो सकता है? हमारे हजारों देशबन्धुओं पर जो विपत्ति* आयी है, उससे उन्हें कुछ राहत मिले और वे सूखी जमीन पर स्थिर हों, तब चरखा उनकी मदद कर सकता है। मैंने तो अहमदाबाद के लोगों से यह कहा था कि यह काम किसी गैर सरकारी एजेंसी के बूते के बाहर का है, परन्तु आप मुझे रुपया भेज देंगे तो मैं उचित स्थान पर पहुँचाने का प्रयत्न करूँगा। मैंने गरीब-अमीर सभी श्रोताओं से यह भी कहा था कि हमारे नग्न देशबन्धुओं और भगिनियों के लिए वे मुझे सूत कातकर भेजेंगे तो संकटग्रस्तों के कष्ट-निवारण के लिए उसका उपयोग करने की मैं जिम्मेदारी लेता हूँ। परन्तु इन खबरों से मुझे भयंकर आघात पहुँचा है। प्रकृति जब हमें हक्के-बक्के करने जैसे कोड़े लगाती है, तब उसके सामने हम बिलकुल लाचार होकर गिर जाते हैं, इससे मुझे व्याकुलता होती है। ईश्वर के हितकारी होने पर मुझे इतनी अचल श्रद्धा है कि इस प्रत्यक्ष विपत्ति में भी मेरे मन में भले की आशा रहती है और मुझे बकवास करनेवाला पागल बनने से रोकती है।...

सेवक

मो० क० गांधी

साबरमती, ता० ९-८-१९२४

¶ प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। पत्नी को पति के विचार पसन्द न आते हों, परन्तु वह पवित्र हो तो वह अपने विकार-रहित प्रेम से उसे जीत सकता है। ऐसा करने में पति को जो अच्छा लगे, वह करे और पत्नी को जो उत्तम प्रतीत हो, उसे करने की आजादी दे दे। परन्तु उसे ऐसी आशा नहीं रखनी चाहिए कि पति उसके खर्चीले शौक पूरा करने के लिए रुपया देगा। पति उसे भोजन,

---

* सन् १९२४ के अगस्त के आरम्भ में मलाबार में भारी जल-प्रलय हुआ, यह उसका उल्लेख है।

वस्त्र देने के लिए बँधा हुआ है। पति की आय में से हिस्सा पाने की पत्नी हकदार है, परन्तु इसके लिए पति कर्ज ले, ऐसी आशा उसे नहीं रखनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि जहाँ शुद्ध प्रेम होगा, वहाँ और सब मतभेद मिट जाते हैं अथवा मतभेद रहें तो भी उनमें से सम्मानपूर्ण मार्ग निकल सकता है।

सेवक

मो० क० गांधी

जनाब बद्रुल हुसेन — साबरमती

आबिद मंजिल — ता० ६-८-१९२४

हैदराबाद (दक्खन)

भाई बद्रुल,

श्रीमती नायडू ने मुझसे कहा कि आपको ऐसा लगा कि मैंने आपको एक गाँव में बैठ जाने को और अधिक कार्य करने की शक्ति होने पर भी और सब काम छोड़कर वहीं काम करने के लिए कहा है। यह जानकर मुझे दुःख हुआ। ऐसी कोई बात आपसे कही हो, ऐसी मुझे बिलकुल याद नहीं। परन्तु आपसे यह कहा हुआ मुझे याद है कि बाहर की मदद के बिना आप बड़े पैमाने पर काम न कर सकते हों, तो जरूर किसी गाँव में जायँ और वहाँ काम शुरू करें। यदि स्थानीय बाजार न मिल सकता हो, तो बड़े पैमाने पर खादी का उत्पादन करना गलत है। परन्तु यदि आपको आत्म-विश्वास हो और सारे हैदराबाद राज्य का काम हाथ में ले सकते हैं, तो मुझे तो यह बहुत अच्छा लगेगा। मेरी शर्त इतनी ही है कि आपको आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनना चाहिए। और आप बारीक-से-बारीक खादी उत्पन्न करें और उसे यथासंभव कलामय बनायें, इससे भी मैं आपको रोकना नहीं चाहता। आप बारीक खादी उत्पन्न कर सकते हैं, फिर भी मैं आपसे मोटी-से-मोटी खादी पैदा कराना चाहता हूँ, मेरे कहने का आप पर ऐसा असर पड़ा, तब यह कहते समय मैं मूढ़ दशा में हूँगा। जिस काम के बारे में अपनी अभिरुचि न हो, ऐसा कोई काम करने के लिए कभी किसीसे कहना मेरे स्वभाव में नहीं है। मेरा कहना स्पष्ट न समझे हों तो मुझे दोबारा लिखें।

यह पत्र पद्मजा को पढ़वा देना, ताकि वह मेरे विचार जान ले।

बापू के आशीर्वाद

प्रियजन मृत्यु से निकट आते हैं

श्री तीरथराम
कानपुर

साबरमती
ता० ६-८-'२४

¶ प्रिय मित्र,

आपके दुःख में मेरी सहानुभूति है। आत्महत्या करना पाप है। और चूँकि प्रत्येक पाप का अर्थ है जुदाई, इसलिए आप आत्महत्या करेंगे तो उससे आपके और आपकी पत्नी के बीच का अन्तर बढ़ेगा। और फिर मृत्यु से आपके दुःख का अन्त नहीं हो जायगा, क्योंकि आप अपने नियत स्थान पर जायँगे और वह अपने नियत स्थान पर गयी है। परन्तु जब तक आप इस शरीर में जीवित हैं, तब तक आपके लिए अपने को सुधारने की गुंजाइश है। आप उसके शरीर को चाहते हैं या उसके भीतर बैठी हुई आत्मा को? यदि शरीर को चाहते हैं तो उसमें मसाला भरकर आप उसे अपने कमरे में रख सकते थे। परन्तु यदि आत्मा को चाहते हैं, तो उसकी आत्मा तो जरूर अभी आपके पास ही है। उसमें जो कुछ अच्छा था, उसकी स्मृतियाँ आपके लिए पर्याप्त नहीं? अथवा आपका प्रेम केवल स्वार्थ का था? प्रियजन मृत्यु से तो हमारे अधिक निकट आते हैं।

सेवक
मो० क० गांधी

साबरमती, ता० ६-८-'२४

मौ० शौकतअली तथा मुहम्मदअली
¶ प्यारे भाइयो,

आप दोनों के तार मुझे मिल गये। आप कहाँ हैं, इसका मुझे पता नहीं चलता। बी अम्मां से मिल सकते हों तो उन्हें मेरे बहुत-बहुत आदाब कहें। उनसे कहिए कि खुदा आपको उठा लेगा, तो मैं शोक नहीं करूँगा। इस दुनिया से कोई माता उनसे अधिक गर्व और सन्तोष के साथ नहीं जा सकती। पीछे रहनेवालों को शोक तो होगा। हमें अपने बूढ़े-से-बूढ़े परिजनों से भी बिछुड़ना अच्छा नहीं लगता। हम चाहते हैं कि माता सदा ही हमारे पास रहे। परन्तु अल्लाह की मरजी और ही होती है। फिर शरीर नाश को प्राप्त होता है, तब आत्मा तो रहती ही है। इसलिए अम्मां थोड़े समय हमारे साथ रहे या खुदा उन्हें उठा ले, इसमें हमारा भला ही है।

आपका
मो० क० गांधी

कांग्रेस के विरोध में काम नहीं करूँगा

साबरमती, ता० ६-८-१९२४

प्रिय मोतीलालजी,

मैंने आपको एक जरूरी खत लिखने का वचन दिया था, परन्तु आज तक नहीं लिख सका। चार दिन पहले मैंने आपको लिखने का विचार किया, मगर श्रीमती नायडू का पत्र आया कि वे यहाँ आ रही हैं। इसलिए उनके यहाँ आने तक पत्र लिखना मुल्तवी रखा।

मैं आपसे यह कहना चाहता था कि कांग्रेस का संगठन आपके हाथ में आ जाय, इसमें सुविधा करने के लिए मैं तैयार हूँ। इसके लिए सक्रिय सहायता करने को भी तैयार हूँ। आजकल इसका जो अर्थ समझा जाता है, उस अर्थ में मत दिलवाने के काम में मैं कभी भाग नहीं लूँगा। मैं कांग्रेस के बाहर रहकर काम करने के लिए तैयार हूँ, लेकिन उसके विरोध में काम नहीं करूँगा। अहिंसा का वातावरण पैदा करना, खादी, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारण, इन कामों को आगे बढ़ाने के सिवा और किसीमें मेरी दिलचस्पी नहीं। इन सब कामों में तो मैं जानता हूँ कि आपकी मदद मुझे मिलेगी ही। इन कामों के लिए मैं स्वभावतः ही अलग संगठन खड़ा करूँगा। परन्तु ऐसा करके अन्त में कांग्रेस पर कब्जा करने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं। आजकल के वातावरण में बहुमत जुटाने के लिए झगड़े करने में राष्ट्र का समय बरबाद हो, यह मुझे जरा भी पसन्द नहीं।

कांग्रेस का सारा संगठन अपने कब्जे में लेने की आपकी तैयारी न हो तो आपके लिए यह सुविधा कर देने को भी तैयार हूँ कि जिन प्रान्तों में आपको कांग्रेस चलाना कठिन न लगता हो, आप उतने ही प्रान्त ले लें।

आपके कार्यक्रम में शरीक होने के अलावा और सब तरह से आपके अनुकूल बनना मुझे अच्छा लगेगा।

दूसरा सवाल कांग्रेस के अध्यक्ष का है। राजगोपालाचारी, गंगाधर-राव और राजेन्द्रबाबू आग्रह करते हैं कि मैं यह पद लूँ। उसे स्वीकार न करने के मेरे विचार को वल्लभभाई और शंकरलाल बैंकर पसन्द करते हैं। जमनालालजी तटस्थ हैं। श्रीमती नायडू भी कदाचित् तटस्थ हों। मैं कहना भूल गया कि शौकतअली का भी आग्रह है कि मैं यह पद

स्वीकार करूँ। एक ही कारण से में अपनी स्थिति पर फिर से विचार कर सकता हूँ कि आप यह चाहते हों कि मैं यह पद लूँ। श्री दास, केलकर और दूसरों के साथ मशविरा करके आप मुझे बताइए कि उपर्युक्त दोनों मामलों में मैं क्या करूँ, इन मामलों में आपकी क्या सलाह है ?

यह पत्र मैंने श्रीमती नायडू को पढ़ा दिया है।

आपका

मो० क० गांधी

शिक्षा परिषद्

[ता० १-२ अगस्त १९२४]

(नवजीवन ता० १०-८-१९२४)

पिछले सप्ताह राष्ट्रीय संस्थाओं के शिक्षकों की जो परिषद् हुई, उसकी कार्रवाई कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण, मननीय और शिक्षाप्रद थी। गांधीजी ने अध्यक्ष-पद से जो भाषण* दिया, उसे शब्दशः गत रविवार के अंक में देने का प्रयत्न किया गया था। परिषद् के लिए गांधीजी ने ही प्रस्ताव तैयार किये थे और वे पहले ही दिन शिक्षकों के विचार करने और आमने-सामने चर्चा करने के लिए बँटवा दिये गये थे।

गुजरात के लगभग ८०० शिक्षकों में से कोई ५०० शिक्षक उपस्थित हुए होंगे। उन्होंने रुचिपूर्वक चर्चा में भाग लिया था और गांधीजी के सामने अपने-अपने विभागों की स्थिति, अपनी-अपनी शक्ति और अपनी-अपनी कमजोरियाँ साफ दिल से पेश की थीं। गांधीजी जेल से निकलने के बाद एक भी पाठशाला में नहीं गये थे, परन्तु यह कहा जा सकता है कि इस परिषद् से उनके सामने समस्त गुजरात की शिक्षण-स्थिति आईने की तरह साफ आ गयी थी।

जिस शान्ति और त्वरा से और दीर्घसूत्रता के बिना सारा काम निपटाया गया, उससे किसी भी परिषद् और किसी भी राष्ट्रीय उत्सव को शिक्षा मिल सकती थी।

---

* देखिए 'शिक्षा की समस्या' पृष्ठ सं० १०८–१२१ (नवजीवन प्रकाशन)।

जरा अनुदारता का आरोप अपने सिर पर लेकर यहाँ एक बात बता दूँ। कुछ प्रस्ताव गांधीजी को बार-बार समझाने पड़े थे। कुछ प्रस्तावों के बारे में समझे बिना तो मत नहीं दिये गये, ऐसी पलभर के लिए शंका कुछ लोगों को हुई थी। यह बात हमारी न्यूनता का भान कराने के लिए पर्याप्त थी।

परन्तु न्यूनता का भान होने में कल्याण के सिवा और कुछ है ही नहीं। यह कहा जा सकता है कि सारी परिषद् एक तरह से शिक्षकों के शक्तिमापक यंत्र की तरह थी। गांधीजी ने जिस ढंग से प्रस्ताव पेश किये थे और जिस रूप में पास हुए, वह 'नवजीवन' के पाठक जानते हैं। गांधीजी का पहला भाषण एक तरह से उनके तैयार किये हुए प्रस्तावों को समझानेवाला ही कहा जा सकता है। उस भाषण में गांधीजी ने क्या दृष्टि रखी थी, और बदले हुए रूप में उनके द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों में गांधीजी क्या आदर्श रखना चाहते हैं और कितने से संतोष मान सकते हैं, यह अच्छी तरह प्रकट होता है। एक अवसर पर महासमिति में गांधीजी को कहना पड़ा था, 'मैं तो वज्र जैसा कठोर हो सकता हूँ और मोम जैसा नरम भी हो सकता हूँ।' इस परिषद् में एक मौके पर उन्होंने कहा था, 'मैं सिंह की तरह गरज रहा था', दूसरे प्रसंग में कहा, 'मैं तो गाय जैसा गरीब हूँ।' शिक्षक लोग अपने हृदय में इन दोनों दशाओं का हूबहू चित्र अंकित करके बिदा हुए होंगे, यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है।

पहले दिन जो प्रस्ताव पास हुए, वे सब विद्यापीठ और दूसरी संस्थाओं के कर्तव्य के बारे में थे। उनके सम्बन्ध में बहुत चर्चा या बहस नहीं हुई थी। ऐसा लगता है कि उनमें से पहला प्रस्ताव मूल रूप में ही पास हुआ होता, तो ठीक होता। असल में शिक्षकों की योग्यता बढ़ाने की व्यवस्था करने के लिए एक आदर्श 'अध्यापन मन्दिर' चाहिए। उस मंदिर का भार आज की स्थिति में विद्यापीठ नहीं उठा सकता, यह देखकर ही गांधीजी ने मूल प्रस्ताव जरा नरम पेश किया होगा, ऐसा लगता है। संशोधित प्रस्ताव में शिक्षकों के लिए पाठ्यक्रम तैयार करने की योजना है, परन्तु परीक्षा-जैसी कोई योजना न होना त्रुटि की बात है। परन्तु ये संशोधन स्वीकार करने में गांधीजी शिक्षकों की इच्छा के ही वश हुए। अब देखना है कि पाठशालाएँ कैसी शिक्षा समिति बनाती हैं और व्यवहार में वह कितनी उपयोगी सिद्ध होती है।

दूसरा प्रस्ताव—प्रारम्भिक शिक्षा को प्रमुख स्थान देनेवाला—बहुत महत्त्व का* है। और वह ज्यों का त्यों पास हुआ, यह अच्छा कहा जा सकता है। यह वांछनीय है कि विद्यापीठ इसके लिए जल्दी व्यावहारिक कदम उठाये।

तीसरा प्रस्ताव दूसरे से ही सम्बद्ध है। उसकी भाषा मूल प्रस्ताव से कुछ भिन्न है, परन्तु दोनों में निहित ध्येय एक ही है, ऐसी सबकी समझ थी। पुरानी पाठशाला कैसी ही क्यों न हो, उस पाठशाला में शिक्षा प्राप्त जो थोड़े-से वृद्ध आज मिल जाते हैं, उन्हें देखकर कल्पना हो सकती है कि उन्हें कितनी गम्भीर शिक्षा मिलती थी। वर्तमान परिस्थिति के बन्धन—पाठशालाएँ, पाठशालाओं के सामान, पाठ्य-पुस्तकें आदि से उत्पन्न होनेवाले बन्धन—शिक्षक की योजना-शक्ति को छीन लेते हैं। गांधीजी के कहने का इतना ही भाव था। इस भाव को समझकर प्रस्ताव पर अमल होगा तो स्थिति सुधरेगी। असल में इस प्रस्ताव पर अमल करने में गाँवों के आदमियों के साथ अधिक सम्पर्क में आने और उनमें से योग्य मनुष्यों की शिक्षा में सहायता लेने की जरूरत है। गाँवों के लोगों में जैसे कुशल कार्यकर्ता निकाले जा सकते हैं, वैसे ही कुशल शिक्षक भी निकाले जा सकते हैं।

चौथा प्रस्ताव पाठ्य-पुस्तकों सम्बन्धी था। इस प्रस्ताव का अमल करते समय गांधीजी के अध्यक्ष-पद से दिये गये भाषण में विस्तार से प्रदर्शित विचारों को सदा ध्यान में रखा जाय तो पर्याप्त है। यह सब तो शिक्षकों के सिवा अन्य संस्थाओं के विचार करने के प्रस्ताव के बारे में हुआ।

दूसरा सारा दिन शिक्षकों के कर्तव्य-सम्बन्धी प्रस्तावों ने ही ले लिया था और वह वास्तविक था। ये प्रस्ताव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे, इसलिए

* वह प्रस्ताव इस प्रकार है :

२. असहयोग का शाश्वत स्वरूप आत्म-शुद्धि होने के कारण और असहयोग के तत्त्व गाँवों में व्यापक बनाने का कांग्रेस का प्रयत्न होने के कारण और गाँवों में आत्म-शुद्धि का काम बालकों से ही शुरू होना चाहिए, ऐसी परिषद् की मान्यता होने के कारण, इस परिषद् की यह राय है कि उच्च शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा के मुकाबले में विद्यापीठ को प्रारम्भिक शिक्षा को मुख्य स्थान देना चाहिए, इसलिए इस दृष्टि से उचित परिवर्तन करके विद्यापीठ को गाँवों में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करना चाहिए।

उन पर ऊहापोह भी खूब हुआ और अन्त में अधिकांश शिक्षकों ने जिस रूप में उन्हें स्वीकार किया, उसमें उन्हें सारे मंडल के सामने पेश किया गया।

तत्त्व-दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व के प्रस्ताव पाँचवाँ और सातवाँ ये दो थे, बल्कि सातवाँ अधिक सीधा होने के कारण इन दोनों प्रस्तावों में अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक व्यापक था, यह कहा जा सकता है। स्वराज्य-सिद्धि के लिए शान्ति और सत्य को तथा असहयोग के सब अंगों को आवश्यक साधन माननेवाले शिक्षक हों तो स्पष्ट ही है कि उससे उत्पन्न होनेवाले सिद्धान्त 'राष्ट्रीय पाठशालाओं में कार्यान्वित हों' और 'उनका किसी भी तरह त्याग न हो'। इसलिए सातवाँ प्रस्ताव पहले लिया जाता तो बेहतर था। इतना बताकर पाँचवें प्रस्ताव की कुछ बारीक चर्चा में उतरने की इच्छा होती है। पिछले 'नवजीवन' में गांधीजी का मूल प्रस्ताव और स्वीकृत प्रस्ताव दोनों साथ दिये गये हैं। मुझे भय है कि दोनों प्रस्तावों के भीतर निहित सूक्ष्म भेद बहुतों ने नहीं समझा होगा। यह भेद समझाने का और यह बताने का कि संशोधित प्रस्ताव अधिक उचित है, यह प्रयत्न अध्यापक पाठक ने अपने जोरदार भाषण में किया था। उस भाषण का 'लॉजिक' (तर्क) सुनकर आनन्द होता था, परन्तु साथ-साथ एक विषय से चिपटे हुए—शिक्षा विषय से चिपटे हुए—उस विषय से बाहर न जाने का कितना आग्रह रख सकते हैं, यह भी स्पष्ट था। संशोधित प्रस्ताव के समर्थन में उन्होंने बताया था कि जीवन सबसे महत्त्व की वस्तु है, न कि असहयोग या राष्ट्रीय शिक्षा; जीवन का पोषण करें, उसी हद तक दोनों उपयोगी हैं; असहयोग के सिद्धान्त शुद्ध शिक्षा के अविरोधी हैं, इसलिए उन पर अमल होना चाहिए; यदि वे विरोधी हों तो उनका त्याग होना चाहिए। इसका सिद्धान्त रूप में तो कोई विरोध हो ही नहीं सकता, परन्तु हम शुद्ध शिक्षा के सिलसिले में एकत्र नहीं हुए थे, राष्ट्रीय शिक्षा के बाबत जमा हुए थे। सारा राष्ट्रीय शिक्षा-आन्दोलन असहयोग के विराट् आन्दोलन से उत्पन्न हुआ है। इस चीज को उन्होंने गौण समझा। जनता एक विदेशी शासन के विरुद्ध लड़ रही है, यह बात जैसे आम तौर पर इसलिए भुला दी जाती है कि हमने अपने कुछ शस्त्र फिलहाल उठाकर रख दिये हैं, उसी तरह इस प्रस्ताव के बारे में भुला दी गयी थी, इसीलिए मूल प्रस्ताव की सीधी-सादी भाषा में संशोधन सुझाया गया।

असहयोग शाश्वत नहीं, युद्ध-काल के लिए है। स्वतन्त्रता का युद्ध करनेवाले प्रत्येक राष्ट्र ने अपनी शिक्षा को ही नहीं, परन्तु अपनी हरएक संस्था को युद्ध के अनुकूल बना डाला था, इसकी गवाही इतिहास देता है, फिर भी हम तो बड़े पोथी-पंडित ठहरे न ? इतना-सा सादा मूल प्रस्ताव अधिकांश लोगों को पसन्द नहीं आया। गांधीजी जो चीज चाहते थे, वह उन्हें संशोधित प्रस्ताव में मिल जाती थी, इसलिए उन्होंने उसे स्वीकार करने में संकोच नहीं किया।

असहयोग के सिद्धान्तों के बारे में चर्चा करते हुए गांधीजी ने जो मार्मिक विवेचन किया, वह यदि दिया जा सके तो अक्षरशः देने लायक है। प्रस्ताव पर बोलते हुए काकासाहब ने शिक्षकों को प्रोत्साहन देनेवाले कुछ शब्द कहे थे। 'कमजोरी को कहाँ तक बटोरते रहेंगे ? दुर्बलता की शिक्षा देनी हो तो हमारे लिए शिक्षक न होना बेहतर है।' इस आशय के काकासाहब के शब्दों पर से गांधीजी ने अपना वक्तव्य शुरू किया और बोले :

"इस प्रस्ताव पर काफी चर्चा हुई है। काका ने जो उत्साहपूर्ण शब्द कहे, उन पर मैं ठंडा पानी डालना चाहता हूँ। जोश में आकर आप इस प्रस्ताव को अपना लेंगे, तो उससे लाभ नहीं। हममें इस प्रस्ताव पर अमल करने की शक्ति न हो, तो वैसा स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार स्वीकार करना कमजोरी नहीं, ताकत है। कमजोरी का नमूना देखना हो, तो वह मैं हूँ। मुझ पर आप जितने चाहे उतने कंकड़ फेंक सकते हैं। जितना हममें न हो उतना बताते ही रहने में अहंकार है, ममत्व है। जिनसे उतना न हो सके, जितना इस प्रस्ताव में कहा गया है, वे यहीं खड़े हो जायँ। बाकी के लोग तो शत-प्रतिशत मत देंगे। मैं सौ फी सदी लेने के लिए खड़ा हूँ। अपनी शक्ति का अन्दाज लगाये बिना हम आगे बढ़ेंगे, तो जैसे वह मिल* टूट पड़ी, वही हाल हमारा होगा। दूसरे मकान रह गये और मिल ही टूटी, तो उसमें कुछ कमजोरी अवश्य होगी। हम अपने को इस स्थिति में डालना नहीं चाहते। इसलिए इस प्रस्ताव से हम यह जानना चाहते हैं कि हमारे पास असहयोग के सिपाही कितने हैं, असहयोग के सिद्धान्त को माननेवाले कितने हैं।

---

* उस अरसे में अहमदाबाद के सेठ मनसुखभाई की एक मिल का मकान टूट पड़ा था और उसमें कुछ मनुष्य कुचलकर मर गये थे।

"असल में सिद्धान्त की बात तो गोल-गोल है, परन्तु वास्तविक बातें दो ही हैं : अस्पृश्य और चरखा। इनके लिए हम तैयार हैं या नहीं ? एक में हृदय हिलाने की और आजीविका जोखिम में डालने की बात है। दूसरी में आलस्य छोड़कर हाथ हिलाने की बात है। इतनी जिनकी इच्छा न हो, इतना जिनमें बल न हो, उन्हें इससे हट जाना उचित है।

"अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म में महापाप है। जैसे कालचक्र घूम रहा है, वैसे हिन्दू-धर्म की परीक्षा होती जा रही है। इस परीक्षा में हिन्दू-धर्म अनुत्तीर्ण हुआ तो वह दुनिया से मिट जायगा, इस बारे में मेरे मन में जरा भी शंका नहीं। हमारे सामने सवाल यह है कि हमें अब शुद्ध होना है या दूसरों को अछूत रखकर स्वयं जगत् में अछूत बनना है ? दक्षिण अफ्रीका में, पूर्व अफ्रीका में और यहाँ भारत में भी हम अस्पृश्य बन गये हैं। अंग्रेजों के स्थान में हमें घुसने की मनाही है। अंग्रेजों ने यह यहीं आकर सीखा है। उन्होंने देखा कि 'यहाँ कुछ विचित्र धर्म है, एक आदमी को छूने से दूसरा आदमी अपवित्र हो जाता है, एक की छाया भी दूसरा पड़ने नहीं देता। हम भी इसी तरह करें, नहीं तो खतरे में पड़ जायँगे।' यह मान-कर उन्होंने अपने बाड़े बना लिये। इसमें उनका जरा भी दोष नहीं दिखाई देता। हमीं ने उन्हें अस्पृश्यता सिखायी है।

"आपमें मनोबल होगा तो आप चरखा भी लेकर बैठ जायेंगे और ऐसे बालकों को ढूँढ़ निकालेंगे, जिन्हें आप ये दो वस्तुएँ सिखा सकेंगे। इन दो चीजों से आप उन्हें सराबोर कर सकेंगे। ये दो चीजें हो जायँ, तो आपके लिए बहुत है। आप और बातों की उपाधि न रखें। और सब ईश्वर पर छोड़ दें। आपमें बल होगा, तो आपका रास्ता साफ है।

"ऐसा करने से आजीविका खतरे में पड़ जायगी तो ? आजीविका जोखिम में न पड़ जाय, ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिए ही हम स्वराज्य का आन्दोलन कर रहे हैं। इस आन्दोलन की सफलता तभी मानी जायगी, जब सैकड़ों, हजारों, लाखों बालक और बालिकाएँ आजीविका की चिन्ता छोड़ देंगी, आजीविका के बारे में लापरवाह हो जायेंगी। स्वतन्त्रता-प्राप्त प्रत्येक देश में लड़के-लड़कियाँ कर्तव्य की तुलना में रोजी का विचार ही नहीं करतीं। आजीविका की जितनी हायधाय यहाँ है, उतनी और कहीं नहीं। भारत का दावा है कि वह आत्मा को प्रमुख स्थान देता है। जो

देश ऐसा दावा करता है, उसी देश में मौत और रोजी का जितना डर है, उतना और कहीं नहीं। मैं इस प्रकार बोलता हूँ, क्योंकि मेरी हड्डियाँ हिन्दू हैं। हमें आजीविका का भय किसलिए होना चाहिए? आजीविका के लिए बुनाई तो हमारे पास है ही। वह न हो सके तो लकड़ी चीरेंगे, पत्थर तोड़ेंगे और उठायेंगे। इससे आगे बढ़कर पाखाने साफ करने का पवित्र कार्य करेंगे तो उससे भी हमें निर्वाह-योग्य रुपये तो मिल ही जायँगे। इतना ही नहीं, हमारी खुशामद भी होगी। इसलिए वास्तव में हमारे सामने आजीविका का तो प्रश्न ही नहीं है। जो स्वराज्य चाहते हैं और उसके लिए तड़पते हैं, जिन्हें लगता है कि इस यज्ञ में मुझे आहुति देनी चाहिए, वे आजीविका को तो भूल ही जायँ। फिर भूखों मरने की नौबत आये तो? माँ-बाप, स्त्री वगैरह भूखे रहें तो? जगत् को खिलाकर फिर स्वयं खाना, यह महान् धर्म है। इसलिए हमें धर्म का अनुसरण करके, भरसक मेहनत जरूर करनी होगी। महाभारतकार ने इसकी चर्चा की है कि पुरुषार्थ प्रधान है या प्रारब्ध, परन्तु निश्चय नहीं कर सके कि कौन-सा प्रधान है। परन्तु हम तो देखते ही हैं कि जहाँ-तहाँ भाग्य दो कदम आगे ही रहता है। हमारा यही धर्म है कि अधिक-से-अधिक परिश्रम कर लें। बहन का विवाह मैं करूँगा, यह कहने का हमें अहंकार क्यों हो? बहन को खिलाने-पहनानेवाला मैं कौन? मेरी आँखें मुँद गयीं तो? मेरे-जैसा तो पीछे के लिए भी तय कर जाय कि बहन के लिए विरासत में मैं रुपया नहीं रख जाता, परन्तु चरखा रख जाता हूँ।

"मैं उत्साह की भाषा नहीं बोलना चाहता था, परन्तु अनायास बोल गया। आपकी ये दो चीजें करने की तैयारी न हो, तो इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दें। तैयारी हो, बल हो, तो उसे अपना लें। नहीं अपनायेंगे, तो काम आगे नहीं चलेगा। फिर हम भारत को नहीं कह सकते कि गुज-रात में हमारे पास इतनी राष्ट्रीय पाठशालाएँ हैं और इतने बालक हैं।"

ये तीखे बाण श्रोताओं का हृदय भेदें या न भेदें, इसका विचार किये बिना उन्होंने अनायास ही छोड़े और शान्ति से ऐसे तीर कैसे चलाये जायँ, इसका पाठ उन्होंने क्षुब्ध होकर तीखे बाण छोड़नेवालों को सिखाया।

सातवें प्रस्ताव के 'होने चाहिए' और 'रहने चाहिए' के झगड़े में यहाँ नहीं पड़ेंगे। इस बारे में अधिक सावधानी करने के लिए प्रस्ताव पास होने

के बाद भी एक-दो भाइयों के सुझाव पर गांधीजी ने फिर मत लिये और फिर प्रस्ताव स्वीकार करनेवालों को बधाई दी, दोहराने की सलाह दी।

छठा प्रस्ताव पाँचवें और सातवें से निकलता है और इस आशय से हुआ है कि स्वच्छता के वातावरण को पोषण मिले। उसका मर्म यह है कि शिक्षक माँ-बाप के अधिक सम्पर्क में आये; शिक्षक बालकों का ही नहीं, परन्तु समाज का शिक्षक बने।

कातना, पींजना वगैरह सीखने और सूत के दान के आठवें और नवें प्रस्ताव अमली काम के प्रस्ताव थे। दूसरे प्रस्तावों के अमल में कुछ गलतफहमी से भी दोष हों, यह समझा जा सकता है, वर्तमान स्थिति को सुधारना असंभव होने के कारण वे प्रस्ताव बहुत जगह अमल में न आये, यह कुछ समझा जा सकता है, परन्तु आठवें और नवें प्रस्तावों से कोई भी शिक्षक बच नहीं सकता। इन प्रस्तावों पर पूरा अमल करके शिक्षक सारे समाज को पाठ दे सकेंगे, सारे गुजरात की शक्ल बदल सकेंगे। इन प्रस्तावों पर अमल न हो, तो सारी परिषद् का कार्य असफल हुआ, यह मानने में कोई बाधा नहीं।

इसके बाद भाई चंदूलाल ने वह प्रस्ताव पेश किया, जिसमें स्त्री-शिक्षा की कोई निश्चित व्यवस्था करने का विद्यापीठ से आग्रह किया गया था। अपने भाषण में उन्होंने इस बात पर असन्तोष प्रकट किया कि गांधीजी ने स्त्री-शिक्षा जैसे विषय को गम्भीर बताते हुए भी उसकी चर्चा से इनकार कर दिया! 'स्त्रियों के वकील' भाई चन्दूलाल का एक बहन ने भावपूर्ण भाषा में समर्थन किया। 'गणिकाओं तक को अपनानेवाले गांधीजी अगर हमें इस तरह भुलायेंगे तो क्या होनेवाला है?' ऐसा प्रश्न करके वह बहन बैठ गयीं। उन्होंने गांधीजी के हृदय को नहीं समझा था, इसलिए गांधीजी ने उसे सारी परिषद् के सामने उँड़ेल दिया :

"भाई चन्दूलाल मेरे कथन का अर्थ नहीं समझे। यह प्रश्न गम्भीर है, महत्त्वपूर्ण है; इतना अधिक गम्भीर है कि यह परिषद् इसकी चर्चा करने में असमर्थ है। पद्माबहन के कथन पर तो मुझे आश्चर्य ही हुआ। मेरे लिए तो गणिका बहन के स्थान पर है। जहाँ गया, वहीं मैंने उनके दर्शन किये हैं, अभी उनके दर्शन करूँगा और उनके सामने चरखा रखूँगा। मेरे विचार जेल में जाने के बाद जरा भी नरम नहीं हुए। स्त्री-शिक्षा के बारे

में मेरे विचार इतने वेग से उमड़ रहे हैं कि उन्हें मैं यहाँ नहीं रख सकता। मेरे दावा है कि और किसीकी अपेक्षा मैंने इस मामले में ज्यादा सोचा है। मैं यह भी दावा करता हूँ कि इस आन्दोलन के सिलसिले में स्त्रियों की जितनी जाग्रति हुई है, उतनी किसीकी नहीं हुई।

"चरखा स्त्रियों के हृदय को हिलाये बिना नहीं रहेगा। यही उनकी सच्ची शिक्षा है, हार्दिक शिक्षा है। और जो चीज वे खुद कर रही हैं, उसके बारे में प्रस्ताव क्या किया जाय? ये प्रस्ताव तो थोथे हैं। हमारे यहाँ कितना हो रहा है, यह हम नहीं देखते। जंगली जैसी, अपढ़ जैसी मानी जानेवाली स्त्री पर्दा छोड़कर बाहर निकले, इससे अधिक शिक्षा हम कई वर्षों में भी दे सकते थे? इस आन्दोलन के साथ-साथ ही स्त्री-शिक्षा तो हो रही है, बल्कि स्त्री-शिक्षा न हो रही होती, तो यह आन्दोलन संभव ही नहीं था।

"स्त्री-शिक्षा का विषय आपके, मेरे और सारे समूह के बूते के बाहर है। इसका विचार करना तो समुद्र को उलटने के बराबर है, मृगतृष्णा के पानी को पाने-जैसा है। स्त्री तो अर्धांगिनी है। यह शिक्षा कौन दे सकता है? थोड़ी-सी स्त्रियाँ कर्वे के विद्यापीठ की ग्रेजुएट बन जायँ, इससे क्या होता है? उससे शिक्षा नहीं होगी। स्त्री अर्धांगिनी है, यह समझ में आना ही सच्ची शिक्षा है।

"हमें तो इसके लिए शान्ति से बैठना चाहिए, सोचना चाहिए, अनेक लोगों के साथ सलाह-मशविरा करना चाहिए। यदि ऐसा हो कि मुझे विद्यापीठ के कुलपति के नाते कुछ न कुछ करना ही चाहिए, तो मैं कहूँगा कि चन्दूलाल वगैरह जो भार डालते हैं, वह असह्य है। न तो हमारे पास साधन हैं, न हमारे पास इतनी बहनें हैं। कुलपति को कितनी ही लालसा रही है, परन्तु वह बेचारा क्या करे? थोड़ा-सा रुपया बिखेरकर और थोड़ी-सी कन्या-पाठशालाएँ खोलकर स्त्री-शिक्षा नहीं हो सकती। इसलिए मैं चुपचाप बैठा हूँ। हमारी पाठशालाएँ और विद्यालय लड़कियों को लेने के लिए तैयार ही हैं। कोई भी योजना तैयार करके लाये तो विद्यापीठ विचार करने को तैयार है, मगर वह खुद तैयार नहीं करेगा। जो 'एक्स्पर्ट' (विशेषज्ञ) हों वे यह बोझा उठायें, अपने विचार पेश करें, खूब आन्दोलन करें, संचालक मंडल में शामिल हो जायँ। विद्यापीठ इस कार्य

में से बच नहीं जायगा। परन्तु स्वराज-सम्बन्धी शिक्षा की कोई बड़ी योजना रखे, तो विद्यापीठ उस पर विचार करने से इनकार ही करेगा। इस विषय की विद्यापीठ अवहेलना नहीं करना चाहता और न भूलना चाहता है, मैं केवल अशक्ति की ही बात करता हूँ। मैं स्वयं इस प्रस्ताव पर पाव घंटे में विचार करने में असमर्थ हूँ। सरदार और सिपाही के नाते नम्रतापूर्वक अनुरोध करता हूँ कि हमारी हँसी न होने देने के लिए, यह भ्रम दूर करके कि मुझे स्त्री-शिक्षा के लिए कोई लगाव नहीं, आप इस प्रस्ताव को वापस ले लें।"

भाई चन्दूलाल ने प्रस्ताव वापस ले लिया। परिषद् का काम समाप्त करते हुए गांधीजी ने उन्हें और इसी प्रकार दूसरे अनेक प्रस्ताव लाकर वापस ले लेनेवालों को जो बधाई दी, वह ठीक ही थी। उपसंहार के अन्त के शब्दों से इस लेख का उपसंहार करूँगा :

"आज जो काम हुआ है, उसका श्रेय आपको ही है। आपने मुझे उपकार के बोझे से दबा दिया है, प्रस्तावों पर अमल करके अधिक उपकार के नीचे दबा दीजिए। इतना ही अनुरोध है कि प्रस्तावों को यहीं न छोड़-कर साथ ले जाइए। इन पर अमल करके, मीठे फल खाइए और गुजरात को भी खिलाइए। ईश्वर आपको ऐसा बल दे।"

महाविद्यालय में गांधीजी

(नवजीवन, १०-८-१९२४)

गांधीजी जब से छूटे, तब से आचार्य कृपालानीजी और उनके विद्यार्थी इस विचार में व्यस्त थे कि उनका सत्कार किस ढंग से किया जाय। गुजरात के पुष्पं फलं का चन्दा जमा करना शुरू करते हुए विद्यार्थियों ने अपना हिस्सा इकट्ठा किया और उन्होंने अध्यापकों को भी उसमें भाग लेने के लिए प्रेरित किया। थोड़े ही दिनों में ११००) रुपये की रकम इकट्ठी हो गयी। तब से विद्यार्थियों ने लगभग नियमित कातने का कार्य-क्रम भी रखा। ११००) रुपये की थैली तथा बाद में मिलायी हुई १२९) रुपये की रकम, गांधीजी के उपयोग के लिए विद्यार्थियों के हाथ के सूत से बुने हुए अँगोछे और चादरें तथा खास इसी प्रसंग के लिए प्रत्येक विद्यार्थी का काता हुआ कम-से-कम पाँच तोला सूत वे गांधीजी को भेट करने

गये। शुक्रवार ता० ८-८-१९२४ को प्रातःकाल गांधीजी को गुजरात महाविद्यालय में निमंत्रित किया गया था।

आचार्य कृपालानीजी ने कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक काव्य के शब्दों में गांधीजी का स्वागत किया। यह सुन्दर काव्य 'नवजीवन' के पाठकों के लिए हिन्दी पद्य में उद्धृत करने का प्रयत्न किया गया है :

१

रात का अंधकार बढ़ गया था। हमारे दिन के सब काम निपट गये थे।
हमने सोचा, आनेवाले सभी अतिथि आ चुके, गाँव के प्रमुख द्वार
बन्द कर लिये। केवल कुछ ने कहा—"अभी राजा की सवारी
आनेवाली है।" हम हँस दिये—"नहीं, यह नहीं हो सकता।"

२

फिर, शायद द्वार पर हलकी-सी आहट हुई, हमने समझा हवा का झोंका
होगा। दीये बुझाकर हम सो गये। केवल कुछ ने कहा—"यह
राजदूत है !" हम हँस दिये—"नहीं, यह हवा का झोंका है।"

३

फिर आधी रात की सुनसान में एक आवाज उठी। सोते-सोते सोचा,
यह वही दूर बादलों की गरज है। पृथ्वी काँपी, दीवारें हिलीं,
हमारी नींद में विघ्न पड़ गया। केवल कुछ ने कहा—"यह राजा
के रथ का स्वर है।" हमने अलसायी आवाज में कहा—
"नहीं, यह तो केवल बादलों की गड़गड़ाहट है।"

४

रात अभी अँधेरी ही थी कि दुन्दुभि बज उठी। आवाज आयी—"उठो,
विलंब न करो।" हमने डर से काँपते हुए दिल थाम लिया। कुछ
ने कहा—"वह देखो, राजा की रथ-ध्वजा आकाश में फहरा रही
है।" हम चौंककर खड़े हो गये और बोल उठे—"समय नहीं
रहा, देरी न करो !"

५

राजा की सवारी आ गयी थी, किन्तु पूजा का दीपक कहाँ था ? जयमाल कहाँ थी ? उसके बैठने को सिंहासन कहाँ था ? उसके स्वागत के लिए सुसज्जित मंडप कहाँ था ? कुछ ने कहा--"यह व्याकुलता व्यर्थ है, उसका खाली हाथ अभिवादन करो, उसे अपने शून्य घरों में निःसंकोच लाओ !"

६

"द्वार खोल दो, स्वागत के लिए शंखों पर तुमुल ध्वनि होने दो। अपने राजा का, जो रात के निबिड़ अन्धेरे में आया है, अपने अन्धकार-भरे घरों में स्वागत करो। आकाश में बिजली की कड़क है, अन्धकार विद्युत्-प्रकाश में काँप रहा है। ऐसे समय अपनी फटी-पुरानी चटाई लाकर आँगन में बिछा दो।"

हमारी अँधेरी रातों का राजा अचानक ही आँधी-तूफान के साथ आया है ![१]

प्राध्यापक कृपालानी ने गांधीजी के आगमन की तुलना 'दुःख की रात के राजा' के आगमन से की और करुण कटाक्ष करते हुए कहा : 'न तो हमें कातने का समय मिला, न मिल के कपड़े छोड़ने का। आपने अचानक आकर हमें चकित कर दिया है।'[२]

श्री ए० डब्ल्यू० बेकर
पो० ऑ० पोर्ट शिपस्टोन
नाताल (नेटाल)

साबरमती
ता० १०-८-१९२४

¶ प्रिय श्री बेकर,

आपके दोनों पत्र मुझे मिल गये। पहले पत्र की पहुँच मैंने स्वीकार की थी। पुस्तक भी मिल गयी। जरूर हमेशा लिखते रहिए। मेरा खयाल

१. गीतांजलि के 'अतिथि' गीत का हिन्दी रूपान्तर।

२. आचार्य कृपालानी को उत्तर देते हुए गांधीजी ने जो भाषण दिया, उसे देखिए 'शिक्षा की समस्या' पृ० १२६-१२७ (नवजीवन प्रकाशन)।

है कि मुझे अपने ही रास्ते जाना चाहिए। हम सब साधक—खोज करने-वाले—हैं। जब तक हम ईश्वर और अपने बीच 'अहं' को घुसने नहीं देते, तब तक हमारा कल्याण ही है।

सेवक
मो० क० गांधी

श्री पॉल० एफ० क्रेसी
ग्रेनवील, ओहियो
यू० एस० ए०

साबरमती
ता० १०-८-१९२४

¶ प्रिय मित्र,

बचपन से ही हमें आत्म-संयम का अनुशासन सिखाया जाता है। उसके अनुसार जीवन बिताने में हम गिरते-पड़ते जरूर हैं। परन्तु पूर्वी देशों में हम इतना तो जानते हैं कि जीवन भोग-विलास के लिए नहीं, परन्तु मुख्यतः आत्म-संयम के लिए है। मैं चाहता हूँ कि अमेरिका के विद्यार्थी इतना-सा एक पाठ अपने जीवन में उतारें।

सेवक
मो० क० गांधी

लाला बालकिरण
भास्कर प्रेस
५, कचहरी रोड
देहरादून

साबरमती
ता० १०-८-१९२४

¶ प्रिय मित्र,

अमीर (अफगानिस्तान के) को कोई सन्देश भेजने की मेरी इच्छा नहीं होती। मैं चाहता हूँ कि मेरा काम ही बोले। इसी तरह उन्हें कोई भेट भेजने को भी जी नहीं चाहता। मेरे सूत का अलग कपड़ा नहीं बुना जाता।

सेवक
मो० क० गांधी

पुनश्च :

अभी-अभी आपका दूसरा पत्र मुझे मिला। ये त्याग-पत्र मुझे अच्छे लगते हैं। हम सत्य का अनुसरण करते हैं। सत्याग्रह में उत्तेजना नहीं होती, उसमें ठंडा निश्चय होता है। अनिश्चित काल तक मैं प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हूँ।

श्री ए० आर० काणे — साबरमती

एम० एल० सी० — ता० १०-८-१९२४

यवतमाल

¶ प्रिय मित्र,

आपके पत्र के लिए आभारी हूँ।

(१) मैं अनिवार्य शिक्षा के विरुद्ध हूँ। अनिवार्य करने में अन्याय होने का संभव है। यह जरूरी तो हरगिज नहीं।

(२) हमें आज स्वराज्य मिल जाय तो प्रारम्भिक अथवा और कोई शिक्षा अनिवार्य करने के प्रयत्न का मैं विरोध करूँगा। हमने अभी तक ऐच्छिक पद्धति की पूरी आजमाइश नहीं की।

(३) यवतमाल की नगरपालिका अनिवार्य शिक्षा जारी करने का कदम उठाना चाहे, तो यह कांग्रेस के प्रस्ताव के विरुद्ध नहीं। परन्तु इस मामले में मैं कुछ कह सकता हूँ, तो नगरपालिका से अनुरोध करूँगा कि शिक्षा अनिवार्य करने का प्रयत्न करने से पहले ऐच्छिक पद्धति के सारे उपाय आजमा लेने चाहिए। जहाँ शिक्षा अनिवार्य की गयी है, वहाँ उसके कैसे अनिष्ट परिणाम हुए हैं, यह मैं जानता हूँ।

सेवक

मो० क० गांधी

जनाब अलीहसन, बार-एँट-लॉ — साबरमती

पटना

¶ प्रिय मित्र,

आपका पत्र मुझे जरूर मिला है। हिन्दू वह कहलाता है, जो वेद, उपनिषद्, पुराण और वर्णाश्रम धर्म को मानता है। मैं इस मामले में आपसे सहमत नहीं हो सकता कि कोई मनुष्य यह कहे कि वह अमुक धर्म

का है, तो उसका दावा हम अस्वीकार कर दें। मैं क्या मानता हूँ, इसका उत्तम न्यायाधीश मैं ही हो सकता हूँ। आप भी ऐसा नहीं करेंगे?

सेवक
मो० क० गांधी

संपादक, तेज — साबरमती, ता० १३-८-१९२४

¶ भाई गुप्त,

मैं उस कृष्ण को प्रतिदिन कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ, जो गीता का प्रणेता है, जो सोलह हजार इन्द्रियों का स्वामी है, जो अखण्ड ब्रह्मचारी है, जो निर्विकार है, जो हमारे हृदय का अधिष्ठाता है। दूसरे को नहीं।

सेवक
मो० क० गांधी

श्री सी० आर० दास — साबरमती
कलकत्ता — ता० १५-८-१९२४

¶ प्रिय मित्र,

श्री खोपकर के एक मित्र के साथ भेजा हुआ पत्र मुझे दिया गया है। वे कहते हैं कि श्री खोपकर का यह खयाल है कि आप उस पत्र पर हस्ताक्षर न करें। परन्तु यदि आपने किये हों, तो वे कहते हैं कि श्री खोपकर आपको जिस तरह सन्तोष हो, उस तरह अपना निर्दोषपन साबित करने को तैयार हैं। मुझे सूचित कीजिए कि मैं श्री खोपकर के मित्र से क्या कहूँ।

मुझे आशा है कि श्रीमती दास की और आपकी तबीयत अच्छी होगी।

स्नेहाधीन
मो० क० गांधी

साबरमती, ता० १५-८-१९२४

¶ प्रिय श्री किचलू,

किसी अनजान पत्र-लेखक ने 'अर्जुन' की साथवाली कतरन मुझे भेज दी है। मैंने उसका उर्दू में अनुवाद कराया है। आप इसे देख लीजिए और मुझे बताइए कि इसमें कितना तथ्य है।

सेवक
मो० क० गांधी

प्रमाण-पत्र क्यों दूँ ?

साबरमती, ता० १५-८-१९२४

¶ प्रिय बहन श्लेजीन,

तुम्हारा पत्र बहुत देर से मिला। परन्तु उससे मुझे बहुत आनन्द हुआ है। तुमने उसे स्वच्छता का नमूना बनाना चाहा हो तो तुम बिलकुल असफल हुई हो। सफाई के बारे में तुम्हारी लापरवाही और छींटाकशी ज्यों की त्यों है। तुम्हारे पत्र में स्याही से सनी हुई तुम्हारी अँगुलियाँ मैं देख सकता हूँ। अब तुम्हारे योग्य इस प्रमाण-पत्र पर तुम मुझ पर असत्य का आरोप करना चाहती हो तो कर सकती हो। सफाई-सम्बन्धी तुम्हारी लापरवाही के विषय में मैंने तुमको प्रमाण-पत्र नहीं दिया। मैं आशा रखता हूँ कि तुम्हारे नये 'सेठ' को अधिक अच्छा अनुभव होगा। मेरे विरुद्ध तुमने जो-जो अभियोग लगाये हैं, उनसे मुझे इनकार करना चाहिए। तुमको 'बिजनेस सर्टीफिकेट' में क्यों दूँ? परन्तु बड़े-बड़े शूर-वीर कैसे गिरते हैं?

चौबीस पौण्ड के मामले में मैंने मान लिया था कि यह एक सौ पचास पौण्ड की हुण्डी में शामिल हैं। फिर भी मैं पारसी रुस्तमजी को लिखता हूँ कि एक सौ पचास पौण्ड में से जो कुछ बाकी रहा हो, उसे वे लौटा दें।

मेरी तबीयत साधारणतः ठीक ही है। अब तुमने पत्र लिखना शुरू कर दिया, तो जारी रखोगी न?

मो० क० गांधी के आशीर्वाद

साबरमती, ता० १५-८-१९२४

¶ प्रिय मोतीलालजी,

आपके पत्र के लिए आभारी हूँ। अपने हृदय की सारी बात आपसे कहता हूँ। जैसे-जैसे मैं इस बात पर अधिक विचार करता हूँ, वैसे-वैसे बेलगाम में सत्ता के लिए लड़ाई होने के विरुद्ध मेरी आत्मा अकुला उठती है। परन्तु मैं नहीं चाहता कि विधानसभा के कार्यक्रम के साथ मेरा नाम जोड़ा जाय। यह तभी हो सकता है कि स्वराज दल या तो कांग्रेस पर कब्जा कर ले या कांग्रेस पर कोई असर न डाले। आपको और हमारे मित्रों को जो ठीक लगे, उसी मार्ग का अनुसरण करने के लिए मैं तैयार हूँ। परन्तु यदि मैं कांग्रेस में रहूँ तो विधानसभाएँ वगैरह कांग्रेस से बाहर रहनी चाहिए।

तभी मैं आपकी मदद कर सकता हूँ। परन्तु विधानसभा का कार्यक्रम कांग्रेस में रहे, तो मुझे कांग्रेस में शून्य बनकर रहना चाहिए। तो फिर १९१५ से १९१८ तक मेरा जो स्थान (कांग्रेस में) था, वह स्वीकार करने को सहर्ष तैयार हूँ। मेरा हेतु स्वराज्य दल को कमजोर बनाना नहीं, उसे परेशानी में डालना तो हरगिज नहीं। मुझे रास्ता बतायें, तो मैं आपके अनुकूल बनने का पूरा प्रयत्न करूँगा। इसमें कुछ भी सर्वथा स्पष्ट न हो तो मुझे सूचित कीजिए।

मुहम्मदअली के तार के अनुसार मैं कल दिल्ली जा रहा हूँ।

स्नेहाधीन
मो० क० गांधी

कनका के राजा
उड़ीसा

साबरमती
ता० १५-८-१९२४

प्रिय राजासाहब,

आपके पिछले दो पत्रों की पहुँच मैंने नहीं लिखी, इसके लिए मुझे आपसे माफी माँगनी चाहिए। उत्तर लिखने से पहले मैं अपनी फाइल के सब पत्र पढ़ लेना चाहता था। परन्तु मुझ पर काम का दबाव इतना अधिक है कि अभी वे पत्र मैं पढ़ नहीं सका। अब जल्दी पढ़ लेने की आशा रखता हूँ। फिर आपको लिखूंगा। उस पर जल्दी ध्यान देने के आपके वचन के लिए आभारी हूँ।

सेवक
मो० क० गांधी

दिल्ली जाते हुए

(दिल्ली ता० १८-८-'२४)

(नवजीवन ता० २४-८-१९२४)

यह कहा जा सकता है कि जेल से छूटने के बाद भारत का दर्शन करने के लिए गांधीजी पहली ही बार निकले हैं। जुहू में तो एक प्रकार का

क्षेत्र-संन्यास था और अहमदाबाद तो घर ही था, इसलिए अहमदाबाद से दिल्ली के लिए रवाना हुए, यही देशाटन के लिए जाने का उनका पहला प्रसंग माना जायगा।

मौ० मुहम्मदअली को उन्होंने लिख रखा था कि जब दिल्ली में जरूरत पड़े तब मुझे तार कर दें। तदनुसार १५ तारीख को मौलाना साहब का तार आया कि 'यहाँ सलाह-मशविरे होते रहते हैं, समाधान की बहुत आशा है। इसलिए आप तुरन्त आ जायँ तो अच्छा।' गांधीजी को तो सोचना था ही नहीं। रात को 'बड़े भाई' आनेवाले थे, उनसे मिलकर दूसरे दिन चल देने का निश्चय कर लिया।

यह कहा जा सकता है कि सारा सफर शान्त था। यह खबर बहुत जगह नहीं पहुँची थी कि गांधीजी दौरे पर निकल पड़े हैं। इसलिए स्टेशनों पर भीड़ तो थी ही नहीं। कभी-कभी स्टेशनों पर गांधीजी के डिब्बे के सामने मनुष्यों की छोटी-सी टोली आ जाती—उसमें ज्यादातर स्टेशन के कर्मचारी और रेल-यात्री होते थे। उनके शरीर पर खादी तो देखने को क्यों मिलती? अजमेर के सिवा एक भी स्टेशन पर खादीधारी मित्र मिलने आये हों, ऐसा याद नहीं आता। डिब्बे में तो सभी भारतीय थे, परन्तु उनमें से एक के शरीर पर भी खादी नहीं थी।

सारा दिन गांधीजी ने लिखने में बिताया। परन्तु उस दिन भी संयुक्त प्रान्त के एक मित्र को बातचीत करने का समय दिया हुआ था और वे इसीके लिए साथ में सफर कर रहे थे। इसलिए लिखने से निपटकर उनके साथ बातें कीं। आजकल गांधीजी शायद ही बहस में पड़ते हैं, शायद ही बहुत बातें करते हैं, परन्तु सफर में होने से इस भाई को काफी बातें करने का समय मिला। उन्होंने पहली बातें ये छेड़ीं कि वे खुद क्या करें। अच्छे विद्वान् हैं, उर्दू में बढ़िया लिख सकते हैं, परन्तु गांधीजी ने तो उनसे कहा: 'यह कातने का यज्ञ चल रहा है। उसमें जितनी सहायता की जा सके, उतनी कीजिए। आप जिसके भी संपर्क में आयें, वह प्रत्येक मनुष्य अपना अर्घ्य देश को दे दे, इतना करें तो मेरा काम आपने पूरा कर दिया।'

ये भाई अपनी कठिनाई बताते-बताते अपनी मनोदशा भी वर्णन करते जा रहे थे: 'आपका तो अजब काम है। किसी समय हम राजनीति को

केवल राजनीति ही समझते थे, हिंसा और कुटिल नीति को हम आपत्ति-जनक नहीं मानते थे। आपने हमारा भ्रम मिटा दिया, हम अहिंसावादी बने; बाद में आपने आन्दोलन का धार्मिक स्वरूप समझाया, जेल में इस चीज का ठीक विचार करके इस निश्चय पर पहुँचे कि यही सही दृष्टि है। अब आप कहते हैं कि कातने के प्रस्ताव का हेतु सविनय भंग तो है ही। इस प्रकार फिर हमें धार्मिक स्तर से राजनैतिक स्तर पर उतरने के लिए कहते हैं। आपके लिए यह सब आसान है। परन्तु आपके एक झटके मात्र से हमारे मस्तिष्क के तराजू को लाखों बल खाने पड़ें, इसका क्या किया जाय?'

एक बात से दूसरी पर और दूसरी से फिर पहली पर, इस तरह सिलसिला चल रहा था और गांधीजी भी उन्हें रिझाने के लिए विषयान्तर होने दे रहे थे।

प्रश्न: "आप कटुता मिटाना चाहते हैं, आपके सारे प्रयत्न इसी दिशा में हैं, आपके तमाम लेखों से यही ध्वनि निकलती है। परन्तु कटुता मिटे कैसे?"

गांधीजी: "विरोधी के हमले का जवाब न देने से।"

प्र०: "परन्तु अलग तो काम करना ही पड़ेगा न? और अलग काम करने में यह चीज आ जाती है।"

गां०: "नहीं आती, यही तो मुझे बताना है।"

प्र०: "आप असहयोग को जीवन का एक दर्शन समझते हैं या लड़ाई का एक तरीका?"

गां०: "दोनों।"

प्र०: "अगर लड़ाई का एक तरीका भी समझते हों तो हम तरीका क्यों न बदलें? इसे बदलने में सिद्धान्त को छोड़ देने की बात नहीं। सारे बहिष्कार को छोड़ दिया जाय तो भी क्या?"

गां०: "यदि बहिष्कार छोड़ देंगे तो सविनय भंग नहीं हो सकता। बहिष्कार के बिना सविनय भंग का जोश हम पैदा नहीं कर सकते हैं। बहिष्कार छोड़ा कि तुरन्त सविनय भंग पर से विश्वास उठ जायगा। मैंने तो कह दिया है कि काम करनेवालों का अहिंसा पर से भी विश्वास उठ गया है और अहिंसा पर से विश्वास उठ गया तो सविनय भंग की बात

हीं न की जाय। इसलिए मैं तो बहिष्कार को माननेवाले, कातने में विश्वास रखनेवाले और इसलिए उसमें धार्मिक श्रद्धावाले जितने लोग मिल सकें, उतने जुटाना चाहता हूँ। तभी सविनय भंग का वातावरण उत्पन्न हो सकता है।"

प्र० : "यह सब तो ठीक है, मगर आप तो मनुष्य से उसकी शक्ति से अधिक चाहते हैं। जितनी शक्ति हो उतना ही लीजिए न ?"

गां० : "हाँ, मैं कहाँ अधिक माँगता हूँ ? परन्तु इससे यह तो नहीं हो सकता कि सिद्धान्त छोड़ दिये जायँ ?"

प्र० : "तो कटुता कैसे मिटेगी ?"

गां० : "मैं काम करने के क्षेत्र बदल रहा हूँ। आज अलग हूँ, कल अलग था। जितने काम करनेवाले मिलें उनके कदम एक साथ आगे बढ़ें, तो कटुता अपने-आप मिट जाय।

"परन्तु मैं तो बहिष्कार छोड़ देने की भी बात कर चुका हूँ।"

प्र० : "कब ?"

गां० : "जब एक ही कार्यक्रम की बात की गयी। उसकी शर्त केवल इतनी ही है कि सबको—प्रत्येक दल को, राजा-महाराजाओं को भी—वह पसन्द हो।"

प्र० : "अर्थात् लॉर्ड रीडिंग भी खादी स्वीकार करें ?"

गां० : "हाँ, उन्हें भी किसी न किसी दिन स्वीकार किये बगैर काम क्या चलेगा ?"

प्र० : "परन्तु आप तो लेख लिखकर बैठ गये, और कोई प्रयत्न नहीं किया। मोतीलालजी और आप मिलकर देश के सामने ऐसी अपील रखें तो ?"

गां० : "हाँ, परन्तु ऐसी अपील रखी जा सकती है या नहीं, इस बारे में मुझे शक है। मेरा खयाल है कि स्वराज्यवादी चरखे को धर्म के रूप में स्वीकार नहीं करते।"

प्र० : "वे इसका आर्थिक उपयोग बराबर स्वीकार करते हैं।"

गां० : "आर्थिक रूप में भी अमोघ उपाय मानते हों तो अच्छा, परन्तु ऐसा नहीं है। मुझे देश में Heart conviction—अन्तर का निश्चय—चाहिए। वह न हो तो 'एक कार्यक्रम' बेकार है।"

स्वराज्यवादी चरखे को नहीं मानते

प्र० : "उनका ऐसा निश्चय न हुआ हो, तो उसका कारण वह कटुता है, जो मैं बता रहा हूँ। यह कटुता दूर हो जाय, तो यह अटल निश्चय भी हो जाय कि चरखा और खादी ही अमोघ उपाय हैं।"

गां० : "बिलकुल नहीं। क्या नरम दल के लोगों के साथ मेरी कटुता है ? अपरिवर्तनवादियों के साथ उनका कोई वैमनस्य है ? जरा भी नहीं, फिर भी वे इस कार्यक्रम में शरीक नहीं हो सकते। असल बात यह है कि श्री शास्त्रियार चरखे को आर्थिक साधन मानते ही नहीं, मौ० हसरत मोहानी जैसे उसे 'केवल मिथ्या प्रवृत्ति' मानते हैं और श्री चिन्तामणि जैसे तो इसे हानिकारक प्रवृत्ति भी मानते हैं। इसी तरह स्वराज्यवादी चरखे को आवश्यक साधन नहीं समझते। उनका मार्ग भिन्न है। उनका स्थान है। मैं उनका आदर करता हूँ। कटुता के कारण देश के लिए जो लाभदायक वस्तु है, उसको वे छोड़ ही नहीं सकते। आप उनके प्रति अन्याय करते हैं। मैं तो उनमें विचार की प्रामाणिकता देखता हूँ। आप नहीं देखते।

"मुझे ऐसा काम चाहिए, जो डॉ० राय कर रहे हैं। इतनी श्रद्धा से क्या स्वराज्यवादी अथवा नरम दलवाले खादी का काम हाथ में लेंगे ?"

प्र० : "वाह ! आपको डॉ० राय जैसा काम चाहिए, परन्तु डॉ० राय की मनोदशा सारे देश की हो जाय, तब तो किसी भी दिन सविनय भंग नहीं हो सकता।"

गां० : "मुझे विश्वास है कि जब तक सविनय भंग ऐसे कार्य के परिणामस्वरूप उत्पन्न नहीं होगा, तब तक वह स्वराज्य प्राप्त करने के लिए बेकार होगा।"

प्र० : "परन्तु आप तो बहुत उतावले हो गये हैं ?"

गां० : "मैं जिसे जितना चाहिए, उतना समय उसे देता हूँ। और जो जितना देता है, उतना लेता हूँ। मुझे जितने सिपाही मिलेंगे, उतने से मैं काम चला लूँगा। गुजरात में ६७२ व्यक्तियों ने काता। उनसे मैं बहुत सा काम लूँगा।"

प्र० : "इन ६७२ से क्या करानेवाले हैं ?"

गां० : "बहुत काम करा सकते हैं। इन भाइयों और बहनों ने जितना कातकर भेजा, उतने पर से मुझे तो विश्वास हो गया है कि वे जो कहते हैं सो करनेवाले हैं।"

प्र० : "क्या करेंगे कहने के अनुसार ! गांधी कहते हैं तो करो, यह मानकर बहुत लोग करते हैं। और इन ६७२ के बारे में मैं नहीं कहता, लेकिन ऐसे लोग प्रामाणिक ही होते हैं, यह आप कैसे मान लेते हैं ? इनमें बहुत सारे लुच्चे-लफंगे भी हो सकते हैं ! उनसे आप क्या काम लेनेवाले हैं ?"

गां० : "भले हों, यद्यपि मैं नहीं मानता, लेकिन हों तो उनकी लुच्चाई-लफंगाई भी इसी रास्ते मिटेगी।"

प्र० : "अरे महात्माजी, पाँच-पाँच बार नमाज पढ़ने पर भी बदमाशी से बाज न आनेवाले अपने भाइयों को मैं जानता हूँ। एक घंटा कातनेभर से क्या बदमाशी मिट जानेवाली है ?"

गां० : "अगर आप नमाज का उदाहरण न देते तो ठीक होता। लेकिन आपने दिया है, इसलिए जवाब दे रहा हूँ। नमाज में ताकत न रही हो, क्योंकि पढ़नेवाले कृत्रिम रूप से पढ़ते हैं। लेकिन कृत्रिम रूप से पढ़ी जानेवाली इस नमाज के साथ तुलना क्यों करें ? आप उसका विचार कीजिए, जब कि १३०० वर्ष पहले नमाज शुरू हुई थी और उसका कुछ चमत्कारिक असर भी हुआ था। यही बात कातने के बारे में है। यह मैं समझ सकता हूँ कि जब कातना सार्वत्रिक था, तब उसका कोई धार्मिक अर्थ न रहा होगा, लेकिन आज तो कभी न कातनेवाले एक घंटा कातने का संकल्प करते हैं, वे क्या धीरज, मौन और शान्ति की तालीम नहीं ले रहे हैं ? आज जो लोग देश के लिए कातने का संकल्प करते हैं, वे शुद्ध धार्मिक श्रद्धा से ही करते हैं, ऐसा मेरा मानना है।"

प्र० : "लेकिन आपके इन ६७२ में बहुत-सी औरतें भी होंगी। बहुत-से ऐसे भी होंगे कि जिनका कांग्रेस के काम के साथ कोई सम्बन्ध न हो। ये औरतें सविनय भंग के लिए क्या काम आयेंगी ?"

गां० : "हाँ, हाँ, खासी काम आयेंगी। मर्द निकम्मे हो जायेंगे, तो मैं इन्हींके द्वारा काम लेने की आशा रखता हूँ।"

प्र० : "तब क्या आप बदमाशों से भी कतवाकर उन्हें सुधारने की आशा रखते हैं ?"

गां० : "जरूर, परन्तु बदमाश कातेंगे नहीं। वैसे मैं तो आपसे आगे बढ़कर कहूँगा कि बदमाश हों, शराबी हों, व्यभिचारी हों, एक महीने

दिल लगाकर कातने का काम करेंगे तो वे अपनी बदमाशी वगैरह छोड़ ही देंगे। लेकिन उन ६७२ में तो ऐसे हरगिज नहीं हैं।"

प्र० : "अच्छा तो भिंडी बाजार में से मैं आपको थोड़े-से कातनेवाले जुटा दूँ। उनकी जिन्दगी क्या सुधरेगी और वे सविनय भंग के लिए क्या काम आयेंगे?"

गां० : "चलिए, आपके साथ करार है कि आप उनसे कतवाइए और मैं उन्हें सुधार दूँगा।"

प्र० : "हाँ, मैं कहता हूँ कि बम्बई की सुनहरी टोली में घूमकर मैं तीन महीने उनसे सूत कतवा दूँ।"

गां० : "कतवा दीजिए और मैं उन्हें सुनहरी टोली से छुड़वा दूँ।"

प्र० : "तो लाइए रुपया, जिससे मैं काम शुरू करूँ।"

गां० : "रुपया किसलिए? जिनसे आपको कतवाना हो उनके पास जाइए, उनसे कहिए कि रूई की भीख माँग लायें, चरखा पैदा करें, पींजना सीखकर रूई पींजें, कातना सीखें और कातें। आप बम्बई के बदमाशों से इतना कराइए और तब मुझसे कहिए कि 'लाइए स्वराज्य'।"

प्र० : "वाह महात्माजी, आप तो सब तरफ से बाँध लेते हैं। उन बेचारों से यह सब तो कैसे कराया जाय? ये तो कातकर छूट जायेंगे।"

गां० : "कातकर छूटनेवाले नहीं, परन्तु उमंग से कातनेवाले चाहिए—जिन पर इसका रंग चढ़े और जो इस रंग को पूरा करने के लिए जितनी मेहनत की जरूरत हो उतनी करें।"

प्र० : "क्या आपके ६७२ ऐसे होंगे? ये सब स्वयं पींज लेते होंगे? राम-राम कीजिए।"

गां० : "यह तो मैं मानता ही हूँ कि अधिकांश पींज लेते होंगे। मगर ऐसा हो या न हो, परन्तु उन्हें रूई वगैरह मैं तो जुटाकर नहीं देता।"

प्र० : "खैर, लेकिन ऐसे लोग भी स्वच्छ कैसे होंगे, यह बात तो मैं समझ ही नहीं सकता।"

गां० : "भाई, मैं अनुभव से कहता हूँ कि जो नियमित रूप से यह काम अपना लेंगे, वे स्वच्छ न होंगे तो भी स्वच्छ बनते जायेंगे। मैं कहता हूँ कि मेरे लिए इतना काम काफी है। मुझे ६०० नहीं, केवल ६० सच्चे मिल जायँ तो उनसे ६० हजार उत्पन्न कर लूँगा।"

प्र० : "कितने समय में ?"

गां० : "ईश्वर जाने। जब तक सब मर न मिटें, तब तक। आज इतनी अवधि दे सकता हूँ। आप हँसते हैं, परन्तु सचमुच मुझे इस बात की चिन्ता नहीं कि जगत् कहेगा कि गांधी ने तो सौ बरस का कार्यक्रम दे दिया।"

प्र० : "यह सब स्पष्ट होना चाहिए। और ऐसा हो जाय तब तो स्वराज्यवादियों को कांग्रेस सौंप देने में क्या कठिनाई हो सकती है ?"

गां० : "कुछ भी नहीं। इतनी ही बात है कि मैं स्वराज्यवादियों को परेशान नहीं करना चाहता। यदि आज मैं उन्हें कांग्रेस सौंप दूँ, तो आपको इसमें ऐसा लग सकता है कि इस सौंप देने में भी मैं अपने-आपको महत्त्व दे रहा हूँ। मेरे कांग्रेस में रहने से वे निर्भय हैं। मेरे एकाएक निकल जाने में उन्हें घमण्ड भी हो सकता है और इससे वे परेशान तो होंगे ही। परन्तु वे जब चाहें तब मैं आनन्द से निकल जाऊँ और बाहर रहकर उनकी मदद करूँ तो यह सुन्दर स्थिति है। मौलाना शौकतअली ने मुझसे पूछा कि क्या इससे देश को आघात नहीं पहुँचेगा ? मैंने कहा, भले ही पहुँचे; देश को मेरे बारे में कोई भ्रम हो, तो वह भले ही भंग हो जाय।

"स्वराज्यवादी प्रामाणिक हैं, उन्हें विधानसभा के द्वारा ही काम करना है। मेरा खयाल है कि विधानसभा के द्वारा किसी कालांतर में भी स्वराज्य नहीं मिल सकता, मिलेगा तो भी वह निकम्मा स्वराज्य होगा। फिर भी उन्हें प्रयत्न करने देना उचित है। मैं अपने कार्यक्रम से शुद्ध स्वराज्य लाऊँ, तो वे जरूर स्वीकार करेंगे कि 'हमारा कार्यक्रम ठीक नहीं था।'

"यदि मैं उन्हें परेशान करूँ तो उनकी ताकत घट जायगी। वे जो काम कर रहे हैं, उसमें भी मैं चाहता हूँ कि वे अपनी पूरी शक्ति दिखायें। यदि अपरिवर्तनवादी मुझे उन्हें तंग करनेवाला एक भी कार्य करने के लिए कहें तो भी मैं वह हरगिज न करूँगा। मैं रोम-रोम से सत्याग्रही हूँ। बाहर निकलकर भी उनकी मदद करूँ, अन्दर रहकर भी उन्हें सहायता दूँ। मैं सत्याग्रह का जादू बताना चाहता हूँ। मैं जिस प्रकार अपने परिवार में व्यवहार कर रहा हूँ, उसी प्रकार यहाँ कर रहा हूँ। एक समय ऐसा आयेगा, जब इन सबको विश्वास हो जायगा कि इस आदमी में मैल नहीं,

घमण्ड नहीं, छल-कपट नहीं। आज तो ऐसी स्थिति उत्पन्न करना चाहता हूँ कि उन्हें महसूस हो जाय कि अब इससे अधिक की गांधी से आशा नहीं रखी जा सकती।"

मैं देखता हूँ कि मैंने बातचीत का विवरण कुछ विस्तार से दिया है। परन्तु उसमें भी बहुत-सा छोड़ दिया है और मेरा खयाल है कि यहाँ जो विवरण दिया, उसमें से कुछ भी छोड़ने जैसा नहीं है। यह बातचीत लम्बी चली थी। उस रात गांधीजी थककर जरा देर से सोये। परन्तु प्रातःकाल उठकर फिर लिखना शुरू कर दिया था।

१० बजे गाड़ी दिल्ली पहुँची। दिल्ली के स्टेशन पर हिन्दू-मुसलमान दोनों की भीड़ सन् १९२१ के बराबर ही थी। कौन कह सकता है कि इन्हीं हिन्दू-मुसलमानों ने थोड़े दिन पहले एक-दूसरे के सिर फोड़े होंगे? सारा 'प्लैटफॉर्म' इतना भरा हुआ था कि गांधीजी के लिए निकलने का मार्ग नहीं था। सामने प्लैटफॉर्म पर खड़ी गाड़ी के डिब्बों पर सैकड़ों आदमी खड़े थे। लोग डिब्बों की खिड़कियों पर भी खड़े हुए थे और गाड़ी के दूसरी ओर जहाँ प्लैटफॉर्म नहीं था, वहाँ भी भीड़ कम नहीं थी। सन् '२०-'२१ का प्रेम और पागलपन दोनों देखने में आये।

अभी आये मुश्किल से चौबीस घण्टे हुए होंगे, परन्तु वातावरण देखना कठिन नहीं था। वातावरण की गन्ध जिस ताँगे में बैठकर मौलाना मुहम्मद-अली के घर आये, उस ताँगे में मिल गयी। अपने ताँगे में हिन्दू को बिठा सकने के कारण हिन्दू ताँगेवाले को बड़ा अभिमान था और वह अच्छी तरह नमक-मिर्च लगाकर देखी हुई या सुनी हुई बातें कर रहा था:

'हिन्दू न लड़ते, तो दिल्ली में हिन्दुओं का नाम-निशान न रहता।' ये शब्द हिन्दू मित्र के और गाड़ीवाले के थे।

फिर भी मौ० मुहम्मदअली के यहाँ आकर गांधीजी ने देखा कि 'दर्शन' करने आनेवालों में हिन्दू बहनें बहुत थीं। उन्हें मौलाना साहब के घर में निःसंकोच आने और दर्शन करके जाने में कठिनाई नहीं थी। टोलियों में कितने ही व्यक्ति ऐसे होंगे, जिन्होंने एक-दूसरे पर जरूर पत्थर मारे होंगे और जो एक-दूसरे को देखकर मन ही मन शरमाते होंगे। यह दृश्य बताता है कि हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े जो भयंकर दीखते हैं, ऊपरी हैं, जब कि सरकार के साथ का झगड़ा गहरा है।

गांधीजी हिन्दुओं और मुसलमानों से मिल रहे हैं। उनके दिल्ली पहुँचने से पहले मौलाना साहब ने लोगों से पूछकर तय कर रखा था कि अमुक मनुष्य आकर मिल जायँ। तदनुसार दोनों पक्ष कल मिल लिये। आज सोमवार है, इसलिए कोई नहीं आयेगा। कल फिर दोनों पक्ष आयेंगे। दोनों की मनोदशा के बारे में आज से लिखना उतावलापन होगा। कदाचित् गांधीजी ही अपने मन पर होनेवाला असर बयान करेंगे।

कुछ दिन पहले मौलाना के पैर पर फोड़ा हुआ था। उसके फूट जाने पर दूसरे दो और निकल आये हैं। स्वयं मौलाना लँगड़ाते-लँगड़ाते स्टेशन पर आये थे। घर पर आकर चरखा लेकर बैठे थे। तकुआ थर्रा रहा था, तार बार-बार टूट रहा था, परन्तु मौलाना चरखा छोड़ नहीं रहे थे। मैं समझता था कि एकाध घंटे में छोड़ देंगे, परन्तु वे फ़ुरसत के सारे समय उसीको लेकर बैठे रहे। भाई देवदास ने तकुआ ठीक कर दिया तो उनका उत्साह बढ़ा। गांधीजी मुसलमान भाइयों के साथ बातें कर रहे थे। तब भी उनका चरखा चल रहा था। इस प्रकार रात तक उन्होंने लगभग पाँच सौ तार पूरे कर लिये होंगे।

घर में बेगम साहब को कातना आता है, उनसे ही मौलाना ने सीखा। खराब तकुए पर भी उनका सूत एक-सा निकलने की आशा तो दिलाता ही है। बढ़िया चरखे पर वे बढ़िया, एक-सा समान सूत निकालेंगी, इसमें सन्देह नहीं।

बी अम्मां साहब तो मृत्यु-शय्या पर थीं। रामपुर में थीं। जहाँ नवाब साहब ने लड़कों को मिलने नहीं आने दिया, इसलिए उन्होंने हठ कर लिया कि कुछ भी हो, मुझे रामपुर से बाहर ले जाओ। अत्यन्त जोखिम उठाकर डॉ० अनसारी उन्हें दिल्ली ले आये और अब वे स्वराज मिलने से पहले जाने से इनकार कर रही हैं। मौ० शौकतअली कहते थे कि मेरी अम्मां को विश्वास है कि '५७ का विद्रोह देखा, अब स्वराज भी देखूँगी।

यह तो ईश्वर जाने, परन्तु जब बी अम्मां साहब को अभी तक बोलने की शक्ति नहीं और दो वाक्य बोलकर फिर बेहोश हो जाती हैं,—तब भी उनके मुख से शब्द निकलते हैं: 'खुदा इन लोगों का क्या करेगा? भाई-भाई के गले काट रहे हैं! कितने अभागे हैं हम! हमारी लड़ाई में तीसरा फलता-फूलता है, यह हम अभी तक नहीं समझते।'

मेरा प्रयत्न अशोभनीय झगड़ा टालना है

साबरमती, ता० २४-८-१९२४

¶ प्रिय राजगोपालाचारी,

महादेव ने अपने नाम का आपका पत्र मुझे बताया है। आपको निराश होने का कोई कारण नहीं। श्रीमती नायडू कहती हैं कि मैं निराश हूँ, यह मान-हानि है। यह बात सच है कि मैं व्यर्थ प्रयत्न करता हूँ। कुछ चीजें ऐसी हैं, जिन पर मैं निश्चित और तुरन्त निर्णय नहीं दे सकता। परन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हम अनजान समुद्र में नाव खे रहे हैं।

यह याद रखिए कि हम सत्याग्रही हैं। इस परिस्थिति पर मेरा बस होता तो मैं परिवार का कानून लागू करता। मान लीजिए कि दो भाई विरासत के लिए लड़ते हैं। दोनों की इच्छा उसका उपयोग कुटुम्ब के लिए ही करने की है। परन्तु दोनों में से एक समझता है कि कुटुम्ब की सेवा के लिए उसकी जरूरत नहीं। परन्तु परिवार का बहुमत इस विरासत को स्वयं रखना चाहता है, तो दो में से जो भाई सत्याग्रही हो, क्या उसका यह फर्ज नहीं कि विरासत को छोड़ दे ? और झगड़े का मुँह काला करके उसमें बरबाद होनेवाला समय और शक्ति बचा ले ? प्रस्तुत मामला इस मामले से क्या सचमुच भिन्न है ? फिर भी मैं सावधानी से काम ले रहा हूँ। मेरा प्रयत्न अशोभनीय झगड़ा टालने का है। मैं अध्यक्ष-पद स्वीकार तो करूँगा, यदि मुझे लगेगा कि इससे देश की सेवा होगी। इसका निर्णय करने के लिए अभी बहुत समय है। कताई के जो आँकड़े आ रहे हैं, वे आँखें खोलनेवाले हैं। इस समय जैसे कंगाल आँकड़े आ रहे हैं, वैसे ही जारी रहे तो क्या सचमुच मेरे अध्यक्ष बनने में कोई सार है ? तो फिर क्या यह बेहतर नहीं कि मैं कांग्रेस से निकल जाऊँ और कड़ा कार्यक्रम पेश करके उसके लिए ऐसी व्यवस्था करूँ कि उसके सदस्य प्रामाणिक और राजी-खुशी हों ? विदेशी वस्त्र धारण करनेवालों से चरखे के लिए मत प्राप्त करने में कोई सार भी है ? और कांग्रेस पर कब्जा करने के लिए भोले लोगों का कैसा उपयोग हो रहा है, वह देखिए। (ऐसी स्थिति में) कथित अपरिवर्तनवादी क्या सचमुच प्रामाणिक रहेंगे ? आजकल की कार्रवाई का समग्र चित्र अपने सामने रखिए। यदि इस गज-ग्राह के बिना हम कांग्रेस को अपने पक्ष में नहीं रख सकते, तो हमें इसे

राजी-खुशी छोड़ देना चाहिए। आपके पत्रों पर मैंने बहुत विचार किया है। और मुझे निश्चित लगता है कि ऐसी किसी भी खींचतान में से मुझे निवृत्त हो जाना चाहिए। परन्तु अभी तो मैं केवल परिस्थिति को देख रहा हूँ और मोतीलालजी के जवाब की राह देख रहा हूँ।

मेरे पास मलाबार के बारे में अनेक जगहों से अर्जियाँ आयी हैं। आप मुझसे क्या करने की अपेक्षा रखते हैं? मैं विचार करता हूँ कि यहाँ से किसीको भेजूं। वह आपके साथ रहकर विशेष विवरण दे। परन्तु अभी तक कोई कदम नहीं उठाया, इसलिए मैं आपके सुझाव जानना चाहता हूँ। यहाँ कपड़े तो काफी इकट्ठे हुए हैं। उनका क्या उपयोग किया जाय, इस बारे में मुझे रास्ता दिखाइए।

दिल्ली में मैं कोई खास प्रगति नहीं कर सका। अभी तक समझौते की कुछ न कुछ आशा है। परन्तु यह चीज बहुत नाजुक है।

हाँ, आपका अनुमान सही है। यह महिला-मित्र सरलादेवी ही हैं। वे अभी इस प्रकार के साहित्य की मुझ पर अधिक मार जारी रखना चाहती हैं। परन्तु अधिक के लिए मैंने इनकार कर दिया है। इस चीज के इनकार में ब्राह्मणों की तरफ से कुछ सुन्दर पत्र मेरे नाम आये हैं। उनमें से एक मैंने प्रकाशित किया है।

मेरा कार्यक्रम इस प्रकार है:

२९ अगस्त से ३ सितम्बर	बम्बई
४ ,,	पूना
५ ,,	बम्बई

बाद में अनिश्चित है। कदाचित् दिल्ली जाने के लिए ५ सितम्बर को बम्बई छोड़ूंगा।

स्नेहाधीन
मो० क० गांधी

बम्बई, ता० ३०-८-१९२४

¶ प्रिय मोतीलालजी,

× × ×

आपका मेरे नाम लिखा हुआ पत्र श्रीमती नायडू ने कल दिया। असल पत्र तो साबरमती पहुँचा होगा। आपको लिखे गये दो पत्रों में मैंने पूरी

तरह छोड़ देने की अर्थात् जहाँ तक मैं कर सकता हूँ, वहाँ तक छोड़ देने की तैयारी बतायी है। आपको लिखने के बाद बहुत समय पहले के प्रसंग का मुझे पता चला। इससे भी अधिक छोड़ देने की बात रही होती तो इस प्रसंग की बात सुनने के बाद बाकी चीज भी छोड़ने के बारे में मैंने आपको तार दिया होता।

इसलिए अब आप लगभग अपनी शर्त पर मुझे स्वीकार कर सकते हैं। 'लगभग' इसलिए आवश्यक है कि कुछ चीजें ऐसी हैं, जिन्हें अपने प्राणों से और इस दुनिया के तमाम बन्धनों से अधिक मानता हूँ। आप राजी-खुशी से और पूरे हृदय से अर्थात् यह मानकर कि यह देना उचित है, मुझे देना चाहते हैं तो मैं इस प्रकार चाहता हूँ :

हमारा प्रस्ताव ऐसा होना चाहिए कि

१. पूर्ण असहयोग के सिद्धान्त और नीति में, विधानसभाओं के बहिष्कार तक में, कांग्रेस को अपना विश्वास फिर से प्रकट करना चाहिए।

२. परन्तु विदेशी कपड़े के सिवा और सब बहिष्कार १९२५ के अन्त तक मुल्तवी रखे जायँ।

३. सबको कांग्रेस में शामिल होने का निमंत्रण दिया जाय।

४. साम्राज्य के माल का बहिष्कार उसमें न आना चाहिए।

५. हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी का प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता और हिन्दुओं के लिए अस्पृश्यता-निवारण—इन्हीं तक कांग्रेस की प्रवृत्ति सीमित रखी जाय।

इसका अर्थ यह हुआ कि कांग्रेसियों के नाते उनका विधानसभाओं अथवा बहिष्कारों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होगा। परन्तु जो विधान-सभा का कार्यक्रम चलाना चाहते हों, और ऐसी दूसरी प्रवृत्तियाँ करना चाहते हों जो कांग्रेस की प्रवृत्तियों से असंगत न हों, वे कांग्रेस से स्वतन्त्र रूप में अपना अलग संगठन बना लें। अर्थात् प्रस्ताव में स्थगित रखे गये कौंसिलों के अथवा अन्य बहिष्कारों के अमल के लिए कोई संगठन नहीं होगा। मौजूदा राष्ट्रीय पाठशालाओं की मदद जारी रहनी चाहिए। और जहाँ संभव हो, वहाँ नयी पाठशालाएँ भी खोली जायँ। परन्तु सरकार के साथ उनका कोई सम्बन्ध न होना चाहिए।

कांग्रेस के सदस्य बनने के लिए चार आने की फीस हटा दी जाय;

उसके बजाय जो मनुष्य कांग्रेस का सदस्य बने, उसे खादी पहनना चाहिए और सदस्य होने के लिए हर महीने अपना ही काता हुआ कम-से-कम दो हजार गज सूत देना चाहिए। किसी सदस्य को पूरे वर्ष का सूत इकट्ठा देना हो, तो उसे ऐसा करने की छूट होनी चाहिए।

कांग्रेस को सच्ची और जीवन्त वस्तु बनाने का और कोई उपाय मुझे दिखाई नहीं देता। और भारत के गरीबों के लिए चरखे के सिवा और कोई आशा मुझे नजर नहीं आती। साथ ही जब तक हम खुद न कातें, तब तक हम उनके हृदय को हिला नहीं सकते।

मैं संविधान में कुछ और परिवर्तन भी सुझाना चाहता हूँ। परन्तु इस समय मैं इसमें नहीं जाऊँगा। यह सिर्फ इसलिए हैं कि कांग्रेस का काम अधिक कारगर ढंग से और तेजी से हो। हमें यह भी घोषित करना चाहिए कि कांग्रेस की सभी कार्य-समितियों को अमली काम करनेवाली समितियाँ मानना चाहिए और महासमिति विचार या सलाह-मशविरा करनेवाली संस्था मानी जाय।

कार्य-समितियों में ऐसे ही आदमी आयें, जो कांग्रेस के सम्पूर्ण कार्य-क्रम से बँधे हुए हों। मेरे प्रस्ताव के अनुसार कार्य-समिति में चुने जाने के लिए आप भी मेरे बराबर योग्य माने जायँ। मैं जो कहना चाहता हूँ, वह यह है कि यदि चार बहिष्कार स्थगित रखे जायँ, तो विधान-सभा-प्रवेश अथवा अदालतों में वकालत करना उसमें चुने जाने के लिए बाधक न होना चाहिए। वस्तुतः ऐसा हो सकता है कि वकालत में अथवा कौंसिल में पूरा समय देनेवाले के लिए कार्य-समिति में आना वांछनीय न हो, क्योंकि उसके सदस्य कांग्रेस कार्यक्रम की तीन चीजों को अपना पूरा समय और पूरा ध्यान देनेवाले होंगे।

मेरी योजना में बंगाल का कोई अपवाद नहीं हो सकता। वस्तु-स्थिति यह होगी कि प्रत्येक प्रान्त में कांग्रेस की तरफ से किसी भी प्रकार की बाधा या कठिनाई के बिना स्वराज्यवादी अपना संगठन पूरी तरह कर सकेंगे। परन्तु कांग्रेस संस्था का प्रत्येक स्थान पर एक ही कार्यक्रम होगा। इस लिए दासबाबू कांग्रेस संगठन को स्वराज्य संगठन में परि-वर्तित कर सकेंगे और केवल तीन कार्यक्रमोंवाला कांग्रेस संगठन दूसरों को करने देंगे या स्वयं करेंगे। विचार यह है कि जिस तरह कांग्रेस दूसरे संगठनों को सहायता न पहुँचाये, उसी तरह उनमें बाधा भी न डाले, परन्तु

दूसरे संगठनों में यदि कांग्रेसी सदस्य होंगे, तो उन्हें कांग्रेस के कार्यक्रम की सहायता करनी होगी। इसके विपरीत जो कांग्रेसी कांग्रेस-द्वारा वर्जित अन्य वस्तुओं को मानते होंगे, वे अपनी अन्य प्रवृत्तियों के लिए दूसरे संगठनों में शामिल हो सकेंगे।

× × ×

काम-काज के बारे में मैं देख सकता हूँ, उसके अनुसार सदस्य बनने की योग्यता का मापदण्ड शायद बाधक सिद्ध हो। परन्तु मैं आशा रखता हूँ कि आप यह स्वीकार करेंगे कि यदि हम सब खादी को एक आर्थिक आवश्यकता के रूप में मानते हों तो मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करना जरूरी है।

आप देखेंगे कि मुझे जैसे विचार आते गये, वैसे इस पत्र में लिख डाले हैं। अपनी चिन्ता मैं नहीं करता, क्योंकि आप जितना करने देंगे, उतना ही मुझे करना है।

स्नेहाधीन

मो० क० गांधी

बम्बई में गांधीजी

ता० ३१-८-१९२४

(नवजीवन ता० ७-९-१९२४)

जेल से छूटने के बाद गांधीजी पहली ही बार बम्बई गये थे। जुहू में मित्र मिल जाते थे, परन्तु लोगों को जी भरकर देखने का, निरखने का और पूछताछ करने का मौका तो इसी समय मिला। गामदेवी में श्री रेवाशंकरभाई के घर पहले जितनी भीड़ और पहले जितना नहीं मिलता था, उतना सूत आता ही जा रहा है, क्योंकि आजकल सब समझते हैं कि गांधीजी को फूलों या रुपयों से भी संतुष्ट नहीं किया जा सकता, उसके लिए तो सूत ही चाहिए। इसलिए सर कावसजी जहाँगीर हाल में —म्युनिसिपल सदस्यों का अभिनन्दन-पत्र भेट करते समय श्री विट्ठलभाई ने भी उन्हें सूत दिया और बम्बई प्रान्तीय समिति ने भी सूत दिया, बहनों में तो शायद ही कोई सूत के बगैर आती हो। एक पारसी बहन ने तो अपना नाम-पता दिये बिना अपने पति के मारफत सुन्दर, बारीक, एक-सा

लगभग दो सेर सूत भेजा। ऐसी कितनी ही बहनें बम्बई के शोरगुल से एकान्त चुराकर देश-कार्य करती होंगी, जिन्हें हम नहीं जानते।

गांधीजी का बम्बई में यह प्रथम आगमन था, इसलिए जिन्होंने—जिन संस्थाओं ने—मिलने की माँग की, उन्हें उन्होंने वक्त दिया, और जितनी जगहों पर पहुँच सकते थे वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया। अलग-अलग जलसों के अलग-अलग अवसर थे और गांधीजी ने भिन्न-भिन्न श्रोताओं को भिन्न-भिन्न रूप में अपना सन्देश सुनाया। देश की अग्रगण्य नगरपालिका के सदस्यों का अभिनन्दन-पत्र जिस प्रकार संक्षिप्त, सादा और प्रेमपूर्ण था, उसी तरह गांधीजी का जवाब भी उसके अनुरूप था। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी, सहयोगी, असहयोगी, सरकारी, गैरसरकारी सज्जनों और सन्नारियों को प्राणी-मात्र की सेवा का अपना धर्म बताकर उनसे ऐसी माँग की, जो वे सब दे सकते हैं:

"मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा समय आ रहा है, जब एक तरफ से राजनीति को हम धर्मक्षेत्र से भिन्न मानना छोड़ देंगे और दूसरी ओर से धर्मक्षेत्र को संकुचित बनाने के बजाय विशाल बनायेंगे। हम हिन्दू-मुसलमान इत्यादि वर्ग, जो अपने अलग-अलग ईश्वर मानकर लड़ रहे हैं, उस भिन्नता में एकतावाला धर्म समझकर सर्वत्र सेवा-वृत्ति से ही काम करने लगेंगे। और इसीलिए मैं भारत को तीन राजनैतिक तथा धार्मिक कार्यों में निमंत्रित कर रहा हूँ। वे हैं खादी-प्रचार, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी वगैरह के बीच हार्दिक ऐक्य, और हिन्दुओं के लिए अस्पृश्यता के भयंकर पाप का प्रायश्चित्त। मैं आप सबको इसी कार्य में निमंत्रित करके आपका अधिक-से-अधिक उपकार मान सकता हूँ; क्योंकि वहाँ राजनीति और सेवाधर्म अथवा समाज-सेवा का संगम है और वह किसी भी समय आप या किसीके लिए त्याज्य नहीं हो सकता।"

श्रीमती सरोजिनी देवी ने बम्बई प्रान्तीय समिति की सभा में कुछ सदस्यों को यह सुझाव दिया कि वे अपनी शंकाएँ वगैरह गांधीजी के सामने रखें। इस पर तीन-चार भाइयों ने अहमदाबाद के कताई-प्रस्ताव की आलोचना की और उस पर गांधीजी का विचार जानना चाहा। सबको गांधीजी ने एक ही उत्तर दिया:

"स्थिति ऐसी है कि जिन्हें चरखे की स्वराज्य प्राप्त कराने की शक्ति

के बारे में संदेह हो, वे प्रस्ताव पास हो जाने तक जी भरकर उसके विरुद्ध बहस करते ही रहें, परन्तु यदि वे बहुमत से हार जायँ तो उन्हें बहुमत के प्रस्ताव का आदर करना चाहिए। परन्तु जिनका चरखा न चलाने का सिद्धान्त हो, वे समिति में से निकल जायँ। इसीमें न्याय है, विनय है और विवेक है।

"और सब शकाओं का उत्तर आज मैं नहीं दूँगा। सलाह-मशविरा कर रहा हूँ और आपको थोड़े ही समय में उत्तर मिल जायगा। मेरी घड़ी तेजी से चलती है, आपकी धीरे चलती है। परन्तु मुझे तो आपको साथ लेकर ही दौड़ना है और मैं तो कार्यदक्ष स्वराज्यवादी कहिए तो स्वराज्य-वादी और अपरिवर्तनवादी कहिए तो अपरिवर्तनवादी ठहरा। इसलिए मैं कोई मार्ग निकालूँगा। तब तक मेरी सिफारिश है कि आप सब विनम्र बनकर कातते रहिए।"

बहनों की दो सभाएँ हुईं, एक तो स्त्री-मंडल की थी। उसमें गांधीजी ने चिरस्मरणीय दादाभाई नवरोजी की प्रशंसा की और उनके जीवन का रहस्य कह सुनाया। बहनों ने चार हजार रुपये से अधिक चन्दा जमा किया था। उनसे चन्दे के अलावा सूत भी माँगा ही। दूसरी सभा कन्या पाठशाला के पारितोषिक वितरण के निमित्त हुई। कन्याओं की माताओं और दूसरी बहनों की उपस्थिति बहुत अच्छी थी। पाठशाला की लड़कियों ने भारत के इतिहास से पृथ्वीराज के एक प्रसंग का और झाँसी की रानी के प्रसंग का एक संवाद खूब जोश के साथ अभिनय करके बताया। पुरुष स्त्री पात्र का अभिनय करें और बहनें पुरुष पात्र का अभिनय करें, दोनों सुरुचिपूर्ण नहीं लगते। फिर भी बहनें स्वतन्त्र शिक्षा का जो संस्कार चख रही हैं, उसके आरम्भ-काल में वे पुरुषों का क्षुद्र अनुकरण करती हैं, तो इसमें आश्चर्य क्या ?

परन्तु यह तो मैं संवाद पर चला गया। गांधीजी ने लड़कियों के माता-पिताओं तथा दूसरे सज्जनों व सन्नारियों से आग्रहपूर्वक सिफारिश की कि 'आपकी दूसरी एक भी पाठशाला चलाने की शक्ति न हो तो न चलाइए, परन्तु बेचारी कन्या पाठशालाओं को तो जिन्दा ही रखें।' लड़कियों से कहा : 'आपने तलवार लेकर वीरों का अभिनय किया, परन्तु

मैं चाहता हूँ कि इतने से ही संतोष न मान लें। ऐसे जलसों में आपको चरखे के अनेक प्रयोग करके दिखाने चाहिए। तभी ये शोभित होंगे।'

विलेपारले की सभा में एक भाई ने खूब उलझी हुई गुंडी अर्पित की। उसे ध्यान में रखते हुए बोले : "जैसी यह उलझी हुई गुंडी है, वैसी ही देश की गुत्थी उलझी हुई है। मैं चाहता हूँ कि ये भाई उलझन सुलझाकर फिर अच्छी गुंडी भेजें। इसे सुलझाने में जितना समय लगेगा, उतने समय में इतना ही सूत भी कत जायगा, और फिर भी यह न सुलझेगा। यदि हम 'सूत के धागे से स्वराज्य' का सिद्धान्त स्वीकार करते हैं तो इस गुंडी को देखते हुए करोड़ों वर्षों में भी हम स्वराज्य के योग्य न बनेंगे। हमारा सूत सुन्दर, बटदार, एक-सा और मिल के सूत के मुकाबले का होना चाहिए, क्योंकि हमें करोड़ों से कतवाना है।"

कुछ विद्यार्थी गांधीजी से उनके हस्ताक्षर लेने आते हैं। एक बड़े ओहदेदार की लड़की ने भी अपनी हस्ताक्षर-पुस्तिका में गांधीजी के हस्ताक्षर माँगे। उन विद्यार्थियों और इस लड़की को गांधीजी ने सुनाते हुए कहा :

'देखो भाई, 'बड़े आदमी' के हस्ताक्षर का आप इतना मूल्य लगाते हैं, तो वह मुफ्त नहीं मिलेगा।'

उन्होंने कहा : 'यदि आप कीमत माँगें तो हम देने के लिए तैयार हैं।'

उन्हें कीमत का क्या पता था ? बहुत हुआ तो गांधीजी शायद मलाबार के लिए कुछ चन्दा देने के लिए कहेंगे या शरीर के किसी अंग का गहना माँगेंगे, अथवा खादी पहनने को कहेंगे। ऐसा समझकर उन्होंने 'हाँ' कह दिया। गांधीजी ने मूल्यस्वरूप मासिक २००० गज सूत की माँग की। लड़कियों ने तो स्वीकृति दे दी। परन्तु कॉलेज के उन विद्यार्थियों में यह वचन देने की शक्ति नहीं थी, उन्होंने प्रयत्न करने का वचन दिया।

मलाबार के लिए तो गांधीजी जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ माँग किये बिना रहते ही नहीं। भाई भरूचा ने पारसी राजकीय सभा की एक बैठक एक नाटकघर में रखी थी, जिसके लिए प्रवेश-शुल्क भी रखा था। उसमें भी उन्होंने इसी कारण जाना स्वीकार किया कि वह मलाबार के निमित्त थी।

एक्सेलसियर थियेटर में हुई इस सभा में जाने के बाद ही—श्री जयकर का भाषण सुनने के बाद ही—गांधीजी को पता लगा कि यह सभा उनका

सम्मान करने और मलाबार-संकट-निवारण के चन्दे के लिए की गयी थी। इस सभा का सम्पूर्ण विवरण नहीं दिया जा सकता। वर्णन करनेवाला तटस्थ रहकर ही वर्णनीय वस्तु का हूबहू चित्र दे सकता है। परन्तु स्वयं वर्णन करनेवाला भी यदि वर्णनीय वस्तु में बह जाय, तो कौन किसका वर्णन करे? उस सभा में बुरे से अच्छा परिणाम पैदा करने का अपूर्व दृष्टान्त देखा। कृत्रिम को एकाएक, अचानक स्वाभाविक में बदलते हुए देखा। अपार माया के गहरे अभ्रभेदी बादलों को चीरकर निकलती सत्य की चमकती हुई बिजली यहाँ देखी।

प्रसंग इस प्रकार था: श्री जयकर के बाद अनेक वक्ताओं ने गांधीजी के प्रति स्तुतिपरक भाषण किये। भाई भरूचा की इच्छा ऐसी होगी कि प्रत्येक दल और प्रत्येक जाति के सज्जन इस स्नेहांजलि में शरीक हों, तो गांधीजी का बढ़िया सम्मान हो। भाई जमनादास द्वारकादास की बारी आयी। उन्होंने बहुत अच्छा भाषण दिया। गांधीजी से कुछ मतभेद होते हुए भी उनके प्रति मेरा आदर, प्रेम और पूज्यभाव और किसीसे भी कम नहीं, ऐसा वे बता रहे थे। इतने में सामने से एक-दो व्यक्ति चिल्लाये: 'महात्माजी कहो, गांधीजी नहीं।' भाई जमनादास ने सरलता से सफाई दी: 'गांधीजी का खुद का दिल 'महात्मा' शब्द से दुखता है, ऐसा उन्होंने मुझसे कहा है, इसलिए मैं उनका दिल दुखाना नहीं चाहता।' उन्होंने भाषण जारी रखा। फिर पहले जैसी ही एक-दो आवाजें लगीं। भाई जमनादास ने फिर स्पष्टीकरण किया: 'गांधीजी हमारे-जैसे मानव होते हुए भी हम सबसे श्रेष्ठ हैं, इसलिए मैं इन्हें पूजता हूँ—इसलिए नहीं कि वे महात्मा हैं।' आखिर में भाई भरूचा ने एक-दो सज्जनों को ऊपर गैलरी में भेजकर इस प्रकार बाधा डालनेवालों को रोका और सब शान्त हुए। इसके बाद और कई वक्ता बोले। सबके बोलने की ध्वनि यह थी कि देश के क्षुब्ध वातावरण में शान्ति और एकरसता गांधीजी ही ला सकते हैं और वे ही लायेंगे। श्रीमती सरोजिनी देवी ने कहा: "मुझे गांधीजी की तरफ से दो ही वाक्य बोलने की आज्ञा है, उन्होंने मुझे एक ही बोलने के लिए कहा होता तो मुझे अच्छा लगता। मैं बोलूँ तो क्या बोलूँ? उस कहानीवाले चेले जैसी बात नहीं होगी? चेला बार-बार कहता: 'गुरुजी, कुछ कहिए न, ताकि लोग उपदेश लें।' इसलिए गुरु ने चिढ़कर कहा: 'मूर्ख!

मुझे जीता-जागता देखकर यदि लोग कोई उपदेश नहीं लेते हैं तो मेरी वाणी क्या उपदेश देगी ?' "

यह मैंने गांधीजी के भाषण का वातावरण बता दिया। सभा लम्बी चली थी, ऐसा वातावरण पैदा न हुआ होता तो शायद गांधीजी पाँच मिनट बोलकर सभा विसर्जन करा देते, परन्तु उन्हें बोलना पड़ा।

आरम्भ करते हुए वे बोले :

'आज हम इतना अधिक बोले हैं कि मुझे लगता है कि यदि मैं सरोजिनी देवी की सलाह मानकर चुप रहूँ तो बुरा नहीं। परन्तु ऐसा करने में एक कठिनाई है। आज मैं अपना हथियार घर रख आया हूँ। यदि वह लाया होता, तो आपको पदार्थपाठ देकर कहता कि चरखा लेकर आप भी मेरे साथ कातना शुरू कीजिए।

'मुझे पता नहीं था कि सरोजिनी देवी की तरह आज मुझे भी शिक्षा मिलेगी या मेरे भाग्य में इतनी प्रशंसा सुनना बदा होगा। मैं अपनी तारीफें सुन-सुनकर थक गया हूँ। यह मुझे अच्छा नहीं लगता, यह आप पक्का समझें। परन्तु अब इस बारे में अधिक नहीं कहूँगा। मैं इतना ही कहूँगा कि जिन्होंने प्रशंसा के उद्‌गार प्रकट किये, उनका मैं उपकार मानता हूँ और उनसे अनुरोध करता हूँ कि श्री जयकर के कथनानुसार आप सब चुपचाप मेरी मदद करें। आप सबकी मूक सहायता मिलेगी, तो बड़ी जोखिम का काम उठाया जा सकेगा।

'मैं कुछ कहूँ, इससे पहले मुझे एक-दो भाइयों से प्रायश्चित्त कराना है। हम किसी भी सभा में जायँ तो विनय तो सीखा हुआ होना ही चाहिए। सभा में जिसे बुलवाया हो उसकी तबीयत पहचाननी चाहिए और उसके अनुकूल बनना चाहिए। ऐसा न कर सकें तो बेहतर है कि वहाँ न जायँ। सभा के इस नियम का दो-तीन भाइयों ने उल्लंघन किया है। भाई जमनादास ने जो कुछ कहा, वह अक्षरशः सही था। 'महात्मा' के नाम से बहुत-से बुरे काम हुए हैं। मुझे 'महात्मा' शब्द में बदबू आती है और इस पर भी जब कोई आग्रह करता है कि सब मुझे 'महात्मा' कहें, तब तो मैं घबरा जाता हूँ, मुझे जीना अच्छा नहीं लगता। मैं यदि जानता न होता कि ज्यों-ज्यों मैं 'महात्मा' शब्द इस्तेमाल करने से इनकार करता हूँ, त्यों-त्यों उसका अधिक उपयोग होता जाता है, तब मैं जरूर इनकार करके

बैठा रहता। आश्रम में जहाँ मेरा जीवन प्रवाहित हो रहा है, वहाँ प्रत्येक बालक, भाई, बहन, सबको आज्ञा है कि वे 'महात्मा' शब्द काम में न लें। किसीको लिखने में भी 'महात्मा' शब्द से मेरा उल्लेख न करें। मुझे गांधी या गांधीजी कहें। भाई जमनादास को रोकनेवालों ने मेरे प्रति अविनय किया, सुलह का भंग किया है। हमारी लड़ाई शान्ति की है। विनय के बिना शान्ति नहीं होती—विनयरहित शान्ति जड़ होगी। हम चैतन्य के पुजारी हैं। और चैतन्यमय शान्ति में विवेक होता है, विनय होता है। इसलिए मेरी सलाह है कि जिन्होंने जमनादास को रोका, वे सब कहें: 'मुझे माफ करें।' जमनादास ने मेरे लिए बड़ी प्रशंसा के वचन कहे, परन्तु यदि उन्होंने कहा होता कि गांधी जैसा दुःखकारक एक भी मनुष्य नहीं—और जिसे ऐसा लगे, उसे कहने का भी अधिकार है—तो भी उन्हें रोकने का किसीको अधिकार नहीं, तो भी हमें उन्हें नम्रतापूर्वक ही सुनना चाहिए।

[इतने वचन कहते ही एक भाई ने सामने की पहली गैलरी में खड़े होकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके सिर झुकाया। गांधीजी ने कहा: 'इतना काफी है। परन्तु ऊपर एक-दो भाई अभी तक हैं। क्या वे क्षमा नहीं माँगेंगे? यदि वे माफी नहीं माँगेंगे तो मैं कहूँगा कि वे स्वराज्य के योग्य नहीं हैं।' सभा में से भी ऐसी आवाजें आयीं कि 'खड़े होकर क्षमा माँगो।' दो आदमी खड़े हुए, माफी माँगी। गांधीजी को शान्ति हुई। उन्होंने फिर से बोलना शुरू किया। इतने में बाकी रहे एक भाई खड़े हुए और उन्होंने भी माफी माँगी!]

'अब मैं कहता हूँ कि फिर कोई ऐसा अपराध न करे। मुण्डे-मुण्डे भिन्न मति होती है। एक-दूसरे को सहन न करेंगे तो कैसे काम चलेगा? हिन्दू मुसलमान को सहन नहीं कर सकता और मुसलमान हिन्दू को सहन नहीं करता और मंदिर तोड़े जाते हैं। दोनों में सहिष्णुता आ जाय तो सारे झगड़े बन्द हो जायँ। सहिष्णुता का समस्त जीवन में सर्वत्र उपयोग करना है। एक बार उसका प्रचार हो जाय तो फिर हिन्दू, मुसलमान, पारसी सब विरोध सहन कर लें। हमारी प्रगति में बड़ी-से-बड़ी बाधक चीज असहिष्णुता है। इसके निवारण का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं अल्प प्राणी हूँ, महाप्राणी नहीं। यदि महाप्राणी होता तो असहिष्णुता रोक

देता। अभी मुझमें शुद्धता, प्रेम, विनय और विवेक की कमी है, नहीं तो मेरी आँख में आप ऐसा देखते, मेरी जीभ में ऐसी शक्ति होती कि आप इशारे में समझ जाते कि शान्त असहयोग इस तरह नहीं होता। मैं आपसे कह चुका हूँ कि डायर शत्रु नहीं, ओडायर भी शत्रु नहीं—उन्हें शत्रु हरगिज न मानिए। जिसने भले ही शत्रुता का काम किया हो, उस पर दया-भाव रखिए। यदि हम उसका भी तिरस्कार नहीं कर सकते, तो जमनादास का तो तिरस्कार कर ही कैसे सकते हैं? हमारे यहाँ कोई अतिथि आता है तो हम सगे-सम्बन्धियों को दूर बिठाकर अतिथि को आसन देकर सत्कार करते हैं। यदि जमनादास हमारे विरोधी हों, तो वे अतिथि हैं, इसलिए उनका तिरस्कार नहीं किया जा सकता; यदि वे हमारे भाई ही हैं, तब तिरस्कार करने की बात ही कहाँ?

'आपने जमनादास का तिरस्कार किया, उससे मुझे अत्यन्त दुःख हुआ, परन्तु आपने अत्यन्त विनय से माफी माँग ली, इसलिए वह दुःख सुखरूप में परिणत हो गया है। यह मुझे बहुत ही पसन्द आया। इन माफी माँगनेवालों का तो भला होगा ही, परन्तु हमारा भी, जो कि इस दृश्य के साक्षी हैं, भला होगा। कौंसिल की बात मैं यहाँ निकालना ही नहीं चाहता, परन्तु भाई जयकर से क्षमा-याचना करके विनयपूर्वक कह दूँ कि कौंसिल में जाकर ऐसे दृश्य देखने को नहीं मिलेंगे। इस प्रायश्चित्त में मैं सच्चे स्वराज्य की जड़ देख रहा हूँ।

'श्री देवधर ने मलाबार की बात न की होती तो काम चल जाता, क्योंकि आज हम और किसीको नहीं, मगर मलाबार के भाई-बहनों का सम्मान करने इकट्ठे हुए हैं। आपने छोटा-बड़ा चन्दा देकर अपना हिस्सा अदा किया है। श्री देवधर के भाषण का तो दोहरा हेतु था। उन्होंने आपसे इसके सिवा निःस्वार्थ वस्तु माँगी है और इसमें कहने की कोई बात ही नहीं कि मैं उनसे सहमत हूँ। 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' पढ़नेवालों को पता है कि मैं बच्चों से भी कहता हूँ कि यदि तुम्हारे सगे भाई-बहन भूखे हों, तो तुम क्या करो? क्या अपने खाने में से, कपड़े में से उसे हिस्सा नहीं दोगे? आप कम खाकर, कम पहनकर मलाबार के लिए दीजिए। इस प्रकार का दान आपसे माँगता हूँ। इस दान का सद्व्यय होता है या नहीं, ऐसे प्रश्न मेरे पास बार-बार आते हैं। यह आलोचना

उचित भी है और अनुचित भी। श्री देवधर जहाँ हों, वहाँ अप्रामाणिकता होगी ही नहीं। इनके और मेरे बीच में कई मामलों में समुद्र-जैसा अन्तर है। इनके कुछ विचार मुझे जरा भी पसन्द नहीं, परन्तु इनकी पवित्रता के विषय में शंका हो ही नहीं सकती। मैं जब कभी इनके गरीब घर पर जाता हूँ, तब ऐसा लगता है कि वहाँ आत्मा का निवास है। ये भाई जंगलों में जाते हैं, सरदी और धूप बर्दाश्त करते हैं, खराब जलवायु सहन करते हैं—इस शुद्ध सेवा के लिए ही हम क्यों न इनकी मदद करें ?

'हाँ, ये चरखे के विरुद्ध बात करें, तब मैं कहता हूँ कि इनकी बिलकुल मत सुनना।

'भारत मुझसे कुछ आशा लगाये बैठा है। लोग मानते हैं कि बेलगाम में मैं कुछ ऐसा मार्ग बताऊँगा, जिससे हम सब सहमत हो जायँगे। अथवा विरोधी विचार सहन करने लगेंगे। मैं अपने को धोखा नहीं दे सकता। मेरी तारीफ हुई, इसलिए मैं नहीं मानता कि मेरे लिए जो सारी बातें कही गयी हैं, उनके लिए मैं योग्य हो गया। मेरी प्रशंसा का अर्थ यही है कि अभी मुझसे अधिक आशा रखी जाती है। अधिक प्रेम की, अधिक त्याग की, अधिक सेवा की आशा रखी जाती है, परन्तु यह मैं कैसे पूरी कर सकता हूँ ? मेरा शरीर दुर्बल है और वह मेरे पाप से। मनुष्य पाप के बिना रोगी नहीं होता। ईश्वर ने हमें शरीर दिया है, तो नीरोगी रखने के लिए दिया है। पाप अर्थात् ईश्वरीय अथवा प्राकृतिक नियमों का जाने-अनजाने उल्लंघन। राजा के कानून का अनजाने भंग करने पर भी सजा होती है, तो फिर प्रकृति के नियम का भंग करने का दूसरा परिणाम कैसे संभव है ? चोर को माफी नहीं मिलती। अज्ञान में अपराध किया हो तो थोड़ा दंड मिलता है, इसके अतिरिक्त कोई भेद नहीं। मैं बीमार हुआ तो मेरे किये हुए पाप के कारण। और जब तक मुझसे जाने-अनजाने इस तरह के पाप होते रहते हैं, तब तक मैं अपूर्ण मनुष्य हूँ। अपूर्ण मनुष्य सम्पूर्ण सलाह कैसे दे ? इसलिए मैं असमंजस में पड़ा हूँ।

'फिर भी मेरे पास दूसरा साधन नहीं। सत्याग्रह ही एक साधन है। अब तक मैंने सत्याग्रह का भीषण स्वरूप देश के सामने रखा है। अब शान्त, मधुर, गंभीर स्वरूप ही रखना चाहता हूँ। उसका अनुकरण हो तो विजय ही है। मैं मानता हूँ कि सत्याग्रह का शास्त्र मैं अच्छी तरह समझता

हूँ। यह डर मुझे बना ही रहेगा कि आज की स्थिति में भारत उग्र स्वरूप बर्दाश्त नहीं कर सकता। यदि लोग सत्याग्रह का शान्त स्वरूप का समझ-बूझकर उपयोग करें, तो बेलगाँव आने से पहले हम बहुत काम कर सकते हैं। इसमें सहयोगी, असहयोगी, कट्टर अपरिवर्तनवादी, परिवर्तनवादी, स्वराजी, नरमदली, कन्वेन्शनवादी, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी सब मिल सकते हैं। सत्याग्रह का अर्थ केवल सविनय भंग ही नहीं है।

'मैंने कुछ सुझाव कल ही पंडित मोतीलालजी को भेजे हैं। पंडितजी के साथ मेरा कितना निकटतम सम्बन्ध है, यह सब जानते हैं। मैंने कल उनके नाम पत्र लिखकर उसमें अपना अन्तःकरण उँड़ेल दिया है; क्योंकि मैं उन्हें समझा सकूँ, तो औरों को भी समझा सकूँगा। विदुषी बेसेंट कल मुझसे मिलने आयी थीं। उन्हें भी मैंने यही बातें कही थीं। विदुषी बेसेंट की उम्र कहाँ ? उनका अनुभव कहाँ ? उनके आगे तो मैंने अपनी बात इसी तरह रखी, जैसे एक बच्चा माँ के आगे रखता है। उतनी ही नम्रता से मैं अपनी बात श्री शास्त्रियार को सुनानेवाला हूँ। अंग्रेजों को भी यही बात कहूँगा। यदि सब इसे समझ लें, तो हमें तुरन्त लाभ हो सकता है। ब्योरे में मैं यहाँ नहीं जाऊँगा। आप समझ जायँगे कि चरखा तो इसमें आ ही जाता है। मेरी तमाम योजनाओं के कोने-अँतरे में भी यह चीज रहती ही है। इसके बिना न मैं जी सकता हूँ, न भारत जी सकता है। मुझे लगता है कि ऐसा समय आ रहा है कि इसके बिना आपका भी काम नहीं चलेगा।

'आप मुझे 'महात्मा' के रूप में मानते हैं, इसका कारण न तो मेरा सत्य है, न मेरी शान्ति, परन्तु गरीब-से-गरीब व्यक्ति के प्रति मेरा अगाध प्रेम है। कुछ भी हो जाय, तो भी मैं चिथड़ेवालों को कभी त्याग नहीं सकता। इसीलिए आपको लगता है कि गांधी कुछ-न-कुछ काम का आदमी है। मुझे चाहनेवाले रतनशी, जमनादास, पिक्थॉल, जयकर—सबसे मैं यह चाहता हूँ कि आप मेरे प्रति प्रेम रखते हैं, तो गाँव के लोगों को, जिनसे मुझे प्रेम है अन्न, वस्त्र मिले बिना न रहे, ऐसी कोशिश कीजिए। इन गरीबों की आप पूजा करें। कैसे पूजा करेंगे ? यह मैं आपको बताऊँ। कृत्रिम ढंग से माला फेरकर नहीं। जो बनावटी ढंग से माला फेरता होगा,

उसे तो मुक्ति मिलेगी ही नहीं, परन्तु अधोगति प्राप्त होगी, क्योंकि बाहर माला फेरते हुए भी अन्तर में वह छुरी पैनी कर रहा होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि चरखा चलाते हुए भी मेरा मन मैला हो सकता है। परन्तु कातने का जो बाहरी परिणाम है, वह तो मन मैला होने पर भी नहीं मिटेगा। मैं तो इतना ही कहूँगा कि ईश्वर का या खुदा का नाम लेकर भारत के गरीब बच्चों के लिए मैं कातता हूँ और आपसे ऐसा ही करने के लिए कहता हूँ। ऐसा हो सकता है कि इसमें भूल हो। भविष्य में शायद अर्थशास्त्री बतायें कि इसमें भूल थी, परन्तु वे ही स्वीकार करेंगे कि इस भूल में भी लाभ ही था, क्योंकि उससे थोड़ा-बहुत सूत तो मिला और देश के कपड़े में वृद्धि हुई। मुझे सर दिनशा वाच्छा का शिष्य मानिए। उन्होंने बताया है कि भारत में फी आदमी १३½ गज कपड़ा चाहिए और ९½ गज मिलता है। अर्थात् प्रतिव्यक्ति ४ गज उत्पन्न करने की जरूरत है। यदि आप प्रतिदिन १०० गज सूत कातेंगे तो वह कितना अधिक होगा। 'मिले हुए बहुत-से धागों में शक्ति निहित है' इस कहावत में रहस्य है। यदि हम सब सूत कातें तो इस सूत से भारत को ढँककर बाँध सकते हैं। मुझे अटल विश्वास है कि यदि आप एक बार कातेंगे, तो कहेंगे कि गांधी ने जो बात कही, वह ठीक थी।

'मुझे विश्वास है कि मेरे प्रति लोगों के प्रेम का और कोई भी कारण नहीं—सिवा इसके कि मैं गरीबों के साथ ओतप्रोत हो चुका हूँ। मैं भंगी के साथ भंगी हो सकता हूँ, ढेढ़ के साथ ढेढ़ बनकर उसका काम कर सकता हूँ। यदि इस जन्म में अस्पृश्यता नहीं गयी और मुझे दूसरा जन्म लेना पड़ा, तो मैं भंगी ही पैदा होना चाहता हूँ। अस्पृश्यता रहे और मुझसे हिन्दू-धर्म छोड़ा जा सके, तो मैं उसे छोड़कर कलमा पढ़ लूँ अथवा ईसाई हो जाऊँ। परन्तु मुझे अपने धर्म के प्रति इतनी श्रद्धा है कि मुझे उसीमें जीना है और उसीमें मरना है। इसलिए उसके लिए भी फिर जन्म लूँ तो भंगी का ही जन्म लूँ। इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि भंगी, चमार और उड़ीसा के कंगालों के लिए आपमें दया हो, तो आप विलायती और मिल का कपड़ा भूल जाइए और वह गरीबों का बनाया हुआ और ढेढ़ों का बुना हुआ कपड़ा पहनिए। वे हमें जैसा चाहिए वैसा कपड़ा कैसे दे सकते हैं? वे भयभीत लोग हैं। काठियावाड़ की कितनी ही

कंगाल बहनों को दिनभर में एक आना, दो आने भी नहीं मिलते। उन बहनों को चरखे दिये, तो उन्हें थोड़े-से पैसे मिलने लगे। आज उनके चरखे बन्द हो गये हैं, इसलिए वे चार पैसों के लिए रोती हैं। ऐसी बहुत बहनें हैं। यदि मैं इन बहनों को कह सकूँ कि जयकर कातते हैं, सरोजिनी कातती हैं, श्रीमती बेसेंट कातती हैं, दादाभाई की पोती कातती हैं, शास्त्रियार कातते हैं, तो उनके पास दुबारा जाने और उनसे फिर कतवाने में मुझे शर्म नहीं आयेगी।

'मैं भारत में सदाव्रत खुलवाना नहीं चाहता। ये सदाव्रत मैं बन्द कराना चाहता हूँ। मैं ऐसा मानता हूँ कि सदाव्रत हमारे ललाट पर काला टीका है। इसलिए मैं सबको स्वावलम्बी बनाना चाहता हूँ। इन बहनों को चार पैसे मुफ्त न देकर स्वावलम्बी बनाऊँगा। यदि आप इन बहनों, दूसरे कंगालों और भंगी-चमारों को स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं तो यज्ञ कीजिए। प्रत्येक व्यक्ति अपना काता हुआ २००० गज सूत दें, तो मैं एक वर्ष में स्वराज्य दिला दूँ।

'परन्तु मैं अवधि की बात नहीं करता। यह नहीं कहता कि आप ही कातेंगे तो स्वराज्य मिलेगा। यह जरूर कहता हूँ कि सब कातेंगे तो मिलेगा। यह बात निश्चित है कि आप कातेंगे तो सबसे आप कतायेंगे। भगवद्गीता कहती है कि जैसा श्रेष्ठजन करेंगे, उसीके अनुसार दूसरे करेंगे। कहते हैं कि प्रिंस ऑफ वेल्स जिस प्रकार की पोशाक बदलते हैं, उसीके अनुसार दूसरे अपनी पोशाक बदलते हैं। आप तो भारत की नाक माने जाते हैं अथवा चाहते हैं कि दूसरे भी मानें। आप शुरू कर देंगे तो क्या और सब नहीं करेंगे?

'परन्तु यह बात भी छोड़ दूँ। आपके कातने से स्वराज्य आये या न आये, आपमें भिखारी के लिए दया हो और उस दया-भाव से आप उसके लिए कातें, इतना ही आपसे चाहता हूँ। भिखारी के साथ आप एकरस हो जायँ, उसके साथ आपका मेल हो जाय। मीरांबाई ने गाया है:

सूतरने तांतणे मने हरजीए बांधी,
जेम ताणे तेम तेमनी रे,
मने लागी कटारी प्रेमनी।

'ऐसा प्रेम यदि हमारा अपने करोड़ों भाई-बहनों के प्रति हो, तो हम

उन्हें और वे हमें सूत के धागे से बाँध सकते हैं। मैं यही अर्थशास्त्र जानता हूँ, दूसरा नहीं जानता।

'एक और बात कर लूँ। आपने नागपुर के दंगों की बात सुनी होगी। हिन्दुओं के मन मैले हैं, मुसलमानों के मैले हैं। तब अपनी तीन चीजों के सिवा मैं और क्या रख सकता हूँ? इस समय सत्याग्रह के शान्तिमय प्रयोग में ये ही तीन बातें आप देखेंगे। आप सब इतनी बात याद रखेंगे, तो मेरे खयाल से हम सब एक ही मंच पर खड़े रह सकेंगे। अदालत, कौंसिल वगैरह के त्याग की बात तो अलग है, उन सबमें हम सब एक नहीं हो सकते, मगर जितनी बातों में हमारे बीच मेल रह सकता है, उतनी बातों में हम इकट्ठे ही खड़े रहें।'

इतना बोलने के बाद यही बात उन्होंने थोड़े शब्दों में गुजराती न समझनेवालों के लिए रख दी। चीज वही थी, परन्तु उसमें कुछ नवीनता तो थी ही।

'मैं अपने मन की उमंग निकाल चुका। अब इतना थक गया हूँ कि आपको सब नहीं कह सकता। मैं बहुत बोल चुका हूँ। उसका सार इतना ही है कि मेरे स्वभाव के दो पहलू हैं—एक उग्र और दूसरा शान्त। उग्र अथवा भयंकर से अनेक मित्र मुझसे अलग हुए हैं। मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरे स्वर्गीय भाई इन सबके और मेरे बीच अन्तर आ गया। दूसरी ओर प्रेम ही ऊपर आता है। उग्र पहलू में प्रेम ढूँढ़ना पड़ता है। मेरे जैसे कठोर आत्म-निरीक्षण करनेवाले बहुत कम होंगे। मुझे विश्वास है कि मेरे उग्र रूप में द्वेष की गन्ध तक नहीं, परन्तु उसमें अर्थात् भयंकर पहलू में हिमालय-जैसी भयंकर भूलें हो सकती हैं। परन्तु मानसशास्त्र के विद्यार्थी कह सकेंगे कि दोनों की उत्पत्ति एक ही चीज में से हो सकती है। अपार प्रेम भयंकर रूप धारण कर सकता है। यदि मैंने अपनी स्त्री को दु:ख दिया है, तो उस दु:ख ने मुझ पर गहरा घाव किया है। दक्षिण अफ्रीका में जिनके साथ रात-दिन मुझे काम करना पड़ा था, उनमें से किसी भी अंग्रेज को मैंने दु:ख दिया हो, तो उससे अधिक दु:ख मुझे हुआ है। यदि मेरे यहाँ के काम से अंग्रेजों का जी दुखा है, तो मेरा जी उनसे अधिक दुखा है।

'इसलिए नहीं कि मैं अंग्रेजों को कम चाहता हूँ, परन्तु इसीलिए कि

मैं उन्हें स्नेहियों की तरह ही चाहता हूँ, इसीलिए उनसे कहता हूँ कि 'आपने हमें खूब चूसा है, आज भी चूस रहे हैं। परन्तु आपको पता नहीं। आप हम पर जबरदस्ती करते हैं। आप पछतायेंगे। इंग्लैण्ड की आँखें खोलने के लिए मुझे अपने स्वभाव का भयंकर स्वरूप प्रकट करना पड़ा है।' परन्तु अब वह भयंकर स्वरूप जाता रहा। पं० मोतीलालजी से मैंने कहा है कि अब मेरी लड़ने की बात ही नहीं रही। मैं शरणागत हूँ। जहाँ घर में ही फूट पड़ी है और वैरभाव बढ़ रहा है, वहाँ दूसरी वृत्ति हो ही कैसे सकती है? मुझे इस स्थिति को सुधारने का भगीरथ प्रयत्न करना है। बेलगाँव में या बेलगाँव से पहले मुझे इस तरह कोई भी विरोध नहीं करना है, जिससे देश में फूट पड़े। मैं मान लूँगा कि मैं पराजित हूँ, मैं झुक जाऊँगा और झुककर सबको एक करने की आशा रखूँगा। ऐसा करते-करते भारत अपनी मूर्च्छित दशा छोड़कर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा, तब मानव-जाति को उससे शिक्षा मिलेगी। इससे अधिक क्या कहूँ? ईश्वर से इतनी ही प्रार्थना है कि वह मुझे सत्पथ पर ले जाय और मुझमें राग, द्वेष या क्रोध का छिपा हुआ भी कोई अंश रह गया हो तो उसे शान्त करे और मुझे ऐसा संदेश पहुँचाये, जिसमें सब समझकर भाग लें।'

यह भाषण इतना विस्तारपूर्वक, लगभग शब्दशः दिया गया है, वह इसीलिए कि गांधीजी का घायल हृदय सभी देख सकें। दूसरे भाषणों का उल्लेख करने की जरूरत नहीं रह जाती। खानगी बातचीत में अपार भावना उँड़ेली जा सकती है, परन्तु लम्बे सार्वजनिक व्याख्यानों में आवेश अथवा भाषा की अतिशयता के बिना इतनी भावना उँड़ेली जा सकती है, इसका बम्बई के लोगों को अन्तिम तीन-चार दिनों में काफी अनुभव हुआ।

विलेपारले के हिन्दुओं के सामने बोलते हुए गांधीजी ने मौ० हसरत मोहानी के साथ की अपनी एक बातचीत का उल्लेख किया और इस आशय का भाषण दिया : "हसरत मोहानी साहब ने कहा कि आप छुआछूत बन्द कराना चाहते हैं, तो उत्तर भारत में तो हिन्दू लोग मुसलमानों को अछूत समझते हैं। यह आप बन्द करा सकें, तो मैं आप जो माँगें—गोवध-निषेध तक—मुसलमानों से करा देने को तैयार हूँ। मुझे यह बात सुनकर नीचा देखना पड़ा। मैंने उनसे कहा कि आपको अपने धर्म का पालन करना चाहिए।

आपको लगे कि हिन्दुओं की खातिर गाय को बचाना पुण्य है और मन्दिर तोड़ना पाप है, तो आप मुसलमानों को इस बारे में समझाइए। मैं करार नहीं कराना चाहता। परन्तु अपने विषय में कह दूँ कि मैं प्रत्येक हिन्दू को समझाऊँगा कि हिन्दू होकर किसी भी मनुष्य को उसके जन्म या धर्म के कारण अछूत मानना पाप है। तो मुसलमानों को अस्पृश्य कैसे माना जाय? मुसलमान, ईसाई आदि अन्यधर्मियों को अस्पृश्य मानने में हिन्दू-धर्म हो, तो ऐसे हिन्दू-धर्म का नाश होगा।"

इसी सभा में बाद में भविष्य के कार्य के बारे में संकेत किया: "मैं लड़ने से हार गया हूँ, थक गया हूँ, मुझमें लड़ने की वृत्ति नहीं रही। स्वराज्यवादियों और मुसलमानों—दोनों ने मुझे हराया है। आपस में लड़कर हम एकत्र नहीं होंगे। पिछली महासमिति में मैं खूब लड़ लिया। मैंने देखा कि उसके परिणामस्वरूप जहर बढ़ा। इससे मेरा हृदय रोया और अब भी रोता है। अब बेलगाँव में मुझसे यह चीज हरगिज नहीं होगी।"

मथित हृदय के उद्‌गारों से साधारण-से-साधारण श्रोताओं के हृदय भी मथे नहीं रहे होंगे। विदुषी बेसेंट ने तो स्वीकार किया है कि गांधीजी ने ऐक्य-साधक जो तीन बातें रखीं, वे मुझे पसन्द हैं। एक अग्रगण्य नरम नेता ने हँसते-हँसते कहा: 'आपकी बात बुद्धि से स्वीकार करें या न करें, परन्तु आपको देखकर, आपकी भावना देखकर, ऐसा करने को जी हो जाता है।' गांधीजी ने कहा: 'इतनी बातें आप भावना के लिए करें, तो भी मेरा काम चल जायगा।'

मानव-हृदय के इस समस्त सागर-मंथन से अन्त में शान्ति और स्वराज्य का अमृत निकलेगा, ऐसी हम सबको आशा रखनी चाहिए।

पूना और सूरत में

ता० ४ तथा ५ सितम्बर १९२४

(नवजीवन ता० १४-९-१९२४)

अलग-अलग राजनैतिक दल भी एक मंच पर काम कर सकते हैं? ऐसा कार्यक्रम बम्बई की एक सभा में पेश करके गांधीजी पूना गये और

पूना में एक दिन रहकर सूरत आये। दोनों जगह इसी सर्वसामान्य कार्यक्रम की चर्चा हुई और दोनों जगहों के भाषणों में गांधीजी ने इस कार्यक्रम के महत्त्व पर विवेचन किया। सब भाषणों का वृत्तान्त यहाँ देना असंभव है, जरूरी भी नहीं, परन्तु प्रत्येक भाषण का आवश्यक अंश यहाँ दिया जा रहा है।

पूना के कार्यकर्ताओं ने थोड़े-से समय में अधिक-से-अधिक काम लेने का लोभ रखा, इसलिए गांधीजी को फालतू श्रम भी करना पड़ा और जितनी पूर्णता से कुछ चर्चा की जा सकती थी, उतनी नहीं हुई, ऐसा मैं मानता हूँ। फिर भी कुछ चर्चा बहुत महत्त्वपूर्ण थी और उसमें से जनता के उपयोग का अंश भाषणों का सार देने के बाद दूँगा।

गांधीजी ने पूना में रात को आम सभा में सामान्य कार्यक्रम पेश किया। आरम्भ में उन्होंने पिछले दो वर्ष के कार्य का पूना-निवासियों से हिसाब माँगा और मिल के कपड़े और खादी के प्रश्न की चर्चा की।

"आप पूछते हैं कि मिल का कपड़ा पहनकर विदेशी कपड़े का बहिष्कार क्यों नहीं हो सकता। यह भारी अज्ञान है। मिल का कपड़ा बहिष्कार के लिए समुचित नहीं है। बंग-भंग के समय मिलवालों ने बंगाल को कैसे धोखा दिया, इसकी शिकायत बंगाली आज भी करते हैं। उनके अनुभव से हम सीख सकते हैं कि मिल के कपड़े से ही बहिष्कार संभव नहीं। इसलिए प्रचार केवल खादी का ही होना चाहिए। इसलिए यह स्पष्ट है कि कांग्रेस की सीमा में मिल के कपड़े का स्थान ही नहीं हो सकता।"

दिन में स्वराज्यवादियों के साथ खूब चर्चा हुई थी। उसके अन्त में एक भाई ने सवाल पूछा था: 'चिपलूनकर बाबा की मूर्ति का उद्घाटन करते हुए आपने कहा था कि महाराष्ट्र में त्याग है, परन्तु श्रद्धा नहीं, इसका क्या अर्थ है?' गांधीजी ने कहा था: 'रात की सभा में सुनाऊँगा।' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वे बोले:

"श्रद्धा अर्थात् आत्मविश्वास—आत्मविश्वास अर्थात् ईश्वर पर विश्वास। जब चारों ओर काले बादल दिखाई देते हों, कहीं कूल-किनारा दीखता न हो और डूब जाने जैसा लगे तब भी मैं नहीं डूबूँगा, ऐसा जो कहता है वह श्रद्धावान् है। द्रौपदी का चीर-हरण हो रहा था, उसकी रक्षा करने में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सब असमर्थ थे। तब भी द्रौपदी

ने श्रद्धा नहीं छोड़ी। उसने कृष्ण का नाम पुकारा। उसे श्रद्धा थी कि जब तक कृष्ण बैठा है, तब तक कोई उसका चीर-हरण नहीं कर सकता। क्या आपमें यह श्रद्धा है? यदि आपमें यह श्रद्धा हो, तब तो केवल पूना के बल पर आप स्वराज्य ले सकते हैं। श्रद्धावान् ईश्वर के साथ वादे नहीं करता, करार नहीं करता, हरिश्चन्द्र ने वादा नहीं किया था। वह तो अपनी स्त्री के गले पर छुरी चलाने को तैयार हो गया था।"

खादी की बात को पागलपन कहनेवालों को सम्बोधन करके बोले :

"मैंने कर्नल मॅडक से पूछा था कि क्या आप अपने विद्यार्थियों को खादी नहीं पहनने देंगे? उन्होंने मुझसे नहीं कहा था कि तू पागल है। उन्होंने तो यह कहा था कि यदि विद्यार्थी पहनना चाहते हों, तो मैं उन्हें क्यों इनकार करने लगा? और श्रीमती मॅडक तो विलायत जाते हुए खादी ले गयी हैं। जिसे काम नहीं करना होता, वह सौ बहाने ढूँढ़ता है। मनाही केवल हृदय की दुर्बलता करती है। और कोई मनाही नहीं करता। मान लीजिए कि गांधी पागल है। क्या यह कहने में मैं पागल हूँ कि जो गाँवों के लोग पहनते हैं, वह आप भी पहनिए? और सब बातों के लिए मुझे दीवाना कहिए, मगर खादी के लिए मुझे पागल कहेंगे, तो मैं कहूँगा कि कहनेवाले दीवाने हैं, क्योंकि मैं अनुभव की बात करता हूँ। मैं कहता हूँ कि और कुछ न करें, तो गरीब पर कृपा करके इतना खादी के लिए कीजिए। चम्पारन, उड़ीसा में जहाँ मनुष्य को चार पैसे रोज मिलना भी कठिन है, जहाँ मनुष्य कच्चे चावल चबाकर रहते हैं, जो केवल अस्थिपंजर हैं, उन पर दया कर, उनके भीतर निवास करनेवाले ईश्वर की ओर देखकर आप २००० गज सूत दीजिए, यही मेरी आपसे विनती है।"

अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम-एकता के बारे में विवेचन करके उन्होंने इस प्रकार उपसंहार किया :

"मैं पराजित हूँ। मेरी प्रतिज्ञा है कि मुझे मोतीलालजी और केलकर कहें कि कांग्रेस से चला जा, तो मैं चला जाऊँ। मैं बेलगाँव में मत नहीं माँगूँगा। हम अपरिवर्तनवादी और परिवर्तनवादी मत माँगकर आम लोगों को भ्रमित कर रहे हैं। (अहमदाबाद की) महासमिति में मैंने मत लिये, मुझे अब महसूस होता है कि वह मैंने अपराध किया। इस तरह मत माँगने में मेरा पागलपन था। मैं तो सिपाही ठहरा। मुझे समझना चाहिए

था कि मैं वहीं लड़ सकता हूँ, जहाँ लड़ने से जहर पैदा न हो, दुश्मनी पैदा न हो। यदि मोतीलालजी या केलकर के साथ लड़ने में जहर पैदा हो, तो उसकी अपेक्षा उनके चरणों में अपना सिर झुकाऊँगा। मुझमें किसीके प्रति भी द्वेष हो, शत्रुता हो, तो बेहतर है कि मैं साबरमती के पानी में डूब मरूँ। सिद्धान्तों की लड़ाई हो, तो वहाँ मैं जरूर लड़ूँगा, मगर जहाँ दुश्मनी की बदबू आये, वहाँ कैसे लड़ूँ? जहाँ इस लड़ाई से तीसरी सत्ता की ताकत बढ़ रही है, वहाँ लड़ा ही कैसे जा सकता है? इसलिए मेरी प्रतिज्ञा है कि लड़ना नहीं है। पूना-निवासियों से केवल एक ही बात कहना चाहता हूँ कि यह पागल बनिया कहकर जा रहा है कि पूना-वासियो, श्रद्धा रखो और स्वराज्य ले लो।"

सभा बड़ी थी, बीच में खूब वर्षा हुई, परन्तु गांधीजी के वचनों की गम्भीरता देखकर कोई अपने स्थान से हिला नहीं। भाषण पूरा होने आया, तब गांधीजी की आवाज में खूब जोर और आवेश दिखाई दिया। दस-पन्द्रह हजार की भीड़ में शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसे ये शब्द सुनाई न दिये हों। सब पर बड़ा असर हुआ। सब खूब विचार करते हुए लौटे।

सूरत में

सूरत के उल्लास का तो पार ही नहीं था। बहनों के झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे थे। जो असहयोगी नहीं थे, ऐसे बहुत-से नेता भी गांधीजी से मिल गये थे और रात की सार्वजनिक सभा में भी अधिकतर उपस्थित थे। एक अंग्रेज-परिवार भी था। सूरत की आम सभा में गांधीजी ने पहला और अन्तिम प्रश्न यही पूछा : "कहाँ गया सूरत का तेज, ऐक्य और शौर्य? यह सब कब लौटेगा, जिससे वह सूरत से गुजरात में उमड़े और गुजरात से भारत को मिले?" सूरत में आम कार्यक्रम पेश करते हुए गांधीजी ने कुछ लम्बी प्रस्तावना की : "जब मैं देखता हूँ कि मेरा बस नहीं चलता, सारा पासा उलट जाता है, दुश्मनी बढ़ती ही जा रही है, तब मैं बहिष्कार और सविनय भंग की बात कैसे करूँ?"

सूरत में खादी और मिल के कपड़े के झगड़े का तो सवाल ही नहीं था। वहाँ तो यही बात करनी थी कि खादी अधिक कैसे उत्पन्न हो।

इसलिए उन्होंने कहा : "दुनिया में सभाओं से स्वराज्य नहीं मिला। स्वराज्य के लिए जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ेगा। हम अपनी गृहस्थी अपने भाषणों से, लेखों से, विवेचन से नहीं चलाते। कुटुम्ब में स्त्री-पुरुष अपने हिस्से का काम करते हैं, तभी कुटुम्ब चलता है। स्वराज्य लेना हो, तो हरएक जी-तोड़ काम करने लग जाय।"

पूना में गुलबर्गा के पागलपन का जिक्र करते हुए गांधीजी ने कहा : "गुलबर्गा के कारण मैं मुसलमानों की दोस्ती छोड़ने को तैयार नहीं होऊँगा।" सूरत में यही बात काफी विस्तारपूर्वक समझायी :

"हिन्दू या मुसलमान दो में से एक बिलकुल सीधे हो जायँ, तो ऐक्य हमारे हाथ में है। परन्तु वैर निकालने की बात हो, तो एकता की बात हमारे जमाने में न करना ही ठीक है। स्वराज्य लेने की हमें गरज हो, तो एक को सीधा हो ही जाना चाहिए। परन्तु कहा जाता है कि हिन्दू डरपोक हैं और गरीब हैं। डर निकालने का मार्ग वैर नहीं। डर दोनों में है और डर के कारण दोनों जातियाँ गुलाम हैं। सरकार दोनों को गुलाम समझती है। इसलिए वास्तव में एक नहीं, परन्तु दोनों डरपोक हैं। और शान्ति के बिना यह डर भी नहीं मिटाया जा सकता। हाँ, शान्ति बहादुरों की चाहिए और बहादुरी के लिए क्या लाठी चलाने की जरूरत है? मरना सीखने की ही जरूरत है। हिन्दुओं के मंदिर टूटने की बात सुनते हैं। यदि मंदिर टूटने देकर पुजारी भाग जायँ, तो मंदिर कैसे बचेंगे? आप कहेंगे कि मारनेवाले और देव-मन्दिर तोड़नेवाले के साथ नम्रता कैसी? मैं तो कहूँगा कि आप मरकर मूर्ति की रक्षा कीजिए। मारनेवाला देखेगा कि सामनेवाला मरकर रक्षा करने बैठा है, तो वह समझ जायगा।

"आप मुसलमानों को मारकर मूर्ति की रक्षा नहीं कर सकते। मुसलमान भी हिन्दुओं को मारकर इस्लाम की रक्षा नहीं कर सकेंगे। इसमें शंका नहीं कि मारकर रक्षा करना चाहते हों, तो इस्लाम नष्ट हो जायगा। दुनिया में एक भी धर्म मारकर नहीं बचनेवाला है। मैं अपने तीस वर्ष के चिन्तन और अनुभव के परिणामस्वरूप बताता हूँ कि जो धर्म और देश को बचाना चाहते हैं, उनके लिए शान्ति के सिवा और उपाय नहीं है। तलवार उठानेवाले की मौत तलवार से ही है। कोई भी धर्म तलवार से नहीं चल सका, नहीं चल सकेगा। इस्लाम फकीरों के कारण

और हिन्दू-धर्म तपस्वियों के कारण टिका हुआ है। हिन्दू-धर्म में ऐसे ऋषि, मुनि हुए हैं, जिन्होंने मरने का रहस्य बताया है। अपने शास्त्र समझकर पढ़िए। राम ने क्या किया, इस बहस में मुझे मत डालिए। पार्वती ने विपत्ति में तपश्चर्या की, द्रौपदी ने तपस्या करके ही अपनी रक्षा की, जब कि धर्मराज युधिष्ठिर, बलवान् भीम और गांडीवधारी अर्जुन विवश आँखों से देख रहे थे।

"मुसलमानों को मौलाना अब्दुल बारी साहब और अलीभाइयों के द्वारा ऐसे सन्देश दे सकता हूँ, परन्तु हिन्दू होने के कारण प्रत्येक हिन्दू को यही बात कहने का मुझे अधिकार है। हिन्दुओं का संगठन तपश्चर्या है। परन्तु मुसलमान और हिन्दू दोनों आज ईश्वर के प्रति श्रद्धा खो बैठे हैं, हम आत्मविश्वास खो बैठे हैं और गुण्डों की सहायता लेकर बहादुर बनना चाहते हैं। इससे न हिन्दू-धर्म बचनेवाला है, न इस्लाम। तपस्या और फकीरी से ही दोनों बचेंगे। डर का नाश कर दीजिए। जमनालालजी का हाथ जख्मी हुआ। मैं खुश हुआ। वह दंगा रोकते हुए मर जाते, तो भी खुश होता, क्योंकि तब हिन्दू-धर्म की अधिक रक्षा होती। उन्हें अचानक पत्थर लगा था। परन्तु पत्थरों की वर्षा में जाकर जो खड़ा रहेगा, उसे पत्थर तो लगेगा ही और वह मर भी सकता है। यदि जमनालालजी मर जाते, तो दोनों लड़नेवाले दल शरमाते, दोनों रोते।

"इस प्रकार बहादुर बनकर मुसलमानों के हृदय जीतिए। अखाड़ों का मैं विरोध नहीं करता। शरीर खराब हो तो उसे सुधारने के लिए जरूर अखाड़े चलाइए, परन्तु हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े के फैसले के लिए नहीं। यह फैसला तप और सत्य से ही होगा। महाभारतकार ने एक ऊँचे दर्जे का वाक्य कहा है कि एक तराजू में सहस्र यज्ञ रखो और दूसरे में सत्य रखो तो दोनों में सत्य ही बढ़ जायगा। मैं अपने चालीस वर्ष के अनुभव के बाद कहता हूँ कि यह बात सच है। इन साधनों से जब जीतेंगे, तब हिन्दू-मुसलमानों का विरोध नहीं होगा।"

अन्त में गांधीजी ने सूरत को पहलेवाला तेज फिर से प्रकट करने का सन्देश देते हुए कहा : "आप अस्पृश्यता का मैल मिटाइए, देश में उठनेवाले बड़े-बड़े तूफानों में भी अपना दिल ठिकाने रखिए, मनोबल (पवित्रता) बढ़ाकर अपना बल बढाइए, ऐश-आराम और दावतों को त्यागकर सूखी रोटी को अधिक महत्त्व दीजिए।"

मैं साधु नहीं हूँ

पूना में हुए प्रश्नोत्तर में से कुछ अंश देने की बात मैं पहले कर चुका हूँ। वह इस प्रकार है :

प्रश्न : 'आप ये तीन चीजें ही कांग्रेस को सौंप रहे हैं, इससे क्या कांग्रेस का राजनैतिक स्वरूप मिट नहीं जायगा ?'

गांधीजी : 'हाँ, थोड़ी देर के लिए मिट जायगा, परन्तु एक वर्ष का ही प्रयोग चाहता हूँ, जब तक कि विदेशी कपड़े का बहिष्कार कर रहा हूँ।'

प्र० : 'परन्तु आप कातनेवालों के अलावा सबको कांग्रेस से निकाल देना चाहते हैं। केवल खादी का काम करनेवालों को ही कांग्रेस में रहने का अधिकार हो और बाकी के दो काम करनेवालों के लिए अधिकार क्यों न हो ?'

गां० : 'मैं तो लड़वैया हूँ, इसलिए यह समझकर बात करता हूँ कि लड़ाई कैसे चलायी जाय। हिन्दू-मुसलिम एकता और अस्पृश्यता-निवारण में शरीर-श्रम नहीं चाहिए। प्रचार और शिक्षा की जरूरत है। शुद्ध वृत्ति से यह काम बहुत हो सकता है, जब कि खादी के काम के लिए शुद्ध वृत्ति के अलावा हाथ हिलाने चाहिए। मुझे कार्यकर्ताओं को और आम लोगों को एक कड़ी में जोड़ना है—यह कड़ी केवल चरखे का सूत है। कांग्रेस के सदस्य कातेंगे तो करोड़ों कातेंगे।'

प्र० : 'तब तो जिन्हें आपके दूसरे कार्य के प्रति सहानुभूति है, वे सब बाहर ही रहेंगे न ?'

गां० : 'भले ही बाहर रहकर मदद करें। मेरे सामने सहानुभूतिवाले हजारों के झुण्ड इकट्ठे होते ही हैं। उनसे मेरा क्या सिद्ध हुआ ? मुझे हर महीने २००० गज कातनेवाली सेना खड़ी करनी है। क्या आपको २००० गज सूत कातने का समय नहीं मिलता ? क्या मेरी अपेक्षा आप पर अधिक कार्यभार है ?'

प्र० : 'परन्तु मेरा पहला जो प्रश्न था, उसे ही फिर दुहराता हूँ। बड़ा भय यही है कि कांग्रेस सदा के लिए राजनैतिक संस्था नहीं रहेगी।'

गां० : 'नहीं, ऐसा नहीं होगा। आज लड़ाई में उतरे बिना मैं आपको राजनैतिक कार्यक्रम नहीं दे सकता। परन्तु मैं कहता हूँ उतना करेंगे, तो तुरन्त राजनैतिक कार्यक्रम दूँगा। मैं साधु नहीं, राजनैतिक मनुष्य हूँ। केवल जरा सौम्य प्रकार का राजनैतिक हूँ। क्या मैं दक्षिण अफ्रीका में राजनैतिक नहीं था ? क्या जनरल स्मट्स के साथ राजनीति के ज्ञान के

बिना ही मैंने कुश्ती लड़ी थी ? मुझे लड़ना है, मगर भाई, मुझे हथियार तैयार करने दीजिए ।'

प्र० : 'आप कहते हैं कि समितियाँ छोड़ दो । क्या इससे वैरभाव कम होगा ?'

गां० : 'यदि रोष से छोड़ देंगे तो नहीं मिट सकता, वैसे जहर मिटाने के इरादे से ही छोड़ेंगे, तो जरूर मिटेगा ।'

प्र० : 'यदि कोई आपकी खादी को, आपके सिद्धान्त को तोड़ने की ही कोशिश करते हों, तो उनका आप क्या करेंगे ?'

गां० : 'ऐसा कोई नहीं चाहता; चाहता हो तो भी मैं निर्भय हूँ ।'

प्र० : 'परन्तु सिद्धान्त पर हमला हो तो क्या आप सिद्धान्त छोड़कर सार नहीं निकालेंगे ? लड़कर ही सिद्धान्त की रक्षा करनी होगी ।'

गां० : 'मेरे सिद्धान्त में ही ऐसी ताकत छिपी हुई है कि उसे कोई मिटा नहीं सकता । हमें सिद्धान्त नहीं छोड़ना है, जरूरत हो, तो समिति छोड़नी है ।'

प्र० : 'समिति न रहेगी तो हम पंगु हो जायँगे । फिर किस अधिकार से काम करेंगे ?'

गां० : 'जरा और गहरा विचार कीजिए । आप देखिए कि फर्ग्युसन कॉलेज आपकी राष्ट्रीय संस्थाओं के सामने खड़ी रही है, उसे कांग्रेस का कौन-सा आश्रय है ? कांग्रेस के आश्रय से काम होगा, यह मानना तो भ्रम है । आपके अपने शरीर में जितनी शक्ति है, उतना ही काम कर सकेंगे । और ऐसा तंत्र रखने से फायदा भी क्या, जिसकी मरम्मत में ही आपका सारा धन और बल खर्च हो जाता हो ? तब तो बेहतर यह है कि तंत्र को मिटा दिया जाय । यदि अनायास तंत्र हाथ में रहता हो, तो भले ही रहे । जहाँ वह तमाम ताकत खा जाता हो, वहाँ वह भले ही आपके हाथ से निकल जाय ।'

यह तो मैंने जल्दी-जल्दी में पूना और सूरत की दैनन्दिनी दे दी । पूना में स्त्रियों की भव्य सभा हुई थी । उसकी मैंने बात ही नहीं की । परन्तु विद्यार्थियों के पदवीदान-समारम्भ के अवसर पर गांधीजी का उन्हें दिया हुआ उपदेश थोड़े में न सुनाऊँ, तो यह संक्षिप्त डायरी भी अधूरी रहेगी ।

आरम्भ में यह कहा कि मैं विद्वत्ता का दावा लेकर खड़ा नहीं हुआ हूँ और विद्यार्थियों से क्षमा माँगकर विद्या का उद्देश्य समझाया।

"आप जो विद्या ग्रहण कर रहे हैं, उसका उद्देश्य स्वराज्य है। गुजरात में मैं कुलपति बनकर बैठा हूँ। वह भी एक स्वराज्य के सैनिक के नाते और इस उद्देश्य से कि विद्यार्थियों को स्वराज्य-सैनिकों के रूप में बाहर ला सकूँ। मैं सन् १९१४ की ६ अगस्त के दिन विलायत पहुँचा तो क्या देखा? जैसे-जैसे लड़ाई बढ़ी, वैसे-वैसे सब धर्मशालाएँ बन्द हो गयीं। ऑक्सफोर्ड-केम्ब्रिज में भी विद्या की प्रवृत्ति अधिकांश बन्द हो गयी। विद्या को उन्होंने लड़ाई में गौण स्थान दे दिया था। और कैसे न देते? विद्या का फल ही यह है कि विद्यार्थी उत्तम नागरिक बने, उत्तम स्वदेश-सेवक बने, समाज को, गृहस्थाश्रम को, देश को सुशोभित करे।

"२४ वर्ष पहले दक्षिण अफ्रीका में भी मैंने यही दृश्य देखा था। कॉलेज के लड़के फौज में भरती होते थे, 'रेडक्रास' में शामिल होते थे, जवान स्त्रियाँ और लड़के सब कॉलेज छोड़कर ऐसे ही कार्यों में भर गये थे। मैं तो काला था। गोरे वकील, बैरिस्टरों को अदालत से लड़ाई में जाते मैंने देखा और अदालत को खाली देखकर लज्जित हुआ। मुझे महसूस हुआ कि मैं भी इसी काम में शरीक हो जाऊँ। देश पर आफत आये, तब यही काम करना पड़ता है। यदि यह चीज आप समझ लें, तो मेरे जैसे अविद्वान् का आपके सामने खड़े रहना सार्थक है, नहीं तो मुझे यहाँ अध्यक्ष बनाना मेरी हँसी उड़ाने-जैसा है।

"कोई नया आया हुआ अंग्रेज यहाँ की सरकारी संस्थाएँ देखकर आपकी संस्था देखने आये, तो यहाँ वह क्या देखने की आशा रखेगा? क्या आपका मकान देखेगा, विद्वान् शिक्षक देखेगा, आपको अंग्रेजी में बोलते हुए सुनने की आशा रखेगा? नहीं, वह यहाँ नया चित्र देखने की आशा रखेगा। सब संस्थाओं में वह चाहे कताई न देखे, परन्तु यहाँ कातने-बुनने का काम देखना चाहेगा। आपके आँगन में कपास की फसल होती देखना चाहेगा, आपका सूत देखना चाहेगा और बढ़िया पायेगा तो मन में कहेगा कि मांचेस्टर पर आफत आ रही है। मोटा देखेगा तो कहेगा कि मांचेस्टर को चिन्ता नहीं। वह आपको साहब बने हुए देखने की आशा नहीं रखेगा, आपको गरीबों जैसे देखने की आशा रखेगा। आपकी भाषा में

ही व्यवहार करते देखने की आशा रखेगा। जब जनरल बोथा विलायत गया और राजा के साफ बात करने का अवसर आया, तब उसने अंग्रेजी में बात करने से साफ इनकार कर दिया। उसने डच की अपभ्रष्ट भाषा 'टाल' में ही बात करने का आग्रह किया और उसने 'टाल' के दुभाषिये के द्वारा बात की। यह बात नहीं थी कि वह अंग्रेजी न जानता हो, मुझसे अच्छी अंग्रेजी बोलता था, परन्तु अपनी ही भाषा में बोलने में उसने गौरव समझा। प्रेसिडेंट क्रूगर भी टाल के सिवा और किसी भाषा में बात करने से इनकार करता था। इसी ढंग से उसने अपनी सत्ता कायम की थी। इसलिए मेरे साथ हिन्दी, उर्दू और मराठी में आपको बात करते देखने की मैं आशा रखूँगा। आपको अच्छी अंग्रेजी बोलनेवाले शिक्षक मिलें, इसमें कुछ नहीं। हिन्दी अथवा मराठी द्वारा पढ़ानेवाले, भिखारी, धार्मिक, सर्वस्व का त्याग करनेवाले शिक्षक आपके यहाँ हों, यही आपका भूषण है। भले ही विद्वत्ता में वे दूसरों से पराजित हो जायँ। आप विद्यापीठ की मर्यादा जानें और उसका ध्येय भलीभाँति समझें, यही आपसे चाहूँगा।"

साबरमती, ता० ६-९-१९२४

¶ प्रिय मोतीलालजी,

आपका पत्र मुझे कल सूरत में मिला। आपके तार का उत्तर मैंने संक्षेप में बम्बई से दिया था। आपके पत्र के जवाब में कल एक संक्षिप्त तार दिया है। मेरे पत्र से आपको बुरा लगा, इसका मुझे अफसोस है। मुझे क्षमा कीजिए। मैंने जो सुना, उसे मैं अपने मन में ही रखूँ, इसके बजाय आपसे कह देना क्या बेहतर नहीं? क्या मेरा कहना आप मानेंगे कि मेरे आसपासवाले शायद ही कभी मेरे साथ बोलते भी हैं? × × ×

मेरे प्रस्ताव का उसके गुणों पर से आप विचार करें। इस प्रकार विचार करके मुझे आभारी करेंगे? आप जानते हैं कि श्रीमती बेसट तथा श्री जयकर और श्री नटराजन के साथ मैंने इसकी चर्चा कर ली है। पूना के स्वराज्यवादियों के साथ भी मैंने इसकी चर्चा की है। मेरा प्रस्ताव मंजूर हो या न हो, परन्तु मेरा निर्णय तो अन्तिम है कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कांग्रेस में मतगणना कराकर फूट डालने में मैं कारणीभूत नहीं बनूँगा। जो कुछ हो, सो समझौते से होना चाहिए।

शुद्ध मनुष्यों का बलिदान करना होगा

आपका तार मिला। जो कुछ ऊपर लिखा है, उसमें कुछ भी जोड़ने की जरूरत मुझे दिखाई नहीं देती।

आपका

मो० क० गांधी

चि० जमनालाल,

तुम्हारा तार मिला और पत्र भी। बम्बई, पूना और सूरत की यात्राओं में एक क्षण का भी वक्त लिखने के लिए तो था ही नहीं। आज सबेरे आश्रम पहुँचा। तुम्हें चोटें आयीं, इससे मुझे बिलकुल दुःख नहीं हुआ। मैं तो मानता हूँ कि हम-जैसे बहुतों को शायद कुर्बानी देनी पड़े। जहर इतना अधिक व्याप्त हो गया है और अप्रामाणिकता इतनी अधिक फैल गयी है कि शुद्ध मनुष्यों के बलिदान दिये बिना हम इस आपत्ति से बचनेवाले नहीं हैं। झगड़े की जड़ मिले तो ढूँढ़ना। क्या कोई ऐसे सयाने मुसलमान या सयाने हिन्दू नहीं, जो समझकर झगड़े के कारण दूर करें ?

मेरे निश्चय को समझ गये होंगे। मैंने यह निश्चय किया है कि बेलगाँव में वोट से मुद्दे की बातों का निपटारा न किया जाय। वैर इतना बढ़ गया है कि अभी हमें सत्याग्रह का प्रचण्ड स्वरूप बन्द रखना ही चाहिए। मुझे लगता है कि ऐसा नहीं करेंगे तो हमारा ही नाश होगा। एक भी बात सीधी नहीं समझी जाती। सबका अनर्थ ! चारों ओर अविश्वास ! इस समय हम खुद मजबूत रहकर दूसरे जो करते हों, उसके साक्षी बनें। 'यंग इंडिया' में तो मैंने बहुत समझाया है। उसमें से कुछ का अनुवाद 'नवजीवन' में आया होगा, यह पता नहीं।

बापू के आशीर्वाद

¶ प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा तार मिला। पिताजी की ओर से भी मुझे तार और पत्र मिले हैं। जो कुछ हुआ, उसके लिए मुझे खेद है। मैंने सोचा था कि मेरी भावना की उत्कटता बताने के लिए मैं एक निर्दोष पत्र लिख रहा था।

× × ×

मैंने पिताजी से प्रार्थना की है कि मेरे प्रस्ताव के गुण-दोष पर ही वे मुझे अपने विचार बतायें। स्वराज्य दल के बहुत मित्रों के साथ मैंने

इसकी चर्चा कर ली है। कठिनाई में से और कोई सम्मानपूर्ण मार्ग मुझे दिखाई नहीं देता। इस बारे में उनका क्या खयाल है, मुझे लिखना।

नाभा का जवाब उनके दृष्टिबिन्दु से तो पूरा और आखिरी था। उन्हें एक ही उत्तर दिया जा सकता है कि कैद करने की उनकी चुनौती स्वीकार कर ली जाय। परन्तु वर्तमान स्थिति में यह कदम उठाना समझदारी का काम नहीं दीखता। इसलिए उत्तम बात यह है कि मौन रखकर और अधिक अच्छे अवसर की प्रतीक्षा की जाय।

अमेठी के बारे में तुमने जल्दी ही विवरण भेजा, वह मुझे मिल गया। गुलबर्गा की घटनाओं की जाँच करने के लिए मैंने श्वेब और कृष्ण-दास को खानगी तौर पर भेजा है। तुम यथाशक्ति जल्दी सांभर जाओ। अपने साथ······को और······को (ये नाम पढ़े नहीं जाते) लेते जाना। वे वहाँ के जानकार जरूर होंगे। मुहम्मदअली कोई खास प्रगति नहीं कर सके, इसलिए मेरे कार्यक्रम के सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। सोमवार तक तो यहाँ हूँ ही।

बापू के आशीर्वाद

साबरमती, ता० ६-९-१९२४

¶ प्रिय गोपबन्धु बाबू,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि··और जिन दूसरों ने सार्वजनिक कोष से रुपया गबन किया है और उनके पास सम्पत्ति हो, तो मैं उन पर इस्तगासा दायर कराने की बिलकुल संकोच किये बिना सलाह दूँगा। बहिष्कार हमारे काम को नुकसान पहुँचाने के लिए नहीं है। उसके लिए हम अपनी तमाम खानगी सम्पत्ति छोड़ देंगे, परन्तु ट्रस्ट की सम्पत्ति की रक्षा तो हमें करनी ही चाहिए। निरंजन बाबू को मुकदमा चलाने और त्याग-पत्र देने की मैंने सलाह दी थी। उन्हें फिर चुना जा सकता है।

मैं आशा रखता हूँ कि तुम अब बिलकुल अच्छे हो गये होगे। श्री अमृतलाल ठक्कर कह रहे थे कि तुम्हारी पाठशाला को रुपये की तंगी है। इस बारे में जमनालालजी को लिखो।

मो० क० गांधी के आशीर्वाद

बहुमत से कोई निर्णय नहीं किया जा सकता

¶ प्रिय राजगोपालाचारी,

मेरे मन में जल्दी-जल्दी परिवर्तन हो रहे हैं। मुझे पता नहीं कि उनके साथ आपका मन चल रहा है या नहीं। मुझे दीपक की तरह साफ दिखाई दे रहा है कि हमारे लोगों में जो अनिष्ट घुस गया है, उसका हमें विरोध करना चाहिए। हमें सत्ता बिलकुल छोड़ देनी चाहिए। हमारे कार्य में हमारी श्रद्धा होगी और हमारा काम सचमुच अच्छा होगा, तो विजय हमारी ही है। हमें आन्दोलन को तात्कालिक हानि पहुँचने की जोखिम भी उठानी चाहिए। बहुमत से कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। सिद्धान्त की हद आने तक हमें छोड़ते रहना चाहिए। इसीलिए मैं चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम-एकता का कार्यक्रम पेश करता हूँ।

आपके कातने सम्बन्धी प्रस्ताव में शिक्षा की धारा रखने के आपके प्रयत्न के बारे में यह क्या गड़बड़ मची है? आपकी कठिनाइयों में मेरी सहानुभूति आपके साथ है। इसमें इतनी अधिक शक्ति खर्च करनी पड़ती हो, तो स्थानीय अंकुश भी छोड़ दीजिए या फिर सारा ऊहापोह अब शान्त हो गया है?

क्या श्री देवधर की कष्ट-निवारण समिति की कार्रवाई का आपने कुछ अध्ययन किया है? आप उनके साथ शरीक हो सकते हैं? उनके काम का स्वरूप कैसा है? मेरी यह सलाह तो है ही कि संभव हो तो एक ही गैरसरकारी कमेटी बनाने का प्रयत्न कीजिए। रुपया काफी आने लगा है। क्या आप यह चाहते हैं कि मैं सारा रुपया आपके पास भेज दूँ? दक्षिण कनारा का क्या? अलग-अलग केन्द्रों का क्या? कपड़े यहाँ ढेरों पड़े हैं। मुझे ब्योरेवार सूचना दीजिए।

मैं अगले सोमवार तक तो यहाँ हूँ ही। संभव है, यहाँ कम-से-कम एक सप्ताह भी रहूँ।

आपका

मो० क० गांधी

जड़भरत नहीं, विष्णु बनकर जाओ

साबरमती, ता० ७-९-१९२४

¶ कनका के राजासाहब

प्रिय राजासाहब,

मेरे मंत्री ने मेरे लिए दो वक्तव्य तैयार किये हैं। उनकी नकलें आपको भेज रहा हूँ। मेरे पास के अखबारों में जो हाल छपे हैं, उन पर से वक्तव्य तैयार किये गये हैं, यह आप देख सकेंगे। इसमें खुद जाँच करने की जरूरत है। आपके राज्य में मि० एण्ड्रूज को अथवा राजेन्द्रबाबू को अथवा पं० जवाहरलाल को मैं भेजूँ, तो क्या आपको पसन्द होगा? मैं स्वयं ही वहाँ आना पसन्द करूँ। परन्तु अभी तो मेरे हाथ भरे हैं।

सेवक

मो० क० गांधी

साबरमती, ता० ८-९-१९२४

भाई आनन्दानन्द,

तुम दिल्ली जा रहे हो तो रामचन्द्र की तरफ से अंगद बनकर नहीं, युधिष्ठिर की तरफ से कृष्ण बनकर भी नहीं, परन्तु निषाद राजा की तरफ से कुछ सेवा हो सके तो करने, उसे पैर धोने की अनुमति मिले, ऐसी सुविधा करने जा रहे हो। अथवा सुदामा का कोई दास कहीं भी चला जाय और जैसे सुदामा की शोभा बढ़ाये, वैसे तुम मुझे सुशोभित करने जा रहे हो। तुम न्याय **लेने** नहीं, बल्कि **देने** जा रहे हो। जड़भरत पर जो बीती, वह उसने शान्ति से सहन कर ली। तुम रुद्र बनकर नहीं जाओगे, बल्कि विष्णु बनकर जाओगे।

सवाल यह नहीं कि मौलाना को क्या करना चाहिए। परन्तु सवाल यह है कि मुझे अर्थात् तुम्हें क्या करना चाहिए। जितना तत्त्वज्ञान मैंने 'नवजीवन' में बिखेरा है, उस सबका अक्षरशः उपयोग और अमल यहाँ करने का निश्चय है। उसमें तुम मन से, काया से और वचन से मदद करो।

यह मानकर अमल करो कि इसीमें तुम्हारी और मेरी शोभा है। मैं इस समय जो बात करने के लिए समाज को सूझा रहा हूँ, वह मुझे करनी ही चाहिए। 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' को पूरी हानि पहुँचा-

कर भी हमें मुहम्मदअली का काम कर देना है। उनका पहला अखबार तुम्हारे हाथ से निकले, इससे अच्छा और क्या होगा ? समझ लो कि 'कॉमरेड', 'हमदर्द' तुम्हारे ही हैं, मेरे ही हैं। 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' पीछे और ये पहले, इस प्रकार समझकर जा रहे हो।

तुम्हारे हार्दिक विनय और चातुर्य में मैं निश्चित रूप में हिन्दू-मुस्लिम एकता अर्थात् स्वराज्य की कुंजी देखता हूँ। दिल्ली से जल्दी आने का विचार ही न करना।

बापू के आशीर्वाद

¶ मौ० मुहम्मदअली

प्यारे भाई,

सोमवार के प्रातःकाल के अभी-अभी पाँच बजे हैं। मैंने स्याही से लिखना शुरू किया, परन्तु अभी तक मेरा हाथ स्याही की कलम पर जमा नहीं। और टाली जा सके, ऐसी दखल के बिना मैं आपसे बातचीत कर लेना चाहता हूँ।

आप क्या चाहते हैं, यह मैं कल ही समझ सका। आपको यह याद रखना चाहिए कि मैं सफलतापूर्वक दो प्रेसों का मुखिया बनकर बैठा हूँ, फिर भी उनके ब्योरे के बारे में मैं लगभग कुछ नहीं जानता। अभी तक मैं 'नवजीवन' के दफ्तर में भी नहीं गया। दिल्ली से क्या लाया गया है या क्या नहीं, यह मैं नहीं जानता। मैं सोचता था कि जो कुछ मैं लाता गया, वह मेरा था। अब जो कुछ भेज देता हूँ, वह आपका है। मेरा है सो आपका ही है। इसमें स्वामी भी आ जाते हैं। परन्तु जहाँ ये असफल हों अथवा आपको इनमें कमी महसूस हो, वहाँ आप मुझ पर आधार रखें। इनमें जो जानकारी है, वह मैं आपको नहीं दे सकता। परन्तु यदि खोये हुए समय की कमी रुपये से पूरी हो सकती हो, तो जैसे-तैसे करके मैं रुपया जुटा दूँगा।

स्वामी मुझसे कहते हैं और उसे मैं मानता हूँ कि मशीनें आपको जल्दी नहीं भेजी जा सकती थीं। आप 'कॉमरेड' और 'हमदर्द' थोड़े समय के लिए और कहीं क्यों न छपवा लें ? और जो घाटा हो, वह मुझसे क्यों न माँग लें ? स्वामी कहते हैं कि छापाखाना पूरी तरह जमा देने में देर

लगेगी। वे कहते हैं कि वे यह नहीं समझे थे कि सब कुछ उन्हें व्यवस्थित कर देना पड़ेगा। वे यह मानते थे और मैं भी यही मानता था कि आप इन्हें मशीनों के लिए ही बुला रहे हैं। वे कहते हैं कि सारा फर्नीचर यहाँ भरकर लाने की उनकी इच्छा नहीं थी। उन्हें अथवा उनके आदमी को उस समय आवश्यक ज्ञान नहीं था। वस्तुतः उनके जिस आदमी ने विवरण लिया, उसे आवश्यक ज्ञान बहुत थोड़ा था।

परन्तु असल प्रश्न यह नहीं कि अ या ब ने क्या समझा। सवाल यह है कि आपको क्या चाहिए और मैं क्या कर सकता हूँ। मैं जब दिल्ली में था, तब भी मैंने यह नहीं समझा था कि मेरी तरफ से ढिलाई होने के कारण ही सारी ढील हो रही है। मैंने यह समझा था कि मशीनें लगा देने के बाद भी आपको काम शुरू कर सकने से पहले दिल्ली में बहुत कुछ करना बाकी रहेगा।

अब स्वामी का आजादी से उपयोग कीजिए। वे मेरे निकटतम साथियों में से एक हैं। वे यदि आपको सन्तोष न दे सकें, तो मैं भी आपको सन्तोष नहीं दे सकता। जिस मनुष्य को मनुष्यों की पहचान नहीं है, वह दुनिया में निकम्मा है, भले ही उसका हृदय सोने का हो और उसके हेतु शुभ-से-शुभ हों। उसे मनुष्यों और वस्तुओं के साथ काम लेना बन्द कर देना चाहिए। इसलिए मैं हमेशा कहता आया हूँ कि मेरे निकटतम साथी जिस कसौटी में पास हों, उस पर से मेरा मूल्यांकन करना चाहिए। आप, स्वामी, महादेव, हयात, मोअज्जम, देवदास, कृष्णदास, श्वेब, इन सबको मैं इसमें गिनता हूँ। आपके साथ मैं अच्छी तरह निभा लूँ, इतना काफी नहीं; स्वामी, महादेव, देवदास वगैरह को भी निभा सकना चाहिए। यदि वे न निभा सकें तो उन्हें मेरे सार्वजनिक जीवन में से निकल जाना चाहिए, जैसे बा, और कुछ नहीं तो भी फिलहाल के लिए तो निकल गयी है। ये सब औजार हैं, जिनके जरिये मैं काम करता हूँ, जैसे हयात, मोअज्जम वगैरह के जरिये आप काम करते हैं।

इसलिए मैं स्वामी को आपके पास भेज रहा हूँ, ताकि आप दोनों एक-दूसरे के अधिक निकट आयें और एक-दूसरे को अधिक अच्छी तरह पहचानें। मेरे लिए तो ऐसे व्यक्तिगत सम्बन्ध अच्छी तरह निभना हजार

सार्वजनिक समझौतों की अपेक्षा स्वराज्य और एकता (हिन्दू-मुसलमान) के लिए अधिक महत्त्व की चीज है।

बहुत प्यार।

आपका

मो० क० गांधी

¶ भाई श्री सतीशबाबू,

आपके तार का मुझ पर बहुत असर हुआ है। आपको आश्वासन का पत्र लिख रहा हूँ।

कृष्णदास का स्थान न किसीने लिया है, न लेने की इच्छा रखता है। अभी तक मैं उनके बिना काम नहीं चला सकता। पिछली बार कृष्णदास मेरे साथ नहीं आये, क्योंकि वे और मैं इस निर्णय पर पहुँचे कि उनके अपने तथा काम के लिए यही बात ठीक थी। मेरी निजी सेवा करनेवाले और मेरे मंत्री के रूप में काम करनेवाले चार व्यक्तियों में ये सबसे अधिक ज्ञानी हैं। महादेव, देवदास और प्यारेलाल ज्ञान में और तपस्या में इन्हें आगे बढ़े हुए मानते हैं। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि कृष्णदास को ऐसा विचार किस बात पर से हुआ कि इनमें से कोई कभी भी कृष्णदास को निकालना चाहता है।

सफर में चारों की मुझे जरूरत नहीं होती। चारों में से एक को तो यहाँ पीछे के कामकाज के लिए रहना ही चाहिए। महादेव अथवा देवदास हमेशा पीछे रह सकते हैं। इसीलिए कि प्यारेलाल अथवा कृष्णदास 'नवजीवन' का और गुजराती पत्र-व्यवहार का काम नहीं कर सकते। इस प्रकार कृष्णदास को स्थायी रूप से मेरे साथ रहना होगा। वे गुलबर्गा गये थे, क्योंकि श्वेब को इन्हें ही साथ ले जाना पसन्द था। मैंने आग्रह किया होता, तो वे महादेव को साथ ले जाते। परन्तु मैं जानता हूँ कि श्वेब बहुत कोमल भावनावाले हैं। मैं चाहता था कि वे पूरी तरह प्रफुल्ल चित्त से जायँ। इसलिए यद्यपि महादेव का नाम सुझाया गया था, तथापि उन्होंने जब कृष्णदास की माँग की, तब मैंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। कृष्णदास भी प्रसन्न थे। उनकी और श्वेब की खूब बनती है। इसलिए कृष्णदास की जरा भी चिन्ता न कीजिए। वे आपकी खातिर

ही मेरे साथ नहीं रहे। मैंने उन्हें अपने लिए रखा है। आप उन्हें मेरे पास रखना चाहें, इसकी अपेक्षा, मैं उन्हें अपने साथ रखने को अधिक आतुर हूँ। मेरे पास रहकर मुझे सुख-सुविधा देनेवाले कुछ साथी मुझे मिले हैं, यह मेरे जीवन का एक विशेष लाभ है। कृष्णदास इनमें से किसीसे कम नहीं है।

यह पत्र मैंने आपकी दी हुई कलम से लिखा है। आपने मुझे पहले जो कलम दी थी, वह मुझे बहुत पसन्द थी और उसे मैं हमेशा अपने साथ रखता था। जेल में मैंने उसे इन्दुलाल को इस्तेमाल के लिए दे दी। वह बिगड़ गयी और सुधारने के लिए बाहर भेजी गयी। जिस मित्र को उन्होंने मूल्यवान् हवाला सौंपा था, उन्होंने इसे खो दिया। इसलिए अब जिस कलम से मैं काम ले रहा हूँ, वह कृष्णदास की दी हुई है।

मुझे दो (शब्द पढ़े नहीं जाते) भी मिले हैं। मेरी इतनी सूक्ष्म चिन्ता आप रखते हैं, उसके लिए आपका आभार मानूँ ? कृष्णदास की कभी कोई चिन्ता नहीं करता, ऐसा आश्वासन देनेवाला तार भेजकर मुझ पर उपकारों में एक की वृद्धि कीजिए।

आपका

मो० क० गांधी

साबरमती, ता० ११-९-१९२४

¶ प्रिय मित्र,

आपके दोनों पत्र महादेव ने मुझे दिये हैं। उनके लिए आपका आभारी हूँ। किसी भ्रम में नहीं हूँ। नरमदली शामिल हों या न हों, स्वराजदली शरीक हों या न हों, मुझे जो महसूस हो रहा है, वह यह है कि हम आपस में असहयोग कर रहे हैं। इस चीज से हमें बचना ही चाहिए। बाकी सब अपने-आप ठीक हो जायगा। इतना पहले पत्र के बारे में।

अब दूसरा पत्र। मैंने स्पष्ट किया है कि यदि हमें झुकना हो तो हमें अपने-आप ही ऐसा करना चाहिए। वस्तुस्थिति आप ज्यादा जानते होंगे। मैं तो अहिंसा से फलित होनेवाले सिद्धान्त बता सकता हूँ। दास्ताने और देवधर (देव ?) ने जुहू में बहुत बातें कही थीं। उनका असर मुझ पर जरूर हुआ है, परन्तु आपको जैसा अंदेशा है, वैसा नहीं हुआ। उनकी

सब बातों से मैं यह समझा हूँ कि सभी मुख्य सदस्य अहिंसा या खादी-कार्य में पूरा विश्वास नहीं रखते। श्री बापट का उदाहरण लें। वे मुलशीपेटा की लड़ाई के सरदार थे। सत्याग्रह पर उनकी पत्रिकाएँ मैंने पढ़ी हैं। वे अहिंसा को माननेवाले नहीं हैं। निम्बकर की मिसाल लें। अवश्य ही वे अहिंसा को नहीं मानते। उनके भाषण मैंने सुने हैं और उनके लेख भी मैंने पढ़े हैं। उनके खिलाफ मेरे पास बार-बार शिकायतें भी आयी हैं। परन्तु य सारी बातें आन्तरिक सुधार चाहती हैं। इसके लिए झुकने की जरूरत नहीं। झुकने का विचार तो महासमिति की बैठक के बाद बहुत समय पहले मेरे दिल में उठने लगा था। कुछ जहरीले लेख पढ़कर यह विचार मुझे सूझा। हम सब फरिश्ते होते, तो भी मैं झुकने की बात करता। हमारे सिद्धान्त का आग्रह रखने का अर्थ यह है कि हम ओहदे छोड़ दें, सिद्धान्त नहीं। सिद्धान्त तो जीवन में आचरण के लिए होते हैं। यद्यपि सत्याग्रह के राजनैतिक परिणाम होते हैं, तो भी यह वस्तु मूल में शुद्ध आध्यात्मिक है। मानवता के प्रति प्रेम उसकी बुनियाद में है। यह चर्चा अथवा तर्क का विषय नहीं। हमारा व्यवहार शुद्ध हो, तो विरोधी पर ऐसा असर पड़ेगा कि पता तक न चले। इस-लिए हम झुकते हैं तो अधिक और अच्छा काम करने के लिए झुकते हैं। यह मार्ग सामान्य मार्ग से बिलकुल भिन्न है। मैं जान-बूझकर अस्पष्ट भाषा का प्रयोग कर रहा हूँ सो बात नहीं। परन्तु मेरा विचार अर्थात् यह पद्धति नवीन और मौलिक है। उसे व्यक्त करने के लिए मेरे पास भाषा नहीं। इसीलिए अस्पष्टता रहती है। परन्तु इतना तो आसानी से समझा जा सकता है कि (कांग्रेस के) पदों से चिपटे रहने से यदि द्वेष ही उत्पन्न होता हो, तो उन्हें छोड़ देना चाहिए। वे आपके पास बिन-माँगे आ जायँ, लोकमत आपके पक्ष में उमड़ रहा हो और इस कारण आपको पद लेने पड़ें तो अवश्य उन्हें धारण कर लें। मुझे इस बारे में जरा भी शंका नहीं कि तमाम प्रान्तों के लोग उनके पक्ष में रहेंगे, जो पूरी तरह इस सरकार के विरुद्ध होंगे और जो देश की सेवा में पूरे फना होने को तैयार होंगे। ऐसे सेवक कांग्रेस के भीतर हों या बाहर, यह जरा भी महत्त्व की बात नहीं।

आपका

मो० क० गांधी

दिल्ली जाते हुए, ता० १३-९-'२४

राजाजी ने शंकरलाल को पत्र लिखा था कि बापू की अन्तिम योजना का अर्थ यह होता है कि एक महान् विचार मटियामेट हो जाता है। मुझे अपनी स्थिति पानी की बाढ़ से उखड़े पेड़ जैसी लगती है। इस समय में जितना हताश हो गया हूँ, उतना पहले कभी नहीं हुआ।

यह पत्र देखकर बापू ने राजाजी को यह पत्र लिखा:

¶ प्रिय राजगोपालाचारी,

हिन्दू-मुस्लिम झगड़े के सिलसिले में मैं दिल्ली जा रहा हूँ। शंकरलाल के नाम आपका पत्र मैंने पढ़ा। आप दुःखी हैं, इससे मुझे दुःख होता है। मैं चाहता हूँ कि आप इस समय मेरे पास हों। हम ऐसे निराशाजनक ढंग से छिन्न-भिन्न हो गये हैं कि हमारा काम चल ही कैसे सकता है? 'यंग इंडिया' के इस बार के अंक में मेरा लेख पढ़िए*। जरूरत हो तो पचास बार पढ़िए। शायद उससे आप मेरे कहने का अर्थ समझ लेंगे। वह मुख्यतः आपके ही लिए लिखा गया है। शंकरलाल के नाम आपके पत्र ने इसे लिखने को मुझे प्रेरित किया।

राष्ट्रीय कार्यक्रम में से फिलहाल बहिष्कार निकाल देने से हम कोई बहिष्कार नहीं छोड़ देते हैं। हमारी प्रतीति के बारे में हमें साहस हो तो हम उसे किसी भी समय प्राणवान् कर सकते हैं। हममें आत्म-विश्वास हो तो कोई चीज किसी वक्त के लिए मुलतवी रखने का अर्थ यह क्यों होना चाहिए कि हम उस वस्तु का त्याग कर रहे हैं?

आपका

मो० क० गांधी

भाई सन्मुखलाल,

ब्रह्मचर्य के पालन के लिए (१) अल्पाहार (२) अच्छा वाचन (३) नित्य मनन (४) काफी शारीरिक और मानसिक श्रम (५) मसालों और मादक पदार्थों का त्याग (६) नाटकादि शृंगारमय वस्तुओं का त्याग (७) स्त्री के साथ एकान्त का त्याग (८) स्त्री-संग का मानसिक त्याग (९) राम-नाम का अथवा ऐसा ही अन्य जप—इतनी बातें जरूरी हैं।

बापू के आशीर्वाद

* देखिए परिशिष्ट–४।

हमारी प्रवृत्ति आध्यात्मिक है

दिल्ली, ता० १४-६-१९२४

¶ प्रिय श्रीमती बेसेण्ट,

आपके पत्र के लिए और हमारी बातचीत के आपके नोट के लिए मैं सदैव आभारी रहूँगा। आपका पत्र मिलते ही मैंने आपको तार दिया था कि 'यंग इंडिया' प्रकाशित हो चुका है, इसलिए अब आपका नोट असोसिएटेड प्रेस को दे रहा हूँ। अभी तक स्वराज्यवादियों की तरफ से मुझे कोई पत्र नहीं मिला है। इसलिए यह कहना संभव नहीं कि महासमिति क्या कहेगी। फिर भी जो कुछ घटनाएँ होंगी, उनसे मैं आपको परिचित रखूँगा।

आपके लिखे अनुसार मेरा लड़का जल्दी अडियार आ पहुँचेगा। आपको कताई सीखने का मौका मिलेगा तो उसे वह अपना एक बड़ा लाभ मानेगा।

सेवक

मो० क० गांधी

दिल्ली, ता० १५-६-१९२४

¶ प्रिय राजगोपालाचारी,

आपका पत्र पढ़ा, तब से हमेशा आपके ही विचार आते रहते हैं। मैंने जो कदम उठाया है, उसकी आवश्यकता जितनी स्पष्ट मैं देख सकता हूँ, उतनी आप क्यों नहीं देख सकते ? मैं आपसे सहमत हूँ कि हम अपना कार्यक्रम न चला सकते हों तो कांग्रेस को छोड़ देना बेहतर है। मुश्किल यह है कि किस तरह छोड़ें। मुझे बराबर खयाल रहता है कि हमें स्वराज्यवादियों को परेशान नहीं करना चाहिए। लोगों की एक जरूरत वे पूरी करते हैं। अधिकांश लोग जिन्हें छोटी-छोटी राहतें चाहिए, उनका प्रतिनिधित्व करते हैं। क्या हम उनके काम में बाधा दें ? हमारी प्रवृत्ति मुख्यतः आध्यात्मिक है। उसका बल अदृश्य रूप में बढ़ता है, केवल वाद-विवाद या मत प्राप्त करने से नहीं बढ़ता। अभी मैं अपने-आपको स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं कर सकता। मैंने जो मार्ग ग्रहण किया है, उसके लिए बहुत कारण हैं। उनमें से एक ही मैंने पेश किया है। और हम सब उस मार्ग को अपनायें, ऐसी सलाह दी है। मैंने जो कदम उठाया है, वह मुझे तो हर तरह से पूरा सही लगता है। हो सकता है कि मैं आपके सामने इस ढंग से नहीं रख सकता, जिससे आपको सन्तोष हो। मैं जानता

हूँ कि आपको और दूसरों को इस एकाएक हुए परिवर्तन के अनुकूल बनना खूब मुश्किल हो रहा होगा। परन्तु मैं निरुपाय हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि साथियों की वफादारी और श्रद्धा पर मैं बहुत ज्यादा बोझा लाद रहा हूँ। परन्तु अपने अन्तर की स्पष्ट आवाज को दबा देने की अपेक्षा क्या यह बेहतर नहीं कि ऐसा करूँ? चेतावनी देनेवाले इस स्वर को यदि मैं गुँजा दूँ तो फिर मैं किस काम का रहूँ? परन्तु यह सब मैंने आपको यूँ ही कह डाला।

(शेष पत्र दक्षिण भारत के बाढ़-संकट निवारण के सम्बन्ध में है।)

आपका

मो० क० गांधी

लाहौर के 'हिन्दू' पत्र को सन्देश

¶ भाई श्री लाला करमचन्द,

यह है मेरा सन्देश :

इस समय समाचार-पत्रों में वृद्धि होने के मैं विरुद्ध हूँ। उनमें से अधिकांश तो केवल उपद्रवों को उत्तेजन देने और हिन्दू-मुसलमानों के बीच तंगदिली बढ़ाने का काम करते हैं। आपका अखबार 'हिन्दू' अखबार होने के कारण यदि यह प्रतिज्ञा न करे कि हिन्दुओं को अपने सांसारिक लाभ मुसलमानों के सामने छोड़ देने चाहिए तो मैं इस नये साहस का स्वागत नहीं करूँगा।

मो० क० गांधी

दिल्ली, ता० १७-९-१९२४

¶ प्रिय मोतीलालजी,

आपका तार मिला। थोड़े समय तो अभी मैं दिल्ली में ही हूँ। इसलिए आप और दासबाबू जब आयें तब आपसे मिलकर मुझे आनन्द होगा। जिसे आखिरी छलाँग कहा जा सकता है, वह मैंने तो लगा दी है। आज से मेरे इक्कीस दिन के उपवास शुरू होते हैं। मैंने धर्म को इसी प्रकार पहचानना सीखा है।

आपका

मो० क० गांधी

उपवास मेरा कर्तव्य था

दिल्ली, ता० १७-९-१९२४

¶ प्यारे भाई चार्ली,

मेरे निर्णय से नाराज न होना। अन्तर की प्रार्थना और भरसक स्पष्ट सूचन के बाद यह निर्णय किया है। इक्कीस दिन के उपवास करना तो मेरा कम-से-कम कर्तव्य था। मुझे कितनी वेदना हो रही थी! प्रत्येक दिन जो बीतता था, भारी कष्ट का था। परन्तु अब मैं शान्त हो जाऊँगा। मेरा कर्तव्य क्या है, यह मैं स्पष्ट जानना चाहता था। इतने में एक चमक की तरह मुझे प्रकाश मिला। मनुष्य अपने प्राणों से अधिक क्या दे सकता है?

खूब प्यार!

आपका

मोहन

दिल्ली का पत्र

मैं स्वीकार कर लेता हूँ कि यह पत्र तो लिखने के लिए ही लिख रहा हूँ, क्योंकि कोई ऐसी प्रत्यक्ष खबर नहीं, जो मुझे देनी हो। चारों ओर दावानल धधक रहा है, इतनी खबर के सिवा और क्या समाचार दिये जा सकते हैं। जहाँ-जहाँ उपद्रव होते हैं, हो रहे हैं, वहाँ कारण देखने लगें तो—

'वा वायाथी नळियुं खस्युं,
ते देखीने कूतरुं भस्युं।
कोई कहे में दीठो चोर,
घणो थयो त्यां शोर बकोर।'

कुछ ऐसा ही मालूम होता है। फिर भी सभी जगह ऐसा मालूम हो तो ऐसे 'कुछ नहीं' के पीछे भी कुछ देखने की आम तौर पर प्रेरणा होती है।

गुलबर्गा का लेख

(ता० १७-९-१९२४)

ऐसा ही कुछ सोचकर गांधीजी ने गुलबर्गा का लेख* लिखते समय लिखा था कि इस उपद्रव में एक समान रूप में शरारत पायी जाती है,

* देखिए परिशिष्ट ५।

तो कहीं कोई व्यवस्था होनी चाहिए। यह लेख यहाँ बहुत पढ़ा गया है और उसकी बहुत चर्चा हुई है। बहुत भाई इसे समझने और स्पष्टीकरण माँगने आये। यहाँ का जो मुख्य कार्य था, वह तो एक तरफ रहा और इस स्पष्टीकरण में गांधीजी का कितना ही समय चला गया है। अभी हर जगह अविश्वास है। पाप छोड़कर शायद ही कहीं बात की जाती है। तब तक एकता होने में देर लगेगी और एक घाव पर से मरहमपट्टी उतरने से पहले दूसरे घाव होने लगते हैं, इसलिए कितनी देर लगे, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु स्वराज्य लेने के लिए जितनी अधीरता से गांधीजी देश से काम चाहते थे और चाहते हैं, उतने ही धीरज से इस प्रश्न के हल में वे काम ले रहे हैं। किसीको कुछ स्पष्टीकरण तो किसी जगह कोई सन्देश, तो किसीके साथ कुछ सलाह-मशविरा—ये सब वे इस महाप्रश्न के हल के लिए कर रहे हैं और क्षण-क्षण अन्तर बोल रहा है:

बिगड़ी हमारी बात
अब तो सुधारो रे हरि !

फिर भी ऐसे मामले में भी जब साँस लेने तक की फ़ुरसत नहीं मिलती, वे छोटे-छोटे कामों के लिए, मित्रों को सन्तोष देने के लिए समय निकालते हैं। सरदार मंगलसिंहजी और अन्य सिख भाइयों ने यहाँ एक राष्ट्रीय दैनिक निकालने का निश्चय किया। उसके लिए श्री पणिक्कर जैसे उत्साही और विद्वान् मिले हैं। ये भाई गिडवानी के जेल जाने के बाद अकालियों का ही काम कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने मंगलाचरण गांधीजी के आशीर्वचन के साथ करने का भी निश्चय किया और गांधीजी ने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' अखबार का उद्घाटन करना मंजूर किया। अखबार की तैयारी तो कई रात जागरण करके की थी और १५ तारीख की शाम को उसे निकालने का निश्चय था, परन्तु मशीनें काबू में नहीं आयीं। गांधीजी शायद तुरन्त दिल्ली लौटें या न लौटें, इसलिए छापाखाना तो खुलवा ही लें, ऐसा फैसला करके सरदार साहब गांधीजी को ले गये।

छोटे से और साधारणतः गांभीर्ययुक्त न लगनेवाले प्रसंग को घड़ीभर में भारी गांभीर्य से समझाते हुए सिख भाइयों को ही देखा। गांधीजी के अलावा दूसरे २५-५० मित्रों को निमंत्रित किया गया था। गरमी खासी थी और बिजली के पंखे थे नहीं। इसलिए सिख सेवक हवा से

हिलते हुए बड़े वृक्ष की तरह खड़े रहकर सारी सभा को पंखा झल रहे थे। सिख सेवक अर्थात् कोई नियत किये हुए स्वयंसेवक नहीं, परन्तु वे सब सेवक, जिन्हें सेवा की उमंग हो जाय। एक को आराम देने के लिए दूसरा खड़ा हो जाता, दूसरे को तीसरा आराम देता और यही सिलसिला बना रहता। सरदार मंगलसिंह भी उठे, तब बहुतों को सानन्दाश्चर्य हुआ होगा। परन्तु जैसे मुसलमानों में नमाज पढ़ते समय राजा और रंक समान हैं, वैसे ही इन भाइयों ने सेवा करने में राजा और रंक को समान करने का मंत्र साध लिया प्रतीत हुआ। क्षणभर के लिए जी में आया कि सरदार साहब के हाथ से पंखा लेकर मैं आराम दूँ तो? कहीं नाटकीय तो दिखाई नहीं दूँगा, इस डर से ही मेरा दिल रुक गया। सेवामात्र संक्रामक हो तो कितना अच्छा!

परन्तु मैं तो 'हिन्दुस्तान टाइम्स' को भूल गया। दुनिया की उपाधियों से ऊँचा उड़ानेवाले नानक कबीर के भजन किसी भी सिख-क्रिया के आरम्भ में जरूर होते हैं। और यहाँ भी यही हुआ। कितना सादा और गम्भीर सत्य!

कोई हर समान नहिं राजा
कोई हर समान नहिं राजा
ये भूपत सब दिवस चार के (१)
झूठे कर्ज दिवाजा—कोई०
हाथ पसार सके को जन को
ध्रुव प्रह्लाद निवाजा—कोई० (२)

और बाद में एक 'अमृतरस चाखिए महाराज' वाला गाया गया।

भाई पणिक्कर और मौलाना मुहम्मदअली ने गांधीजी से प्रार्थना की कि छापाखाना खुला घोषित करें। अमृतरस चखने की बात सुनने के बाद गांधीजी के लिए दूसरा सन्देश देने को ही क्या होता? उनके कहने का भावार्थ इतना ही कहा जा सकता है कि अखबार के जरिये यह रस चखा जाता हो तो चखिए, अन्यथा इसमें सार नहीं। परन्तु उस छोटे-से भाषण का सार दे ही दूँ।

"मेरे हाथ में अधिकार आ जाय तो 'यंग इंडिया' के सिवा सब अखबार बन्द कर दूँ। ऐसे विचारवाला आदमी अखबार का उद्घाटन करने

मरण आगळे ते भरे मूठी, दिलनी दुग्धा वामे जोने।
तीरे ऊभा जुए तमासो, ते कोडी नव पामे जोने॥
प्रेमपंथ पावकनी ज्वाळा, भाळी पाछा भागे जोने।
मांही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने॥
माथा साटे मोंघी वस्तु, सांपडवी नहि सहेल जोने।
महापद पाम्या ते मरजीवा, मूकी मननो मेल जोने॥
राम - अमलमां राता माता, पूरा प्रेमी परखे जोने।
प्रीतमना स्वामीनी लीला, ते रजनी दन नरखे जोने॥

आम तौर पर यहाँ प्रार्थना का आरम्भ बापू ही कराते हैं, स्वयं उल्लास से श्लोक बोलते हैं और भजन अपना ही पसन्द करते हैं। बालकोबा आये, तब से तो प्रार्थना की मंडली बढ़ गयी है और प्रेम की बाढ़ आ रही है। दो बार प्रार्थना हुई, फिर भी बालकोबा ने 'हरिनो मारग' नहीं गाया। आज सुबह बालकोबा के भजन शुरू करने से पहले बापू ने अधीर होकर कहा : 'हरिनो मारग' गाओ।

मेरे पिछले पत्र का अन्त घबराहटवाला था। उसके बाद इसका विश्वास नहीं था दूसरा लिख सकने के लायक शान्ति मिलेगी या नहीं। दो दिन यही दशा रही। आँखों का ज्वर रुकता ही नहीं था। किसी भी तरह बापू उपवास छोड़ें, तो कितना अच्छा, न करे नारायण और यह शरीर न रहे तो क्या होगा, इन सब भावनाओं से दलीलें करने से इनकार करने पर भी मैं दलीलें किया करता था । इसलिए दूसरे दिन सबेरे बापू कहते हैं : 'तुम्हारे साथ चौबीस घण्टे बात करने को तैयार हूँ। परन्तु तुम अच्छी तरह समझ लो।' इस प्रकार कहकर बहुत समय मुझे समझाने में दिया। थोड़े ही समय में मुझे अकल्पित शान्ति हुई और इस पत्र का आरम्भ जरा भी विह्वलता के बिना किया है, इससे इस बात की शहादत मिलती है। मेरे मन की शान्ति वापस आ गयी है, इतना ही नहीं परन्तु 'हरिनो मारग छे शूरानो' का प्रकाश जैसे हृदय में अक्षरशः पहले की अपेक्षा कुछ नया ही पड़ रहा है। इसका कारण है श्रवण और मनन। मैंने तुरन्त ही देखा कि अश्रुभक्ति करने की अपेक्षा श्रवणभक्ति अधिक आवश्यक है। श्रवण बढ़ता गया, वैसे-वैसे मनन बढ़ता गया और आज शान्ति भोग रहा हूँ। सबको ऐसी शान्ति हो जाय तो कितना अच्छा ? इसीलिए यहाँ के वातावरण

की बातें करके जितनी श्रवणभक्ति पाठकों से कराने की मेरी शक्ति हो, उतनी कराकर आज मैं कृतकृत्य बनूँगा।

पाठक जानते हैं कि पहले दिन मुझे तो हुक्म मिला था कि मैं दलील न करूँ; परन्तु मौलाना को कोई हुक्म दिया जा सकता था ? उनसे तो यह कहा गया कि रोयें नहीं और धीरज रखें। उन्होंने रोते-रोते तर्क किया, प्रेमभरे रोष से बहस की, 'यह क्या किया, बापू ? यह मुहब्बत कहलाती है ? हमें तो आपने ठगा है। तमाम कदम हमारे साथ सलाह-मशविरा करने के बाद ही उठाने का आपका करार था, वह कहाँ गया ?'

'कुछ बातें तो ऐसी होंगी न, जिनके बारे में मुझे खुदा के साथ हिसाब-किताब कर लेना होगा ?'

'परन्तु आपने तो खुदा को आपके और हमारे बीच में रख दिया है।'

'नहीं, हम दोनों खुदा के बन्दे। दोनों ने ही खुदा के साथ करार किया है। मैं उसके साथ बातें कर रहा हूँ। यह काम ही ऐसा है, जिसमें मुझे किसीके साथ परामर्श करना नहीं होता। यह चीज तो मेरी हड्डियों में भरी हुई है। मेरा सारा जीवन इस पर ही बना है। मेरे पहले के उपवास सभी किसीसे पूछे बिना किये गये थे।'

'मगर इस प्रकार बिलकुल अचानक कदम उठाने में उतावली नहीं होती ? आप हँस रहे हैं, आपको तो इसमें कुछ नहीं लगता, परन्तु हमारा क्या होगा ?'

'आपका कुशल ही होगा और आप मान ही क्यों लेते हैं कि मैं मर जाऊँगा ?'

'आप किसलिए मान लेते हैं कि 'मैं जिऊँगा ही ?' आप ऐसे खेल खेलें और यह मानें कि आपको कुछ नहीं होगा ?'

'भाई, आप मानिये, शान्त होइये, इस तरह रोइये नहीं, मैं आपको अधिक कल समझाऊँगा।'

हकीमजी भी घबराये हुए जरूर थे, उनका कहना यह था कि इस समय समझौते की बातें हो रही हैं, तब आप ऐसा भयंकर कदम उठायें तो उचित नहीं कहा जा सकता, पन्द्रह दिन की मोहलत दीजिए और पन्द्रह दिन में देश की स्थिति न सुधरे तो आप जरूर रोजा कर लें, हम आपको नहीं रोकेंगे।

'पन्द्रह दिन की मोहलत देकर देखिए, मेरे उपवास की बात पन्द्रह दिन प्रकट न कीजिए। यहाँ किसीको आने न दीजिए। फिर आकर मुझे कहिए कि अब देश शान्त है तो उस दिन के ६ दिन बाद मैं उपवास छोड़ दूंगा !' हकीम साहब हँसे। शरीर की दृष्टि से बातें करने लगे तो बापू बोले : '२१ दिन के रोजे के बाद मेरी तबीयत आपसे तो अच्छी ही होगी।' बेगम साहिबा तो पर्दा छोड़कर सबके बीच आकर बैठ गयीं और आग्रहपूर्वक कहने लगीं : 'मैं तो उपवास छुड़वाये बिना उठनेवाली ही नहीं। बी अम्मा ऊपर आ सकतीं तो आतीं, मगर वे तो बिछौने पर हैं, इसलिए मैं आयी। आप रोजा छोड़िए, नहीं तो २१ दिन के रोजे हम सब करेंगे।' डेढ़ बज गया और अधिक बहस न करके सब उठ गये। गांधीजी तो १॥ बजे कातने बैठ गये, क्योंकि कातना रह गया था !

१८ तारीख की सुबह हुई। सबेरे सब घरवालों के, मेरा और दूसरों के मुँह उतरे हुए थे। बापू ने फिर बातें शुरू कीं।

इतने में मुलतान से एक देहाती बूढ़ा कद्दावर मुसलमान दरवाजे पर के स्वयंसेवक को धक्का मारता हुआ दौड़ता-दौड़ता अन्दर आया, गांधीजी के साथ हाथ मिलाये और बैठा। उसके आनन्द का पार नहीं था। इतने में मौ० मुहम्मदअली ने कहा : 'आपको पता है कि इन्होंने २१ दिन के रोजे शुरू किये हैं--हिन्दू-मुसलमान लड़ना बन्द नहीं करते इसलिए ?' बुड्ढा शर्मिन्दा हुआ। कहने लगा : 'दोनों कौमों के बदमाशों को कोई उभाड़ता है और ये झगड़े होते हैं। हम तो कोई लड़ते नहीं।' इतना कहकर रोजे छोड़ने का आग्रह करने लगा : 'पाव-पाव दूध पीते रहिये। बहुत थोड़ा खाइये, एकांतरे खाइये। आप जैसों के लिए तो खाना, बैठना, उठना सभी इबादत है।'

खूब खुश होकर गांधीजी कहते हैं : 'और न खाऊँ, रोजा रखूँ, यह भी इबादत नहीं ?' वह परेशान हुआ, 'परन्तु मुझ गरीब की मिन्नत सुनकर तो खाइये' कहकर उठा। 'फिर दस-बीस रोज के बाद आ जाऊँगा।' बापू बोले : 'जरूर, बीस रोज के बाद आना।'

मुझे पूछने लगे : 'अच्छा, महादेव, चौरीचौरा के और बम्बई के मामले में उपवास किये सो तो तुम समझते हो ?' 'हाँ, जरूर।' 'तब इस उपवास को क्यों नहीं समझते ?' मैंने कहा : 'वहाँ तो आपने अपना कसूर माना था,

यहाँ तो अपराध मान लेने का कारण नहीं। यहाँ आपने कोई अपराध किया, यह कौन कह सकता है?'

'हें, यह कितनी गलतफहमी! चौरीचौरा में मुझे कभी न देखनेवाले, न जाननेवाले मनुष्य थे। यहाँ तो मुझे जाननेवाले, मेरे साथ प्रेम करने की बात कहनेवाले लोग हैं।'

'शौकतअली और मुहम्मदअली तो रोकने की कोशिश कर रहे हैं, कुछ आदमी इनके हाथ में भी न आयें तो उनका ये क्या करें, आप क्या करें? वे तो समय बीतने पर सुधरेंगे।'

'यह तो तुमने दूसरी बात की। शौकतअली और मुहम्मदअली तो कुन्दन हैं। वे खूब प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु यह बाजी हाथ में नहीं, छह महीने पहले थी। मैं जानता हूँ कि इस उपवास से उनके अन्तर में खलबली मचेगी। परन्तु वह इसका आड़ा-टेढ़ा असर है। लेकिन किसी पर प्रभाव पैदा करने के लिए तो यह उपवास मैं नहीं कर रहा हूँ।'

'मगर आपने अपना कोई कसूर तो नहीं बताया?'

'कसूर? मैंने तो हिन्दू-जाति के साथ विश्वासघात किया! मैंने हिन्दुओं को मुसलमानों के साथ मिल जाने को कहा; उनके पवित्र स्थानों की रक्षा के लिए तन, मन, धन अर्पण करने को कहा; आज भी उन्हें अहिंसा का, मारे बिना मरकर झगड़े शान्त करने का पाठ दे रहा हूँ; और उसका परिणाम क्या देखता हूँ? कितने मन्दिर टूटे! कितनी बहनों ने मेरे आगे शिकायत की है! कल ही मैंने हकीमजी से कहा कि बहनें मुसलमान गुण्डों से डरती ही रहती हैं, बहुत-सी जगहों पर उनका बाहर निकलना कठिन है।

'····भाई का पत्र आया है। उनके बच्चों पर जो बीती, वह सहन हो सकती है? अब मैं हिन्दुओं को किस मुँह से कहूँ कि तुम सहन करते रहो। मैंने तो उन्हें विश्वास दिलाया था कि मुसलमानों की मुहब्बत का अच्छा ही असर होगा, फल का विचार किये बिना उनके साथ प्रेम करो। यह विश्वास सच्चा सिद्ध करने की आज मेरी शक्ति नहीं रही, न मुहम्मदअली या शौकतअली की रही। मेरी बात कौन सुनता है? फिर भी मुझे हिन्दुओं को मरने की ही बात कहनी है।

यह मैं मरकर ही कर सकता हूँ, मरकर ही मरने की कुंजी बता सकता हूँ, और किस तरह बताऊँ ?

'मैंने असहयोग का आन्दोलन उत्पन्न किया। आज देखता हूँ कि अहिंसा की गन्ध तक जाने बिना लोग एक-दूसरे के साथ असहयोग करने लगे हैं। इसका कारण क्या ? इसका कारण यही कि मैं स्वयं अहिंसक नहीं। मेरी वह अहिंसा कैसी ? यदि वह पराकाष्ठा तक पहुँची हुई हो, तो जो हिंसा मैं आज देख रहा हूँ, वह न देखूं। इसलिए मेरा उपवास प्रायश्चित्त है, तपश्चर्या है। मैं किसीको दोष हरगिज नहीं लगाता। मैं तो अपना ही कसूर बताता हूँ। मेरी शक्ति चली गयी है। हारकर, ताकत खोकर ईश्वर के ही दरबार में अर्जी करनी रही। अब वही सुने, दूसरा कौन सुननेवाला है ?'

यह तो जलप्रपात-सा था। उस दिन के उद्‌गार उद्‌धृत करने में मैं असमर्थ हूँ, परन्तु प्रायश्चित्त का अर्थ यही है ? ऐसे उपवास ही ? ऐसे उपवास हिन्दू-धर्म में हैं ? इस तरह के प्रश्न उठते ही रहते। बापू बोले :

'वाह ! हैं तो। ऋषि-मुनि क्या करते थे ? वे घोर तपस्या करते, वे क्या वन में कन्द-मूल-फल खाते हुए तपश्चर्या करते होंगे ? और हजारों वर्ष की तपस्या की थी, गुफाओं में तपश्चर्या सुनते हैं वह ? पार्वती ने अपर्णा-व्रत लिया था सो क्या होगा ? तप और जप, इन दो चीजों से हिन्दू-धर्म तो भरा है।

'इस उपवास के भीतर जितना गहरा विचार निहित है, उतना गहरा विचार शायद पहले अन्य उपवासों के सम्बन्ध में हुआ होगा। ऐसे उपवास की कल्पना तो मैंने उस दिन से की हुई है, जिस दिन असहयोग शुरू किया था। असहयोग के आरम्भ के समय मुझे खयाल हुआ था कि ऐसा भयंकर शस्त्र लोगों के हाथ में रख रहा हूँ और इसका दुरुपयोग होगा तो प्राणों की बाजी लगानी पड़ेगी। अब तक के उपवासों का उद्देश्य तो मर्यादित था, इस बार के उपवास का विश्वव्यापी है। इसमें अपार प्रेम छिपा हुआ है और आज इस सागर में मैं नहा रहा हूँ।'

तीसरे दिन शौकतअली आये। शौकतअली के लिए मुहम्मदअली इन्तजार कर रहे थे, क्योंकि उन्हें अब भी आशा थी कि शायद शौकतअली बापू का विचार बदल सकेंगे। बापू ने उन्हें आश्वासन दिया था

कि 'शौकत या आप मुझे समझा दें कि उपवास करने में बड़ी भूल हुई है, उपवास अनुचित है तो मैं छोड़ दूँगा।' इसलिए शौकतभाई के आने से मुहम्मदअली में शक्ति और आशा आयी। परन्तु शौकत बापू से बहस किये बिना शान्ति से सुनते ही रहे और अन्त में 'हाँ, महाराज सब ठीक है' कहकर बाहर निकले! उन बातों का श्रवण टूटी-फूटी तरह से भी करा सकूँ तो सारे उपवास के रहस्य पर अब भी अधिक प्रकाश पड़ेगा।

शौकत बोले : 'हमने अभी तक कुछ किया ही नहीं, यह कहूँ तो हर्ज नहीं। आप अखबार के द्वारा विचार फैलाते हैं, परन्तु बड़े दौरे कहाँ किये हैं? आप सारे उपद्रव-क्षेत्रों में हो आइये और वातावरण को साफ कीजिए।'

गां० : 'भाई, मेरे लिए तो अपने धर्म की बात आ गयी। चारों ओर देखा कि मैं तो अपनी सारी शक्ति लगा चुका हूँ। मैं दौरे लगाकर कुछ भी सफाई नहीं कर सकता। आज तो आम लोगों को हम सबके बारे में सन्देह हो गया है। यह न समझो कि दिल्ली में हिन्दुओं का मुझ पर विश्वास ही है। उन्होंने कुछ भी सर्वसम्मति से नहीं किया। और कारण स्पष्ट है। जिसके घर में खून हुए हों, उससे जाकर मैं माफी की बात कहूँ तो कौन सुनेगा? अंजुमन के लोग हकीम साहब की सुनने से इनकार करते हैं। यह सब हो रहा था कि कोहाट की बात सुनी। मैंने अपने मन से पूछा, 'अरे जीव, अब क्या करना है?' मैं तो irrepressible Optimist (अटल आशावादी) ठहरा, परन्तु हमेशा बुनियाद पर आशा बाँधता हूँ। आप भी अटल आशावादी हैं, परन्तु बुनियाद के बगैर उम्मीदें बाँधते हैं। आज आपकी कोई नहीं सुनेगा, गुजरात में विसनगर में कोई अब्बास या महादेव की सुनने को तैयार नहीं था। अहमदाबाद में शरारत होने से रुक गयी, उमरेठ में तैयारी थी। यह सब होना न रोका जा सके, यह मेरी अशक्ति है। ऐसी अशक्ति के मौके पर मैं क्या करूँ? मैं तो हजारों-लाखों बहनों के सम्पर्क में आया हूँ, वे यह मानकर चलती हैं कि गांधी कहे सो बात सही है, वे आज भयभीत दशा में हैं। इन सब बहनों को मुझे आज मरकर दिखाना है।

'दोनों जातियाँ बहादुरी से लड़तीं तो क्या मैं उपवास करता? परन्तु यहाँ तो नामर्दी की हद हो गयी। पत्थर फेंककर भागें, अपराध

करके भागें, फिर अदालतों में पहुँचें और वहाँ जाकर झूठी शहादतें दें। मुझे तो आप पर विश्वास रखना है। आप और दूसरे जितना हो सके, उतना कर रहे हैं। परन्तु मैं हिन्दुओं से क्या कहूँ? मैं तो आपसे कह दूँ कि मैं अपनी ताकत खो बैठा हूँ। अब तो फिर से प्राप्त करना चाहता हूँ।'

शौ० : 'आपने लोगों को जो दवा दी, उसे वे पीने को तैयार नहीं। उनके शरीर में जिस रोग ने घर कर लिया है, वह जब बाहर फूट निकलेगी, तब उन्हें पता लगेगा कि गांधी कहता था सो सही था। परन्तु आज तो ऐसा लगता है कि आप खुदा से कुश्ती लड़ रहे हैं। आपने दोनों कौमों को मर्द बनाकर—थोड़े मर्द तो बनाये ही—थोड़े दिन में अजब चमत्कार दिखा दिया। परन्तु आपकी दवा की खुराक कम रही। आपका बीज क्या मर जायगा? यह क्यों मानते हैं कि आज बीमारी बढ़ गयी है। एक डॉक्टर है, जो दवा देता है। वह चला गया तो बाद में दूसरा उसकी दवा जारी रखने के बजाय अपनी देने लगा। आखिर तो आपकी दवा ही गुण करेगी। पर वह दूसरे अनाड़ी वैद्यवाली इस समय उल्टा असर कर रही है, इससे आप घबरायें क्यों? आपने तो जातियों में जो जहर था, उसे बहुत निकाला। फिर जहर बढ़ा। मैं तो लड़ने की जगह जाकर गाली देकर कहूँ कि 'कम-बख्तो, कटकर मर जाओ, कटकर। खुदा नहीं मरा।' आज जो जहर और अन्धापन है, जो शैतानियत आज जहाँ-तहाँ दिखाई देती है, वहाँ आपकी या मेरी कोई नहीं सुनेगा। शायद लड़ाई करके थकने पर सुनें। मस्जिद किसीके गिराये नहीं गिरेगी। मन्दिर किसीके तोड़े नहीं टूटेगा। हमारे यहाँ ईंट, चूना, पत्थर वगैरह जितना चाहिए, उतना है। तुरन्त फिर से बनाया जा सकेगा। क्या कहूँ? आपके आगे मुँह खोलते शरम आती है। मैं आपको क्या समझाऊँ? आपको अपने प्रयत्न जारी ही रखने चाहिए थे। इस तरह उपवास न कीजिए।'

गां० : 'मैं खुदा के साथ कुश्ती कर रहा हूँ? मेरी हड्डी में कहीं भी घमण्ड हो तो मैं मिट जाऊँगा। भाई, यह उपवास तो बहुत दिनों की इबादत का नतीजा है। इससे पहले रात को तीन-तीन बजे उठकर मैंने खुदा से पूछा है कि क्या करूँ? इसका जवाब १७ तारीख को दोपहर में मुझे मिला। मेरी भूल हो तो खुदा मुझे माफ करेगा। मैंने तो जो

कुछ किया है, वह खुदा से बहुत डर-डरकर किया है और वह भी मुसलमान के घर में बैठकर। मेरे धर्म में ऐसा है कि खुदा की इबादत वही करे, जो थोड़ा नुकसान बर्दाश्त कर ले। मेरे धर्म में जप-तप करने का हुक्म है। इस्लाम में भी मैंने तो तप के उदाहरण देखे हैं। 'सीरत' में पढ़ा है कि पैगम्बर साहब बहुत बार रोजा रखते थे और दूसरे को मना करते थे। उनसे किसीने पूछा कि ऐसा क्यों करते हैं? उन्होंने कहा था कि मुझे खुदाई खुराक मिलती है। पैगम्बर साहब ने फाका—उपवास—करके ही काम किये। मेरा तो यह विश्वास हो गया कि जिसका खुदा पर अथक विश्वास हो, वही उपवास कर सकता है। पैगम्बर मुहम्मद साहब को जो वही आती थी, वह ऐश-आराम में नहीं आती थीं। वे तो ज्यादातर फाके करते और कभी-कभी खजूर खा लेते थे। जब वही आती, तब जागरण करके फाका करके सारी रात खड़े रहते थे। आज भी उनकी यह तस्वीर मेरी आँखों के सामने खड़ी है।

'मेरे उपवास में एक खामी हो सकती है तो यह कि इसमें अप्रत्यक्ष प्रभाव डालने की बात छिपी है। लोग मुझसे कहें कि शौकत-मुहम्मद ने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया तो यह मुझसे सहन नहीं हो सकता। इसके लिए मुझे मरना ही चाहिए। मैं तो अपना दिल साफ कर रहा हूँ, ताकत जुटा रहा हूँ।

'मैं आपसे इतना इसलिए कहता हूँ कि उससे गलतफहमी न हो। आप मानें कि मैं तो एक तरह से क्षणभर के लिए मुसलमान बनकर ही यह कह रहा हूँ। मैंने तो इसलाम के लिए अपने में जितनी भावना उत्पन्न हो सके उतनी की, क्योंकि मुझे तो प्रत्येक धर्म की अद्भुतता देखनी है। अब मैं हृदय को अधिक शुद्ध करने और ज्यादा मजबूत करने बैठा हूँ। यदि ये दोनों बातें हो सकेंगी तो दोनों जातियों पर असर पड़ेगा।

'मेरा सिद्धान्त है कि शरीर का जितना दमन करोगे, उतना ही आत्मा का बल बढ़ता है। आज हम कोई काम ही नहीं कर सकते। हमें बदमाशी का मुकाबला करना है। आज हमारी तपश्चर्या काफी नहीं।'

शौ० : 'मगर देश के दिल पर आपके उपवास से कितना आघात पहुँचेगा, इसका भी आपका धर्म विचार नहीं करने देता?'

गां० : 'नहीं, नहीं करने देता, क्योंकि मनुष्य भोला है, अक्सर सामने-वाले को खुश करने के लिए वह न करने के काम कर लेता है। इसलिए धर्म यह सिखाता है कि दुनिया तेरे विरुद्ध खड़ी हो तो भी तू अपना काम कर। तेरे उपवास से जगत् को दुःख होगा, ऐसा गर्व तू क्यों रखे ?

'और इस तरह कितनों का विचार करके हम धर्म छोड़ें ? इस तरह करते रहें तो कोई मर्यादा ही न रहे। रामचन्द्र की माता कैकेयी ने माँगा कि रामचन्द्र वनवास जाय। दशरथ को यह स्वीकार करना पड़ा। आम तौर पर तो यह कहा जाता है कि दशरथ पागल हो गया था। परन्तु रामचन्द्र क्यों डिगने लगे ? उनसे कहा गया कि पिता तुम्हारे बिना रो-रोकर मर जायेंगे, अयोध्या अनाथ हो जायगी, परन्तु उन्होंने इन सब बातों को तुच्छ माना।

रघुकुल रीति सदा चलि आई
प्राण जाहिं बरु वचन न जाई।

अयोध्या निस्तेज हुई, दशरथ की मृत्यु हुई, परन्तु राम हिले ही नहीं। विश्वामित्र ने दशरथ से दो लड़के माँगे। क्या दशरथ ने देने में आना-कानी की ? हरिश्चन्द्र ने अपनी स्त्री की गर्दन पर छुरी चलायी। ये सब काम ईश्वर-भक्त से—खुदापरस्त से ही हो सकते हैं, खुदा के साथ घमण्ड रखनेवाले से नहीं हो सकते।'

जो सवाल मैंने पूछा था, वही शौकतअली ने पूछा : 'आपका क्या अपराध हुआ ? आपकी नीयत तो नेक थी ?' इसका जवाब वैसा ही दिया, जैसा पहले दिया जा चुका है।

शौ० : 'ऐसी तपश्चर्या में औरों की सलाह का दखल हो ही नहीं सकता ?'

गां० : 'नहीं, यह तो मेरे और खुदा के बीच की ही बात है। किसीकी सलाह लेना जरूरी हो तो यह बात ही छोड़ देनी चाहिए।'

शौ० : 'तपस्या में नुकसान हो, जान और तबीयत को नुकसान हो तो उसमें दूसरा न्याय नहीं कर सकता ?'

गां० : 'नहीं, ऐसी कमजोरी हो तो वह जरूर मर जायगा। भले ही मरे। दुनिया और देह कोई चीज नहीं। जब जेल में हम 'उस्वए साहबा' पुस्तक पढ़ते थे तो मैं नाचता था, यह कहा जा सकता है। उसमें एक बात

है। नाम तो मैं भूल गया। एक मनुष्य को हजरत उमर ने ५००० दीनार भेजे थे। वे रोने लगे। उनकी स्त्री ने पूछा: 'क्यों रोते हो?' उन्होंने उत्तर दिया: 'मेरे यहाँ दुनिया—माया—आ गयी। अब क्या होगा?' दीनार तो हजरत उमर जैसे पाक इन्सान की नजर थी। मगर इसे भी उन्होंने माया समझा। रुपया, शरीर सब क्षणिक हैं, किसी काम के नहीं। खुदा को इस शरीर से जितना काम लेना हो उतना ले, अभी लेना हो तो भले ही इसे गिरने न दे। इस मामले का कोई परिणाम न हो तो हमेशा के लिए अनशन व्रत लेने का मेरा विचार था। परन्तु मौलाना और हकीमजी की खूब बातें सुनकर उसी समय यह विचार छोड़ दिया। हकीमजी ने कहा: 'यह विचार मन में से ही निकाल दीजिए।' मैंने कहा: 'यह मन में से तो कैसे निकल सकता है? क्योंकि जिसे मैं धर्म मानता हूँ, उसे तो मैं पूरा ही करूँगा। मैं तो आपसे कहता हूँ कि यदि आपके धर्म में गैरमुस्लिम कौमों के साथ मुहब्बत रखने की बात लिखी हो तो अच्छा है, तो जितनी हो सके मुहब्बत पैदा कीजिए। अगर न लिखा हो और आप मुहब्बत न करें तो हमें तबाह (फना) हो जाना पड़ेगा और उस समय मुझे जीते रहने का हक नहीं रह जायगा। मैंने तो ख्वाजा हसन निजामी से कहा था कि रास्ते चलते भिखारी को, भंगी-चमार को और निराश्रितों को क्या मुसलमान बनाते हो? मुझे बनाओ न? मुझे बना लेंगे तो और भी बनेंगे। ये गरीब इस्लाम को स्वीकार करके खुदा को पहचानेंगे? इनके बढ़ने से इस्लाम की ताकत क्या बढ़ेगी?'

बातें बहुत होती रहतीं, परन्तु गांधीजी थक गये थे। शौकतअली उठे। उठते-उठते बोले: 'हर रोज नमाज के वक्त कई दुआएँ माँगता हूँ। उनमें पहली हिन्दू-मुसलमान ऐक्य की, दूसरी यह कि मेरी माँ इस्लाम को स्वतन्त्र देखने और स्वराज्य देखने तक जीती रहे और आखिरी दुआ यह कि महात्मा गांधी की दुआ बर आये।'

मौ० शौकतअली ने बहुत बहस नहीं की, इससे गांधीजी को शान्ति हुई। मौलाना इशारे में ही समझ गये हों, ऐसा मालूम हुआ।

उपवास का रहस्य बताने के लिए मैंने इतनी बात धीरज और शान्ति से कही है। परन्तु शोक और सावधानी दो अलग चीजें हैं। मनुष्य शोक करने लगे तो उसमें निर्बलता आती है और कोई भयंकर आघात पहुँचे

और उससे सावधान हो जाय, जाग्रत हो जाय तो उन्नति का मार्ग सधता है। गांधीजी के उपवास की बात बड़ी-से-बड़ी आघातजनक है। परन्तु वे यह आशा रखते हैं कि यह आघात शोकजनक न सिद्ध होकर जाग्रत करनेवाला सिद्ध हो, और निराधारपन असह्य हो जाने से ईश्वर की गरमी प्राप्त करने के लिए भारी तपस्या कर रहे वे आज भी अपने सन्देश द्वारा, पत्रों द्वारा, लोगों को आशा दे रहे हैं; हृदय का क्षुद्र दौर्बल्य मिटाने का उपदेश कर रहे हैं। ढेरों तार रोज अनेक स्थानों से आते हैं। अधिकांश की ध्वनि यह होती है कि आपका कहा करेंगे, अपने झगड़े भूल जायँगे, आप उपवास बन्द कीजिए। अनेक मित्र भी लिखते हैं कि उपवास बन्द कीजिए। सबसे गांधीजी इसी भाव में अनुरोध करते हैं: 'मेरे उपवास से दुखी न होइए। ईश्वर ने मुझे इतनी तपस्या करने का बल दिया, इसके लिए मित्रों को तो आनन्द मानना चाहिए।' किसीको लिखते हैं: 'उपवास का त्याग करता हूँ, तो अपनी आत्मा का त्याग करता हूँ। मैं मरने के लिए उपवास नहीं कर रहा, जीने के लिए कर रहा हूँ। फिर तो जैसी ईश्वर की इच्छा', तो किसीसे कहते हैं: 'इक्कीस दिन के उपवास हैं क्या? यदि इतने उपवासों में इतना अपार प्रेम मिल जाता हो, तो ये उपवास तो किसी गिनती में नहीं।'

तार द्वारा उपवास तोड़ने का आग्रह करनेवाले अनेक दलीलें करते हैं। कोई कहता है: 'आप हमारे आधार हैं। कुछ शहरों के बेवकूफों की बेवकूफी के कारण क्यों अपने जीवन का अमूल्य धन लगा रहे हैं?' तो कोई कहता है: 'यह देश बिलकुल नालायक है, आपके उपवास का उस पर कोई असर नहीं होगा, आप छोड़ दीजिए'; तो कोई कहता है: 'इस प्रकार दूसरों के पाप के लिए आप क्यों देह-दमन कर रहे हैं?' तो कोई शास्त्री लिखते हैं: 'हिन्दू-धर्म पाँच दिन से अधिक उपवास मित्रों से पूछे बिना करने का निषेध करता है। आपके उपवास धर्मविरुद्ध हैं। आप छठे दिन उपवास छोड़ दीजिए।' इन लोगों को अपनी कमजोरी के बावजूद तार से जवाब दिलवाते हैं: 'क्या आप नहीं चाहते कि हिन्दू के नाते मुझे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए? लायक-नालायक का मेरे लिए सवाल नहीं, मुझे यह विचार करना है कि मेरा धर्म क्या है'; 'खुदा के नाम पर शुरू किये हुए उपवास पूरे करने ही होंगे'; 'मैं

धर्मशास्त्र का शब्दार्थ करनेवाला नहीं हूँ, मैं जिस प्रकार धर्म का अर्थ करता हूँ, उसके अनुसार हिन्दू-धर्म में तो ऐसी तपस्याएँ भरी पड़ी हैं।'

यह तो बात हुई उपवास तोड़ने का आग्रह करनेवालों की। थोड़े-से—गिनती के—तारों में 'आपके उपवास निर्विघ्न समाप्त हों' ऐसा भी होता है। कल सूरत से एक तार आया, उसमें तो '२१ दिन के उपवास के लिए वधाई' के शब्द थे। बापू बहुत प्रसन्न हुए। तुरन्त ही हँसकर कहा: 'कोई जैन होगा।' रेवाशंकरभाई बम्बई से उसी वक्त आकर बैठे थे। उन्होंने भी ऐसे ही वचन कहे थे। इससे बापू को जो शान्ति हुई, उसका क्या वर्णन करूँ! रेवाशंकरभाई ने, जिनसे पूना के अस्पताल में बापू की अशक्ति देखी नहीं जाती थी, बिछौने पर बैठकर कहा: 'मैं जरा भी दुःखी नहीं हुआ! इसमें कुशल ही है। आपके लिए दूसरा उपाय नहीं रह गया था। आपको कुछ हो जायगा, यह डर मुझे हुआ ही नहीं। हमारे जैन मुनि तो कितने ही उपवास करते रहते हैं।' खूब खुश होकर बापू कहते हैं: 'करते तो हैं। मैं बड़ा आदमी ठहरा, इसलिए सब भाग-दौड़ और घबराहट मचा देते हैं। वैसे, बेचारे दूसरे कितने ही उपवास करते हैं। उनका दुनिया विचार ही नहीं करती!' इतना आनन्द श्री नटराजन के पत्र से हुआ, जिसका भाव ऐसा था: 'पहले तो मैं जरा स्तब्ध हुआ। बाद में देखा कि आप इसके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते थे। आपके उपवास से हमारे देश के इतिहास में एक मंगल प्रकरण शुरू होता है।'

यह तारों की बात कर रहा हूँ, तब दुःख में भी बापू कितना विनोद करते हैं, इसका एक नमूना दे दूँ। लाला हरकिशनलाल ने तार में लिखा: 'हम जब १९२० में मिले थे, तब आपने कहा था कि अस्पृश्यता-निवारण, देश का स्वातन्त्र्य और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य—ये तीन वस्तुएँ मुझे अत्यन्त प्रिय हैं और तीन मेरे काम हैं। आप एक के लिए मरें, इसकी अपेक्षा तीनों के लिए जियें तो? जियें, काम करें और सबके लिए संकट और कष्ट सहन करें, प्रार्थना करें, पर आत्महत्या न करें।'

गांधीजी तार सुनकर खिलखिलाकर हँसे और उत्तर स्वयं ही लिखा: 'धन्यवाद! उपवास मरने के लिए नहीं, परन्तु आत्मशुद्धि के लिए। ईश्वरेच्छा होगी तो इसे पूरी हुई देखने और आपसे चरखे का तार

निकलवाने के लिए मैं जिऊँगा।' ईश्वराधीन रखी हुई इस अमर आशा में हमारी भी आशा निहित है।

आज सात दिन पूरे हुए। कमजोरी बहुत जान पड़ती थी। शरीर में कृशता अब साफ दिखायी देती है। प्रार्थना के समय प्रभात में बिस्तर पर उठकर बैठने में भी कुछ मुश्किल होती है। आज तो खुद ही बोले : 'अब मेरी आवाज बैठने लगी है। मुझसे भजन भी जोर से नहीं गाये जाते। बोलना तो अब बिलकुल बन्द ही करना होगा।'

यह स्थिति देखकर धीरज रखना आसान है, यह तो कोई हरगिज न कहेगा। परन्तु धीरज के सिवा और क्या चीज काम आ सकती है? हम अपना हृदय-दौर्बल्य छोड़ें, दिल के भीतर झाँककर देखें, जप से पुनीत हुआ तप करें, तप से सिद्ध हुआ जाप जपें, तो ही हम अल्प प्राणियों की प्रार्थना कुछ कारगर हो।

[चरखा द्वादशी (ता० २५-९-१९२४) अनशन अष्टमी]

परिशिष्ट

परिशिष्ट : १

कुछ खुली चिट्ठियाँ

१. जवाब का जवाब

मि० पोपली और फिलिप्स ने मेरे 'प्रत्येक अंग्रेज' के नाम लिखे गये पत्र का उत्तर दिया है।* पत्र मित्रभाव से परिपूर्ण है। मैं उसकी पूरी कद्र करता हूँ। परन्तु उसीके साथ मेरा यह भी कहना है कि उनकी और मेरी दृष्टि में बुनियादी फर्क है, जिसके कारण वे और मैं आमने-सामने किनारे पर खड़े हैं।

---

* दो अंग्रेजों का जवाब

प्रिय मि० गांधी,

हमने प्रत्येक अंग्रेज को संबोधित करके लिखा हुआ आपका पत्र पढ़ा। उसके आरपार निकल जानेवाले होने पर भी उदार रवैये के लिए हम आपका आभार मानते हैं। आपके द्वारा उच्चरित ध्वनि स्वीकार करने और उसकी प्रतिध्वनि करने के लिए हमारे भीतर कुछ-न-कुछ प्रेरणा होती है। हम किसी संस्था के बाकायदा प्रतिनिधि नहीं हैं, परन्तु हम मानते हैं कि इंग्लैण्ड में हमारे लाखों देशबन्धुओं की और भारत में बहुत-से अंग्रेजों की भावनाएँ हमारे जैसी ही हैं। आपका पत्र पढ़कर हमें विश्वास हो गया है कि आपके और हमारे बीच सचमुच शत्रुता पैदा हो ही नहीं सकती।

हम आपको आरम्भ में ही कह दें कि जिस हद तक ब्रिटिश हुकूमत अपने लाभ के लिए दूसरी जातियों पर सत्ता जमाने की और उन्हें चूस लेने की हिमायत करती है, उनके साथ अमानुषिक व्यवहार करने, मादक पदार्थों का व्यापार करने, अत्याचारी कानून बनाने और अमृतसर जैसी घटनाएँ होने के ढंग पर राज्य करने का समर्थन करती है, उस हद तक ऐसी हुकूमत का नाश होते देखने के लिए आपकी तरह ही हम भी आतुर हैं। हम यह भी आसानी से समझ सकते हैं कि आधुनिक नाजुक अवसर पर ब्रिटिश सरकार की कुछ कार्रवाइयों के—जिनकी निन्दा हम भी आप ही की तरह करते हैं—कारण आपको हुकूमत का कृष्ण पक्ष ही दिखाई देता है। परन्तु अपने देशबन्धुओं के निजी अनुभव से हम जानते हैं कि ये सब प्रवृत्तियाँ—जिनके लिए आपको और हमको बराबर अफसोस है—एक तरफ से होने पर भी आज स्वतंत्र राष्ट्रों के एक महाराज्य के आदर्श के प्रति श्रद्धा रोगी

जब तक मेरा यह खयाल था कि ब्रिटिश साम्राज्य की प्रवृत्ति उसकी अनेक त्रुटियों के बावजूद संसार और भारत के हित की ओर है, तब तक मैं ब्रिटिश हुकूमत से उसी तरह चिपटा रहा, जैसे बालक माता के स्तनों से

में खमीर की तरह लोगों के हृदयों में समा रही है। ये राष्ट्र भूतकाल के समान अनुभवों और भविष्य की समान आशाओं की श्रृंखला में स्वेच्छापूर्वक परस्पर गुँथे रहेंगे; वह महाराज्य दुनियाभर में स्वतंत्रता और प्रगति फैलाने की कोशिश करेगा। हम अपने बहुत-से देश-बन्धुओं की भाँति मानते हैं कि वह आदर्श सिद्ध करने की अनुकूलता ब्रिटिश साम्राज्य खास तौर पर देता है। और इसीलिए हम उसकी आज्ञा मानकर उसके प्रति वफादार रहना अपना धर्म समझते हैं।

इस बीच भारतीयों के प्रति व्यवहार करने में जो घमंड हमारे देशबन्धुओं में साधारण-सा हो चला है, उसके लिए हम पश्चात्ताप करते हैं। हम भारतवासियों को अपने भाई के रूप में, बराबरवाले के रूप में और बहुतों को हमसे बढ़कर मानते हैं। और हमें भारत के शासक बनने से उसके सेवक बनना ज्यादा पसन्द है। शासनतंत्र भी हम ऐसा ही देखना चाहते हैं कि जो एंग्लो इंडियनों के अथवा किसी और जाति के स्वार्थ के सामने दब न जाय, और जो लोकतंत्र के अत्यन्त उदार सिद्धान्तों के अनुसार ही शासन करे। इसके लिए हम चाहते हैं कि स्वराज्य का संविधान तय करने के लिए लोगों के—प्रत्येक राजनैतिक दल के, प्रत्येक जाति और पंथ के—प्रसिद्ध नेताओं की एक राष्ट्रीय परिषद् बुलायी जाय। मुद्दे की हरएक बात में हम आपसे सहमत हैं। भारत की सेवा में—उदाहरणार्थ, शिक्षा के कार्य में—आप और हम अवश्य साथ मिलकर काम कर सकते हैं। इस विश्वास और सहयोग के नूतन युग का आरंभ, आप सबको एक करनेवाले मंत्र के बजाय अलग करनेवाला मंत्र भारत की प्रत्येक स्वदेशाभिमानी संतान के कानों में फूँककर करें, यह हमारी दृष्टि से तो एक करुण घटना है!

यह हम बता चुके कि हमारे-आपके बीच में ऐसी कितनी अधिक बातें हैं, जहाँ हम एक साथ खड़े रह सकते हैं। परन्तु आपके कार्यक्रम के जिन भागों के बारे में हमारे मन में शंका बनी रहती है, वे भी हमें सरलतापूर्वक स्पष्ट कह देने चाहिए। कुछ छोटी बातों के बारे में आप अपने पत्र में ब्रिटिश पक्ष के साथ पूरा न्याय नहीं कर सके, उन्हें अलग रखकर हम तीन मुख्य बातें यहाँ पेश करने की इजाजत चाहते हैं। अकेले आध्यात्मिक बल पर ही आधार रखने का आपका आग्रह हममें आपके प्रति आदर और उसका अनुकरण करने की इच्छा उत्पन्न करता है; परन्तु उसीके साथ जो साफ-साफ और खुले तौर पर तलवार के न्याय को ही मानते हैं और संभव होते ही तलवार खींचने को तैयार हैं, उनके साथ आप दिली दोस्ती कर रहे हैं; इन दोनों बातों का आप कैसे मेल बिठा रहे हैं, यह हमारी कल्पना में नहीं आ सकता।

संपूर्ण राष्ट्रीय ढंग की शिक्षा की आपकी इच्छा में हम सच्चे दिल से आपके साथ पूरी तरह सहमत हैं; परन्तु इसके लिए संभव हो तो अगले ही वर्ष से शिक्षा-पद्धति को पूरी

चिपटा रहता है। परन्तु अब वह विश्वास उठ गया है। ब्रिटिश जनता ने पंजाब और खिलाफत के अपराधों का समर्थन किया है। एक छोटा-सा

तरह भारतीय बना देने के बजाय या बोलपुर जैसी सैकड़ों नयी संस्थाएँ देश में खड़ी करके भारत के युवक-वर्ग के बुद्धि-प्रवाह को उसमें लगा देने के बजाय आप उस प्रवाह को उसके मौजूदा बहाव से निकालकर खुले रेगिस्तान में लगा देना चाहते मालूम होते हैं, जहाँ वह देखते-देखते सूख जायगा। दूसरे शब्दों में कहें तो शायद कुछ वर्ष के लिए आपको देश की सारी शिक्षा को रोक देने की जोखिम भी उठाना मंजूर है। इस प्रकार शिक्षा-विहीन हो जानेवाले हजारों-लाखों युवकों के लिए और अधिक अच्छी शिक्षा की व्यवस्था होने तक मौजूदा जैसी-तैसी भी शिक्षा बिलकुल रुक जाय, क्या यह अच्छा है?

हिन्दू-मुसलमानों में एकता स्थापित करने और अपने मुसलमान भाइयों के साथ उनकी उम्मीदें बर लाने में मददगार होने की आपकी इच्छा को हम समझ सकते हैं, और उसके प्रति हमारी सहानुभूति है। परन्तु जैसी आपके दल के कुछ लोगों ने माँग की है, पुराने तुर्की शासन के अधीनस्थ कुछ जातियों को, आप जिसे ब्रिटिश जुआ बताते हैं, उससे भी बदतर विदेशी जुए के अधीन रखने की हिमायत क्या खतरनाक नहीं है? पश्चिमी एशिया के लोगों को गुलामी में फँसाकर भारत की आजादी हासिल करने की इच्छा तो आप हरगिज नहीं रख सकते।

सार यह कि आपके पत्र में प्रकट होनेवाली आपकी उदार वृत्ति के लिए हम आपको धन्यवाद देते हैं। उसी उदार भाव से हमने उसका उत्तर देने का प्रयत्न किया है। भारत को अपनी सर्वोच्च शक्तियों का विकास कर सकनेवाली स्वतंत्रता का उपभोक्ता देखने की आपकी इच्छा में और आपके इस विश्वास में कि भारत की सर्वोच्च शक्तियाँ मौजूदा दुनिया के दुःखों के लिए एक रामबाण औषधि होंगी, हम शरीक होते हैं।

भारत को अपना उच्चतम भविष्य सिद्ध करने की दिशा में सहायता देने में आपके साथ अथवा और किसी भी जाति के साथ सहयोग करने को हम तैयार हैं। क्या आपका यह भी आग्रह है कि हम अपने एकाध स्कूल के लिए सरकारी सहायता (अर्थात् भारतवासियों का ही रुपया) लें तो इसीके लिए आप हमारा सहयोग छोड़ देंगे? सचमुच, 'असहयोग' की अपेक्षा तो कोई अधिक स्फूर्तिदायक मंत्र अवश्य खोज निकाला जा सकता है। हमने खुले दिल से आपके कार्यक्रम की तीन बातों की तरफ आपका ध्यान आकर्षित किया है, जो हमारी राय में भारत की महत्ता के आपके सच्चे आदर्श प्राप्त करने में आपकी बाधक हो सकती हैं। वैसे उन आदर्शों के प्रति हमारी सच्चे हृदय से सहानुभूति है। हम यथाशक्ति उन आदर्शों तक पहुँचने का काम करना चाहते हैं। हम अपनी ब्रिटिश नागरिकता का इसी प्रकार परिचय दे सकते हैं।

आपके सच्चे,

बँगलोर, (हस्ताक्षर) **एच० ए० पोपली**

१५ नवम्बर १९२० (हस्ताक्षर) **जी० ई० फिलिप्स**

वर्ग अलबत्ता विरुद्ध रहा है, परन्तु जो अल्पमतवाले केवल अपना विरोध प्रकट करके बैठ जाते हैं और अधर्म करनेवाले को मदद देना तो जारी ही रखते हैं, वे अधर्म में प्रत्यक्ष भाग ही लेते हैं।

कम-ज्यादा का कुल जोड़ जब कम में ही आता हो, तब केवल ज्यादा की रकम ही उठाकर उसकी बड़ाई करना और उस बड़ाई में शामिल होनेवाले लोगों को अपनी मदद में लेना मुनासिब नहीं।

शैतान की कोशिश ही यह होती है कि पाप को पुण्य का बाना पहनाकर पेश किया जाय, जिससे अनजान मुसाफिर अनायास ही उसके जाल में फँस जाय। दुनिया को अभी तक शैतान के इस जाल में न फँसने का एक ही उपाय मिला है और वह यह है कि उसके राज्य की सीमा में पाँव ही न रखा जाय। मैं उन अंग्रेजों से, जो अपने स्वीकृत आदर्श का अनुसरण करने के लिए तैयार हैं, आज ही असहयोगवादियों के दल में सम्मिलित होने के लिए कहूँगा। इसके सिवा उनके लिए अधर्म से शुद्ध होने का और कोई मार्ग नहीं है। प्रख्यात डब्ल्यू० टी० स्टेड बोअर-युद्ध के समय ब्रिटिश सेना की हार के लिए ईश्वर-प्रार्थना करते थे। सच्ची धार्मिक अंग्रेज महिला मिस हॉबहाउस हर कीमत पर अंग्रेजों से लड़ते रहने और लड़ाई जारी रखने के लिए बोअरों को शौर्य दिलाती थी। ब्रिटिश लोगों द्वारा भारत के साथ किया गया विश्वासघात बोअरों के साथ किये गये अन्याय से कई गुना महान् है। बोअर भी अपने हकों के लिए लड़े और अपना खून बहाया। हम भी जब बलिदान की वेदी पर होमे जायँगे, अपना रक्त देने को तैयार होंगे, तब न्याय मूर्तिमान् बनेगा और मूर्ति को ही पहचाननेवाली दुनिया उसी समय उसे देख सकेगी और उसके सामने झुकेगी।

परन्तु मि० पोपली और फिलिप्स इस पर आपत्ति कर रहे हैं कि मैंने तलवार के न्याय को माननेवालों का साथ किया है। मुझे इसमें कुछ भी अनुचित नहीं लगा। मैं जितना अपने अहिंसा के सिद्धान्त में सच्चा हूँ, उतने ही वे भी तलवार की मान्यता रखने में सच्चे हैं। फिर भी क्या ऐसा प्रयत्न करके नहीं देखा जा सकता कि ऐसे लोगों को बिना रक्तपात के लड़ाई जीतने का मार्ग दिखाया जाय और तलवार को जहाँ-का-तहाँ रोक दिया जाय? जो लोग भारत द्वारा छेड़ी हुई इस लड़ाई का रहस्य समझते

है, उनके लिए इस अहिंसात्मक लड़ाई में सहायक होना ईश्वर का काय सम्पादन करने के बराबर है।

इन भले अंग्रेज मित्रों द्वारा उठाया गया दूसरा एतराज अधिक उपयुक्त है। यदि मुसलमानों का पक्ष न्यायपूर्ण न हो, तो मैं स्वयं अधर्म में शरीक होने का अपराधी बनता हूँ या नहीं? जरूर बनता हूँ। परन्तु बात यह है कि गैरमुसलिमों या गैरतुर्की कौमों पर विदेशी जुआ कायम करने की मुसलमानों की माँग नहीं है। भारतीय मुसलमान आत्म-निर्णय के विरुद्ध हरगिज नहीं हैं। परन्तु आत्मनिर्णय के बहाने मेसोपोटेमिया जैसे देश को हड़प लेने की नीच चालों का वे निःसन्देह रूप से अन्त तक विरोध करेंगे; आर्मीनिया की स्वतन्त्रता को सुरक्षित बनाने का झूठा बहाना सामने रख-कर तुर्की का और उसके द्वारा इसलाम का तेजोवध करने के निश्चित प्रयत्न का विरोध तो उन्हें करना ही पड़ेगा।

इन मित्रों को तीसरी आपत्ति मिशनरी स्कूलों के बारे में है। मिशनरी और इसी प्रकार की दूसरी पाठशालाओं को सरकारी रुपयों से चलाने के मैं अवश्य विरुद्ध हूँ। यह सच है कि सरकारी रुपया किसी समय हमारा रुपया था; परन्तु क्या ये भले पादरी इसीलिए कि मेरा धन, धर्म और इज्जत लूट ले जानेवाला कोई डाकू उन्हें वह रुपया देता है, जो शुरू में मेरा था, उस रुपये को रख लेना और उससे मुझे शिक्षा देना ठीक समझेंगे?

मैंने स्वयं इतने दिन भारत के रुपये की लूट बर्दाश्त की, परन्तु पंजाब के अत्याचारों के रूप में भारत की इज्जत की और खिलाफत के रूप में उसके दीन की लूट मैं सहन कर लेता तो मैं नरक का ही अधिकारी होता। ये कड़े शब्द हैं, परन्तु अपने दिल की बात खोलकर बताने के लिए मुझे इनसे नरम शब्द मिल नहीं सकते। वैसे यह मानने का कोई कारण नहीं है कि सरकारी या अर्धसरकारी पाठशालाएँ खाली कराने से देश का युवक-वर्ग आवारा हो जायगा। जैसे-जैसे मौजूदा पाठशालाएँ खाली होती जायँगी, वैसे-वैसे उसके साथ ही नयी राष्ट्रीय पाठशालाएँ भी खुलती जायँगी, इस विषय में मुझे कुछ भी शंका नहीं है।

मि० पोपली और मि० फिलिप्स का खयाल है कि पंजाब और खिला-फत के अन्यायों के कारण मेरी न्यायदृष्टि पर पर्दा पड़ गया है। मुझे

नहीं लगता कि ऐसा कुछ भी हुआ है। मैंने कभी से मित्रों को कह दिया है कि वे बता दें कि भारत पर राज्य स्थापित करके अंग्रेजों ने ज़ान-बूझकर प्रयत्न करके इस देश का एक भी भला किया हो। आज भी वही अनुरोध फिर कर रहा हूँ। और साथ ही उन्हें यह भी विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि यदि वे यह साबित कर देंगे कि पंजाब और खिलाफत के मामले में मैंने मर्यादा के बाहर बह जाकर भूल की है, तो अपनी भूल की मुँहमाँगी भरपाई करने में मैं रत्तीभर भी आनाकानी नहीं करूँगा।

'नवजीवन',
१९-१२-'२०

२. श्रीमान् ड्यूक ऑफ कॉनॉट से

श्रीमन्,

आप अब तक असहयोग, असहयोगवादियों और उनकी कार्य-पद्धतियों के विषय में बहुत सुन चुके होंगे। उसमें इस आन्दोलन के जनक के नाते अनायास मेरे सम्बन्ध में भी बहुत कुछ सुना होगा। मुझे अन्देशा है कि आपको दी गयी जानकारी इकतर्फा होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में आपके लिए सत्यशोधन का रास्ता बना देने के लिए, मैं इस बारे में आपके सामने सफाई देना अपना धर्म समझता हूँ कि जिस असहयोग-संग्राम को मैं अकेला ही नहीं, किन्तु भाई शौकतअली और मुहम्मदअली जैसे मेरे सबसे निकट के साथी भी चला रहे हैं, उसकी मर्यादा कितनी है।

आप जैसे महानुभाव के भारत-आगमन पर राष्ट्रीय बहिष्कार करने में प्रमुख भाग लेना मेरे लिए सुख की बात नहीं हो सकती। मैंने किसीके आग्रह के बिना स्वेच्छा से जीवन के तीस वर्ष तक सतत सरकार की एक-निष्ठापूर्वक सेवा की है; वह यह मानकर कि इसी रास्ते से मेरे देश की पराधीनता मिटकर स्वातन्त्र्य स्थापित हो सकेगा। वही आज मैं आपके स्वागत का सम्पूर्ण बहिष्कार लोगों को सूचित करने में कुछ भी आनाकानी का अनुभव नहीं कर रहा हूँ।

एक बात मैं आरम्भ में ही स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि एक अंग्रेज

सज्जन की हैसियत से आपके विरुद्ध हममें से किसीको भी कुछ भी आपत्ति नहीं है। आपका शरीर हमारे लिए किसी भी प्रिय-से-प्रिय मित्र जैसा ही पवित्र है। मैं नहीं मानता कि उस शरीर को खतरे में देखकर मेरे मित्रों में से कोई भी अपने प्राण देकर भी उसकी रक्षा करने से पीछे हटेगा। व्यक्तिगत रूप में हमने किसी भी अंग्रेज के खिलाफ लड़ाई नहीं छेड़ी है। हम अंग्रेजों की जान लेने के लिए कोशिश नहीं कर रहे हैं। परन्तु जिस शासनतंत्र ने भारत की प्रजा को शरीर से, मन से और आत्मा से केवल नपुंसक और कंगाल बना दिया, उसे हम अवश्य जड़ से उखाड़ना चाहते हैं। जिस अंग्रेज स्वभाव से पंजाब में ओडवायरशाही और डायरशाही उत्पन्न हुई, जिससे इसलाम का—हमारे सात करोड़ भाइयों के मजहब का—केवल निर्लज्जतापूर्वक अपमान हुआ या जिस प्रधानमंत्री ने अपने खुद के दिये हुए पवित्र सार्वजनिक वचन का साफ-साफ भंग करके साबित कर दिया है, उस स्वभाव के विरुद्ध हमने अपने समस्त बल के साथ लड़ने का संकल्प किया है। इतने तिरस्कार के बाद भारत के तीस करोड़ निष्पाप निवासियों की भावनाओं का एक क्या, दो क्या, अनेक जीवन-मरण के सवालों के बारे में नियम और व्यवस्थापूर्वक तिरस्कार करने-वाली स्पर्धा और घमण्ड की वृत्ति को अब अधिक समय तक बर्दाश्त करते रहना हमारे स्वाभिमान के लिए घातक है। इसमें हम लज्जा का अनुभव कर रहे हैं। आपके लिए भी यह स्थिति अभिमान करने योग्य हरगिज नहीं हो सकती कि तीस करोड़ भारतवासी एक लाख अंग्रेजों के हाथों रात-दिन प्राणों के जोखिम के डर से छटपटाते रहें।

इस शासन का अन्त करने के लिए नहीं, किन्तु उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करके उसे अक्षत रखने, उसे कायम रखने का कार्य सम्पादन करने के लिए इस समय आपका इस देश में आगमन हुआ है। आपके यहाँ आने के बाद आपके द्वारा दिया हुआ आप अपना पहला ही सार्वजनिक भाषण देखिए। वह लॉर्ड विलिंग्डन की प्रशंसा में पढ़ी गयी एक प्रशस्ति ही है। मुझे लॉर्ड विलिंग्डन के निजी परिचय का सम्मान प्राप्त है। वे एक नेक दिल और मिलनसार स्वभाववाले सज्जन हैं। वे स्वेच्छा से एक चींटी तक को चोट नहीं पहुँचायेंगे। फिर भी शासक के रूप में वे असफल सिद्ध हुए हैं। उन्होंने अपनी सत्ता कायम रखने का स्वार्थ सेवन करनेवाले

अधिकारियों की स्वार्थी सीख सुनकर अपने-आपको तदनुसार बह जान दिया है। मालूम होता है कि मद्रास में भी वे अपने इलाके के लोगों का हृदय पहचान नहीं सके। यहाँ बंगाल प्रान्त में आकर भी आप यहाँ के गवर्नर को प्रशंसा का प्रमाणपत्र दे रहे हैं। ये भी ऐसे हाकिम हैं कि उनके बारे में मैंने जो कुछ सुना है, उससे मालूम होता है कि वे व्यक्तिगत रूप में सज्जन हैं, फिर भी शासक के नाते उन्हें भी बंगाल के अन्तर की और उसकी आन्तरिक अभिलाषाओं की कोई गन्ध तक नहीं है। बंगाल का अर्थ केवल कलकत्ता नहीं है। फोर्ट विलियम और कलकत्ते के राजमहल इस सुन्दर प्रान्त की खूब शरीफ और अत्यन्त संस्कारी ग्रामीण जनता को उन्मत्त होकर और जबरन् चूसकर खड़े किये गये शर्म के स्मारक नहीं तो और क्या हैं ?

असहयोगी इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि भारत की निर्धनता और अपमान के इस महाप्रश्न के थिगली लगाकर किये जानेवाले सुधारों के चक्कर में आने में कुछ सार नहीं है; इसी प्रकार अधीरता से ऊबकर सिर काट लेने के लिए तैयार होने से भी कुछ नहीं होगा। हम आवेश और क्रोध में रक्तपात की तरफ हरगिज नहीं मुड़ सकते। हम निःसंकोच यह भी स्वीकार कर लेते हैं कि इस वर्तमान स्थिति के लिए हम भी उतने ही दोषी हैं। हमारी गुलामी के लिए हमारे पाप के साथ हमारा यह स्वेच्छापूर्वक सहयोग जितना जिम्मेदार है, उतनी ब्रिटिश तोपें और संगीनें नहीं हैं।

इस प्रकार आप देख सकेंगे कि आपका हार्दिक स्वागत करने की हलचल में शरीक होने के लिए हमारा इनकार किसी भी प्रकार से आपके प्रति हमारे निजी विरोध का चिह्न नहीं, किन्तु उस राज्यतन्त्र के प्रति हमारे विरोध का निर्देशक है, जिसे कायम रखने के लिए आप आये हैं। मैं समझता हूँ कि अंग्रेजों के व्यक्तिगत प्रयत्न अंग्रेज जाति के स्वभाव को एक दिन में नहीं बदल सकते। परन्तु यदि हम अंग्रेजों की बराबरी के बन जायँ तो वे अविलम्ब हमें इज्जत की निगाह से देखने लगेंगे। ऐसे बनने के लिए हमें सबसे पहले निर्भय बनना चाहिए; हमें स्वावलम्बी बनना चाहिए; और जिस सरकार को या तो हम सुधारना या न सुधरे तो मिटा देना चाहते हैं, उसके द्वारा दी जानेवाली शिक्षा, न्याय, रक्षा और आश्रय से हमें स्वतन्त्र हो जाना चाहिए। इसीसे इस अहिंसामय असहयोग की

उत्पत्ति हुई है। मैं यह भी जानता हूँ कि हम सभी अभी तक वाणी और आचरण दोनों में अहिंसाधर्म का सम्पूर्ण पालन करनेवाले नहीं बने हैं; परन्तु यह मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इस दिशा में अब तक की गयी हमारी प्रगति केवल कल्पनातीत है। इस अहिंसामय लड़ाई का रहस्य और मूल्य अब लोग खूब समझ गये हैं। अब किसी रास्ते चलने-वाले तटस्थ को भी दिखाई दे सकता है कि यह लड़ाई धार्मिक और आत्मशुद्धि के तत्त्व पर कैसी खड़ी है? हम शराब और ताड़ी की आदत छोड़ रहे हैं। हम अस्पृश्यता के पाप से भारत को मुक्त कराने की कोशिश कर रहे हैं। हम पहनने-ओढ़ने में घुसी हुई विदेशी चमक-दमक और रोब-दाब को मिटाकर अपने पुराने चरखे का पुनरुद्धार कर रहे हैं। और जीवन की हमारी प्राचीन सादगी की तरफ फिर से मुड़ रहे हैं। इस प्रकार हम आज की इस हानिकारक संस्था को ठंडी कर डालना चाहते हैं।

मैं आपसे एक अंग्रेज के नाते इस आन्दोलन का सूक्ष्म अध्ययन करने और साम्राज्य के लिए, बल्कि सारी दुनिया के रोगों के लिए, उसकी सुषुप्त शक्तियों का अन्दाजा लगाने की प्रार्थना करता हूँ। हम दुनिया में जो कुछ पवित्र है, नेक है, उसके विरुद्ध लड़ाई करने नहीं चले हैं। इसलाम की—हमारे अपने ढंग से—रक्षा करने में हम सभी धर्मों को अभयदान देने की कोशिश कर रहे हैं; भारत का मान भंग न होने देने में हम सारी मानव-जाति की सम्मान-रक्षा का किला निर्माण कर रहे हैं, क्योंकि हमारे हथियार किसीको चोट नहीं पहुँचा सकते। हम अंग्रेजों के साथ मित्र के नाते रहना चाहते हैं; परन्तु यह मित्रता बातों और बर्ताव दोनों में ऐसी होनी चाहिए, जैसी दो बराबरवालों में होती है। जब तक यह निश्चय पूरा न हो जाय, तब तक हमें असहयोग की अर्थात् हमें अपनी आत्मशुद्धि करने की यह लड़ाई जारी ही रखनी पड़ेगी। आपसे और आपके द्वारा प्रत्येक अंग्रेज से असहयोग के इस स्वरूप को समझ लेने की और उसकी कद्र करने की मेरी प्रार्थना है।

मैं हूँ आपका सेवक,

मोहनदास करमचन्द गांधी

'नवजीवन',

६-२-'२१

३. पारसियों से

प्रिय मित्रो,

मैं जानता हूँ कि आप असहयोग-आन्दोलन की ओर दिलचस्पी से देख रहे हैं। आप यह भी मानिये कि जिस आत्मशुद्धि की प्रायश्चित्त-विधि में से सारा देश गुजर रहा है, उसमें आप क्या भाग लेना चाहते हैं, इस ओर सभी विचारशील असहयोगी देख रहे हैं। स्वयं मुझे सम्पूर्ण विश्वास है कि ठीक सही वक्त पर आप सही बात का ही साथ देंगे। मैं आज यह पत्र इसीलिए लिखने बैठा हूँ कि मैं मानता हूँ कि वह सही वक्त आ पहुँचा है।

एक देशबन्धु के नाते के अतिरिक्त मैं आपसे दूसरे अनेक पवित्र सम्बन्धों से संकलित हूँ। दादाभाई के महान् देश-प्रेम ने मुझमें पहले-पहल देश-प्रेम की ज्योति जगायी। उस समय मैं और किसी नेता को नहीं जानता था। वे ही मेरे पथप्रदर्शक और सहायक थे। जब मैं बालक था, तब मैं उन्हींके पास अपने हाथ में परिचय-पत्र लेकर गया था। बाद में सन् १८९६ में बम्बई के बेताज के बादशाह मेरे दूसरे पथप्रदर्शक बने और उन्होंने मुझे काम करने की तालीम दी। सन् १८९२ में जब मैं एक पोलिटिकल एजेण्ट के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए छटपटा रहा था, तब उन्होंने मेरे जवानी के जोश को रोककर मुझे संयम सिखाया था और सार्वजनिक जीवन में अहिंसा-वृत्ति पैदा करने का पहला पाठ पढ़ाया था। उन्होंने मुझे यह सिखाया कि जिसे भारत की सेवा करनी हो, उसे व्यक्तिगत अन्याय कैसे पी जाना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका में मेरे सबसे कीमती मुवक्किलों और मित्रों में से एक सेठ रुस्तमजी घोरखोदू पारसी ही थे। वे सार्वजनिक कामों में मुक्त हाथ से रुपया खर्च करते थे और जब सत्याग्रह हुआ, तब वे और उनके वीर पुत्र दोनों मेरे साथ जेल में गये थे। गोरों की भीड़ जब मुझे मार डालने निकली, तब उन्हींने मुझे आश्रय दिया था। आज भी यहाँ के स्वराज्य-आन्दोलन को वे वहाँ बैठे हुए दिलचस्पी से देख रहे हैं और कुछ ही समय पूर्व उन्होंने उसके लिए चालीस हजार रुपये की रकम दी है। मेरी नम्र सम्मति के अनुसार आज भारत में सबसे श्रेष्ठ स्त्री शायद एक पारसी बहन ही हैं। वे धरती के बराबर ही क्षमावान् हैं और उनके हृदय में सारी मानव-जाति आसानी से समा सकती है। उनका परिचय जीवन का एक अमूल्य अवसर है। ऐसे पवित्र संस्मरण मैं कितने ही दे सकता हूँ,

परन्तु मेरे खयाल से यह पत्र लिखने का मेरा हेतु समझने और उसका अन्दाजा लगाने के लिए इतने उदाहरण पर्याप्त हैं।

आप बड़ी होशियार जातिवाले लोग हैं। आप ऐक्यबद्ध हैं और किसी भी आन्दोलन की स्थिरता और औचित्य दोनों के लिए पर्याप्त प्रमाण मिले बिना उसमें सम्मिलित होने के लिए स्वभावतः इनकार करनेवाले हैं। परन्तु अब ऐसा समय आ पहुँचा है कि शायद आप हद से ज्यादा खबरदार बनने में अपना धर्म चूक जायँ। मुझे डर है कि कहीं व्यापार में मिल रही बरकत आपको अपने लाखों-करोड़ों देशबन्धुओं की आवश्यकताओं और भावनाओं के प्रति अंधी न बना दे। टाटाओं के महान् परिवार को मैं पश्चिम के धन के भूखे करोड़पतियों की वृत्ति के पंजे में फँसता देखकर काँपता हूँ। भारतीय उद्योगों के विकास के संदिग्ध लाभों के लिए गरीबों को घरबार-विहीन बना देने के दुष्परिणामों की कल्पना कर-करके मैं थर्राता हूँ। फिर भी मेरा विश्वास है कि यह एक छूत की बीमारी ही है। आपकी स्वाभाविक दूरदृष्टि आपको ऐसे साहसों में निहित आत्म-हत्या का भान अविलम्ब करा देगी। आपकी तीव्र बुद्धि आपको बता देगी कि भारत के लिए जिस चीज की जरूरत है, वह यह नहीं है कि उसका धन थोड़े-से पूँजीपतियों के हाथों में इकट्ठा हो जाय। जरूरत इस बात की है कि वह धन भारत के सात लाख गाँवों में बँट जाय और १९०० मील लम्बे और १५०० मील चौड़े इस भरतखण्ड में कोई भूखा न सोये। इसलिए मुझे तो विश्वास है कि आज भारत को चूसकर उसके प्राण लेनेवाली साम्राज्य-सत्ता के पंजे से भारत को छुड़ाने के लिए लड़ रहे सुधारकों के साथ आप सारी जाति के रूप में शरीक होने के लिए केवल समय की ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।

परन्तु एक बात तो ऐसी है, जिसमें आपकी जाति का प्रतीक्षा करते रहना निश्चित पाप ही है। भारत में इस समय मद्य-निषेध का आन्दोलन उठा है। लोग स्वेच्छापूर्वक शराब का व्यसन छोड़कर शुद्ध होने को उत्सुक हैं। लोकमत यहाँ तक बनता जा रहा है कि लोगों में मद्यपान की लत लगभग अक्षम्य अपराध मानी जाने लगे। शराबखाने रखनेवाले ज्यादातर पारसी हैं। आप इस मामले में पूरे दिल से लोगों के साथ सहयोग करने को तैयार हो जायँ तो बम्बई प्रान्त से तो इस बुराई का क्षणभर में

काला मुँह किया जा सकता है। स्थानीय सरकारें इस समय भारत में लगभग सर्वत्र ही आबकारी विभाग को करीब-करीब उठा देने की हद तक पहुँचनेवाली इस हलचल को रोकने के अशोभनीय प्रयत्न कर रही हैं। आप सरकार की मदद करेंगे या जनता की ? बम्बई सरकार ने अभी तक अपना मिजाज बिगाड़ा नहीं है। परन्तु यह मानना कठिन है कि वह भी शराब की आमदनी बिलकुल छोड़ने की हद तक साहस और समझदारी का परिचय दे सकेगी।

ऐसी स्थिति में आपके जल्दी से निर्णय कर लेने की जरूरत है। मुझे पता नहीं, आपके शास्त्र मदिरा के लिए क्या कहते हैं, परन्तु जिस अहुरमज्द ने नेकी और बदी के भेद किये और बदी के विरुद्ध नेकी की जीत का बखान किया, उसने शराब के लिए क्या कहा होगा, इसकी मैं आसानी से कल्पना कर सकता हूँ। धर्म की आज्ञाओं का विचार एक तरफ रख दें तो भी आपको इस बात का फैसला कर ही लेना चाहिए कि मद्य-निषेध के मौजूदा जन-आन्दोलन में आप पूरे दिल से शामिल हों या तटस्थ अथवा उदासीन रहकर जो हो उसे देखते रहने का रवैया अख्तियार करें। मुझे पूरी आशा है कि भारत की एक चतुर और व्यावहारिक जाति के नाते आप भारत में छिड़े हुए मद्य-निषेध के इस महान् आन्दोलन में, जो संसार के ऐसे किसी भी आन्दोलन को लजा सकता है, पूरे हृदय से सम्मिलित होकर इस दिशा में प्रत्यक्ष कार्य करने में जुट जायेंगे।

'नवजीवन', आपका सच्चा मित्र,

२७-३-'२१ **मोहनदास करमचन्द गांधी**

४. नरम दलवालों से

प्रिय मित्रो !

शिक्षा और संगति से जो अब तक नरम दलवाले कहलाते आये हैं, उन्हींके सम्पर्क में पला होने पर भी आज मैं विचारों में उनसे अलग हो गया हूँ, यह बात मेरे लिए मामली दुःख की नहीं है। कुछ तो परिस्थितिवश और कुछ शुरू से प्रकृति ही ऐसी होने के कारण मैं अब तक के जीवन में कभी भारत के किसी राजनैतिक दल में उसे अपना बनाकर शरीक नहीं हो

सका। फिर भी मुझे यह भी अवश्य कहना चाहिए कि राष्ट्रीय दल के लोगों की अपेक्षा नरम दल के लोगों का ही मेरे जीवन पर अधिक असर पड़ा है। दादाभाई, गोखले, तैयबजी और फीरोजशाह मेहता के नाम मेरे लिए पूज्य और प्रातःस्मरणीय हैं। उनकी देश-सेवा को लोग कभी नहीं भूल सकते। इस देश के मेरे जैसे कितनों ही के जीवन में उनके आदर्श से देश-भक्ति की ज्योति जगी होगी। आपमें से बहुत से जो अभी तक जीवित हैं, उनके साथ भी मैंने अनेक मधुर प्रसंगों से लाभ उठाया है। आज मैं किस चीज के कारण आपसे अलग होकर राष्ट्रीय दल के लोगों की गोद में चला गया हूँ? आज आपकी अपेक्षा राष्ट्रीय दल के साथ मेरा अधिक मेल खाता है, इसका क्या कारण? मैं यह मानने में असमर्थ हूँ कि आप राष्ट्रीय दल के लोगों से भारत को कम चाहते हैं। मैं यह मानने से इनकार करता हूँ कि आप देश के लिए कुर्बानी करने को राष्ट्रीय दल के लोगों से कम तैयार हैं। इसी प्रकार बुद्धि, चरित्र और कार्य-शक्ति में भी नरम दलवाले राष्ट्रीय दल से बढ़कर नहीं तो घटिया तो साबित हरगिज न होंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि भेद केवल आदर्श का ही है।

परन्तु मैं भिन्न-भिन्न आदर्शों के वाद में पड़कर आपको नहीं थकाऊँगा। यहाँ तो मैं केवल असहयोग के कार्यक्रम में जो निर्माण की सीढ़ियाँ हैं, उन्हींकी ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। 'असहयोग' शब्द कदाचित् आपको अच्छा न लगता हो। इस कार्यक्रम के कुछ अंग भी आपको अटपटे लगते होंगे—और मैं जानता हूँ कि लगते हैं। परन्तु आप इतनी-सी बात मान लें कि असहयोगी आपके बराबर ही भारतमैया के पुजारी हैं, तो उनके कार्यक्रम के जिन अंगों के बारे में मतभेद है ही नहीं, उनके अमल के प्रति भी क्या आप मित्रता की नजर से नहीं देखेंगे? मैं मद्य-निषेध जैसे विषय की बात कह रहा हूँ। मैं अपनी तरफ से आपको यकीन दिलाता हूँ कि सभी लोग इस बुराई से ऊब गये हैं। जो अभागे लोग इस व्यसन के गुलाम बने हुए हैं, उन्हें अपने से ही लड़ने में मदद देकर बचाना है। कुछ तो यह मदद अपने मुँह से माँग रहे हैं। जिस समय इस बुराई के विरुद्ध ऐसी सार्वत्रिक लोक-भावना की लहरें उठी हैं, उस समय उनसे लाभ उठाने का मैं आपसे अनुरोध न करूँ? और यह बात भी नहीं है कि

इस समय मौका देखकर किसीने जान-बूझकर यह हलचल शुरू की हो। वह अपने-आप ही शुरू हुई है। मैं आपको इतमीनान दिलाता हूँ कि सरकार की आबकारी आय बन्द करने का उद्देश्य इसमें आखिरी और इस आन्दोलन के संचालकों के मन में सबसे कम महत्त्व का है। इस बुराई से ही लोग तंग आ गये हैं। इस देश में इस समय इस बुराई का जितना विरोध हो रहा है, उतने दृढ़ और शिक्षित विरोध के सामने दुनिया के किसी भी देश में शराब की बिक्री नहीं हो सकती। नागपुर में भीड़ ने कुछ भूलें या जबर्दस्तियाँ की होंगी, फिर भी उनका उद्देश्य तो पवित्र था, उनकी आँखों के सामने केवल एक चीज थी: लोगों की जीवनशक्ति नष्ट कर देनेवाले इस मद्यपान की जड़ समाज में से कैसे उखाड़ी जाय। आप कहीं इस दलील के चक्कर में न आइये कि लोगों से जब्रन् शराब पीना कैसे छुड़वाया जाय, जिन्हें शराब पीना है, उनके लिए सुविधा होनी ही चाहिए। अपनी प्रजा के दुर्गुणों को पोषण देना राज्य का काम नहीं है। हम व्यभिचार के अड्डों को व्यभिचार के ठीके देकर या नियम बनाकर सुविधाएँ नहीं देते। चोर को हम उसकी चोरी करने की वृत्ति को सन्तोष देने के लिए सुभीता नहीं देते। शराब तो मेरे खयाल से चोरी या शायद व्यभिचार से भी बुरी चीज है, क्योंकि अक्सर इन दोनों कुकर्मों का जनक मद्यपान ही होता है। इस प्रकार की घोर बुराई को देश से पूरी तरह मिटा देने और एक-एक शराबखाने को उठा देने के काम में शामिल होने का मैं आपसे अनुरोध करता हूँ। कितने ही कलाल यदि उन्हें ठीके की रकम वापस मिल जाय तो आज ही खुशी-खुशी अपनी दूकानें बन्द कर देने को तैयार हैं।

आप यह पूछेंगे, 'बच्चों की शिक्षा का क्या होगा ?' मैं नम्रतापूर्वक बता देता हूँ कि शराब की आमदनी से हमारे लिए आज अपने बालकों को शिक्षा पाते देखना सबसे बड़ी शर्म की बात है। अपने लड़के-लड़कियों की शिक्षा को छोड़कर भी यदि हम इस बुराई को समाज में से उखाड़ने को तैयार नहीं होंगे तो भावी सन्तानों का हमारे शिरों पर शाप होगा और हम भी उसके योग्य ही सिद्ध होंगे।

मगर मेरे हिसाब से तो हम ऐसा करके अपने बच्चों की शिक्षा भी खो नहीं देंगे। मैं जानता हूँ कि आपमें बहुत-से मेरे चरखे की मदद से

स्कूल-कॉलेजों की शिक्षा को स्वावलम्बी बना देने के विचार को हास्यास्पद मानते हैं। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारे शिक्षा के प्रश्न को जितना चरखा हल करता है, उतना और कोई भी साधन नहीं कर सकता। नये-नये कर बर्दाश्त करने की लोगों में शक्ति नहीं रही। जो कर लगे हुए हैं, वे भी असह्य हो गये हैं। ऐसी स्थिति में यदि लोगों की दिन-दिन बढ़ रही गरीबी का इलाज करना हो तो शराब और अफीम की ही नहीं, बल्कि दूसरी आमदनी भी काफी घटानी पड़ेगी।

और यही सवाल मुझे वर्तमान शासन के इस विषय पर ले आता है। सुधार प्राप्त करके देश अधिक दरिद्र, अधिक गुलाम नहीं बना तो और क्या हुआ है? सुधारों के कारण वार्षिक खर्च नहीं बढ़ गये? मैं ज्यों-ज्यों इस राज्य का अधिक अध्ययन करता हूँ, त्यों-त्यों मेरा तो अधिकाधिक विश्वास होता जा रहा है कि राज्य को सुधारने के काम में पैवन्द लगा-कर काम चलाने की कोशिश करना व्यर्थ है। अर्धदग्ध उपायों के लिए अब स्थान ही नहीं है। सारा आमूल परिवर्तन होने की आवश्यकता है। मैं जानता हूँ कि आपको ऐसे राज्य-परिवर्तन का नाम लेना भी अरुचिकर है। परन्तु मैं जिस शासन-परिवर्तन की हिमायत कर रहा हूँ, वह रक्तपात और तोप-तलवार से होनेवाला नहीं है, परन्तु देश के ऊँचे पदोंवाले लोगों के रहन-सहन सम्बन्धी विचारों के परिवर्तन से सम्बद्ध है। मुझे साफ कह देना चाहिए कि सिविल सर्विस के उच्च श्रेणी के नौकरों को मिलनेवाले रोज बढ़ रहे वेतनों को देखकर तो मैं हैरान ही हूँ और मुझे आशा है कि आप भी उनसे परेशान ही होंगे। ढेरों वेतन लेनेवाले इन शासकों के जीवन में और उनके पैरों तले कुचले जानेवाले करोड़ों लोग जो जिन्दगी बिता रहे हैं, उसमें आप कुछ भी सादृश्य देख सकते हैं? गाँवों में या रास्तों पर मिलनेवाले सैकड़ों-हजारों कंगाल लोगों की तरफ देखिये। उनके चिपके हुए पेटों, उनकी भीतर घुसी हुई आँखों और उनकी दूर से गिनी जा सकनेवाली पसलियों में आपको मेरे कथन का जीता-जागता प्रमाण मिलेगा।

अब आप शासक वर्ग को प्राप्त हो गये हैं, सुधारों की छाया में मन्त्रीपद पाकर शासक बने हैं। यह सावधानी रखना कि आपके लिए यह न कहा जाय कि आपकी एड़ियाँ आपके पूर्वज विदेशियों से कुछ भी

मुलायम नहीं हैं। क्या आपको भी पाँचवीं मंजिल से ही शासन करना चाहिए? क्या आपको भी उसी ढंग से राज्य करना चाहिए, जिसकी आप सालभर पहले निन्दा करते थे। आप ही की हुकूमत में आज एक आदमी को उसके निश्चित मत के कारण आजन्म कालेपानी की सजा दी गयी है। उसके भाषण में रक्तपात का उत्तेजन था, यह दलील आपको शोभा नहीं देती, क्योंकि कल तक आपको भी इन दलीलों से सन्तोष नहीं होता था। अलीभाइयों ने अपने भाषण में रक्तपात की गन्ध होने की शंका उठने पर भी मित्रों से माफी माँगी है। उन्होंने जेल जाने के डर से क्षमा-याचना की, यह मानकर तो आप देश के साथ महाअन्याय ही करेंगे। देश में नये ही जोश का जन्म हुआ है। दुन्यवी अदालत के न्यायाधीश के बजाय अन्तर की अदालत के न्यायाधीश का डर लोगों में आया है। पिछले छह मास में बहुत से उच्चे आदर्शवाले नौजवानों ने सरकार द्वारा उनसे माँगी गयी जमानतें देने में हतक समझकर जमानतें देने से इनकार करके उसकी जेलों को प्रिय बनाया है, आप इससे वाकिफ हैं? आप ही के शासन में भोले और सर्वथा निर्दोष मोपले लोगों के धीरज की परीक्षा करने में कोई कसर नहीं रखी गयी, जिसमें इस क्षण तक मोपलों ने हार नहीं खायी। मेरा तो खयाल है और हृदय से खयाल है कि जिस शान्ति और न्याय के नाम पर यह सारा आतंक फैलाया जा रहा है, उसमें आपका कोई हाथ नहीं है। परन्तु सिवा उन मामलों के, जिनमें आपकी भी आँखों में धूल झोंकी जाती हो, दूसरी एक भी बात में आप मुझे या लोगों को यह नहीं कह सकते कि 'आपके हाथ में कुछ भी नहीं।' परन्तु इसमें तो मुझे हमारे आदर्शों की चर्चा करनी पड़ेगी और उसमें मैं इस समय नहीं पड़ूँगा। यदि शराब की आय बन्द करने तक भी आपका सहयोग आज लोगों को मिल जाय, तो भी आपकी अब तक की गयी देश की अनेक सेवाओं में वृद्धि होगी और यह भी हो सकता है कि ऐसी एक ही कार्रवाई अन्य कई संभावनाओं के बारे में आपकी आँखें खोल दे।

'नवजीवन', आपका सदैव

१६-६-'२१ **मोहनदास करमचन्द गांधी**

५. अंग्रेज भाइयों से

भाइयो,

आपको दूसरी बार लिखने का साहस कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि आपमें से बहुतों को असहयोग से चिढ़ है। फिर भी मेरी सचाई के बारे में आपको एतबार हो तो मेरी प्रवृत्तियों में से दो को अलग करके उन पर ध्यान देने की मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। यदि आपको मेरी प्रामाणिकता में विश्वास न हो तो उसे साबित करने को मेरे पास दलीलें नहीं हैं। जब मैं कहता हूँ कि अंग्रेजों के स्थापित किये हुए शासन से द्वेष करने पर भी स्वयं अंग्रेजों से द्वेष रखने की कोई जरूरत नहीं, तब मेरे कुछ देशभाई मुझ पर गोलमोल बात कहने का आरोप लगाते हैं। मैं उन्हें यह दिखाने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि अपने भाइयों से द्वेष रखे बिना उनके दुराचरण से तिरस्कार किया जा सकता है। ईसामसीह ने अपने जमाने के पंडितों और कर्मकाण्डी लोगों के दुराचरण को धिक्कारा था, परन्तु उनसे कभी द्वेष नहीं किया। मनुष्य से प्रेम रखते हुए भी उसके पाप का धिक्कार करने का ईसा का सिद्धान्त उनके अकेले के लिए ही नहीं था। ईसा ने उसका उपदेश सभी लोगों के आचरण में लाने के लिए दिया है। असल में यह सिद्धान्त तो संसार के सभी शास्त्रों में पाया जाता है।

मैं मानता हूँ कि मैं मनुष्य-स्वभाव का ठीक अध्ययनकर्ता हूँ। मुझे अपने खुद के विचारों और भावनाओं का पूरी तरह पृथक्करण करने का अभ्यास है। मैंने देखा है कि मनुष्य अपने मत की अपेक्षा बड़ा है। मनुष्य जो तंत्र खड़ा करता है, उससे वह स्वयं बड़ा होता है। और इसीलिए मेरा खयाल है कि आपने संघबल से जो राज्य-व्यवस्था बना दी है, उसकी अपेक्षा आप व्यक्ति के नाते कहीं अच्छे होते हैं। १० अप्रैल के दुर्दिन में अमृतसर में मेरे देशभाइयों के जो झुण्ड इकट्ठे हुए थे, उनसे उनमें का हर आदमी अधिक सज्जन था। उनमें से किसी भी एक आदमी को निर्दोष और शरीफ अंग्रेजों को मारने के लिए कहा जाता तो वह इनकार ही करता। परन्तु जहाँ भीड़ जमा हुई, वहाँ बहुत लोग अपना होश भूल गये। इसी न्याय से अधिकारासीन अंग्रेज साधारण अंग्रेज से अलग ही तरह का है। भारत में रहनेवाला अंग्रेज विलायत के अंग्रेज से दूसरा ही है। इस देश में आप जिस तंत्र के अधीन हैं, उसका पाजीपन वर्णन नहीं किया

जा सकता । इसीलिए यह आरोप न लगाते हुए भी अथवा यह न मानते हुए भी कि आप दुष्ट हैं, मैं आपके तंत्र के लिए कड़े-से-कड़े विशेषण लगाकर उसका निषेध कर सकता हूँ । इस तंत्र से जितने हम जकड़े हुए हैं, उतने ही आप भी उसकी शरण में हैं । इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप भी वही वृत्ति धारण कीजिए । मेरे लेखों में जो हेतु नहीं हैं, उनकी आप मुझमें कल्पना न कर लीजिए । जिस तंत्र के अधीन रहकर भारतीय राष्ट्र मुट्ठीभर अंग्रेजों का दास बनता है और देश में जगह-जगह नजर आनेवाले किलों और तोपों के आश्रय में ही आप अपने को सुरक्षित मानते हैं, उस तंत्र को सम्भव हो तो सुधारने और नहीं तो मिटा देने के लिए मैं अधीर हो गया हूँ, जब मैं यह कहता हूँ तब आप यही मानिए कि मैंने कोई बात छिपाकर नहीं रखी । आज की स्थिति तो हमारे और आपके दोनों के लिए केवल लज्जास्पद है । हमारा सामुदायिक जीवन एक-दूसरे के प्रति अविश्वास और डर पर स्थित है । आप यह तो स्वीकार करेंगे कि इसमें मरदानगी नहीं है । जिस प्रणाली के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, वह अवश्य शैतानी ही कहलायेगी । आपको देश को चूसनेवाले विदेशी बनकर नहीं, किन्तु भारत की अन्य जातियों की भाँति भारतीय बनकर रहना आना चाहिए । एक अंग्रेज की जान के सामने एक हजार भारतीयों की जान का हिसाब निराशा उत्पन्न करनेवाला है, तो भी आपके बड़े-से-बड़े अधिकारियों ने सन् १९१९ में यही सिद्धान्त स्वीकार किया था । जिस तंत्र ने हम दोनों को इस हद तक गिराया है, उसके बारे में आपसे यह कहने को जी चाहता है कि उसका समूल नाश करने के कार्य में आप हममें सम्मिलित होइये । परन्तु मेरा खयाल है कि आप अभी ऐसा नहीं कर सकते । वह स्थिति लाने के लिए जितनी उत्कटता, जितना त्याग और संयम हमें अपने में पैदा करना चाहिए, उतना करके हमने अभी तक नहीं दिखाया ।

परन्तु विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने में और मद्य-निषेध के आन्दोलन में तो मैं आपकी सहायता अवश्य माँगता हूँ ।

अंग्रेज इतिहासकारों ने बताया है कि भारत का अपना प्रसिद्ध वस्त्र-व्यापार जान-बूझकर और निश्चित रूप में नष्ट करके विलायती कपड़ा भारत पर जब्रन् लादा गया है । इसलिए भारत आज लंकाशायर का ही नहीं, परन्तु जापान, फ्रांस और अमेरिका का भी मोहताज बन गया है ।

भारत पर इसका असर पड़ा है, इसे एक बार देखिए। प्रतिवर्ष लगभग साठ करोड़ रुपया केवल कपड़े के लिए हम भारत से बाहर भेजते हैं। हमारी जरूरत की रूई तो हम इस देश में उत्पन्न करते ही हैं। इस देश की रूई विदेशों में भेजकर वहाँ कपड़ा बुनवाकर फिर इस देश में लाना शुद्ध मूर्खता नहीं है? क्या भारत को ऐसी निःसहाय अवस्था में डाल देना उचित था?

डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हम अपनी जरूरत का तमाम कपड़ा स्वयं कातकर बुन लेते थे। हमारी स्त्रियाँ घरों में बैठकर सुन्दर सूत कातती और अपने पतियों की कमाई में वृद्धि करती थीं। उस सूत को देहात के जुलाहे बुन देते थे। हमारे जैसे कृषिप्रधान देश में लोक-जीवन की व्यवस्था का यह एक जरूरी अंग था। इस व्यवस्था के कारण हम अवकाश का अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से सदुपयोग कर सकते थे। अब हमारे देश की स्त्रियों में कातने की जानकारी नहीं रही और करोड़ों लोगों के मजबूरन् बेकार बैठे रहने से देश कंगाल हो गया है। बहुत से जुलाहे भंगी बन गये हैं, कुछ किराये के सिपाही बनकर सेना में भरती हो गये हैं। अत्यन्त सुन्दर कपड़ा बुननेवाले जुलाहों की आधी कौम बारहबाट हो गयी और बाकी आधी हाथकता सूत न मिलने के कारण विदेशी सूत बुन रही है!

ऐसी सूरत में भारत के लिए विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का अर्थ क्या है, यह शायद अब आपकी समझ में आ जायगा। बहिष्कार की योजना सजा के तौर पर नहीं बनायी गयी। सरकार आज ही खिलाफत और पंजाब के अन्याय दूर कर दे और भारत को स्वराज्य ग्रहण कर लेने दे तो भी बहिष्कार की यह हलचल तो जारी ही रहेगी। स्वराज्य का अर्थ यह तो होना ही चाहिए कि आर्थिक दृष्टि से राष्ट्र के अस्तित्व के लिए आवश्यक धन्धों को भारत पोषण दे सके और उस अस्तित्व के लिए खतरनाक माल का आना बन्द कर सके। खेती और हाथकताई राष्ट्र-शरीर के दो फेफड़े हैं और इन फेफड़ों में क्षयरोग को घुसने से रोकने के लिए हर तरह की कोशिश करनी चाहिए।

यह बात बाट देखने की नहीं है। खेती के साथ चल सकनेवाले धन्धे के अभाव में जब सारा राष्ट्र भूखों मर रहा हो, तब विदेशी कारखाने-वालों या देशी व्यापारियों के लाभों का विचार नहीं किया जा सकता।

इस आन्दोलन को सभी प्रकार के विदेशी माल का बहिष्कार भी मत मान बैठिये। भारत का यह रवैया नहीं है कि दूसरे राष्ट्रों के साथ किसी भी प्रकार का व्यापार हरगिज न किया जाय। कपड़े के अलावा अन्य वस्तुएँ भारत से विदेशों में आसानी से और अच्छी बनती हों तो दोनों पक्षों के लाभ की शर्तों पर विदेशों से धन्यवादपूर्वक लेना भारत को स्वीकार करना ही चाहिए। अलबत्ता, भारत अपने पर कोई भी चीज जब्रन् हरगिज नहीं लदने देगा। परन्तु मैं भविष्य को पढ़ने का प्रयत्न नहीं करूँगा। मैं जरूर आशा रखूँगा कि भारत थोड़े ही दिन में इंग्लैण्ड के साथ समानता के नाते सहयोग कर सकेगा। हमारे व्यापारिक सम्बन्धों की जाँच करने का अवसर उस समय आयेगा। अभी तो मैं विदेशी वस्त्र-बहिष्कार को सफल बनाने में आपकी सहायता चाहता हूँ।

ऐसे और इतने ही महत्त्व का प्रश्न है, मद्य-निषेध का। शराबखाने तो समाज पर लादी गयी एक असह्य आफत है। इस विषय में लोगों में जितनी जाग्रति है, उतनी आज तक कभी नहीं हुई थी। मैं स्वीकार करता हूँ कि इसमें आपसे ज्यादा मदद तो हमारे भारतीय मन्त्री कर सकते हैं। फिर भी मैं चाहता हूँ कि इस सवाल पर आप अपनी राय साफ जाहिर करें। शासन-प्रणाली कैसी ही होने पर भी मेरा खयाल है कि लोग तो देश से शराब की जड़ ही उखाड़ डालना चाहेंगे। अपना जोर प्रजापक्ष के साथ मिलाकर आप इस दिन-दिन बढ़ रही हलचल को सहायता दे सकते हैं।

'नवजीवन',
१०-७-'२१

आपका सच्चा मित्र,
मोहनदास करमचन्द गांधी

परिशिष्ट : २*

माननीय शास्त्रियार का वक्तव्य

मा० श्रीनिवास शास्त्री ने ता० १३-१-१९२४ को महात्माजी के स्वास्थ्य के बारे में नीचे लिखा बयान जारी किया है :

कल रात को मुझे एकाएक महात्माजी से मिलने के लिए ससून अस्पताल में बुलाया गया। लोगों में इस मामले में जो उत्सुकता है, उसे देखते हुए निम्नलिखित वक्तव्य लोगों के सामने रखता हूँ :

रात को लगभग पौने नौ बजे मैं भोजन कर रहा था, उस समय डॉ० गोखले ने मेरे पास आकर कहा कि यरवडा-जेल के अधिकारी महात्माजी को ससून अस्पताल में ले गये हैं। वहाँ वे अस्पताल के अधिकारियों की सार-सँभाल में हैं और उनका ऑपरेशन होनेवाला है। महात्माजी की बीमारी गम्भीर होने के कारण वे अपने किन्हीं डॉक्टर मित्रों को बुलाना चाहते हैं या नहीं, यह उनसे पूछा गया। उन्होंने बम्बई के डॉ० दलाल और बड़ौदा के डॉ० जीवराज मेहता के नाम सुझाये। दोनों डॉक्टरों को तार दिये गये और डॉ० दलाल को टेलीफोन करने के प्रयत्न हुए, परन्तु उसमें गड़बड़ हो जाने से वे समय पर आ नहीं सके। इस बीच महात्माजी के बढ़े हुए बुखार और नाड़ी की गति को देखते हुए तुरन्त ऑपरेशन करने का निर्णय किया गया और जब उनसे पूछा गया कि किन्हीं मित्रों से मिलना है क्या, तब उन्होंने मेरा, असहयोगी दल के डॉ० फाटक, श्री केलकर और डॉ० गोखले के नाम दिये।

मैं तुरन्त चल पड़ा और श्री केलकर सतारा गये हुए थे, इसलिए साथ में डॉ० फाटक को लिया। महात्माजी के कमरे में घुसते ही हमने एक-दूसरे को नमस्कार किया और मैंने ऑपरेशन कराने के बारे में उनकी राय पूछी। उन्होंने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया कि 'डॉक्टरों का निर्णय

---

* देखिए पृष्ठ ११२।

ऐसा ही है और मैं उनके अधीन होने में प्रसन्न हूँ।' और प्रश्न पूछने पर उन्होंने कहा कि 'मेरे आसपास इस समय जो डॉक्टर हैं, उन पर मेरा पूरी तरह विश्वास है; वे मेरे प्रति खूब भलाई दिखा रहे हैं और मेरी खूब देखभाल करते हैं।' उन्होंने यह भी कहा कि 'देश में यदि कोई खलबली मचे तो मैं यह घोषित करना चाहता हूँ कि अधिकारियों के विरुद्ध मुझे कुछ भी शिकायत नहीं करनी है।' महात्माजी ने यह भी बताया कि 'मेरे शरीर की सेवा करने में तो ये लोग कोई कसर रखते ही नहीं।'

फिर मेरे यह पूछने पर कि श्रीमती कस्तूरबा को उनकी हालत के समाचार दिये गये हैं या नहीं, उन्होंने कहा कि 'उन्हें आखिरी खबर नहीं; उन्हें इस बात का पता है कि कुछ समय से मैं बीमार हूँ और मुझे आशा है कि उनके पास से कोई पत्र आयेगा।' इसके बाद महात्माजी ने मेरी स्त्री के तथा भारत सेवक समिति के मेरे दूसरे मित्र—श्री देवधर, जोशी, पटवर्धन और कुंजरू के समाचार पूछे। उन्होंने मुझसे यह भी पूछा कि 'हिन्दुस्तान से बाहर की आपकी यात्राओं से आपके स्वास्थ्य में कुछ लाभ हुआ है?'

इसके बाद डॉ० फाटक ने ऑपरेशन कराने के लिए महात्माजी की सम्मति प्रकट करनेवाले बयान का जो मसविदा तैयार किया था, वह उन्हें पढ़कर सुनाया। उनसे एक बार सुनकर महात्माजी चश्मा लगाकर अपने हाथ में लेकर उसे पढ़ गये। पढ़ लेने के बाद उन्होंने कहा कि 'मैं चाहता हूँ कि कुछ जगहों पर उसकी भाषा बदली जाय।' कर्नल मॅडक कमरे में बैठे थे, उनकी इस बारे में सलाह पूछी। कर्नल साहब ने उत्तर दिया कि 'इसे अच्छी भाषा में रखने के लिए गांधीजी ही समर्थ हैं और मेरे सुझाव बहुत काम में नहीं आयेंगे।' फिर महात्माजी बयान लिखवाने लगे और मैंने पेंसिल से उसे लिख लिया। यह बयान कर्नल मॅडक को, जो ऑपरेशन करनेवाले थे, ध्यान में रखकर था। उसमें महात्माजी ने कर्नल मॅडक, सर्जन जनरल और उनके आदमियों के अपने प्रति प्रेम और उनकी देखभाल का उल्लेख किया और कर्नल मॅडक, उनके कर्मचारीगण और सहायक डॉक्टरों पर अपना पूरा विश्वास प्रकट किया। सरकार ने उन्हें अपने डॉक्टरों को बुलाने की जो स्वतन्त्रता दी, उसके लिए उस बयान में उन्होंने सरकार का आभार माना और कर्नल मॅडक की इतनी कोशिशों के बावजूद

उनके न आ सकने से और अधिक देर करने में कर्नल साहब की मान्यता के अनुसार बड़ी जोखिम होने से, उन्होंने तुरन्त ऑपरेशन करने के लिए कर्नल साहब से अनुरोध किया।

बयान लिखा जा चुका तो मैंने उसे एक बार उन्हें पढ़ सुनाया; फिर उन्होंने कर्नल मॅडक को पास बुलाया और मैंने उनकी आज्ञा से दुबारा बयान पढ़ दिया। कर्नल मॅडक को इस बयान से खूब सन्तोष हुआ और उन्होंने महात्माजी से कहा: 'निःसन्देह, आप ही इसे योग्य स्वरूप दे सके।'

फिर घुटना उठाकर महात्माजी ने कागज पर हस्ताक्षर किये। उनका हाथ खूब काँप रहा था। मैंने देखा कि अपने नाम के अन्तिम अक्षर 'i' पर वे बिन्दी नहीं लगा सके। उन्होंने डॉक्टर से कहा: 'मेरा हाथ कितना काँप रहा है, यह आपने देखा? इसे अच्छा करना होगा!' कर्नल मॅडक ने उत्तर दिया: 'अरे, हम तो आपको पहलवान जैसा बना देंगे।'

ऑपरेशन के कमरे में तैयारियाँ करनी थीं, इसलिए डॉक्टर सब बाहर चले गये और मैं महात्माजी के साथ अकेला रह गया। एक-दो निजी प्रश्न पूछने के बाद मैंने उनसे पूछा: 'आपको कोई खास बात कहनी है?' उन्होंने जवाब दिया, तब उनके मुँह पर ऐसी उत्सुकता दिखाई देती थी, मानो वे कुछ कहने का अवसर ढूँढ़ रहे हैं। उन्होंने कहा:

'ऑपरेशन हो जाने के बाद मुझे छोड़ देने के लिए कोई हलचल हो, यह मैं नहीं चाहता। परन्तु यदि हो तो वह ठीक ढंग से ही हो। सरकार के साथ मेरा झगड़ा ज्यों का त्यों जारी है। और जब तक वह झगड़ा उत्पन्न करनेवाले मूल कारण कायम रहेंगे, तब तक वह झगड़ा कायम रहगा। मुझे छोड़ने के लिए कोई शर्त तो हो ही नहीं सकती। यदि सरकार मुझे कैद में रखकर तृप्त हो गयी हो और मुझे छोड़ दे तो यह उसके लिए शोभनीय है। यदि सरकार मानती हो कि मैं निर्दोष हूँ, मेरे हेतु निर्मल हैं और सरकार के साथ मेरे गहरे झगड़े होने पर भी मैं अंग्रेजों को चाहता हूँ और मेरे अनेक मित्र अंग्रेज हैं, तो वह भले ही मुझे छोड़ दे। परन्तु वह गलत कारण से नहीं। कोई भी आन्दोलन किया जाय तो वह ठीक हो, शुद्ध अहिंसात्मक हो। शायद मेरी भाषा ठीक न हो, परन्तु आप उसे अपनी अप्रतिम भाषा में रखिए।'

फिर मैंने उनसे बड़ी विधानसभा में पेश होनेवाले प्रस्तावों की जो सूचना दी गयी है, उनकी बात की और कहा कि 'मुझे ऐसा लगता था कि साधारण परिस्थिति में सरकार शायद उसका विरोध करती; परन्तु मैं ऐसा मानता हूँ कि इस समय तो सरकार उस पर अलग दृष्टि से ही विचार करेगी।' उसके बाद मैंने एक बार फिर लोगों के, उनके अनुयायियों के अथवा देश के लिए एक सन्देश देने का उनसे आग्रह किया। पर इस मामले में उनकी दृढ़ता देखकर मैं चकित हो गया। उन्होंने कहा : 'मैं सरकार का कैदी हूँ और मुझे कैदी के नियमों का पालन सम्मानपूर्ण ढंग से करना ही चाहिए। समाज की दृष्टि से मैं मरा हुआ ही माना जाऊँगा। मुझे बाहर की घटनाओं का कुछ भी पता नहीं, मेरा लोगों के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, इसलिए मेरे पास कोई सन्देश नहीं।'

'तब मि० मुहम्मदअली ने कैसे उस दिन आपसे प्राप्त कथित सन्देश दिया ?' मैंने उनसे सवाल पूछा।

ये शब्द मेरे मुँह से निकलते ही मुझे पछतावा हुआ। परन्तु छूटा हुआ बाण कैसे वापस आता ? मेरे प्रश्न से उन्हें खूब आश्चर्य हुआ और उनके मुख से ऐसा उद्‌गार निकला : 'मि० मुहम्मदअली को मेरे पास से सन्देशा !'

सौभाग्य से उसी वक्त नर्स उनके लिए मरहमपट्टी का सामान ले आयी और कमरे से बाहर जाने का इशारा किया। कुछ ही मिनटों में उन्हें ऑपरेशन के कमरे में ले गये और बाहर बैठे हुए मैंने जिस विशाल हृदय के दर्शन किये, जिस उदारता, क्षमा और परोपकार की वृत्ति को प्रत्यक्ष देखा और सामान्य मनुष्य के लिए अगम्य प्रेम का जो झरना बहते देखा, उसका चिन्तन करने लगा। असहयोग की लड़ाई को ऐसे निरुद्वेग और निर्मल अन्तःकरणवाले और स्वाभिमान के बारे में ऐसी तीव्र भावनावाले नेता मिले हैं, यह क्या ईश्वर की अगाध करुणा नहीं है ?

सर्जन जनरल और जेलों के सर्वोच्च अधिकारी दोनों वहाँ मौजूद थे और वे अपनी जिम्मेदारी कितनी जबरदस्त समझते थे, यह उनके चिन्तातुर चेहरे पर से दिखाई दे रहा था। उन्होंने कहा कि महात्माजी ऑपरेशन में से अच्छी तरह पार हुए हैं, थोड़ा-सा मवाद साफ हो गया है और

ऑपरेशन अविलम्ब हुआ, इसके लिए ईश्वर का जितना उपकार मानें, उतना थोड़ा है। उन्हें अफीम का सत्त्व पिलाया है। इससे उन्हें कुछ समय तक अच्छी नींद आने की आशा है।

आज सबेरे डॉक्टर से खबर मिली है कि महात्माजी की स्थिति बिलकुल सन्तोषजनक है। मैंने अपना यह बयान डॉ० फाटक को पढ़कर सुना दिया है और उन्हें वह पसन्द आया है। उन्होंने यह भी कहा कि स्वयं उन्हें भी महात्माजी ने सन्देश देने के बारे में वही जवाब दिया है, जो मुझे दिया।

ता० २०-१-१९२४, नवजीवन

परिशिष्ट : ३*

महासमिति सम्बन्धी स्पष्टीकरण

१. महासमिति के सदस्यों से

प्रिय मित्रो,

अच्छा हो या बुरा, कांग्रेस को लोगों का अधिक-से-अधिक प्रतिनिधित्व देकर हमने ठीक ही किया है। मेरी धारणा के अनुसार कांग्रेस का संविधान लोगों के पूरे प्रतिनिधित्व के लिए बनाया गया है, इसलिए लगभग निर्दोष है। पर चूँकि हम स्वयं अपूर्ण हैं, इस कारण उस पर अमल हमने बहुत लापरवाही से किया है। यों भी कहा जा सकता है कि हमारे मतदाताओं का रजिस्टर हिन्दुस्तान के बहुतेरे भागों में लगभग खाली हो गया है। परन्तु यह सब होने पर भी चालीस वर्ष तक टिकी हुई और अनेक तूफानों के बीच खड़ी रहनेवाली संस्था देश में सबसे अधिक सत्तावान् रहनी ही चाहिए। हम अपने को उसके चुने हुए प्रतिनिधि मानते हैं।

सन् १९२० में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव ऐसा किया था, जिसका पूरी तरह अमल किया जाय तो एक वर्ष में स्वराज्य मिल जाय। उस एक वर्ष के अन्तिम भाग में स्वराज्य लगभग हमारे हाथ में था। परन्तु वह हाथ में आते-आते रुक गया, इससे अब हमें यह मान बैठने का कोई अधिकार नहीं कि वह अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। उल्टे हमें तो पहले जैसी ही आशावादी वृत्ति रखनी चाहिए। खास तौर पर स्वराज्य तुरन्त प्राप्त करने का हमारा निश्चय होना चाहिए--तुरन्त अर्थात् आजकल के ठंडा कर देनेवाले वातावरण में हमें जितनी आशा हो, उससे अधिक जल्दी।

---

* देखिए पृष्ठ २०१।

इसी वृत्ति से मैंने आपके सामने पेश करने के लिए अपने प्रस्ताव तैयार किये हैं। अब तो उन्हें देश के सामने पहुँचे एक सप्ताह हो गया। उनके विरुद्ध की गयी कुछ आलोचना मैंने पढ़ी है। मैं मानता हूँ कि मुझे अपने निश्चयों के बारे में दुराग्रह नहीं, मेरा कोई स्वार्थ भी नहीं अथवा कोई स्वार्थ हो भी तो वह ऐसा साधन जुटाने का ही है, जो हमारे स्वराज्य के मार्ग में आनेवाले प्रत्येक विघ्न को निर्मूल करने के लिए काम आये।

खादी के प्रति मुझे श्रद्धा है। इसके दो स्वरूप हैं। एक रुद्र और दूसरा सौम्य। रुद्र रूप की दृष्टि से देखें, तो लोगों को सम्पूर्ण स्वाश्रयी बनाने के लिए आवश्यक एक ही बहिष्कार अर्थात् विदेशी कपड़े का बहिष्कार आवश्यक है। इस एक ही बहिष्कार से हमारा तेजोवध करनेवाले, हमारी आत्मा का हनन करनेवाले, ब्रिटिश-स्वार्थ का नाश हो सकेगा। और हम ऐसा कर सकेंगे तो ही हम ब्रिटिश राज्यधुरन्धरों के साथ समान स्तर पर बात कर सकेंगे। आज तो वे स्वार्थ से अन्धे हो रहे हैं; जैसे उनकी जगह हम हों तो हमारी भी वैसी ही स्थिति होगी।

इस श्रद्धा का सौम्य रूप है देहाती जनता के लिए नवजीवन और आशा का संचार। लाखों भूखों की भूख खादी मिटायेगी। खादी के तार से ही गाँवों के साथ हम एकतार हो सकेंगे। हिन्दुस्तान अपना कपड़ा पैदा कर ले, इसके बराबर उत्तम शिक्षा लाखों लोगों के लिए और कौन-सी है? यह जीवनदात्री है। इसलिए स्वराज्य मिलने तक कांग्रेस को केवल खादी उत्पन्न करनेवाला खादी प्रचारक मंडल बना डालने में मुझे जरा भी संकोच नहीं होगा—जैसे, यदि मैं शस्त्र-बल को मानता होऊँ और इंग्लैण्ड के विरुद्ध जूझने की मेरी वृत्ति हो, तो कांग्रेस को सिर्फ शस्त्र-बल की ही तालीम देनेवाली संस्था बना देने में मुझे संकोच नहीं होगा। सच्चे राष्ट्रीय बनने के लिए कांग्रेस को उसी काम में लग जाना चाहिए, जो लोगों को जल्दी-से-जल्दी स्वराज्य के नजदीक ले जाय।

मेरी यह श्रद्धा कि खादी में स्वराज्य दिलाने की ताकत है; होने के कारण मैंने इसे अपने कार्यक्रम में प्रथम स्थान दिया है। आपमें यह श्रद्धा न हो तो आप मेरे कार्यक्रम को फाड़ फेंकने में न हिचकिचायें।

परन्तु यदि आपको खादी के प्रति श्रद्धा हो तो निश्चित मानिए कि मैंने जो चीज माँगी है, वह कम-से-कम है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि मुझे यह डर न होता कि आप पर अनुचित दबाव पड़ेगा तो एक तुच्छ आध घंटे के बजाय पूरे चार घण्टे चरखा चलाने की आपसे प्रार्थना करने में मुझे जरा भी संकोच न होता।

इस सम्बन्ध में स्वराज्यवादियों के बारे में अपना अविश्वास मुझे स्वीकार करना चाहिए। मुझे लगता है कि खादी पर से उनका भाव अब घटने लगा है। बहुत-से स्वराज्यवादी खादी को तिलांजलि देकर अब विलायती वस्त्र पहनते हैं, यह जानकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। किसी-किसीने तो ऐसी धमकी भी दी है कि आजकल आप जिस तरह हमारे पीछे पड़े हुए हैं, अगर इसी तरह पीछे पड़े रहेंगे, तो हम खादी और चरखे को बिलकुल छोड़ देंगे। मुझे कहा गया कि बहुत-से अपरिवर्तनवादियों की भी यही दशा है। अभी वे प्रसंगोपात्त खादी पहनते हैं, परन्तु घर में तो विदेशी या मिल का कपड़ा पहनने में संकोच नहीं करते। मुझे खुश करने के लिए खादी पहनना तो बिलकुल ही भद्दा है और खास मौकों पर खादी पहनना दंभ है। क्या आप नहीं मानते कि खुशामद और दंभ का हममें सर्वथा बहिष्कार होना चाहिए ? यदि आपको खादी की ताकत में विश्वास हो तो आपको उसे ग्रहण करना चाहिए, इसलिए नहीं कि मैं उसका आग्रह रखता हूँ, बल्कि इसलिए कि वह आपके जीवन के साथ लगी हुई चीज है। यह बात मेरी जानकारी के बाहर नहीं कि वायसराय के यहाँ कोई खास प्रसंग हो तो वहाँ जाने के लिए खास पोशाक पहननी पड़ती है। इसके बाद का तुरन्त का दूसरा कदम खादी की बिलकुल मनाई के रूप में उठाया जाय तो मुझे आश्चर्य न होगा, बल्कि उससे भी एक कदम आगे अर्थात् छोटी-बड़ी दोनों विधानसभाओं में खादी की मनाई समझी जाय।

दूसरा मुश्किल सवाल पेशेवर वकीलों का है। मुझे स्पष्ट दीख रहा है कि अगर हम उनके बिना कांग्रेस नहीं चला सकते तो हमें यह बात साफ-साफ स्वीकार कर लेनी चाहिए और बहिष्कार उठा लेना चाहिए। मैं यह भी मानने को तैयार हूँ कि विधान-मंडलों का बहिष्कार बन्द हो गया तो उसके बाद अदालतों का बहिष्कार भी बन्द हो ही गया। विधान-

मंडलों में जाने से कुछ-न-कुछ राहत मिल सकती हो, तो अदालतों में जाने से भी वैसी राहत जरूर मिलती है। स्व० मनमोहन घोष ने अपनी वकालत की तमाम कमाई गरीबों के लिए इस्तेमाल करके जो भारी सेवा की है, उसे हम सब जानते हैं। सरकारी संस्थाओं में मोह पैदा करनेवाली कोई चीज ही न होती तो वे अब तक टिकी ही कैसे रहतीं? परन्तु उनमें अमुक मोह है, यह कोई आज की नयी खोज नहीं। हमारा तो शुद्ध, बिना मिलावट का आत्म-बलिदानी युद्ध है। हमने इन संस्थाओं से होनेवाला सम्भव और क्षणिक लाभ छोड़ा और देश के शाश्वत कल्याण का विचार किया। अब अगर हममें इज्जत जैसी कोई चीज हो तो आन्ध्र, कर्णाटक वगैरह प्रान्तों में जिनकी वकालती सनदें रद्द कर दी गयी हैं, क्या उनकी खातिर भी हमें अदालतों का बहिष्कार जारी नहीं रखना चाहिए? हममें से छोटे-से-छोटे की भी इज्जत कायम रखकर ही हम इज्जत की परम्परा बना सकते हैं। इसलिए वकालत करनेवाले वकील सावधान हो जायँ। इज्जत के विचार के सामने कुटुम्ब की स्थिति के खयाल को प्रधानता हरगिज नहीं दी जा सकती। यह न मानिए कि इज्जत का खयाल अपने में से बिलकुल मिटाकर हम थोड़े समय में स्वराज्य ले सकेंगे। **कांग्रेस जब तक जानदार, बहादुर, स्वाभिमानी, तेजस्वी, निःस्वार्थी, आत्मत्यागी और कोई भी कुर्बानी करने से पीछे न हटनेवाले देशभक्त उत्पन्न न कर सके, तब तक हमारे गरीब देश के लिए, अत्यन्त गरीबों के भोगने योग्य स्वराज्य स्वप्नवत् है। आप और मैं भले ही आज जितना निचोड़ में से मिले, उससे जरा-सा अधिक प्राप्त कर लें, परन्तु मुझे विश्वास है कि आप उसे स्वराज्य हरगिज नहीं कहेंगे।**

शिक्षा-संस्थाओं के बारे में मुझे कुछ भी कहने की जरूरत है? यदि हम अपने बच्चों को सरकारी पाठशालाओं में भेजने का मोह नहीं रोक सकते, तो मैं तो हुकूमत के खिलाफ आपका विरोध नहीं समझ सकता। यदि सरकारी पाठशालाओं, अदालतों और विधान-मण्डलों में ऐसा कुछ भी है, जिससे हमें मोह हो तो हमारा विरोध हुकूमत से नहीं हुआ, परन्तु उस हुकूमत को चलानेवालों के प्रति हुआ। असहयोग इससे अधिक उन्नत ध्येय के लिए चलाया गया था। यदि हमारा आशय इतना ही हो कि सरकारी विभागों में अंग्रेजों की जगहों पर हमारे लोग बैठ जायँ तो

मैं स्वीकार करता हूँ कि ये बहिष्कार निरर्थक ही नहीं, परन्तु हानिकारक हैं। सरकार की व्यवस्था का अन्तिम परिणाम भारत को 'साहेब'* बना देना ही हो जायगा और जहाँ हम 'साहेब' बने कि हमारे अंग्रेज मालिक राज्य की लगाम हमारे हाथों में सौंप देंगे। वे खुशी से हमें अपने आढ़तिये के रूप में स्वीकार कर लेंगे। इस प्राणघातक क्रिया का अन्त करने के प्रयत्न के अलावा मेरा और कोई हिस्सा हो ही नहीं सकता। मेरा स्वराज्य हमारी संस्कृति की आत्मा को अमर रखने में निहित रहा है। मैं कई नयी बातें लिखना चाहता हूँ, परन्तु वे भारतीय भूमि पर ही लिखनी चाहिए। जब मैं पश्चिम से ली हुई चीज उचित ब्याजसहित लौटा सकूँगा, तब पश्चिम से कर्ज लेने में संकोच नहीं करूँगा।

मैंने आपके सामने जिस रूप में रखे हैं, उसमें पाँचों बहिष्कार कांग्रेस के प्राणों के समान हैं, लोक-स्वराज्य के प्राणवत् हैं।

ऐसे महाप्रश्न का निर्णय केवल हाथ उठवाकर ही नहीं हो सकता, न दलीलों से उसका निपटारा किया जा सकता है। हममें से प्रत्येक को अपने-अपने अन्तर का नाद सुनकर ही उसका फैसला करना होगा। अर्थात् हममें से हरएक को अन्तर्मुख होकर स्पष्ट मार्ग दिखलाने के लिए ईश्वर की प्रार्थना करनी रह जाती है।

इस स्वातन्त्र्य का युद्ध आपके और मेरे लिए खेल नहीं। हमारे जीवन की यह गम्भीर-से-गम्भीर वस्तु है। इसलिए मैंने जो कार्यक्रम तैयार किया है, वह आपको पसन्द न आये तो आप बेशक उसे रद्द ही कर दें।

मातृभूमि की सेवा में

आपका साथी

मोहनदास करमचन्द गांधी

ता० २६-६-१९२४, नवजीवन

---

* मूल गुजराती में 'जांगला' शब्द है, जो अंग्रेजों के लिए उपहासास्पद विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता था।

२. हारा और मारा गया

अखबारवाले मुलाकात करने आते हैं, तब मुझे शायद ही उनमें दिलचस्पी होती है, परन्तु उस दिन एक भाई ऐसे आये थे, जिनके प्रश्न ने मुझे उनकी ओर ध्यान देने को विवश कर दिया और मुलाकात के अन्त में मैंने उतना देकर सन्तुष्ट किया, जितनी उन्होंने मुझसे आशा रखी थी। उन्होंने मुझसे सवाल पूछा था : 'आपके प्रस्तावों पर बराबर-बराबर मत पड़ें तो आप क्या करें ?' मैंने उनसे कुछ इस आशय की बात कही थी कि ऐसी अकल्पित घटना को रोकने के लिए ईश्वर जरूर कुछ-न-कुछ तजवीज करेगा। उस समय मुझे बिलकुल खयाल नहीं था कि मेरे निर्दोष और आधे मजाक में कहे हुए वचन में भविष्य की चेतावनी थी। इस महासमिति की कार्यवाही देखकर और मेरे जेल में जाने से तुरन्त पहले हुई दिल्ली की महासमिति मुझे याद आयी। और जैसे दिल्ली में मेरी आँखें खुली थीं, वैसी सामग्री अहमदाबाद में भी आँखें खुलने के लिए थी।

चारों प्रस्तावों के लिए मुझे केवल कहने को बहुमत मिला। परन्तु इसे मुझे अल्पमत ही समझना चाहिए। दोनों पक्षों की ताकत लगभग बराबर ही थी। गोपीनाथ साहवाले प्रस्ताव ने इस समानता को ठीक-ठीक ला दिया। इस प्रस्ताव पर हुए भाषणों, उसके परिणाम और उसके बाद हुए दृश्यों ने मेरी आँखें पूरी तरह खोल दीं। मैं तो मतगणना के परिणामस्वरूप श्री दास की विजय हुई मानता हूँ, हालाँकि आठ मतों से उनकी हार दिखाई दी थी। १४८ आदमियों ने मत दिये, उनमें से ७० उनका समर्थन करनेवाले मिले। इस बात को मैं तो बहुत महत्त्व देता हूँ। इस बात ने अन्धकार में कुछ प्रकाश की किरणें डालीं, यद्यपि इन किरणों को अस्पष्ट ही कहा जायगा।

मतदान का परिणाम घोषित होने तक तो मैं सारी चीज को एक बड़ा मजाक समझकर मजा ले रहा था। हाँ, मुझे तो सारे समय विश्वास था कि यह मजाक जितना बड़ा था, उतना ही गम्भीर था। अब मैं देखता हूँ कि मेरा मजा केवल ऊपर-ऊपर ही था। उसकी तह में तो मर्म के घाव ढँकें हुए थे।

मतगणना की घोषणा होने के बाद दृश्य के मूल पात्र चले गये और सभा हँसी-मजाक पर उतर आयी। अत्यन्त महत्त्व के प्रस्ताव अत्यन्त लापरवाही

से पास किये गये। ये प्रस्ताव करते-करते बीच-बीच में हास्य-विनोद के फौवारे फूट रहे थे। कोई भी किसी भी समय किसी भी बात को नियम-विरुद्ध करार देने और कुछ भी माँगने के लिए खड़ा हो जाता था। ऐसे हालात में किसी भी अध्यक्ष का धीरज टूट जाय, ऐसी कड़ी परीक्षा हो रही थी। मौलाना मुहम्मदअली इस परीक्षा में सही-सलामत पास हुए। उन्होंने अपना मिजाज ठीक कायम रखा। जानकारी माँगने को खड़े होने-वालों को बिठा देने में उन्होंने उचित ही किया था और मुझे स्वीकार करना चाहिए कि ये कीर्ति के पागल उनके फौरन् होनेवाले हुक्म आनन्द-पूर्वक मानते थे। किसी भी प्रसंग पर किसीने अपमानजनक व्यवहार किया, ऐसी कल्पना पाठक क्यों करें? मैंने शायद ही ऐसी बहुत सभाएँ देखी होंगी, जहाँ इस सभा की तरह उत्तेजित होने की संभावना के बावजूद और मतभेद तीव्र और गम्भीर होने पर भी इतनी कम कटुता से और कम-से कम व्यक्तिगत आलोचना से कार्रवाई हुई हो। मैंने ऐसी सभाएँ जरूर देखी हैं, जहाँ अध्यक्ष को व्यवस्था रखना बहुत कठिन हो गया हो। अहमदाबाद की महासमिति में तो अध्यक्ष के आदेश सबने खुशी से शिरोधार्य किये।

फिर भी गोपीनाथ साहवाले प्रस्ताव के बाद गाम्भीर्य का नाम भी नहीं रहा और इस गाम्भीर्यशून्य सभा के सामने मुझे अपना अन्तिम प्रस्ताव पेश करना था। जैसे-जैसे कार्रवाई होती रही, वैसे-वैसे मैं अधिक गम्भीर होता गया हूँगा। कई बार तो मुझे ऐसा लगा कि इस घबरा डालनेवाले वातावरण में से भाग जाऊँ। मुझे जो प्रस्ताव पेश करना था, उसे इस सभा के सामने पेश करने में मैं घबरा गया। सुबह अदालतों के बहि-ष्कार-सहित पाँच बहिष्कारों का सिद्धान्त न माननेवालों और उन्हें स्वयं अमल में न लानेवालों को कार्यसमितियों से इस्तीफा देने का अनुरोध करनेवाला प्रस्ताव पास हो चुका था। इस प्रस्ताव को रखते हुए मैंने सभा को वचन दिया था कि मैं अदालतों में जानेवाले फरीकों को बचाने के लिए कुछ-न-कुछ उपाय सुझाऊँगा अथवा प्रस्ताव पेश करूँगा। यह वचन न दिया होता तो प्रस्ताव स्थगित करने की माँग करता। जिन्हें वादी या प्रतिवादी––मुद्दई या मुद्दालेह––के रूप में अदालत में घसीटा जाना पड़े, उनके लिए इस प्रस्ताव में अपवाद रखने की जरूरत थी। मेरे जिस

मूल प्रस्ताव को कार्यसमिति ने मंजूर किया था और जो महासमिति के सदस्यों को पहले से बाँट दिया गया था, उसमें उन्हें संरक्षण मिलता था। परन्तु उसके बजाय अन्त में महासमिति ने जो प्रस्ताव पास किया, वह पेश किया गया था। अब इस प्रस्ताव को पढ़ने से पता लगेगा कि उसमें कोकोनाडा के प्रस्ताव का अपवाद किया गया है। परन्तु यह अपवाद शामिल करते हुए वादी प्रतिवादियों का अपवाद मुझसे नहीं हो सका था। कारण, मेरी इच्छा भिन्न ही प्रस्ताव बनाकर उसे रखने की थी। प्रस्ताव पेश करते हुए मैंने यह घोषणा की और जिस प्रस्ताव को पेश करने का मैं वचन दे चुका था, उसके द्वारा गहरे अन्धकार में मुझे रास्ता दिखाई दिया। यह प्रस्ताव रखते समय भी मैं प्रस्तावना करने से नहीं चूका था कि प्रातःकाल दिये हुए वचन का पालन करने के लिए यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा रहा है। साथ ही साथ मैंने श्री गंगाधरराव देशपाण्डे का उदाहरण ऐसे मनुष्यों में दिया था, जिन्हें तीसरे प्रस्ताव पर कड़ाई से अमल करने में इस्तीफा देने की जरूरत हो जाय। अपवादों में और 'जहाँ तक हो सके' में मेरा विश्वास नहीं। परन्तु मैं इतना जानता हूँ कि कुछ कट्टर-से-कट्टर असहयोगियों को अदालतों का त्याग करना बहुत कठिन हो गया है। बेशर्म देनदारों ने यह जानकर कि असहयोगी लेनदार उन पर दावा नहीं कर सकेंगे, कर्ज चुकाने से इनकार कर दिया है। इसी प्रकार असहयोगी बचाव नहीं करेंगे, इस कारण उनके विरुद्ध दावे करनेवाले मनुष्य मैंने देखे हैं। इसके बावजूद जाँच करनेवाला जाँच करके देख लेगा कि आम असहयोगियों में बहुत ऐसे जान पड़ेंगे, जिन्होंने सफाई देने या दावा करने के बजाय नुकसान उठा लेना अधिक पसन्द किया है। परन्तु इतनी बात तो सच है कि कार्यसमितियों में काम करनेवाले हमेशा बहिष्कार नहीं कर सके। इसलिए दावे करने और खास तौर पर सफाई देने के विरुद्ध अखाड़ा लगाने की प्रथा पड़ गयी है। महासमिति ने भी समय-समय पर इस रिवाज को एक हद तक नियमित करार देने के नियम पास किये हैं। इन हालात में मैंने सोचा कि महासमिति जब पाँचों बहिष्कारों के पालन का कड़ा नियम बना रही है, तब वादी प्रतिवादियों की स्थिति अच्छी तरह स्पष्ट हो जानी चाहिए। कांग्रेस कार्यसमितियों में पाँचों बहिष्कारों का सम्पूर्ण पालन करनेवालों को ही लें, तो मुझे तो यह सोने में सुगन्ध ही

लगेगा। परन्तु वर्तमान स्थिति में अदालतों का बहिष्कार पूरी तरह करना बहुतों के लिए तो लगभग असम्भव हो गया है। इसके लिए तो अपरिग्रह के—इच्छापूर्वक निष्किचन होने के—व्रत लिवाने चाहिए। ऐसे स्त्री-पुरुषों से कांग्रेस की संस्थाओं को हम भर दें। और सफलतापूर्वक चलाने लगें, इसके लिए तो थोड़ा समय चाहिए। यह कठिन स्थिति स्वीकार करके वादी प्रतिवादियों के बचाववाला उपर्युक्त प्रस्ताव पेश करने का अरुचिकर कार्य करने को मैं तैयार हुआ था। मैं प्रस्ताव पूरा पढ़ लूँ, इससे पहले तो आन्ध्र प्रान्त के बहादुर हरिसर्वोत्तमराव खड़े हुए और एक जबर्दस्त और सचोट भाषण से उसका विरोध किया। उन्होंने बताया कि 'मुझे इस प्रस्ताव का विरोध करने का दुःखद कर्तव्य पालन करना पड़ रहा है।' मैंने उन्हें कहा कि 'भाई, दुःख तो मुझे हो रहा है, क्योंकि मैंने ऐसा प्रस्ताव पेश किया है, जिसका मैं बचाव नहीं कर सकता। ऐसे प्रस्ताव के विरुद्ध होने में और कांग्रेस की संस्था को किसी भी कीमत पर शुद्ध रखने में आपको तो आनन्द ही होना चाहिए।' मुझे विरोध अच्छा लगा और इसकी प्रतीक्षा कर रहा था कि मत कैसे पड़ते हैं। परन्तु तुरन्त ही सिन्ध के स्वामी गोविन्दानन्द उठे और उन्होंने नियम की ऐसी आपत्ति उठायी कि एक ही बैठक में पहले हो चुके प्रस्ताव में फेरबदल करनेवाला दूसरा प्रस्ताव पेश नहीं हो सकता। परन्तु अध्यक्ष महोदय ने यह आपत्ति अस्वीकार कर दी, और कुछ नहीं तो इतने ही कारण से कि अगले ही दिन पहला प्रस्ताव बहुमत से पास हो जाने के बाद उसमें फेरबदल करनेवाला दूसरा प्रस्ताव पास हुआ था। परन्तु मेरा धीरज पूरी तरह तोड़ देने में अनजाने ही डॉक्टर चोइथराम निमित्त बने। मैं उन्हें जिम्मेदार आदमी के रूप में जानता हूँ। उनके खाते में दीर्घकालीन अखण्ड देश-सेवा जमा है। उन्होंने देश के लिए फकीरी ली है। पहले तो कई बार इसी महासमिति ने बहिष्कार के प्रस्ताव का असर हलका करनेवाले बहुत-से प्रस्ताव स्वीकार किये थे, फिर भी इस मामले में डॉक्टर चोइथराम ने नियम की आपत्ति की, इससे मैं दिग्मूढ हो गया। परन्तु उन्होंने तो विचारहीन ढंग से पूछा कि क्या गांधी का प्रस्ताव बहिष्कार-सम्बन्धी कांग्रेस के प्रस्ताव के विरुद्ध नहीं? मौलाना मुहम्मदअली ने मुझसे पूछा कि 'यह एतराज ठीक नहीं माना जायगा?' मैंने कहा: 'बेशक।' इसलिए मेरे प्रस्ताव को नियम-

विरुद्ध ठहराने को उन्हें मजबूर होना पड़ा। इस तरह मैं सहम गया। किसीके वचन या व्यवहार में कुछ भी अनुचित तो था ही नहीं। सबके भाषण संक्षिप्त थे, उनमें विनय की भी कमी नहीं थी और फिर सबकी बात दीखने में सच भी थी। फिर भी यह सब खेल था। जो आपत्तियाँ उठायी गयीं, वे अस्थिपंजर हो गये किसी भूखे मनुष्य को संयम की शक्ति का प्रवचन सुनाने जैसी थीं। प्रत्येक न जान-बूझकर नहीं, परन्तु मूर्च्छित होकर व्यवहार किया। मुझे लगा कि उनके द्वारा ईश्वर मुझे कह रहा है: 'मूर्ख, समझता नहीं कि तू अस्पृश्य है? तेरा समय पूरा हो गया है।' मेरा प्रस्ताव गिरते ही गंगाधरराव ने मुझे पूछा : 'मुझे त्याग-पत्र दे देना चाहिए न?' मैंने कहा : 'हाँ, तुरन्त दे डालो।' और उन्होंने फौरन् इस्तीफा लिख दिया। अध्यक्ष महोदय ने सभा को पढ़ सुनाया। लगभग सर्वसम्मति से वह पास हुआ। गंगाधरराव को तो लाभ ही हुआ।

शौकतअली सात-आठ कदम दूर मेरे सामने ही बैठे थे। उन्होंने मुझे भाग जाने से रोका। मेरे मन में सवाल उठता ही रहता था, 'क्या असत्य से भी सत्य उत्पन्न होता है? मैं शैतान के साथ सहयोग नहीं कर रहा?' शौकत-अली मानो अपनी विशाल आँखों की पलकों के इशारे से मुझे कह रहे थे: 'कुछ बुरा नहीं, सब ठीक हो जायगा।' उसके मोहपाश से भागने को मैं तड़प रहा था, परन्तु भाग नहीं सका।

अध्यक्ष ने पूछा: 'सभा अब विसर्जन करें?' मैंने कहा: 'जरूर।' परन्तु मौलाना अबुलकलाम आजाद मेरे मुँह पर बदलते हुए रंग ध्यान से देख रहे थे। उन्होंने तुरन्त ही आकर कहा : 'आपने सन्देश देने का वचन दे रखा है, उसके बिना जलसा बरखास्त नहीं हो सकता।' मैंने कहा: 'मौलाना साहब, आपकी बात सच है कि भविष्य में करने के काम के विषय में मुझे कुछ-न-कुछ कहना था। परन्तु गोपीनाथ के प्रस्ताव के बाद पिछले एक घंटे से जो कुछ हो रहा है, उससे मुझे दुःख हुआ है। अब मेरी क्या स्थिति है और मुझे क्या करना चाहिए, इसका मुझे पता नहीं।' उन्होंने कहा: 'अच्छा, इतना तो कहेंगे न?' मैंने मंजूर किया। और हिन्दुस्तानी में एक छोटा-सा भाषण देकर अपना हृदय चीरकर उसमें से टपकनेवाला खून मैंने प्रकट किया। मुझे रुलाना कोई छोटी-मोटी बात नहीं। आँसुओं का प्रसंग हो तो भी उन्हें रोकने की कोशिश

करता हूँ। परन्तु इस अवसर पर तो छाती कड़ी करने के पूरे प्रयत्न के बावजूद मेरी हिम्मत बिलकुल टूट गयी। सभा पर भी असर साफ दिखाई दे ही रहा था। मैंने उन्हें अपनी सारी मनोदशा बयान करके बतायी और कहा कि शौकतअली आगे खड़े न होते तो मैं भाग जाता, क्योंकि जैसे मुसलमानों की इज्जत बचाना मेरे हाथ में होने का मैंने अभिमान रखा है, उसी तरह मैंने माना है कि हिन्दुओं की आबरू इनके हाथ में है। और फिर मैंने बताया कि अपने भावी कार्यक्रम के विषय में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। इतना ग्लानिपूर्ण भाषण शायद ही कभी मैंने किया होगा। उसे पूरा करते ही फौरन् मौलाना अबुलकलाम आजाद की तलाश करने लगा। वे तो मेरे पास से चुपके से खिसक गये और दूर मेरे सामने खड़े थे। मैंने उनसे कहा : 'अब तो जाऊँगा।' उन्होंने कहा : 'नहीं, जरा ठहर जाइए। हमें भी अपने विचार थोड़े बताने चाहिए।' यों कहकर उन्होंने सभा से बोलने का अनुरोध किया। सब गद्गद होकर बोले। लम्बी सफेद दाढ़ी-वाले सिक्ख मित्र को बोलते हुए गद्गद होकर बैठ जाते देखकर मुझे बहुत ही अच्छा लगा। शौकतअली भी बोले थे और अन्य सबने माफी माँगी और अपने अटल समर्थन का मुझे आश्वासन दिया। मुहम्मदअली बोलते-बोलते दो बार रो पड़े। मैंने उन्हें सान्त्वना देने की कोशिश की।

मुझे किसी बात की माफी नहीं देनी थी, क्योंकि किसीने मेरा कुछ भी बिगाड़ा नहीं था। उल्टे सबने मेरे प्रति ममता दिखाई। मुझे दुःख हो रहा था, क्योंकि कांग्रेस के संकल्प की तराजू में हम अधूरे उतरे थे। देश के हम इतने अधिक पामर प्रतिनिधि थे। मुझे वहाँ अपना स्थान ही नजर नहीं आया। जिन्हें मेरा सन्देश स्वीकार करने की कोई गरज़ नहीं थी, उनका नेता बनने की अपनी शक्ति के बारे में मुझे शंका हुई और उसीका मुझे दुःख था। मुझे अनुभव हुआ कि मैं बिलकुल हार गया और मेरा गर्व चूर्ण हो गया। परन्तु हार मुझे बेहिम्मत नहीं बना सकती। उससे तो सिर्फ हिम्मत बढ़ती है। मेरे अपने सिद्धान्त के बारे में मेरी श्रद्धा तो अचल ही है। मुझे विश्वास है कि ईश्वर मुझे मार्ग दिखायेगा। समझदारी जहाँ न चले, वहाँ सत्य तो जरूर चलेगा।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[टिप्पणी : ऊपर का लेख सोमवार ता० ३० जून को लिखा गया था। मैंने उसे लिखा, परन्तु उससे मुझे न तो उस समय सन्तोष हुआ और न अब भी होता है। इसे पढ़कर देखने से मुझे लगता है कि मैंने सभा के साथ और अपने साथ अन्याय किया है। समिति की बैठक खत्म होने के बाद जिस सभा में ऊपर कही हुई हृदय की बात हुई, वह सभा बड़ी हुई, परन्तु उससे पहले हुई समिति की बैठक भी, जिसकी कार्रवाई से मुझे दुःख हुआ, कुछ कम नहीं थी। किसी भी वक्ता के दिल में द्वेष तो था ही नहीं, यह चीज मेरे उपर्युक्त लेख में से निकलती है या नहीं, इस बारे में मुझे शंका है। मेरे मन को दुःख हुआ सो तो जो अनजाने गैरजिम्मेदारी का आचरण हुआ उससे और कांग्रेस के अहिंसा के संकल्प की अवहेलना से हुआ।

इस हृदय की गुप्त बात से हृदय की जाँच करने का मौका मिला। वातावरण स्वच्छ हुआ। मंगलवार को सारे दिन मैंने अपने साथियों से अपनी स्थिति के बारे में चर्चा की। मेरी आन्तरिक इच्छा तो ऐसी थी और है कि कांग्रेस से निकल जाऊँ और केवल हिन्दू-मुस्लिम-एकता, खादी और अस्पृश्यता का काम करता रहूँ। परन्तु उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। उन्होंने कहा : 'प्रजा के इतिहास में नाजुक समय पर निकल जाने का आपको हक नहीं। आपके हट जाने से स्थिति सुधरेगी नहीं। इसके विपरीत लोगों की निराशा बढ़ेगी और कांग्रेस की बैठकों में जीता-जागता अंकुश नहीं रहेगा। जो कार्यक्रम आपने तैयार किया, उसके लिए जब तक बहुमत है, तब तक तो आपको उसका पूरी तरह अमल करना ही होगा। महासभा में दिये गये मतों से जान पड़ता है कि उसकी अपेक्षा देश में आपके कार्यक्रम को माननेवाली बहुत बड़ी संख्या मौजूद है। आप देश में दौरा कीजिए और खुद सब कुछ देखिए।' मेरा दूसरा प्रस्ताव यह था कि कांग्रेस का संकल्प जिन्हें पूरी तरह मान्य न हो, वे कांग्रेस को छोड़कर उसे स्वराज्यवादियों को सौंप दें। इसके विरुद्ध भी दलीलें हुईं। और मैंने इस प्रस्ताव को विचारहीन मानकर नामंजूर कर दिया। स्वराज्यवादियों की ऐसी इच्छा थोड़े ही थी? और उनसे असम्भव वस्तु कराने की आशा रखना उनकी हिंसा करने जैसा है। मैं तो जानता हूँ कि वे मेरा पहला प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं करेंगे। मैंने जुहू में उनसे यह प्रस्ताव

किया था और अहमदाबाद में दुबारा किया था, इसलिए मैंने अनिच्छा से कड़वी घूँट पी लेने और कांग्रेस में बना रहकर जब तक मुझे कम मत न मिलें, तब तक उसके काम का भार उठाने का निश्चय किया ।

जल्दी के रास्ते निकालकर मंजिल पूरी करने की आशा मैं कैसे रखूँ ? मुझे आहिस्ता-आहिस्ता ही अपना रास्ता तय करना चाहिए। मुझे जब तक निकाल न दिया जाय, तब तक अपना मन जेब में रखकर ठहरे रहना चाहिए। जाहिरा तौर पर मुझे किसी एक पक्ष में मिल जाना चाहिए और फिर भी बता देना चाहिए कि मैं निष्पक्ष मनुष्य की तरह काम कर सकता हूँ। आगामी कांग्रेस में अधिक मत प्राप्त करने का जितने निष्पक्ष ढंग से सम्भव हो, प्रयत्न करना चाहिए। सत्याग्रही से यह सब जरूर हो सकता है।

इसके लिए शर्तें दीपक जैसी साफ और सादी हैं। ठोस काम दिखाकर ही अधिक मत प्राप्त किये जा सकते हैं।

१. आध घण्टा कातने के अलावा जितना समय फ़ुरसत का मिले, वह सारा समय कातने में लगाना चाहिए।

२. खादी का काम-काज करते हुए अवकाश के समय कातना छोड़ा जा सकता है।

३. कांग्रेस के सदस्य यथासम्भव बढ़ाकर मतदाताओं की संख्या बड़ी की जा सकती है।

४. मतपत्रों के साथ गड़बड़ नहीं होनी चाहिए।

५ मत प्राप्त करने के लिए कोई खटपट (उठापटक) नहीं होनी चाहिए।

६. विरुद्ध पक्ष के सिद्धान्तों की आलोचना हो सकती है, परन्तु व्यक्तियों की हरगिज नहीं होनी चाहिए।

७. मतदाताओं पर किसी भी प्रकार का अनुचित दबाव नहीं होना चाहिए।

कहा जाता है कि भूतकाल में दोनों पक्षों ने प्रतिनिधि चुनने में और अधीन संस्थाओं के सदस्य चुनने में निर्लज्ज रीति-नीति ग्रहण की थी। इस मलिन काम से बच निकलने का मार्ग यही है कि मतदाताओं को

समझाने के समस्त प्रामाणिक प्रयत्न करने के बाद परिणाम क्या होगा, इस बारे में उदासीन रहा जाय।

सनातन कार्यक्रम सचमुच सनातन होना चाहिए। महासमिति की कार्यवाही से मेरा तो मत दृढ़ हुआ है कि एक ही संस्था में दो प्रयोग नहीं चल सकते। स्वराज्यवादियों के ढंग में ब्रिटिश लोकमत पर असर डालना निहित है और स्वराज्य के लिए ब्रिटिश पार्लमेण्ट से आशा रखी जाती है। अपरिवर्तनवादियों के तरीके में स्वराज्य के लिए स्वराज्य लोगों से ही लेने की आशा रखी जाती है। दोनों ढंग अलग-अलग मनोदशा प्रकट करते हैं। आशय यह कहने का नहीं कि एक गलत और दूसरा सही है। दोनों अपने-अपने स्थान में सही हो सकते हैं। परन्तु एक ही संस्था दोनों ढंग चलाने लगे तो परिणामस्वरूप दोनों प्रयोग कमजोर होंगे और राष्ट्र-कार्य की हानि होगी। एक समूह विधान-मण्डलों के द्वारा राजनैतिक शिक्षा देने का दावा करता है। दूसरा समुदाय लोगों में काम करके और लोगों की प्रबन्ध-शक्ति को प्रोत्साहन देकर ही राजनैतिक शिक्षा देने का दावा करता है। एक लोकोन्नति के लिए राज्य से आशा रखना सिखाता है। दूसरा सिखाता है कि अत्यन्त आदर्श राज्य भी स्वराज्यभोगी जनता की उन्नति में अतिशय अल्प भाग अदा करता है। एक जनता को सिखाता है कि केवल रचनात्मक कार्यक्रम से स्वराज्य नहीं मिल सकता। दूसरा समुदाय सिखाता है कि केवल उसीसे स्वराज्य मिल सकता है और अन्य किसीसे नहीं मिल सकता।

दुर्भाग्य से यह दीपक जैसी बात मैं स्वराज्यवादियों को नहीं समझा सका। और एकवर्णी संस्था बनाने में मुझे नियमों की कठिनाई बाधक हुई, इसलिए दूसरा, अच्छे-से-अच्छा उपाय करना होगा। दिसम्बर में क्या होगा, इसकी कुछ भी चिन्ता किये बिना शान्ति से रचनात्मक कार्य हमें करते ही रहना चाहिए। और ऐसा करने में हमें पूरी श्रद्धा होनी चाहिए कि कांग्रेस हमारा कार्यक्रम स्वीकार करे या न करे तो भी हमारे लिए तो यह सनातन कार्यक्रम है। दूसरा कार्यक्रम ही नहीं है। अपने को अपरिवर्तनवादी कहनेवाले समाचार-पत्रों के संचालकों से मैं आग्रह करता हूँ कि वे स्वराज्यवादियों की किसी भी प्रकार से आलोचना न करें। मुझे विश्वास है कि अखबार जनता की नीति और कार्यक्रम बनाने में

बहुत थोड़ा भाग लेते हैं। जनता अखबार को नहीं जानती। अपरिवर्तन-वादियों को--सनातनियों को--उन लोगों में पहुँचना है, जिन्हें कुछ भी राजनैतिक शिक्षा नहीं मिली और उनके प्रतिनिधि बनना है।

ता० ६-७-१९२४, नवजीवन मो० क० गांधी]

३. पिछली महासमिति

महासमिति के सारे प्रस्ताव इसी अंक में अन्यत्र दिये गये हैं। पहले प्रस्ताव में से शिक्षा के प्रबन्धवाला भाग निकल गया है। यह मेरी अनेक हारों में से पहली हार है। जाहिरा बहुमत से मैं धोखे में नहीं आ सकता। समिति में से चले गये स्वराज्यवादी सदस्यों के मत लिये जायँ तो मुझे निश्चित पराजय प्राप्त होगी, मेरा यह विश्वास हो जाने से मेरे लिए जाहिरा बहुमत से सन्तुष्ट होना असंभव ही था। इसलिए मैंने समिति के सदस्यों से आग्रह किया कि समिति छोड़कर गये हुए सदस्यों के भी मत गिने जायँ और प्रस्ताव में से शिक्षावाला भाग निकाल दिया जाय।

दूसरा प्रस्ताव मूल प्रस्ताव जैसा तो नहीं रहा, मगर उसका भाव वही है। दिये गये आदेश को न मानने के लिए सजा देने का सिद्धान्त नये प्रस्ताव में भी कायम रखा गया है।

तीसरे प्रस्ताव में वास्तविक असफलता है। मैं तो अब भी ऐसा मानता हूँ कि कांग्रेस की चुनी हुई समितियाँ सभी कार्य-समितियाँ हैं। और इसलिए कांग्रेस का कार्यक्रम श्रद्धापूर्वक स्वीकार करनेवाले और उसमें विघ्न डालने और उसे ढीला करने से इनकार करनेवाले मनुष्य ही उनमें रह सकते हैं। सारे कार्यक्रम को कार्यान्वित करने की उनकी इच्छा होनी ही चाहिए। परन्तु नियम की कठिनाई से निकलना मुश्किल था। कोकोनाडा का कार्य-क्रम किसी भी प्रकार मर्यादित हो तो वह कांग्रेस के संविधान का भंग माना जाना चाहिए। मैं अब भी जो अर्थ करता हूँ, उसी अर्थ में तो मेरे मूल प्रस्ताव से नियम का भंग नहीं होता था। परन्तु मुझे बताया गया कि मेरी इच्छानुसार उसका अर्थ करने का मुझे कोई अधिकार नहीं और स्वराज्यवादियों को ऐसा दावा करने का हक है कि विधान-मण्डलों में जानेवालों का कार्य-समितियों में काम करने का हक मिट नहीं जाता। उन्होंने

यह भी बताया कि कांग्रेस की कार्यकारिणी में इस समय भी स्वराज्यवादी मौजूद हैं। इस दलील का मुझ पर बहुत वजन पड़ा और मुझे विश्वास हो गया कि स्वराज्यवादियों को कार्य-समितियों में रहने के लिए अयोग्य ठहरानेवाला मूल प्रस्ताव भी केवल इने-गिने अधिक मतों से पास हो सकता है। इसलिए मैंने उनकी दलीलों से विवश होकर अन्त में जिस रूप में यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ है, उसी रूप में उसे मान लेने को अपने मन को मना लिया। वह प्रस्ताव मुझे पसन्द नहीं; परन्तु सारा प्रस्ताव छोड़ देने के बजाय उसमें इतना संशोधन स्वीकार कर लेने के सिवा कोई चारा नहीं था। देश के सामने एकवर्णी संस्था का आदर्श रखने के लिए और राजकाज में स्वच्छता पर जोर देने के लिए उस मूल प्रस्ताव की आवश्यकता थी। प्रतिनिधि जिस मापदंड से दूसरों के लिए नियम बनाते हैं, उसी मापदंड को स्वयं स्वीकार करने के लिए बँधे हुए हैं। कई तरह से बताया जा सकता है कि कांग्रेस अब कोई भीख माँगनेवाली संस्था नहीं रही है, परन्तु मुख्यतः आन्तरिक बल बढ़ाकर आदर्श को पहुँचने के लिए नियोजित आत्मशुद्धि की एक संस्था है। इसलिए राष्ट्रीय जीवन के लिए जितनी बातें जरूरी हों, उनके पक्ष में लोकमत उत्पन्न करना चाहिए। लोकमत उत्पन्न करने का उत्तम मार्ग प्रस्ताव बनाने और प्रस्तावों को समर्थन देनेवाले तैयार करना है। इस कारण तात्कालिक अनेकवर्णता की जोखिम मैंने उठा ली है, तो भी दोनों पक्षों से मैं खूब आग्रह करूँगा कि कोई एक-दूसरे के रास्ते में रुकावट न बने।

परन्तु चौथे प्रस्ताव ने तो मेरी हार में जो कुछ कसर थी, उसे भी पूरा कर दिया। यह बात सच है कि गोपीनाथवाला प्रस्ताव जाहिरा बहुमत से पास हुआ, परन्तु ऐसी खींचतान के बहुमत की अपेक्षा निश्चित अल्पमत मिला होता तो मैं बहुत खुश होता। देशबन्धु दास के संशोधन के लिए मत देनेवाले बहुत लोग ऐसे थे, जिन्होंने बंगाल में मँडरायी हुई धरपकड़ की अफवाहों के कारण ही मत दिये थे। यह बात मैं भूलता नहीं। बहुतों को तो स्वाभाविक रूप में ऐसा लगा कि बहुत बड़े नेता और साथी को बचाने में इज्जत है, खास तौर पर जब उसने देश की भारी सेवा की हो और बड़ा त्याग किया हो। इस प्रकार अक्सर सिद्धान्तों के विचार के सामने भावना को प्रधानता मिलती है और मुझे विश्वास है कि यदि

बंगाल सरकार देशबन्धु दास को और उनके अनुयायियों को पकड़ेगी तो वह गम्भीर भूल करेगी। राय और विचार को दण्ड देने के दिन लद गये। यदि देशबन्धु के संशोधन का समर्थन करने में मुझे सिद्धान्त की बाधा न होती तो मैंने निःसंकोच उसकी हिमायत की होती। परन्तु मुझसे ऐसा हो नहीं सकता था, किसी भी कांग्रेसी से नहीं हो सकता था। श्री दास मेरे प्रस्ताव और अपने संशोधन के बीच कोई भेद नहीं देखते। मैं इसे केवल आत्मप्रतारणा ही कह सकता हूँ। उनके संशोधन का समर्थन करने जो खड़े हुए, उन्होंने साफ-साफ निश्चित रूप में कह दिया। उनकी नीति में तो राजनैतिक हत्या के लिए स्थान था। और सच पूछें तो क्या यही सामान्य नीति नहीं ? कथित सुधरे हुए लोगों में से अधिकांश इसी नीति को मानते हैं और अवसर आने पर उसका अमल करते हैं। वे मानते हैं कि छिन्न-भिन्न और दलित प्रजा के लिए राजनैतिक मारकाट ही एक-मात्र उपाय है। यह नीति गलत है, इस नीति से संसार अधिक निवास के योग्य नहीं बन सका, यह तो स्पष्ट ही है। मैं तो इतना ही कहता हूँ कि यदि श्री दास और उनका समर्थन करनेवालों ने भूल की हो तो (सुधरे हुए) लोकमत का बड़ा भाग उनके पक्ष में है। भारत के विदेशी स्वामियों के खाते में इस नीति के अलावा और कोई अधिक उज्ज्वल वस्तु मालूम नहीं होती। यदि कांग्रेस साधन-शुद्धि सम्बन्धी किसी भी बाधा से रहित राजनैतिक संस्था होती तो गुण-दोष की दृष्टि से श्री दास के प्रस्ताव के विरुद्ध आपत्ति नहीं उठायी जा सकती थी। तब तो केवल उसकी उप-योगिता का ही प्रश्न विचारणीय रह जाता।

परन्तु कांग्रेस के ७० प्रतिनिधि देशबन्धु के संशोधन के समर्थक निकले, इससे मैं चकित हो गया। उन्होंने अपने संकल्प को तोड़ा है। मेरी धारणा के अनुसार श्री दास का संशोधन कांग्रेस के अहिंसा के संकल्प अथवा नीति के विरुद्ध था। परन्तु ऐसा एतराज मैंने जान-बूझकर ही नहीं किया। यदि सदस्यों को ऐसा प्रस्ताव नहीं चाहिए तो भले ही उन्हें ऐसा करने दिया जाय। मेरी धारणा के अनुसार कानून के सवाल आम तौर पर सदस्यों को ही निपटाने देना उत्तम है।

दूसरे प्रस्तावों के बारे में किसी चर्चा की जरूरत नहीं।

पिछली महासमिति

सिक्ख लोगों की कुर्बानी और वीरता की प्रशंसा करनेवाला प्रस्ताव कांग्रेस की परम्परा से चली आयी नीति के अनुरूप था।

अफीम सम्बन्धी प्रस्ताव करने की दो कारणों से आवश्यकता हुई। संसार में अफीम की पैदावार केवल उसकी वैद्यकीय आवश्यकता के लिए ही पर्याप्त हो, इसके लिए उत्तम कार्य कर रहीं बहन लामोटे ने भारत सरकार की भ्रष्ट अफीम-नीति के बारे में करुण उद्गार प्रकट किये हैं। भाई ऍण्ड्रूज ने बताया है कि अफीम-परिषद् में लोगों की जरूरतें दिखाने के लिए 'वैद्यकीय' शब्द को बदलकर 'उचित' शब्द रखने में भारत सरकार ही जिम्मेदार है। इस कारण जीनेवा में होनेवाली आगामी परिषद् को ध्यान में रखकर यह प्रकट करना कि भारत सरकार की नीति के बारे में भारतीय जनता क्या सोचती है, यह महासमिति को आवश्यक लगा। इसी प्रकार अफीम की आदत के कारण आसाम-निवासियों की स्थिति कैसी हो जाती है, इसकी जाँच करने की भी उतनी ही आवश्यकता प्रतीत हुई। इस भद्दी आदत के परिणामस्वरूप आसाम की सुन्दर जनता के शरीरों में घुन लग जाता है। आसाम प्रान्तीय कांग्रेस इस बारे में जाँच करने को तैयार है, इसलिए उस प्रान्तीय कांग्रेस के साथ रहकर उपर्युक्त जाँच करने के लिए भाई ऍण्ड्रूज को नियुक्त करना महासमिति को इष्ट प्रतीत हुआ है।

सातवें प्रस्ताव के द्वारा मलाया द्वीपपुंज और लंका के भारतीय मजदूरों की स्थिति की जाँच करने के लिए आवश्यक मालूम हो तो एक डेपुटेशन भेजने का अधिकार कार्य-समिति को दिया गया है। लंका और मलाया द्वीपपुंज में मजदूरी करने जानेवाले लोगों की स्थिति के विषय में अखबारों में आनेवाले छुटपुट समाचारों के अतिरिक्त हम कुछ नहीं जानते। उनकी स्थिति की जाँच करने और उसे सुधारने के लिए सम्भव उपाय करना हमारा धर्म है।

मो० क० गांधी

ता० ६-७-१९२४, नवजीवन

परिशिष्ट : ४*

कांग्रेस और उसका संविधान

१. असहयोग और अहिंसा

'यंग इण्डिया' के लेखों में हाल में पाठक जो परेशान कर देनेवाले परिवर्तन देखते होंगे, उनसे सम्भव है, उन्हें घबराहट होती होगी। मैं विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि ये परिवर्तन नहीं, परन्तु उस दिशा में निश्चित प्रगति है, जिसमें हम जायँ अथवा हमें जाना चाहिए। हमने जो सिद्धान्त अपनाये हैं, उनमें से स्वाभाविक रीति से फलित होनेवाले ये परिणाम हैं।

हमें इतना याद रखना चाहिए कि असहयोग से अहिंसा का महत्त्व बहुत अधिक है। अहिंसा के बिना असहयोग पापरूप हो जायगा। यह बात हम याद रखें तो आजकल मैं जिन विचारों का विकास कर रहा हूँ, वे दीपक की तरह स्पष्ट समझ में आ जायँगे। परन्तु मुश्किल यह है कि पर्दे के पीछे जो कुछ हो रहा है, उसमें से बहुत कुछ पाठक नहीं जानते। कुछ जान-बूझकर और दूसरा कोई उपाय न होने से लिखने में अपने पर अंकुश रख रहा हूँ। क्षण-क्षण पर और रोज-रोज होनेवाले निर्णय साथियों को बताते रहना कठिन है। मेरे मतानुसार मुख्य सिद्धान्त से जरूरी तौर पर फलित होनेवाले परिणामस्वरूप होने के कारण आशा रखता हूँ कि पाठकों की समझ में भी वे मेरी तरह ही स्पष्ट आ जायँगे।

सच तो यह है कि जैसे हालात बदलते जायँ, वैसे हमारा कार्यक्रम हमें बदलना चाहिए। इसमें कोई असंगति नहीं, यदि वह कार्यक्रम मूल वस्तुओं में से ही फलित होता हो।

सबको यह तो दिखाई देता होगा कि हमारे मतभेद बढ़ते जा रहे हैं। प्रत्येक संस्था अपने कार्यक्रम को सिद्धान्त का प्रश्न बना देती है। हरएक

* देखिए पृष्ठ २८६।

अन्तःकरण से मानती है कि उसके कार्यक्रम से ही सर्वसामान्य ध्येय तक जल्दी पहुँचा जा सकेगा। देश में कुछ मनुष्य–उनकी संख्या बढ़ती न जा रही हो तो भी बड़ी तो है ही–ऐसा मानते हैं कि विधान-मण्डलों का कार्यक्रम चलाना ही चाहिए। इसलिए हमारा असहयोग सरकार के विरुद्ध होने के बजाय आपस में हो गया है। यद्यपि हम चाहते नहीं तो भी हम एक-दूसरे को कमजोर कर रहे हैं और इस हद तक जिस तंत्र का हम नाश करना चाहते हैं, उसकी मदद कर रहे हैं। इस तंत्र का मुख्य लक्षण हमें समझ लेना चाहिए। वह परोपजीवी कीड़े जैसा है, हमारे राष्ट्रीय जीवन की गन्दगी से उसे पोषण मिलता है।

एक सजीव, सक्रिय और अहिंसक बल के रूप में हमने असहयोग की योजना बनायी थी। यह असहयोग इस शासन-प्रणाली में रहनेवाली हिंसा के विरुद्ध चुनौती के तौर पर था। दुर्भाग्य से वह कभी सक्रिय ढंग से अहिंसक नहीं हो सका, कमजोर और लाचार मनुष्य की स्थूल अहिंसा से हमने सन्तोष माना। सरकारी तंत्र पर वह तत्काल असर नहीं डाल सका, इसलिए दुगुने जोर से वह हमारे विरुद्ध उछल रहा है; और हम समय पर नहीं चेते तो यह शस्त्र हमारा ही संहार करेगा। इसलिए मैंने तो निश्चय कर लिया है कि मुझे अपने घर के झगड़े में हिस्सेदार नहीं होना है। दूसरों से भी ऐसा ही करने का अनुरोध करता हूँ। इस झगड़े को मिटाने में हमें सक्रिय सहायता न दे सकें तो भी उसमें कोई रुकावट तो हरगिज न डालें। मैं पाँच बहिष्कारों को पहले की तरह ही कट्टरता से मानता हूँ। परन्तु महासमिति की (अहमदाबादवाली) बैठक के समय मैं जो नहीं देख सका, वह अब मुझे दीपक की तरह दिखाई रहा है कि हम व्यक्तिगत तौर पर जरूर उनका पालन कर, परन्तु सामुदायिक रूप में उन पर अमल करने का वातावरण इस समय नहीं। अभी की हवा में एक-दूसरे के प्रति बेहद अविश्वास है। हर प्रवृत्ति शंका की दृष्टि से देखी जाती है और उसका अनर्थ किया जाता है। फिर हम उसका स्पष्टीकरण करने बैठते हैं। फिर उसका दूसरी तरफ से स्पष्टीकरण किया जाता है। इस प्रकार हम भीतर-भीतर लड़ते हैं और दुश्मन खुश होता है। वह अपने बल को संगठित करता है। किसी भी कीमत पर हमें इस वस्तुस्थिति को बदलना ही चाहिए।

इसलिए मैंने सुझाव दिया है कि जो तमाम राजनैतिक दलों को मान्य हो, वह कम-से-कम कार्यक्रम हम ढूंढ़ निकालें; और उस कम-से-कम कार्यक्रम को सिद्ध करने के लिए कांग्रेस के मंच पर इकट्ठे होने के लिए सबको निमंत्रण दें। यह आन्तरिक विकास का कार्य है। इसके बिना ऐसा राजनैतिक बल पैदा नहीं कर सकेंगे, जिसका असर पड़े। जो राजनैतिक पुरुष आन्तरिक से बाह्य को अधिक महत्त्व देते हैं और जो यह समझते हैं कि आन्तरिक तो बहुत धीमा होगा, उन्हें भी अपने बल का विकास करने की पूरी तरह स्वतन्त्रता होनी चाहिए। परन्तु अपनी ऐसी प्रवृत्ति वे कांग्रेस के मंच से न करके स्वतन्त्र रूप में करें। कांग्रेस को तो जनता का प्रतिनिधित्व अधिक-से-अधिक करना चाहिए। जनता अभी तक राजनीति से अछूती रही है। जैसी हमारे राजनैतिक पुरुष चाहते हैं, वैसी राजनैतिक जाग्रति उसमें नहीं आयी। उनकी राजनीति तो रोटी और नमक तक ही सीमित है। घी शब्द का उच्चारण करने की तो मैं हिम्मत भी नहीं करता, क्योंकि हमारे करोड़ों लोगों को घी के स्वाद का भी पता नहीं। बहुतों को तो तेल भी नहीं मिलता। उनकी राजनीति जातीय जोड़-तोड़ तक मर्यादित है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि हम राजनैतिक व्यक्ति सरकार के विरोध की सीमा में जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु जनता के तैयार होने से पहले हम उसका उपयोग करने लगेंगे तो उनका प्रतिनिधित्व करने से हम रुक जायेंगे। उनके लिए और उनके बीच में बैठकर काम करते-करते पहले हम उनके साथ जीवन्त सम्पर्क में आना चाहिए। हमें उनके दुःख में भाग लेना चाहिए, उनकी कठिनाइयाँ समझनी चाहिए और उनकी जरूरतें जान लेनी चाहिए। अछूतों के साथ अछूत बनकर ऊँचे वर्ग के लोगों के पाखाने साफ करने और उनकी जूठन खाने में उन्हें कैसा लगता होगा, यह हमें अनुभव करना चाहिए। बम्बई के मजदूरों के पुराने टीन के झोंपड़ों में, जिन्हें गलत तौर पर घर कहा जाता है, रहना कैसा होता होगा, यह हमें जानना चाहिए। ऊपर जलती हुई धूप में जिनकी जली हुई कमर तप रही हो और उसमें जिन्हें मजदूरी करनी पड़ती हो, ऐसे देहातियों के साथ हमें एकता साधनी चाहिए। जिस तालाब में गाँवों के लोग नहाते हैं; अपने कपड़े और बरतन धोते हैं और उनके पशु पानी पीते हैं तथा मल-मूत्र

करते हैं, ऐसे तालाब में हमें पानी पीना हो तो हमें कैसा लगेगा, यह हमें देखना चाहिए। ऐसे तमाम अनुभवों में से गुजरेंगे तो ही हम जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकेंगे और ऐसा करेंगे तो मुझे पक्का विश्वास है कि हमारे प्रत्येक कार्यक्रम में जनता साथ देगी।

कुछ लोग जवाब देंगे कि 'हम सब यह नहीं कर सकते, और यदि यह करना ही हो तो हजार वर्ष तक अथवा उससे अधिक समय तक स्वराज्य की आशा रखना व्यर्थ है।' इस आपत्ति के प्रति मेरी सहानुभूति है। फिर भी मैं तो जरूर कहता हूँ कि और कुछ नहीं तो हममें से थोड़ों को तो इस कड़ी तपस्या में से गुजरना ही चाहिए। उसीसे परिपूर्ण, बलशाली और स्वतन्त्र राष्ट्र का जन्म होगा। सबको मैं इतना ही सुझाव देता हूँ कि इस काम में अपना मानसिक सहयोग दीजिए और जनता के साथ मानसिक एकता साधिए। इसके एक प्रत्यक्ष प्रतीक के रूप में इन गरीबों के नाम पर और इन गरीबों की खातिर प्रतिदिन कम-से-कम आध घण्टे कातिए। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और दूसरी जातियों के बुद्धिप्रधान वर्ग की यह एक जबरदस्त प्रार्थना हिन्दुस्तान की मुक्ति के लिए ईश्वर के दरबार में पहुँचेगी।

हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की तंगदिली, जो हर रोज बढ़ती जा रही है, दूर करने का और कोई रास्ता मुझे नहीं सूझता, सिवा इसके कि देश के तमाम दल कांग्रेस के मंच पर एकत्रित हो जायँ; और जो प्रश्न हमें व्याकुल बना रहा है और परस्पर विश्वास और परस्पर सहयोग के विशाल पाये पर खड़े किये गये राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य को सिद्ध करने की हमारी लाड़ली आशा को चूर-चूर कर रहा है, उस प्रश्न को हल करने का उत्तम मार्ग हमें ढूँढ़ निकालना चाहिए। किसी और कारण से नहीं तो केवल एकता की खातिर हमें आपस के राजनैतिक झगड़े का अन्त करना चाहिए।

इसके लिए मेरा सुझाव यह है कि :

(१) विदेशी वस्त्रों के सिवा और सब बहिष्कारों को सन् १९२५ के अन्त में होनेवाले अधिवेशन तक कांग्रेस स्थगित कर दे।

(२) पहली धारा के अधीन रहकर ब्रिटिश साम्राज्य के माल का बहिष्कार कांग्रेस छोड़ दे।

(३) कांग्रेस अपना काम हाथ-कताई और हाथकती हाथबुनी खादी के प्रचार, हिन्दू-मुसलिम-एकता की सिद्धि और हिन्दू-सदस्यों के लिए अस्पृश्यता-निवारण तक मर्यादित कर ले ।

(४) कांग्रेस मौजूदा राष्ट्रीय पाठशालाओं को जारी रखे और हो सके तो सरकार के अंकुश अथवा सरकार के असर से स्वतन्त्र नयी राष्ट्रीय पाठशालाएँ स्थापित करे ।

(५) सदस्य बनने के लिए चार आने फीस की शर्त हटा दी जाय और प्रत्येक सदस्य से हर महीने अपना काता हुआ दो हजार गज सूत लिया जाय । प्रत्येक सदस्य आध घण्टे काते और शुद्ध खादी पहने । जो सदस्य गरीब हो, उसे रूई मुहैया की जाय ।

कांग्रेस के संविधान में सूचित इस मौलिक परिवर्तन के लिए दो शब्द कहने की जरूरत है । कांग्रेस के संविधान को बनानेवाला मुख्य व्यक्ति मैं हूँ, यह कहने के लिए मैं माफी चाहता हूँ । उद्देश्य यह था कि यह संविधान संसार में सबसे अधिक लोकतन्त्रवादी हो जाय । यदि इस पर सफल रूप में अमल कराया जा सकता तो और कुछ किये बिना हम स्वराज्य ले बैठे होते । परन्तु उस पर अच्छी तरह अमल नहीं कर सके । हमारे पास काफी संख्या में ईमानदार और समझदार कार्यकर्ता नहीं थे । यह भी स्वीकार करना चाहिए कि इस संविधान का जो उद्देश्य था, उस अर्थ में वह टूट गया है । हमारे दफ्तर में सदस्यों की संख्या कभी एक करोड़ से अधिक नहीं हुई । इस समय तो शायद हमारे कथित रजिस्टर पर सारे देश में दो लाख से भी ज्यादा मेम्बर नहीं होंगे । और उनमें से अधिकांश तो चार आने देने और राय देने के सिवा हमारे काम-काज में आम तौर पर कोई दिलचस्पी नहीं लेते । हमें जरूरत तो है कार्यदक्ष, तेज, संगठित और परिणामकारक व्यवस्था की, जिसमें बुद्धिशाली और उद्योगी राष्ट्रीय कार्यकर्ता हों । हम बहुत थोड़े होंगे तो भी ऐसे खुर्राट और धीमे, किसी निश्चित विचाररहित, तंत्र की अपेक्षा अधिक काम दे सकेंगे । मैं एक ही बहिष्कार जारी रखने का सुझाव दे रहा हूँ और वह है विलायती कपड़े का । इस बहिष्कार को हमें सफल करना हो तो एक बार तो हमें कांग्रेस को कातनेवालों का मण्डल बना देना होगा । इस एक ही रचनात्मक कार्य में सफल हो जायँ तो यह हमारी एक बड़ी विजय होगी और उसका बड़ा डंका बजेगा । ऐसा करनेवाली

कोई एक चीज संभव हो तो वह हाथ-कताई और हाथ-बुनाई की खादी ही है। खादी को राष्ट्रव्यापी बनाना हो तो उसके लिए चरखा ही एक वस्तु है। यदि हमें आम जनता को राष्ट्रीय कल्याण में स्थायी रस लेनेवाली बनाना हो तो उसके लिए चरखा ही एकमात्र साधन है। यदि देश से गरीबी को भगा देना हो तो चरखा ही एकमात्र उपाय है।

मेरे सुझावों में से नीचे की वस्तुएँ फलित होती हैं :

(क) कांग्रेस के या अपरिवर्तनवादियों के किसी विरोध के बगैर स्वराज्य दल अपना संगठन करने के लिए स्वतन्त्र हो।

(ख) दूसरे राजनैतिक दलों के सदस्यों को कांग्रेस में शरीक होने का आमंत्रण दिया जाय और समझाया जाय।

(ग) विधान-मंडल-प्रवेश के विरुद्ध सीधे या आड़े-टेढ़े ढंग से किसी भी प्रकार का प्रचार अपरिवर्तनवादी न कर सकें।

(घ) जो व्यक्तिगत रूप में चार में से किसी बहिष्कार को न मानते हों, वे किसी भी अप्रतिष्ठा के बिना इस तरह रह सकें, मानो वे बहिष्कार हैं ही नहीं। अर्थात् असहयोगी वकील, यदि उनकी मरजी हो तो वकालत शुरू कर सकें। पदवीधारी, सरकारी पाठशालाओं के शिक्षक वगैरह कांग्रेस में शामिल हो सकें और कार्य-समितियों में चुने जा सकें।

मेरी योजना ऐसी है कि हमारे आन्तरिक विकास के लिए सभी राजनैतिक दल उसमें एकत्र होकर काम करें और सब राजनैतिक दलों की एक परिषद् के लिए कांग्रेस उचित अवसर उपस्थित करती है। और स्वराज्य की एक सर्वसम्मत योजना कांग्रेस से बाहर रहकर सब लोग तैयार कर लें और सरकार के सामने पेश करें। मेरी अपनी राय यह है कि ऐसी योजना पेश करने का समय अभी नहीं आया। परन्तु यदि हम सब उपर्युक्त रचनात्मक कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए इकट्ठे हो सकें तो मैं मानता हूँ कि हमारा आन्तरिक बल हमारी कल्पना से अधिक बढ़ जायगा। परन्तु जिन्होंने अब तक देश का नेतृत्व किया है, उनमें से बहुत-से भिन्न मत रखते हैं। कुछ भी हो, हमारे अपने लिए भी स्वराज्य की योजना तैयार करना आवश्यक है। पाठकों को याद होगा कि इस मामले में मैं पूरी तरह बाबू भगवानदास की राय का हो गया हूँ। इसलिए ऐसी किसी परिषद् में मेरी हाजिरी की जरूरत होगी तो मैं अवश्य

शरीक होऊँगा और योजना तैयार करने में मदद दूंगा। इस मामले को कांग्रेस की प्रवृत्तियों से बाहर रखने का कारण यह है कि पूरे एक वर्ष के लिए कांग्रेस केवल अपने आन्तरिक विकास में ही लगी रहे। हमारे सामने जो काम पड़ा है, उसके लिए आवश्यक बल हम जुटा सकें, उसके बाद बाह्य राजनैतिक प्रवृत्तियों में कांग्रेस भले ही भाग ले।

परन्तु मेरा सुझाव स्वीकार न किया जाय और कांग्रेस के मंच पर सब दलों को एकत्रित करना मुश्किल जान पड़े तथा स्वराज्यवादियों और हमारे बीच पड़ी हुई खाई न पट सके, तो क्या करें? मेरा उत्तर सीधा-सादा है। यदि सारी लड़ाई कांग्रेस पर कब्जा करने की ही हो तो मैं उस लड़ाई में भाग लेने से इनकार करता हूँ। जो मेरे विचार के हों, उन्हें भी मैं ऐसा ही करने की सलाह दूंगा। मैं यह सलाह दूंगा कि स्वराज्य-वादियों को उनकी अपनी शर्त पर कांग्रेस सौंप दी जाय और किसी भी तरह के विरोधी प्रचार के बिना विधान-मण्डलों का कार्यक्रम चलाने दिया जाय। अपरिवर्तनवादियों से मैं केवल रचनात्मक कार्यक्रम में लग जाने को कहूँगा और अन्य दलों की ओर से जो सहायता मिल सके, उसे स्वीकार करने की सलाह दूंगा।

केवल रचनात्मक कार्य में ही राष्ट्र का पुनरुद्धार है, ऐसा माननेवालों को कुर्बानी देने में आगे बढ़ना चाहिए। स्वराज्यवादियों के विरुद्ध होकर कांग्रेस में सत्ता कायम रखने की कोशिश करने में हमारी प्रिय वस्तु सिद्ध नहीं होगी। हम उनकी मरजी से ही कांग्रेस में रहें। कांग्रेस के नाम को पूजनेवाले देश के भोले लोगों को हम इस आतमघातक गजग्राह में घसीट लेंगे तो दोनों दल उन्हें बिगाड़ने के अपराधी होंगे। निष्ठापूर्वक की गयी सेवा से ही जो सत्ता मिलती है, वह ऊपर उठानेवाली होती है। परन्तु जिस सत्ता को प्राप्त करने का प्रयत्न सेवा के नाम पर किया जाता है और जिसका आधार अधिक मत जुटाने पर रहता है, वह सत्ता भ्रमजाल है। खास तौर पर इस समय तो इस सत्ता से बचना ही चाहिए।

अपने सुझावों के संगीन होने के बारे में मैं पाठकों को विश्वास करा सका हूँ या नहीं, परन्तु अपने मन के साथ मैंने जरूर निश्चय कर लिया है। जिनके साथ अब तक मैंने हाथ में हाथ मिलाकर काम किया है, वे जाहिरा विरुद्ध दिशा में काम करें, इस विचार से मुझे आघात पहुँचता है।

ऊपर मैंने जो कुछ लिखा है, वह शरण में जाने की मेरी शर्तें नहीं हैं। मेरा तो बिला शर्त आत्म-समर्पण है। सब दलों की ऐसी इच्छा होगी तो ही अगले वर्ष में कांग्रेस का नेतृत्व करूँगा। मैं वर्तमान अभेद्य अन्धकार में प्रकाश देखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मुझे लगता है कि उसका हलका-सा दर्शन मुझे हो रहा है। परन्तु कदाचित् मैं उसमें भूल भी कर रहा हूँ। मैं इतना जानता हूँ कि मुझमें लड़ने की वृत्ति बिलकुल नहीं रही। मेरे जैसे जन्मसिद्ध योद्धा के लिए ऐसा कहना सिर के घाव जैसा है। मैं अपने प्यारे से प्यारों के साथ भी लड़ा हूँ, परन्तु मैं प्रेम से लड़नेवाला हूँ। स्वराज्यवादियों के साथ भी मैं प्रेम से लड़ने को तैयार हो जाऊँगा। परन्तु मैं देखता हूँ कि पहले मुझे अपना प्रेम साबित करना चाहिए। मुझे खयाल था कि मैंने उसे साबित किया है। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि यह मेरी भूल हो रही है। इसीलिए मैं पीछे कदम उठा रहा हूँ। ऐसा करने में और एक मंच पर दोनों दलों को फिर से जमा करने में मुझे मदद देने की मैं सबसे याचना करता हूँ। कांग्रेस को और कुछ नहीं तो अगले कुछ समय तक अधिकांश में एक-विचारवाली संस्था ही रहना चाहिए।

'यंग इंडिया', ता० ११-९-१९२४

(पिछले लेख के ही आशय का, परन्तु मुख्यतः गुजरातियों को ध्यान में रखकर 'नवजीवन' में गांधीजी का लिखा हुआ लेख नीचे दिया जाता है।)

२. असफलता के कारण

हम सोचे हुए समय पर स्वराज्य नहीं ले सके। इतना ही नहीं, परन्तु जो स्थिति मिटाना चाहते थे, वही न जाने कैसे अधिक जड़ जमाती नजर आ रही है। स्वराज्य नहीं मिला, इतना ही नहीं, परन्तु स्वराज्य का डर लगता है। हिन्दू कहते हैं हमें नहीं चाहिए; मुसलमान कहते हैं हम नहीं चाहिए; ब्राह्मणेतर कहते हैं हमें नहीं चाहिए; तब स्वराज्य चाहिए किसको? जो जनता स्वतन्त्रता से ही डरे, वह कैसी जनता? फिर भी कुछ ऐसी ही विचित्र स्थिति आज हमारी हो गयी है।

इसके कारण की जाँच करें। जैसे, तेज दवा यदि ज्ञानपूर्वक न ली जाय तो उलटे परिणाम होते हैं, उसी तरह असहयोग तेज दवा होने से उसके बारे में भी हुआ है। उसका उपयोग चलते-फिरते नहीं हो सकता। उपयोग में भूल हो जाय तो गम्भीर हानि होने की सम्भावना रहती है। बेटा बाप के साथ या स्त्री पुरुष के साथ अथवा प्रजा राजा के साथ साधारणतः तो सहयोग ही करेगी। दोनों के बीच प्रेम-भाव होता है, परन्तु ऐसे कोई प्रसंग आ जाते हैं, जब दोनों के बीच असहयोग हो जाता है और होना चाहिए। वह असहयोग यदि जहरीला हो तो त्याज्य है, पापरूप है। बाप-बेटे में वैर सम्भव नहीं होता। यदि हो जाय तो वह मामूली वैर से अधिक भयंकर होता है। जर्मन और अंग्रेज एक ही वंश के हैं! वे लड़े तो एक को तो पामाल ही होना पड़ा। हमने ऐसे खूनी असहयोग का त्याग किया और इसलिए अपने असहयोग को शान्त विशेषण लगाकर उसका स्वरूप बिलकुल बदल दिया। हमारा शान्त असहयोग विनाशक नहीं, परन्तु पोषक होनेवाला था। प्रेम की लड़ाई से जहर नहीं निकलता। हम तो अंग्रेज को भी शत्रु न रखकर मित्र बनाना चाहते थे। परन्तु वैसा नहीं हुआ। हमारे असहयोग में शान्ति शब्द का गौण स्थान रहा। हमारा असहयोग कमजोर का असहयोग साबित हुआ। फिर भी हम बहुत सुन्दर परिणाम प्राप्त कर सके। उत्साह बढ़ा, लोगों को अपनी सत्ता का भान हुआ, ऐसा भासित हुआ कि अमोघ शस्त्र हाथ लगा है, परन्तु उसका पूरा उपयोग करना हमें नहीं आया।

इसलिए हम पीछे हटे। प्रेम का तो वर्क था, वह उड़ गया। असहयोग रह गया और उसमें सरकार के विरुद्ध पूरे सफल नहीं हुए, इसलिए हम उसका उपयोग आपस में करने लगे। निकला हुआ शस्त्र यों ही हरगिज नहीं लौटता, इसलिए उस शस्त्र ने हमारा संहार करना शुरू कर दिया। हिन्दू-मुसलमानों ने अपने-आपमें असहयोग शुरू कर दिया; स्वराज्यवादियों और अपरिवर्तनवादियों ने एक-दूसरे से। दोनों के असहयोग में शान्ति के बजाय अशान्ति है, प्रेम के स्थान पर वैर है, एक-दूसरे का अविश्वास है, एक-दूसरे की ईर्ष्या है। ऐसी स्थिति में शुद्ध प्रेम को सबल हथियार माननेवाला क्या करे? ऐसी स्थिति में मैं जो अहिंसावादी होने का दावा करता हूँ, उसका क्या धर्म है? स्वराज्यवादियों के साथ लड़ने में मैं अगुआ हूँ।

उनका विधान-मंडलों में जाने का रास्ता मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगा। इसलिए मैं (अहमदाबाद की) महासमिति में खूब जूझा, हार स्वीकार की, परन्तु फिर लड़ने का इरादा घोषित किया। मैंने मान लिया कि मेरा शुभ हेतु समझ जायेंगे, तब दोनों पक्ष अपने-अपने काम में लगकर एक-दूसरे की मदद करने लगेंगे।

परन्तु मेरा हिसाब गलत निकला है। दोनों के मन अशान्त हैं। बेलगाम में बहुमत से कांग्रेस पर कब्जा करने की तैयारियाँ हो रही हैं। यह प्रेम की निशानी नहीं। सिद्धान्तों में भेद हो, वहाँ बहुमत का तरीका काम नहीं आता। जहाँ दोनों पक्षों के बीच अन्तराय हो, वहाँ वह जहर बढ़ाता है। जहाँ मतदाता केवल श्रद्धा से ही मत देते हों और समझ का उपयोग न करें, वहाँ उन्हें सच्ची शिक्षा नहीं मिलती; परन्तु उनका पतन होता है। जहाँ मतदाता भोले होते हैं, सूक्ष्म बातें समझनेवाले नहीं होते, वहाँ बहुमत का तरीका उनके नाश का कारण भी हो सकता है।

इतना जानते हुए भी मुझसे कांग्रेस में बहुमत से सिद्धान्त-निर्णय कैसे कराया जाय? जो सदस्य आयेंगे, वे गुण-दोष न देखकर बोलनेवालों की तरफ ही देखकर राय देंगे। ऐसी स्थिति में मुझे अपने अहिंसा-धर्म पर जमे रहकर प्रेम का पदार्थ-पाठ देना चाहिए। कांग्रेस का कार्यभार अपने हाथों में रखने का मोह मैं कर ही नहीं सकता। यदि मैं विनयपूर्वक दलीलें देकर स्वराज्यवादियों को समझा न सकूँ तो मुझे नम्रतापूर्वक हट जाना चाहिए। **अहिंसावादी की हार में उसकी जीत निहित है। अहिंसावादी सत्ता के लिए कभी नहीं लड़ेगा। अहिंसावादी अपने सिद्धान्तों का प्रचार भी बहुमत के जोर से नहीं, आत्मबल से करेगा।** वह ऐसी श्रद्धा रखेगा कि उसकी अहिंसा अगर सच्ची होगी, तो वह अकेला होने पर भी अन्त में जीतेगा; अर्थात् यदि वह मरण-पर्यन्त सिद्धान्तों का अनुसरण करेगा तो अन्त में सिद्धान्तों की जीत ही होगी। देहधारियों में सिद्धान्त-प्रचार के लिए सिद्धान्त को भी देह धारण करना ही पड़ा है। अर्थात् किसीको तो सिद्धान्त की खातिर मृत्यु से भेट करने की तैयारी करनी ही चाहिए। इसलिए मैंने तो निश्चय किया है कि मैं स्वराज्यवादियों के बहुमत की लड़ाई में सिद्धान्त के लिए तो नहीं ही उतरूँगा। और यही सलाह उन सबको देता हूँ, जो शान्तिमय असहयोगी हैं। ऐसा करने से

ही हममें जो दल बन गये हैं, उन्हें फिर से जोड़ा जा सकेगा। मैं तो केवल स्वराज्यवादियों को ही नहीं, परन्तु सब दलों को कांग्रेस में भाग लेते देखना चाहता हूँ। सरकार के प्रति असहयोग तभी शोभा देगा, जब जनता का बड़ा भाग हार्दिक सहयोग करने लगे।

तब वह कौनसी चीज है, जिसमें सब दलों के एकमत होने की संभावना है? वह चीज लोगों के लिए आवश्यक होनी चाहिए। मेरी दृष्टि से ऐसी तीन वस्तुएँ हैं: खादी, हिन्दू-मुसलिम-एकता और हिन्दुओं के लिए अस्पृश्यता-निवारण।

इन तीन में से अगर हम एक चीज भी पूरी न करें तो मैं स्वराज्य को असम्भव मानता हूँ। इसलिए मेरा सुझाव यह है कि:

१. कांग्रेस पाँच में से चार बहिष्कार एक वर्ष के लिए मुल्तवी रखे और केवल विदेशी कपड़े का बहिष्कार कायम रखे। विलायती कपड़े के अलावा ब्रिटिश माल का बहिष्कार उठा ले।

२. कांग्रेस उपर्युक्त तीन कार्य और राष्ट्रीय पाठशालाएँ चलाये और हो सके तो नयी पाठशालाएँ स्थापित करे। इसके सिवा और किसी काम में न लगे।

३. स्वराज्यवादी और दूसरे दल जो बाह्य प्रवृत्ति चलाते हैं, उसमें कांग्रेस न मदद दे, न विघ्न ही डाले।

४. कांग्रेस की कार्य-समितियों वगैरह में किसी भी दलवाले कांग्रेस के सदस्य का चुनाव हो सके।

५. सदस्य बनने के लिए चार आने फीस की शर्त हटा दी जाय और प्रत्येक सदस्य से प्रतिमास अपना काता हुआ २००० गज सूत लिया जाय तथा वह हमेशा आध घण्टे चरखा चलाये। वे सब शुद्ध खादी पहननेवाले होने चाहिए।

इसमें पाँचवीं धारा के सिवा दूसरी एक की भी विवादास्पद होने की सम्भावना नहीं। यदि हम विदेशी कपड़े का बहिष्कार तुरन्त सफल कर लेना चाहें तो इस धारा को मैं आवश्यक मानता हूँ। खादी-प्रचार पहले से घटा है, इसके मुख्य कारण ये हैं:

१. आलस्य,

२. जानकारी की कमी और

३. गरीबों के प्रति लापरवाही (बेदरकारी)।

यह नहीं कहा जा सकता कि बहुत काम करनेवाले भी आध घण्टा देश के लिए नहीं बचा सकते। बेकार वक्त गँवाने की हममें जो टेक पड़ गयी है, उसे कांग्रेस में शरीक होनेवालों को तो छोड़ना ही चाहिए। जानकारी न होने से हम चरखे का प्रचार नहीं कर सकते। इस काम के लिए हमें बहुत ही थोड़े आदमी मिलते हैं। पाँचवीं धारा से हजारों स्त्री-पुरुष चरखा-शास्त्र में प्रवीण हुए बिना रह नहीं सकते।

गरीबों पर हमें जरा भी दया हो तो हम विदेशी कपड़े को हाथ न लगायें और केवल हाथ-कती-बुनी खादी का ही उपयोग करें। आध घंटा कातने से हम गरीबों के साथ हमेशा अपनापन पैदा करते हैं। ईश्वर सदा गरीबों में निवास करता है, इसलिए हम ईश्वर के भी निकट होते हैं। यदि हम जितना अपने लिए, उतना ही गरीबों के लिए स्वराज्य चाहते हों तो कांग्रेस में शामिल होनेवाले हरएक का कातना धर्म है। जब हजारों मनुष्य कातना धर्म समझेंगे और उसका पालन करेंगे, तब गरीब अपनी कमाई में वृद्धि करने के लिए चरखा चलायेंगे। अनियमित और अधूरे किये हुए बहुत-से काम असफल होते हैं। कातना ही एकमात्र काम ऐसा है, जिसमें हानि नहीं। उसे जितना करें, उतना फलदायक सिद्ध होता है। पाँच मिनट काता हुआ सूत बेचा जा सकता है। बेचा जा सके उतना कपड़ा पाँच मिनट में बुना नहीं जा सकता, बेचा जा सके उतनी रूई धुनी नहीं जा सकती। और फिर बुनाई वगैरह के धन्धे करोड़ों करें तो उनका माल खप नहीं सकता। सूत करोड़ों कातें, तभी जनता के लिए पूरा हो। इसलिए हजारों स्त्री-पुरुष धर्मार्थ सूत कातें तो खादी बारीक हो और सस्ती हो। छह महीने में बारीक और बलदार सूत हमारे पास बड़ी मात्रा में इकट्ठा हो जाय।

ऐसी दलील संभव है कि सूत कातनेवाले ही कांग्रेस में भरती हों, ऐसी शर्त रखने से बहुत आदमी निकल जायँगे। हकीकत यह है कि आज भी हमारे रजिस्टर में बहुत थोड़े मनुष्य हैं। गुजरात में दूसरे प्रान्तों से अधिक संख्या का होना संभव है। वहाँ भी बीस हजार से कम मतदाता हैं। गुजरात में ५० तालुके हैं। उनमें से लगभग आधों में तो कांग्रेस रजिस्टर में एक भी नाम नहीं। मेरी ऐसी मान्यता है कि दूसरे प्रान्तों की हालत इससे घटिया है। साथ ही इन नामों का परिचय केवल

दो ही बार होता है। एक चार आने वसूल करते समय और दूसरे मत लेते समय। उनसे समिति और कोई निश्चित काम नहीं लेती। कांग्रेस के रजिस्टर में हम लोगों के सेवकों के नाम चाहते हैं। ऐसे सेवक ही कांग्रेस को जनता की संस्था का स्वरूप दे सकते हैं। मान लीजिए कि कुछ भी फीस रखे बिना हमने चार करोड़ नाम रजिस्टर में लिख लिये। उनका क्या उपयोग हो सकता है ? परन्तु मान लीजिए कि उसके बजाय चार लाख कातनेवालों के नाम हों। इन चार लाख से आध घण्टे की मजदूरी का और थोड़े-से कपास का दान लेकर कांग्रेस शक्तिशाली लोक-सेवा-मंडल बन जायगी। इन चार लाख का हर महीने कांग्रेस के साथ होनेवाला सम्बन्ध छोटी बात नहीं। परन्तु प्रत्येक सदस्य के लिए तो आध घण्टे की घर बैठे की हुई मजदूरी और यत्किंचित् रूई का दान आसान बात है, तुच्छ वस्तु है। इस प्रकार बहुतों के अल्प श्रम और अल्प दान से महान् परिणाम उत्पन्न होने की शक्ति जनता में आने की संभावना है। इसलिए अपने सुझावों को मैं कीमती समझता हूँ। और कांग्रेस को मंजूर हों या न हों, परन्तु यह मैं अवश्य चाहता हूँ कि गुजरात उन पर स्वेच्छा से अमल करने लग जाय। जो प्रान्त, जो तालुका इस प्रकार करेगा, वह थोड़े ही समय में इस प्रवृत्ति के शुभ परिणाम देख सकेगा।

तब क्या असहयोगियों का असहयोग बन्द ही हो जायगा ? ऐसी शंका कोई न करे। असहयोग में विश्वास रखनेवाले असहयोगी तो अपने असहयोग को बढ़ायेंगे; परन्तु जो उनसे विरुद्ध मत रखनेवाले हैं, उन्हें अपने हृदय में स्थान देंगे। यह नयी बात नहीं। मैं आरम्भ से ही यह बात समझाता रहा हूँ। यह बात समझ में नहीं आयी, इसलिए असहयोगी के बहिष्कारों को स्थगित करके सहयोगियों को अपने साथ मिलाने की सलाह देकर प्रेम के सिद्धान्त पर अमल कराना चाहता हूँ। बहिष्कार में विश्वास रखनेवाले वकील वकालत शुरू न करें, परन्तु वकालत करने-वाले वकीलों से कांग्रेस में आदरपूर्वक मिलेंगे। बहिष्कार के स्थगित रहने का अर्थ ही यह है कि बहिष्कारवादियों को सहयोगियों की निन्दा करने का अधिकार नहीं रहा। इसी प्रकार विधान-मण्डल के बारे में कांग्रेस में दोनों को एक-सा स्थान और एक-से हक। उन्हें बाँधनेवाली ऊपर बतायी हुई चार बातें। यह सही है कि कांग्रेस में विदेशी या मिल का कपड़ा पहननेवाले के लिए स्थान नहीं होगा। उसका व्यापार वह करता

हो, मिल का मालिक हो तो भी कांग्रेस में आ सकता है। परन्तु स्वयं खादी पहनकर खादी की महिमा स्वीकार करे, गरीबों के साथ सहयोग करे और चरखे के प्रचार में मदद दे। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार लोकतंत्र का शाश्वत अंग रहेगा। इसलिए उस पर यदि जोर न दिया जाय तो स्वराज्य मिलना असंभव हो जाय। हमारी मिलों के कपड़े का शाश्वत बहिष्कार नहीं, परन्तु इस कपड़े का मोह घटना चाहिए। खादी को प्रधानता मिलनी चाहिए। इसलिए जब तक खादी और चरखा व्यापक नहीं होते, तब तक कांग्रेस के लिए मिल का कपड़ा भी त्याज्य होना चाहिए, इस बारे में मुझे शंका नहीं।

परन्तु मेरे इतने विचारों को भी स्वराज्यवादी स्वीकार न करें तो? मेरा जवाब सीधा है। तो भी मुझे लड़कर कांग्रेस का राज्य नहीं भोगना है। यदि मैं इतना भी उन्हें न समझा सकूँ तो भले ही स्वराज्यवादी कांग्रेस पर कब्जा कर लें। मैं उन्हें कब्जा करने में मदद दूँगा और दूसरों को मदद देने को प्रेरित करूँगा। खादी-प्रचार के बिना मैं भारत की कंगाली का इलाज नहीं देखता। इसलिए इस चीज का त्याग मेरे और समस्त भारतवासियों के लिए दुःखद होना चाहिए। यह काम भी स्वराज्यवादी नापसंद करें तो मैं झुककर रास्ता दे दूँगा और खादी-प्रचार के लिए कांग्रेस के अविरोधी साधन ढूंढूँगा। यह घर का झगड़ा मिटाने में अपनी पूरी शक्ति खर्च करने की मेरी अटल प्रतिज्ञा है, क्योंकि उससे हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा भी मिटेगा। फिर खादी के विरुद्ध या खादी के प्रचार का जो उपयोग मैंने बताया है, उसके विरुद्ध किसीके भी होने की बात ही नहीं रहेगी। ऐसा गुजरात क्यों न करे? गुजरात को यदि खादी के विषय में श्रद्धा हो तो गुजरात उसे व्यापक बनाये और ईश्वर उसे सहायता दे।

ता० १४-९-१९२४, नवजीवन **मोहनदास करमचन्द गांधी**

परिशिष्ट : ५*

हिन्दू-मुसलिम-एकता

१. गुलबर्गा का पागलपन

पिछले सप्ताह मैंने सुझाया था कि हिन्दू मन्दिरों को भ्रष्ट करने की जो हवा चली है, उसके पीछे जरूर कोई संगठन होना चाहिए। गुलबर्गा इस चीज का ताजा ही उदाहरण है। हिन्दुओं ने उत्तेजना के लिए कुछ भी कारण दिया हो--यदि कोई दिया हो--तो भी मुसलमानों का आवेश अशुभसूचक है। कैसे भी हालात में मन्दिरों को भ्रष्ट करने का बचाव नहीं हो सकता। मौ० शौकतअली ने जब सांभर और अमेठी के मन्दिर भ्रष्ट होने की बात सुनी, तब वे उबलकर बोल उठे थे कि हिन्दू इसका बदला लेने लगें और हम अपनी मस्जिदें भ्रष्ट होने की बात किसी दिन सुनें तो मुसलमानों को आश्चर्य नहीं होना चाहिए। मौलाना के ये क्रोध-पूर्ण उद्गार सुनकर हिन्दुओं को भले ही खुशी हो, परन्तु मुझे नहीं होती। और हिन्दुओं को मैं सलाह देता हूँ कि उन्हें भी नहीं होनी चाहिए। वे समझ लें कि मुसलमानों के प्रत्येक पागल कृत्य से उनमें से बहुतों को जितनी चोट पहुँचती है, उससे मुझे ज्यादा लगती है। इस मामले में अपनी जिम्मेदारी का मुझे पूरी तरह भान है। मैं जानता हूँ कि बहुत हिन्दू यह मानते हैं कि ऐसे पागल कृत्यों के लिए मैं जिम्मेदार हूँ। वे यह दलील देते हैं कि आम मुसलमानों में जाग्रति लाने में मैंने किसीसे भी अधिक भाग अदा किया है। इस आक्षेप की मैं कद्र करता हूँ। यद्यपि मेरे दिये हुए योगदान के लिए मुझे जरा भी पश्चात्ताप नहीं होता, तो भी इस आक्षेप के पीछे जो बल है, उसे मैं समझ सकता हूँ। इसलिए और किसी कारण से नहीं तो भी मेरी जिम्मेदारी अधिक होने से मन्दिरों के भ्रष्ट होने से बहुत हिन्दुओं

---

* देखिए पृष्ठ २८९।

को जितना महसूस हो, उससे अधिक मुझे होना चाहिए। इन दो शब्दों के जो सच्चे अर्थ मैं समझता हूँ, उसके अनुसार मैं मूर्तिपूजक भी हूँ और मूर्तिभंजक भी। मूर्ति-पूजा के पीछे रही भावना का मूल्य मैं अच्छी तरह आँकता हूँ। मानव-जाति की प्रगति में वह बहुत महत्त्वपूर्ण भाग अदा करती है। मैं चाहता हूँ कि हमारे देश को पवित्र करनेवाले इन हजारों मंदिरों की रक्षा करने की शक्ति मुझमें हो। मुसलमानों के साथ मेरी मैत्री के पीछे यह धारणा है कि वे मेरे मन्दिरों और मेरी मूर्तियों के प्रति सम्पूर्ण सहिष्णुता रखें। जो धर्मान्धता अपने देवता के सिवा अन्य किसी देवता की पूजा में कोई धर्म नहीं देख सकती, उस धर्मान्धता के आधार पर चलनेवाली मूर्ति-पूजा को मैं तोड़नेवाला हूँ। इस प्रकार की मूर्ति-पूजा अधिक भयंकर है, क्योंकि ईश्वर को पत्थर या सोने की मूर्ति में रहनेवाला मानने की अधिक प्रत्यक्ष और अधिक स्थूल मूर्ति-पूजा से वह मूर्ति-पूजा अधिक सूक्ष्म और अधिक अटपटी है। वैसी मूर्ति-पूजा को न माननेवाला होने के कारण उस अर्थ में मैं मूर्तिभंजक हूँ।

हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य के लिए यह जरूरी है कि मुसलमानों को दूसरों के प्रति, जो अपने धर्म को सच्चा मानते हों, सहिष्णु होना चाहिए। यह चीज एक सिर पर आ पड़ी वस्तु के तौर पर अथवा नीति के रूप में नहीं, परन्तु अपने धर्म को एक भाग के रूप में मानना चाहिए। इसी प्रकार हिन्दुओं से ऐसी आशा रखी जाती है कि वे दूसरों के धर्म अथवा विश्वास के प्रति, भले ही वह अपनी धर्म-भावना को अरुचिकर लगता हो तो भी उतने ही सहिष्णु रहें। बाबा आदम के वक्त से हम बदला लेने का कानून आजमाते चले आये हैं, और अनुभव से हम जानते हैं कि इसमें हम बिलकुल असफल सिद्ध हुए हैं। उसके जहरीले असर से हम पीड़ित हैं। कैसे भी हालात में हिन्दू मन्दिरों के बदले में मस्जिदें तोड़ने की बात हरगिज न करें। इस रास्ते से तो गुलामी या उससे भी बुरी दशा हमारी होगी। भले ही हजारों मन्दिरों के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ, फिर भी मैं एक भी मस्जिद को छूना नहीं चाहूँगा। ऐसा करके मैं धर्मान्ध लोगों के कथित धर्म (पाखण्ड) से अपने धर्म की श्रेष्ठता साबित करने की आशा रखूँगा। मैं यह सुनने की इच्छा रखता हूँ कि पुजारी अपने मन्दिरों और अपनी मूर्तियों की रक्षा के लिए भागे बिना अपने स्थान पर डटे रहकर प्राण

दे दें। उन्हें अपने मन्दिरों की रक्षा के लिए कष्ट सहन करना और मरना सीखना चाहिए, वैसे ही जैसे ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण मूर्तियों में भी निःसन्देह होने पर भी, मूर्तियों का नुकसान या अपमान होने पर उसे सह लेता है। मस्जिदों का नाश करने का प्रयत्न करके हिन्दू अपने धर्म की या अपने मंदिरों की रक्षा नहीं कर सकेंगे। ऐसा करने से तो मंदिरों का नाश करनेवाले धर्मान्ध लोगों के बराबर ही धर्मान्ध वे खुद भी ठहरेंगे।

इस भ्रष्टाचार के पीछे जिनका सचमुच हाथ है, उन अज्ञात मुसलमानों से मैं अर्ज करता हूँ कि 'याद रखो कि तुम्हारे बर्ताव से ही इसलाम की कीमत आँकी जायगी। उत्तेजना के बावजूद भी ऐसे पागल कृत्यों का बचाव करनेवाला कोई मुसलमान मैंने नहीं देखा। मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दुओं ने उत्तेजना के लिए कोई कारण दिया भी हो तो वह बहुत थोड़ा दिया है। परन्तु हम मान लें कि उन्होंने अधिक कारण दिया है, मुसलमानों को चिढ़ाने के लिए मस्जिदों के सामने हिन्दुओं ने बाजे बजाये हैं, मस्जिदों की मीनारों में से एक कंकर भी उखाड़ी है, तो भी मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि मुसलमानों को हिन्दुओं के मन्दिर भ्रष्ट नहीं करने चाहिए थे। बदला लेने की भी हद होती है। हिन्दू अपनी जान से अपने मन्दिरों को ज्यादा प्यारे समझते हैं। जिस मनुष्य के प्राणों को हानि पहुँचायी जाय, वह कुछ समता रखकर उसे सहन कर लेगा, यह कल्पना की जा सकती है, परन्तु मन्दिर भ्रष्ट किये जायँ तो यह सहन नहीं हो सकता। धर्म प्राणों से अधिक है। यह भी याद रखना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य को अपना धर्म सबसे सच्चा लगता है। दर्शनशास्त्र के तराजू की तुलना में भले ही वह घटिया दिखाई दे। परन्तु यहाँ तो इस मान्यता के लिए पक्की सम्भावना है कि हिन्दुओं की तरफ से ऐसी उत्तेजना नहीं थी। मुल्तान में मन्दिरों को भ्रष्ट करने का कृत्य किसी भी उत्तेजना के बिना हुआ था। हिन्दू-मुसलिम तंगदिली सम्बन्धी मेरे लेख में जिन स्थानों पर हिन्दुओं द्वारा मस्जिदों को भ्रष्ट करने के आक्षेप आते हैं, उनके लिए प्रमाण ढूँढ़ने की मैं कोशिश कर रहा हूँ। किन्तु उनके समर्थन में कोई प्रमाण प्राप्त करने में असफल रहा हूँ। अमेठी, सांभर तथा गुलबर्गा में जो कृत्य होना बताया जाता है, उनसे आप इसलाम की इज्जत नहीं बढ़ायेंगे।

में तो यह कहने की छूट लेता हूँ कि जितना मुझे अपने धर्म के बारे में महसूस होता है, उतना ही इसलाम की इज्जत के लिए भी महसूस होता है। मैं पूरी, खुली और हार्दिक मैत्री से रहना चाहता हूँ। मुझसे कहे बिना नहीं रहा जाता कि इस प्रकार के भ्रष्टीकरण के कृत्यों से मेरे दिल को गहरा और घातक जख्म लगता है।'

दिल्ली के हिन्दुओं और मुसलमानों से मेरा अनुरोध है कि 'दोनों जातियों के बीच आप मेल चाहते हों तो इस समय आपको सुवर्ण अवसर मिला है। अमेठी, सांभर और गुलबर्गा में जो हुआ है, उसे देखते हुए इस प्रश्न को हल करना आपका दोहरा फर्ज है। आपका यह बड़ा सौभाग्य है कि आपके बीच में हकीम अजमल खाँ साहब और डॉ० अन्सारी जैसे दो पाक मुसलमान मौजूद हैं। उन्हें दोनों जातियों का विश्वास प्राप्त है। इसलिए आपके पीछे उम्दा परम्पराएँ रही हैं। यदि आप दो जातियों के बीच पड़ी हुई दरार को जोड़ सकें और उनके बीच ऐसी हार्दिक मैत्री कायम कर सकें, जो उस पर कितना ही जोर पड़ने पर भी न टूटे, तो दो जातियों के बीच के झगड़े से आप शुभ परिणाम पैदा कर सकते हैं। अपनी सेवाएँ मैंने आपको सौंपी हैं। यदि आप चाहते हैं कि दो जातियों के बीच मैं मध्यस्थ बनूँ तो मैं दिल्ली में डट जाने को तैयार हूँ। और जिन्हें आप नियुक्त करें, उनके साथ रहकर सच्चे तथ्य ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करने को तैयार हूँ। पिछले जुलाई मास में हुई घटनाएँ किसलिए हुईं, उसके सप्रमाण तथ्य स्थायी निपटारा करने के लिए आवश्यक हैं। मेरा आपसे कहना है कि जल्दी निर्णय कर लीजिए। हिन्दू-मुसलिम प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है कि जिसके उचित निराकरण पर निकट भविष्य में भारत का भाग्य लटक रहा है। दिल्ली इस सवाल का निपटारा कर सकती है, क्योंकि दिल्ली जो करेगी, उसका और लोग अनुसरण करेंगे।'

ता० २८-८-१९२४, यंग इंडिया **मो० क० गांधी**

२. हिन्दू-मुसलिम-एकता

सूरत की सभा में मुझे हिन्दू-मुसलिम एकता के विषय पर कुछ बोलने का अवसर मिला था। कुछ सज्जनों ने 'संगठन' के बारे में मेरे विचार जानने चाहे थे। उसके बाद मेरे पास एक मुसलमान भाई का पत्र आया।

उसमें उन्होंने कुछ सुझाव दिये थे। अब मैं देख रहा हूँ कि गुजरात में भी झगड़ों का भय दिख रहा है। विसनगर का मामला शान्त हुआ नहीं माना जाता। मांडल में कुछ उपद्रव हुआ है। अहमदाबाद में थोड़ी खलबली हुई। उमरेठ में भय है। इसी तरह दूसरे प्रान्तों में (जैसे बिहार में भागलपुर में) हो रहा है।

यह सवाल रोज-रोज गम्भीर होता जा रहा है। एक बात की सफाई तो शुरू में ही हो जानी चाहिए। ऐसा कहा जाता है कि इन झगड़ों में सरकारी आदमियों का हाथ है। यह बात सच ही हो तो मुझे दुःख होगा, आश्चर्य नहीं होगा। सरकारी नीति ही हमें अलग रखने की है, इसलिए सरकार झगड़े चाहे तो आश्चर्य नहीं। दुःख हो तो इसीलिए कि अभी तक दोनों जातियों ने अपना-अपना स्वार्थ ही नहीं समझा। जिसे झगड़ा करने की आदत हो, उसीके बीच में तीसरा पक्ष तकरार करा सकता है। ब्राह्मण बनियों में सरकार ने तकरार करायी हो, यह सुना नहीं। हिन्दू-मुसलमानों के बीच झगड़ा कराती है, ऐसा वहम या डर हमेशा रहा है, क्योंकि दोनों बहुत बार लड़े हैं। लड़ने की प्रवृत्ति छोड़कर ही सुख से स्वराज्य लेंगे; उसके बिना असंभव है।

जब तक हिन्दू डरते रहेंगे, तब तक झगड़े होंगे ही। डरपोक को डरानेवाला सदा मिल ही जाता है। हिन्दुओं को समझ लेना चाहिए कि वे जब तक डरते रहेंगे, तब तक उनकी रक्षा कोई करनेवाला नहीं। मनुष्य का भय ईश्वर का अविश्वास सूचित करता है। जिसे ईश्वर का अपने पास होने का, उसकी सर्वव्यापकता का विश्वास ही नहीं, अथवा कम है, वह अपने बाहुबल पर भरोसा रखता है। हिन्दुओं को दो में से एक पैदा करना ही होगा। ऐसा न हो तो हिन्दू-जाति का नाश ही सम्भव है।

पहला मार्ग—केवल ईश्वर पर ही विश्वास रखकर मनुष्य का डर छोड़ना—अहिंसा का मार्ग है और उत्तम है। दूसरा—बाहुबल का—हिंसा का मार्ग है। दोनों मार्ग जगत् में चलते हैं। और हमें कोई भी एक अपनाने का अधिकार है। एक ही मनुष्य एक ही समय दोनों का उपयोग नहीं कर सकता। यदि हिन्दू-मुसलमान दोनों बाहुबल का ही मार्ग ग्रहण करना चाहें तो तुरन्त स्वराज्य लेने की बात छोड़ देनी चाहिए। तलवार के न्याय से सुलह करनी हो तो दोनों जातियों को खूब लड़ लेना होगा और

ऐसा करने में खून की नदियाँ बहेंगी। दो-चार हत्याओं से या दस-बीस मंदिर टूटने से हरगिज निपटारा नहीं होगा।

मैं संगठन के विरुद्ध भी हूँ और नहीं भी हूँ। संगठन का अर्थ अखाड़े खोलना और इन अखाड़ों के जरिये हिन्दू गुण्डे तैयार करना हो तो यह स्थिति मुझे दयाजनक लगेगी। गुण्डों के द्वारा धर्म की रक्षा या अपनी रक्षा नहीं हो सकती। यह तो एक भय के बजाय और उसके उपरान्त दूसरा तैयार करने के बराबर हुआ। अखाड़ों में ब्राह्मण, बनिये वगैरह ही अपने शरीर कसें और तैयार हों तो मुझे कुछ कहना नहीं। परन्तु मुझे तो यकीन है कि उन्हें लड़ाई करने की शक्ति प्राप्त करने में बहुत समय लगेगा। अखाड़ों के लिए ही अखाड़े चलाना बिलकुल ठीक है। परन्तु मुसलमानों के साथ लड़ाई में जीतने के लिए अखाड़े चलाना इलाज नहीं, इस बारे में मुझे शंका नहीं।

मुसलमानों के दिल जीतने हों तो हमें तपस्या करनी होगी, हमें पवित्र बनना होगा, हममें जितने ऐब हों, उन्हें निकालना होगा और यदि वे हमसे लड़ें तो हमें उनके विरुद्ध न लड़कर साहसपूर्वक मरना सीखना होगा। डरकर स्त्री, बच्चे, घर-बार छोड़कर भागते हुए मरना कोई मरना नहीं। परन्तु उनके प्रहार के सामने खड़े रहकर हँसते चेहरे से मरना सीखना होगा।

मैं तो मुसलमानों को भी यही सलाह दूँगा, यद्यपि वह अनावश्यक है, क्योंकि उन्हें डरानेवाला समझा गया है। साधारण अनुभव यह है कि वे मारने में बहादुर हैं। इसलिए उन्हें हिन्दुओं के बाहुबल से बचने का रास्ता बताने की बात रहती नहीं। उनसे तो तलवार म्यान में रखन का अनुरोध करना है। गुण्डे लोगों को काबू में रखकर सुलह से काम लेने की विनती करनी है। मुसलमानों को हिन्दुओं से दूसरे डर चाहे हों। उन्हें आर्थिक भय है। उन्हें बकरीद के दिन क्रिया करने से रोके जाने का डर है। परन्तु उन्हें हिन्दुओं के हाथों मार खाने का डर तो हरगिज नहीं। इसलिए मैं उनसे तो यही कहूँगा कि 'आप लाठी या तलवार से इसलाम की रक्षा नहीं कर सकते। लाठी का जमाना चला गया। धर्मों की परीक्षा धर्मियों की पवित्रता से ही होनेवाली है। धर्म की रक्षा आप गुण्डे के हाथों में जाने देंगे तो

इसलाम को बड़ा नुकसान पहुँचायेंगे। फिर इसलाम फकीरों का, खुदापरस्तों का धर्म नहीं रहेगा।'

ये तो साधारण विचार हुए। मौलाना हसरत मोहानी कहते हैं कि मुसलमानों को हिन्दुओं की खातिर गाय बचानी चाहिए और हिन्दुओं को मुसलमानों से छुआछूत न रखनी चाहिए। वे कहते हैं कि उत्तर की तरफ मुसलमान भी अछूतों में गिने जाते हैं। मैंने मौलाना साहब से कहा: 'मैं तो ऐसे मामलों में व्यापार या सौदा नहीं करूँगा। मुसलमान हिन्दुओं की खातिर गाय बचाना धर्म समझें तो गाय को बचायें, फिर हिन्दू अच्छा बर्ताव करें या न करें। हिन्दू यदि मुसलमानों को अछूत समझें तो यह पाप है। मुसलमान गाय को मारें या बचायें, परन्तु हिन्दुओं को मुसलमानों को अछूत नहीं समझना चाहिए। अर्थात् जो व्यवहार चार वर्ण एक-दूसरे के प्रति स्पर्श के विषय में रखते हैं, वही हिन्दू मुसलमानों के साथ रखें। इस चीज को मैं तो स्वयंसिद्ध मानता हूँ। हिन्दू-धर्म यदि मुसलमानों का या अन्यधर्मियों का तिरस्कार सिखाता हो तो उसका नाश ही सम्भव है। इसलिए सौदा किये बिना दोनों को अपना-अपना घर साफ करना चाहिए। गाय को बचाने के लिए मुसलमानों के साथ वैर करना गाय को मारने का रास्ता है और दोहरा पाप है। अन्यधर्मी गाय मारें तो इससे हिन्दू-धर्म का लोप नहीं हो जायगा। हिन्दू गाय को न मारें, यह उनका धर्म है, परन्तु अन्यधर्मी पर बलात्कार करके उसके हाथ से गाय को छुड़ाना कहीं धर्म हो सकता है? हिन्दू हिन्दुस्तान में स्वराज्य चाहते हैं, हिन्दू-राज्य नहीं चाहते। हिन्दू-राज्य में भी यदि सहिष्णुता को स्थान हो तो मुसलमान, ईसाई दोनों का स्थान होगा। हिन्दू-राज्य में भी दोनों जातियाँ समझपूर्वक खुशी से गोवध छोड़ें, तो ही हिन्दू-धर्म की शोभा होगी। परन्तु हिन्दू-राज्य की इच्छा भी करना मैं तो हिन्दुओं के लिए देशद्रोह मानूँगा।

अब रही बाजे की तकरार। बाजे का झगड़ा दिन-दिन बढ़ता मालूम होता है। सूरत में प्राप्त पत्र यह सूचित करता है कि हिन्दू-धर्म में बाजा बजाना फर्ज नहीं। इसलिए हिन्दुओं को मुसलमानों की भावना को ठेस न पहुँचाने के लिए मस्जिदों के आगे बाजे बजाना छोड़ देना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि बाजे की बात उतनी आसान हो, जितनी पत्र-लेखक सोचता

है। वस्तुस्थिति इससे उल्टी है। एक भी हिन्दू-धर्म-क्रिया बाजे के बिना नहीं हो सकती। कुछ क्रियाओं के लिए बाजा शुरू होने के बाद क्रिया पूरी होने तक बजाना ही चाहिए। हाँ, इसमें भी मुसलमान भाइयों की भावना को ठेस न पहुँचे, इतना ध्यान हिन्दू भाइयों को रखना चाहिए। बाजा धीमा बजाया जाय, कम-से-कम बजाया जाय। यह सब लेन-देन के ढंग पर हो और होना चाहिए। बहुत-से मुसलमानों के साथ बात करने पर मैं देखता हूँ कि इसलाम में ऐसा एक भी फरमान नहीं, जिससे दूसरे बाजा बजायें, तो उसे मुसलमान को बन्द कराना चाहिए। इस प्रकार मस्जिद के आगे अन्यधर्मी के बाजा बजाने से इसलाम को कोई बाधा नहीं होती। इसलिए बाजे का सवाल झगड़े की जड़ नहीं बनना चाहिए।

इतने पर भी कई जगह मुसलमान भाई जबर्दस्ती हिन्दुओं के बाजे बन्द कराना चाहते हैं। यह स्थिति असह्य है। जो विनय से दिया जाय, वह ताकत से तो जरूर न दिया जाय। विनय के आगे झुकने में धर्म है, ताकत के आगे झुकने में अधर्म । मार के डर से ही जो हिन्दू बाजा छोड़े, वह हिन्दू नहीं रह जाता। इसके लिए साधारण नियम इतना ही कहा जा सकता है कि जहाँ हिन्दुओं ने समझकर बहुत समय से मस्जिद के आगे बाजा बन्द करने का रिवाज रखा है, वहाँ उन्हें उसका पालन करना ही चाहिए। जहाँ वे हमेशा बाजा बजाते रहे हैं, वहाँ उन्हें बजाने का अधिकार होना चाहिए। झगड़ा होने का डर हो और तथ्य के विषय में मतभेद हो, वहाँ हिन्दू-मुसलमान दोनों पक्षों को पंच से फैसला कराना चाहिए।

जहाँ अदालत की बाजे बजाने की मनाई हो, वहाँ हिन्दुओं को कानून अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए। मुसलमानों को जब्रन् हिन्दुओं से बाजा बन्द रखने का आग्रह छोड़ना चाहिए।

जहाँ मुसलमान मानें ही नहीं अथवा जहाँ जबर्दस्ती का हिन्दुओं को डर लगे, वहाँ और जहाँ मनाई का हुक्म न हो, वहाँ हिन्दुओं को निर्भय होकर बाजा बजाते हुए निकलना चाहिए और मुसलमान कितना ही मारें, उसे सहन करना चाहिए। इस प्रकार बाजा बजानेवाले जितने मिलें, उन्हें अपना बलिदान देना चाहिए। इसमें धर्म और स्वाभिमान दोनों की रक्षा है।

जहाँ हिन्दुओं में इतना आत्मबल न हो, वहाँ हिन्दुओं को बचने के लिए मुकाबला करने का अधिकार है ।

जहाँ मरकर ही या मारते हुए मरकर धर्म को बचाने की जरूरत मालूम हो, वहाँ दोनों पक्षों को अदालत या सरकार का संरक्षण लेने का विचार छोड़ देना चाहिए । शायद एक पक्ष सरकार या अदालत की शरण ले, तो भी दूसरे को खामोश रहना चाहिए । अदालत में गये बिना काम चले ही नहीं तो भी अदालतों में झूठी शहादत तो हरगिज न दी जाय ।

मारपीट का नियम है कि पेट भरकर मार खाने या देने के बाद लड़नेवाले शान्त हो जाते हैं और दूसरे की सहायता खोजने नहीं जाते ।

जिस जगह दोनों पक्षों ने लड़ लेने का निश्चय किया हो, वहाँ उन्हें बाद में बदला लेने या बाहर की मदद लेने का विचार छोड़ देना चाहिए ।

एक मुहल्ले का झगड़ा दूसरे मुहल्ले में हरगिज नहीं ले जाना चाहिए ।

स्त्रियों, बूढ़ों, अपंगों और बालकों पर या शान्त रहनेवाले व्यक्तियों पर हमले नहीं करने चाहिए ।

इतने नियमों का पालन हो तो यह मर्यादा की रक्षा मानी जायगी ।

मुझे आशा है कि गुजरात के हिन्दू-मुसलमान समझपूर्वक सुलह कायम रखेंगे । मुझे उम्मीद है कि उमरेठ के बारे में डर रखने का कुछ भी कारण नहीं होगा । दोनों जातियाँ शुरू से ही मिलकर अपना हिसाब साफ कर लें ।

डर के मारे भाग निकलना या मंदिर छोड़ देना अथवा बाजा छोड़ना या अपनों की रक्षा न करना धर्म नहीं, इन्सानियत नहीं, नामर्दी है । अहिंसा वीरता का लक्षण है, भीरु-डरपोक मनुष्य को अहिंसा का भान तक नहीं हो सकता ।

दोनों जातियों के आम लोग समझदार हो जायँ, साहसी बन जायँ, एक डरना छोड़े, दूसरा डराना छोड़े, इसमें समय लगेगा । इस बीच दोनों जातियों के समझदार वर्ग को तो झगड़े के प्रत्येक प्रसंग पर पंच का सिद्धान्त लागू करने का प्रयत्न करना चाहिए । समझदार वर्ग की स्थिति नाजुक है, मगर इस वर्ग को अपनी सारी शक्ति आम लोगों को शान्त रखने में ही खर्च करनी चाहिए ।

ता० १४-९-१९२४, नवजीवन

३. हिन्दू और मुसलमान

एकता परिषद् तो एकता का आरम्भ-काल है। उसके प्रस्ताव अपूर्ण, उसमें भाग लेनेवाले अपूर्ण, इसलिए आरम्भ भी अपूर्ण। फिर भी यह परिषद् बहुत महत्त्व की थी। उसकी जड़ें गहरी जायँगी। उसके लगाये हुए कोमल वृक्ष की रक्षा करना, उसमें पानी सींचना हमारा काम है।

गहरा विचार करने पर हम देखेंगे कि इस कठिन प्रश्न का हल एक ही बात में है। कोई भी कानून को अपने हाथ में न ले। मैं तो मानता हूँ कि सामनेवाला घर मेरा है, इसलिए मुझे उस पर कब्जा करके बैठ जाना जंगलीपन है। मुझे अपना हक पंच के या अदालत के पास साबित करना चाहिए और पंच के या अदालत के निर्णय का आदर करना चाहिए। जहाँ इस नियम का पालन नहीं होता, वहाँ लोगों का नाश हो जाता है। इस सुनहरे नियम को दोनों पक्ष मान लें, वहाँ तो कहने ही क्या? परन्तु जहाँ एक पक्ष मारपीट ही करना चाहे, वहाँ भी दूसरा पक्ष नियम का पालन करे, तो काफी है। उस पक्ष की अन्त में हानि होगी ही नहीं, यह निश्चित बात है। मान लीजिए कि मेरे घर पर तीसरे आदमी ने कब्जा कर लिया। सुव्यवस्थित समाज में पंच मुझे वापस कब्जा जरूर दिलायेगा। घटिया किस्म के समाज में यह काम अदालत करती है। पंच का दण्ड लोकमत होता है। अदालत की सजा कैदखाना या बन्दूक होती है। प्रत्येक व्यवस्था में मारपीट न करनेवाला अपना कब्जा वापस प्राप्त कर सकता है।

जब तक इस अनिवार्य नियम को हम मान नहीं लेते, तब तक हमारे बीच झगड़े होते ही रहेंगे, इस बारे में कोई शंका न करे। और जब तक ऐसे झगड़े होते रहेंगे, तब तक शान्त उपायों से हम स्वराज्य हरगिज नहीं ले सकेंगे, यह स्वयंसिद्ध जैसी बात है। यह सम्भव हो सकता है कि हिन्दू या मुसलमान दो में से एक को स्वराज्य नहीं चाहिए और स्वराज्य की अपेक्षा झगड़े ज्यादा पसन्द हों, ऐसों के लिए तो कोई भी दलील लागू नहीं होगी। परन्तु जो स्वराज्य चाहते हैं, उनके लिए उपर्युक्त नियम स्वीकार करना अनिवार्य ही है। हमें तो स्वराज्य के बिना जीना दूभर है, इसलिए हम कभी मारपीट के जंगली कानून के वशीभूत न हों।

परन्तु पंच अथवा अदालत का आश्रय लेने के दृढ़ निश्चय के बावजूद कुछ प्रसंग ऐसे आ जाते हैं, जब मन से या बेमन से मारपीट में भाग लेने अथवा भाग जाने या शान्तिपूर्वक मृत्यु की शरण में जाने का समय आ जाता है। मैं भजन-कीर्तन करता हुआ मस्जिद के सामने से निकलता हूँ और मुझ पर कोई हमला कर देता है, तब मैं क्या करूँ ? मेरे ही घर में कोई कब्र बनाने लगता है, तब मैं क्या करूँ ? अथवा एक गरीब मुसलमान खानगी तौर पर अपने घर में गोवध करता है और उस पर हिन्दू टूट पड़ें तो वह क्या करे ? इन तीनों संयोगों में कानून की बाट देखने का समय नहीं होता। तब सम्बद्ध मनुष्य क्या करें ?

यदि उन्हें शान्तिपूर्वक मरना आता हो, तब तो उत्तम उपाय यह है ही। उसकी बराबरी तो पंच भी नहीं कर सकता। परन्तु ऐसा बलिदान सभी हरगिज नहीं दे सकते। तब क्या भाग जायँ ? यह तो कायर का लक्षण है। तब साधारण तौर पर एक ही इलाज रह जाता है। ऐसे समय उन लोगों को मारपीट में भाग लेकर भी अपनी रक्षा करनी ही होगी। यह हक सुव्यवस्थित तंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को है ही और होना ही चाहिए।

परन्तु ऐसे अवसर क्वचित् ही आते हैं। सौ में एक बार मुश्किल से अच्छे मनुष्यों की ऐसी परीक्षा होती है। सामान्य अनुभव ऐसा है कि शान्त होकर बैठनेवाले की ईश्वर परीक्षा नहीं लेता। हम निष्पक्ष होकर विचार करें तो सौ में निन्यानबे उदाहरण ऐसे नजर आयेंगे, जब मारपीट के लिए दोनों पक्ष थोड़ी-बहुत मात्रा में जिम्मेदार होते हैं। ऐसे तमाम उदाहरणों में एक पक्ष भी दोष-रहित रहने का इरादा कर ले तो रह सकता है। और जो ऐसे मामलों में बच जायगा, वह जीतेगा।

ता० २६-१०-१९२४, नवजीवन

परिशिष्ट : ६

ये पवित्र सप्ताह

१. मेरे उपवास

पाठकों को इतना विश्वास आरम्भ में ही दिला देना चाहता हूँ कि मैंने जो उपवास शुरू किये हैं, वे गहरे विचार किये बगैर नहीं किये। असल में असहयोग के शुरू होने के पहले दिन से मेरी जिन्दगी एक बाजी बन गयी है। मैंने अंधे होकर हरगिज छलाँगें नहीं लगायीं। इसके खतरों से मैं पूरी तरह सावधान था। प्रार्थना के बिना मैं कोई काम करता नहीं। मनुष्य कमजोरियों से भरा प्राणी है। अपने कार्यों में निर्दोष बनना उसके लिए कठिन है। जिसे वह अपनी प्रार्थना के उत्तर के रूप में मानता है, वह अक्सर उसके अहंकार की परछाईं भी हो सकती है। अचूक मार्ग-दर्शन के लिए ऐसा सम्पूर्ण निर्दोष हृदय चाहिए, जिसे पाप छू ही न सके। मैं ऐसी निर्दोषता का दावा कैसे करूँ? मैं तो एक गिरता-पड़ता, जूझता-भूलता और बार-बार प्रयत्न करता हुआ अपूर्ण जीव ठहरा। मुझे तो अपने और अपनों पर प्रयोग करके ही ऊपर उठना होगा। मेरा तो ईश्वर की सम्पूर्ण एकता में विश्वास है। और इसलिए मैं मानव-जाति की एकता में भी विश्वास रखता हूँ। हम शरीर से भले ही असंख्य हों, परन्तु घट-घट में व्यापक एक ही आत्मा सबमें विराजमान है। एक ही सूर्य की किरणें परावतन पाकर असंख्य दिखाई देती हैं। फिर भी सबका उद्‌गम-स्थान एक ही है। इसीलिए मैं तो पापी-से-पापी जीव से भी अपने को अलग नहीं कर सकता। (वैसे ही पवित्र-से-पवित्र आत्माओं के साथ अभेद-भाव से भी इनकार नहीं कर सकता) इसलिए मैं चाहूँ या न चाहूँ तो भी अपने प्रयोगों में अपनी सारी जाति को अनायास शामिल कर ही लूँगा। इसी तरह ये प्रयोग मुझसे छोड़े भी नहीं जा सकते। जीवन ही प्रयोगों की एक अनन्त माला नहीं तो और क्या है?

मैं जानता था कि असहयोग जोखिमभरा प्रयोग है। असहयोग स्वयं तो अस्वाभाविक, बुरी, पापी चीज है। परन्तु अहिंसात्मक असहयोग प्रसंगोपात्त पवित्र कर्तव्य बन जाता है, यह मेरी अन्तरात्मा गवाही देती है। अनेक प्रसंगों पर मैंने यह साबित किया है। अराजकता और उससे भी बुरी वस्तुस्थितियों के बीच अहिंसात्मक असहयोग एक ही तरणोपाय था और इस असहयोग को काया, मन और वचन से अहिंसात्मक रहकर चलाने का संकल्प होने के कारण मैंने उसे अपने जीवन के पल्ले बाँधा।

जो हिन्दू और मुसलमान अभी दो ही वर्ष पहले हाथ में हाथ मिलाकर जाहिरा तौर पर इकट्ठे काम कर रहे थे, वे ही आज कई जगह एक-दूसरे के गले काट रहे हैं। यह निःसन्देह साबित करता है कि उनका चलाया हुआ असहयोग अहिंसाभाव से ओतप्रोत नहीं था। इसके चिह्न मैंने बम्बई में, चौरीचौरा में और कई और छोटे उपद्रवों में देखे। मैंने उसके लिए प्रायश्चित्त किये। उस हद तक उनका असर भी हुआ। परन्तु इस बार का यह दावानल तो कल्पनातीत था। कोहाट के करुण काण्ड की कथा सुनने के बाद उसकी यातनाएँ मुझे असह्य लगीं। जब साबरमती से दिल्ली के लिए रवाना हुआ, तब सरोजिनी देवी ने मुझे लिखा था कि शान्ति के भाषण और उपदेश देने से कुछ नहीं होगा। मुझे कोई निश्चित इलाज जरूर ढूँढ़ना चाहिए। इस प्रकार मुझ पर उन्होंने जिम्मेदारी डाली, यह ठीक ही था। क्या मैं ही लोगों में आनेवाली विशाल चेतना का निमित्त कारण नहीं बना था? और यही चेतनशक्ति यदि आज आत्मघाती बन रही हो तो उसका इलाज भी मुझीको खोजना होगा। मैंने उन्हें जवाब लिखा था कि सिर नीचा करके लगे रहने से ही मैं इसका इलाज ढूँढ़ सकूँगा। कोरी प्रार्थना तो निरर्थक ही है। उस समय मेरी कल्पना में भी नहीं था कि वह इलाज इस बार का यह २१ दिन का उपवास होगा। फिर भी मैं जानता हूँ कि मेरे अन्तर की व्यथा को बुझाने के लिए २१ दिन का उपवास काफी नहीं। क्या मैंने रास्ता छोड़ दिया है? मैं अधीर हो गया हूँ? मैंने आपके साथ समझौता तो नहीं कर लिया? ये सब दोष मेरे हाथों हुए हों या न हुए हों, मैं तो इस समय जो देख रहा हूँ, उतना ही जानता हूँ। जो आज एक-दूसरे के साथ लड़ रहे हैं, उन्होंने सच्ची अहिंसा और सत्य को जाना हो तो इस समय हो

रही यादवस्थली असंभव होती। मेरी जिम्मेदारी कहीं न कहीं इस वस्तु-स्थिति के लिए अवश्य रही है।

अमेठी, सांभर और गुलबर्गा की घटनाओं ने मुझे हिला डाला था। अमेठी और संभल से सम्बद्ध हिन्दू और मुसलमान मित्रों के तैयार किये हुए विवरण मैंने पढ़े थे। गुलबर्गा की घटना के बारे में वहाँ स्वयं जाँच करके आनेवाले हिन्दू-मुसलमान मित्रों के भेजे हुए संयुक्त निर्णय मैंने देख लिये थे। गहरी व्यथा से मैं व्याकुल हो जाता था, फिर भी मेरे पास कोई उपाय नहीं था। इतने में कोहाट की खबरें आयीं और धधकती आग भड़क उठी। कुछ न कुछ करना अनिवार्य हो गया। दो रातें व्यथा और बेचैनी में बीतीं। बुधवार को मुझे उपाय सूझा। मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए। आश्रम में रोज सुबह प्रार्थना में करुणाब्धि शिव से जाने-अनजाने हुए पापों के लिए क्षमा माँगी जाती है। मेरा प्रायश्चित्त अज्ञात में हुए अपराध की क्षमा के लिए रक्त टपकनेवाले हृदय की प्रार्थना है।

हिन्दू-मुसलमान दोनों मुझे चाहने का दावा करते हैं। उनके लिए यह चेतावनी है। यदि उन्होंने मुझे सचमुच चाहा हो और यदि मैं उनके प्रेम का पात्र सिद्ध हुआ हूँ तो वे भी अपने अन्तर में से ईश्वर को पद-भ्रष्ट करने के इस महापाप के लिए मेरे साथ प्रायश्चित्त करें। एक-दूसरे के धर्म की निन्दा करना, चाहे जैसे विचारहीन वक्तव्य निकालना, असत्य का उच्चारण करना, निर्दोषों के प्राण लेना, मंदिरों और मस्जिदों को अपवित्र करना——यह सब ईश्वर को पद-भ्रष्ट करना नहीं तो और क्या है? दुनिया हमारी यह घर बर्बाद करनेवाली खानाजंगी देख रही है——कोई आनन्द से, कोई विषाद से। हमने शैतान का साथ दिया है। धर्म——फिर उसे नाम कुछ भी दीजिए——का मार्ग कठिन है। हिन्दू-मुसलमानों के लिए इस सबका प्रायश्चित्त यह नहीं कि उपवास करें, परन्तु यह है कि अपने कदम पीछे हटा लें। मुसलमानों के लिए सच्चा प्रायश्चित्त यही है कि अपने हिन्दू भाइयों के लिए अपने मन में से सब द्वेषभाव निकाल डालें। और हिन्दू भी अपने मन से मुसलमानों के बारे में कुविचार-मात्र निकाल दें, यही उनके लिए आज सच्चा प्रायश्चित्त है।

कोई भी हिन्दू या मुसलमान अपने धार्मिक सिद्धान्त तिलभर भी छोड़े, यह मैं नहीं चाहता। केवल इतनी खात्री कर लें कि यह मामला सचमुच

धर्म है। परन्तु प्रत्येक हिन्दू-मुसलमान से मैं इतना अनुरोध करता हूँ कि सांसारिक लाभ की खातिर तो वे हरगिज मारकाट न करें। यदि एक भी जाति मेरे उपवास के कारण सिद्धान्त के मामले में झुक जाय तो मुझे बेशक बड़ा दुःख होगा। मेरा उपवास मेरे और मेरे मालिक के बीच का मामला है।

मैंने मित्रों के साथ सलाह-मशविरा नहीं किया। हकीमजी से भी, जो बुधवार को ही दोपहर में लम्बे समय तक मेरे साथ थे, मैंने अपने उपवास के इरादे की बात नहीं की। मौ० मुहम्मदअली से भी, जिनके घर में आतिथ्य भोग रहा हूँ, कोई बात नहीं की। जब मनुष्य अपने सरजनहार के साथ अपना हिसाब कर लेने को निकलता है, तब वह तीसरे आदमी के साथ परामर्श नहीं करता; करना भी नहीं चाहिए। हाँ, यदि उसके मन में कोई शंका या अन्देशा रह जाता हो तो जरूर सलाह ले। परन्तु मेरे मन में तो, मुझे जो कदम उठाना था, उसके बारे में कोई आशंका रही नहीं थी। मित्र तो मुझे उपवास करने से रोकने का ही प्रयत्न करना अपना फर्ज समझते। ऐसी बातें सलाह या दलीलें करके करने की होती ही नहीं। यह अन्तर की वेदना का मामला है। जब राम ने अपना धर्म पालन करने का निर्णय किया, तब अपनी प्रिय माता के विलाप से, गुरुओं की सलाह से, अयोध्यावासियों के अनुनय-विनय से या अपने वियोग के परिणामस्वरूप पिता की निश्चित मृत्यु की आशंका से—किसीसे भी वे विचलित नहीं हुए। ये सब बातें क्षणिक रहीं। राम ने यदि इस प्रकार प्रत्येक लालच के सामने अपना जी वज्र के समान न किया होता तो हिन्दू-धर्म की आज इतनी महिमा न होती। उन्होंने जान लिया था कि जगत् की सेवा के लिए और भावी प्रजा के लिए आदर्शरूप बनने की खातिर हर प्रकार के कष्ट सहना अनिवार्य है।

परन्तु मुसलमान के घर में आकर इस किस्म का उपवास करना क्या मेरे लिए उचित था? हाँ, जरूर था। मेरे उपवास किसीके भी प्रति क्रोध अथवा द्वेष से उत्पन्न नहीं हुए। उल्टे मुसलमान के घर में रहकर मैं यह कर रहा हूँ, यह एक ही तथ्य उपवास का ऐसा कोई अर्थ करने के विरुद्ध ठोस-से-ठोस दलील है। इसलिए यह उचित ही हुआ कि यह उपवास एक मुसलमान भाई के घर में शुरू हो और पूरा हो।

और मुहम्मदअली भी कौन हैं ? इस उपवास से दो ही दिन पहले एक खानगी मामले में हमारे बीच चर्चा हुई थी, जिसमें मैंने इन्हें कहा था कि जो कुछ मेरा था, वह उनका था और जो उनका था, वह मेरा था। मैं जनता की जानकारी के लिए इतना भी कह दूँ कि मौ० मुहम्मदअली के घर में मुझे जो हार्दिकता मिल रही है, उससे अधिक मुझे कहीं नहीं मिली। मेरी प्रत्येक आवश्यकता का पहले से ही विचार किया जाता है। घर का हरएक आदमी एक ही विचार लेकर दिनभर फिरता है, और वह यह कि मुझे किस तरह सुख और सुविधा से रखा जाय। डॉ० अनसारी और डॉ० अब्दुर रहमान मेरे डॉक्टर हो गये हैं। मैंने अपने जीवन में अनेक सुख के प्रसंग देखे हैं। यह प्रसंग पहले के प्रसंगों से किसी भी तरह कम नहीं। रोटी ही कोई मनुष्य के लिए सर्वस्व नहीं। मैं तो आजकल यहाँ अपने आसपास अपार प्रेम अनुभव कर रहा हूँ। रोटी से यह मेरे लिए अधिक है।

किसी-किसी जगह ऐसी बात होती सुनी जाती है कि मुसलमानों के साथ इतना ज्यादा घुल-मिलकर मैं अब हिन्दुओं के मन को समझाने की योग्यता खो बैठा हूँ। हिन्दुओं की भावना या हिन्दुओं का मन मैं खुद हूँ। मैं जो हड्डी-हड्डी और रोम-रोम में हिन्दू हूँ, उसे फिर भी हिन्दुओं के मन जानने के लिए हिन्दुओं के बीच में रहना सचमुच बाकी होगा ? यदि अत्यन्त प्रतिकूल वातावरण के बीच में भी मेरा हिन्दुत्व कायम और कामयाब नहीं रह सकता हो तो वह सचमुच कौड़ी की कीमत का ही हो सकता है। मेरा तो रोम-रोम पुकार उठेगा कि हिन्दू-धर्म के लिए क्या जरूरी है। परन्तु मुसलमानों का मन जानने के लिए मुझे जरूर मेहनत करनी पड़ेगी। फिर जैसे मैं उत्तम मुसलमानों के परिचय में आऊँगा, वैसे मुझे मुसलमानों और उनके कृत्यों की अधिक ठीक कल्पना होगी। दोनों जातियों के बीच श्रेष्ठ जोड़नेवाला तत्त्व बनने की मैं कोशिश कर रहा हूँ। मेरी अभिलाषा तो यह है कि जरूरत हो तो अपने खून से दोनों को जोड़ूँ। परन्तु मैं ऐसा कर सकूँ, इससे पहले मुझे मुसलमानों को बता देना होगा कि मैं उन्हें हिन्दुओं-जितना ही चाहता हूँ। मेरा धर्म मुझे सबको बराबर ही प्रेम करना सिखाता है। इस बात का साक्षात्कार करने में ईश्वर मेरी मदद करे। मेरा उपवास अन्य बातों के साथ ऐसे

समत्वयुक्त और अपार्थिव प्रेम के लिए मुझे समर्थ बनाने के लिए नियोजित है।

(ता० २२-९-१९२४, 'यंग इंडिया')

२. ईश्वर एक है

पिछले गुरुवार को रात में कुछ मुसलमान मित्र मुझे पहले से सूचना देकर तदनुसार मिलने आये थे। वे मुझे आग्रही और साफ दिल के लगते थे। शुद्धि और संगठन के विरुद्ध उन्हें बहुत कहना था। मैं तो इन दोनों के बारे में अपनी राय बता चुका हूँ। यथासंभव चर्चास्पद विषयों के सम्बन्ध में इन पवित्र सप्ताहों में कुछ कहने की इच्छा नहीं। मैं तो हिन्दू-मुसलिम-एकता के प्रश्न के निराकरण के रूप में उन्होंने जो बात बतायी, उस पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा : 'हम वेद के अपौरुषेयत्व में विश्वास रखते हैं। हम श्रीकृष्ण महाराज और रामचन्द्रजी महाराज को मानते हैं। (महाराज शब्द उन्होंने इस्तेमाल किया था) तब हिन्दू भी कुरान को अपौरुषेय ग्रन्थ क्यों नहीं मान सकते और हमारे साथ क्यों नहीं पुकार सकते कि **"ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह"** (ईश्वर के सिवा कोई देवता नहीं और मुहम्मद उसका पैगम्बर है) ? हमारा धर्म बहिष्कारवादी नहीं। यह तो तत्त्वतः सबका समास करनेवाला है।'

मैंने उनसे कहा कि यह निराकरण आप कहते हैं उतना आसान नहीं; आपका सिद्धान्त थोड़े से शिक्षितों के लिए भले ही काफी हो। परन्तु साधारण आदमी के लिए तो वह निष्फल ही हो जायगा। सामान्य हिन्दू के लिए तो गो-रक्षा और बाजे सहित हरिकीर्तन, फिर मस्जिद के सामने होकर निकलना पड़े तो भी--इन चीजों में ही हिन्दुत्व का सार-सर्वस्व गर्भित है। और आम मुसलमान के लिए गोकुशी और बाजे बजाना बन्द कराने में इसलाम का सार-सर्वस्व आ जाता है। इसलिए हिन्दू मुसलमानों से जब्रन् गोकुशी बन्द कराने का विचार छोड़ दें और मुसलमान हिन्दुओं से जबरदस्ती बाजे बन्द कराने का विचार छोड़ दें, यह जरूरी है। और बाद में गोवध करने और बाजे बजाने के बारे में नियम बनाने का काम

उन जातियों की भलमनसाहत पर छोड़ दिया जाय। जैसे-जैसे सहिष्णुता बढ़ती जायगी, वैसे-वैसे इन दोनों प्रथाओं में मर्यादा आती जायगी। परन्तु मैं यहाँ इस कूट प्रश्न के विस्तार में जाना नहीं चाहता।

मैं तो उन मुसलमान मित्रों के प्रस्तुत किये हुए आकर्षक सिद्धान्त की आलोचना करना चाहता हूँ; और यह जानना चाहता हूँ कि कितनी बात मैं स्वीकार कर सकता हूँ। और मेरी भावना सम्पूर्ण रूप में हिन्दू होने के कारण मुझे विश्वास है कि मुझे जो कहना है, वह हिन्दू-समाज के बड़े भाग को भी पसन्द आयेगा। सच बात तो यह है कि आम मुसलमान वेद का अथवा दूसरे हिन्दू शास्त्रों का अपौरुषेयत्व अथवा कृष्ण तथा राम को रसूल या ईश्वर के अवतार नहीं मानता। कुरान और पैगम्बर साहब को नीचे गिराने का खयाल तो हिन्दुओं के मन में हाल ही में जमा है। वैसे हिन्दू हल्कों में पैगम्बर साहब का पूज्यभाव से उल्लेख होते मैंने पाया है। और इसलाम की तारीफ करनेवाले हिन्दू-भजन भी हैं।

सिद्धान्त का पूर्वार्ध लें। ईश्वर सचमुच एक ही है, अद्वितीय है। वह अगम्य, अज्ञेय और मनुष्य-जाति के बहुत बड़े भाग के लिए तो अज्ञात ही है। वह सर्वव्यापी है। आँखों के बिना देखता है, कानों के बिना सुनता है। वह निराकार है और अभेद्य है। वह अजन्मा है, उसके माता नहीं, पिता नहीं, संतति नहीं। फिर भी वह अपने को पिता, माता, स्त्री और बालक के रूप में पूजने देता है, वह तो अपने को पत्थर अथवा किसी भी जड़ पदार्थ के रूप में भी पूजने देता है, यद्यपि वह इनमें से एक भी वस्तु नहीं। वह पकड़ने से पकड़ा नहीं जाता। हम समझें तो वह हमारे पास ही बैठा है। उसकी सर्वव्यापकता हम न समझना चाहें तो वह दूर से भी दूर है। वेदों में बहुत देवता हैं। दूसरे धार्मिक ग्रन्थ उन्हें फरिश्ते कहते हैं। परन्तु वेदों में एक ही ईश्वर की धुन है—वे एक ही ईश्वर को भजते हैं।

कुरान को ईश्वर-प्रेरित मानने में मुझे संकोच नहीं, जैसे बाइबिल और जेन्द अवस्ता, ग्रन्थसाहब और अन्य निर्मल शास्त्रों को ईश्वर-प्रेरित मानने में नहीं है। ईश्वर-प्रेरित ग्रन्थों का ठीका किसी भी एक राष्ट्र अथवा जाति का नहीं। यदि मैं हिन्दू-धर्म को जरा भी समझता हूँ, तो वह तत्त्वतः व्यापक, सदा वर्धमान तथा परिस्थिति के अनुसार नया बननेवाला

है। कल्पना, तर्क और बुद्धि के लिए उसमें पूरी गुंजाइश है। कुरान और पैगम्बर साहब के लिए आदर पैदा करने में हिन्दुओं में मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। परन्तु मुसलमान हल्कों में वेद तथा अवतारों के प्रति आदर उत्पन्न करने में कठिनाई अनुभव की है। अफ्रीका में मेरे एक बहुत ही भले मुसलमान मुवक्किल थे। वे आज जिन्दा नहीं हैं, इसका मुझे शोक है। हमारे बीच मुवक्किल और वकील के सम्बन्ध ने बाद में गाढ़ मैत्री और परस्पर सम्मान की भावना का रूप ग्रहण कर लिया। हम बहुत बार धार्मिक चर्चाएँ करते थे। मेरे मित्र यद्यपि किसी अर्थ में भी शिक्षित नहीं माने जा सकते थे, फिर भी उनकी बुद्धि कुशाग्र और तीक्ष्ण थी। वे कुरान के बारे में पूरी जानकारी रखते थे। दूसरे धर्मों के बारे में भी कुछ न कुछ जानते थे। मैं इसलाम स्वीकार करूँ, यह उन्हें भाता था। मैंने उन्हें कहा: 'मैं कुरान और पैगम्बर साहब का पूरी तरह सम्मान कर सकता हूँ, तब आप मुझे वेदों और अवतारों का इनकार करने को क्यों कहते हैं? आज मुझमें जो कुछ है, वह इसीका प्रताप है। और भगवद्गीता और तुलसीदास की रामायण में मुझे बड़ी-से-बड़ी सान्त्वना मिलती है। मुझे खुले दिल से कहना पड़ता है कि कुरान, बाइबिल और दुनिया के दूसरे धर्मग्रन्थों के प्रति मुझे खूब आदर होने पर भी वे मुझ पर कृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण के बराबर असर नहीं करते।' मेरे मित्र मेरे बारे में निराश हुए और निःसंकोच कहने लगे कि मेरे भीतर कुछ न कुछ खामी होनी चाहिए। परन्तु ये मित्र अपवादस्वरूप नहीं हैं। उसके बाद मुझे कई ऐसे मुसलमान मित्र मिले हैं, जो उनके जैसी ही राय रखते हैं। परन्तु मुझे तो लगता ही है कि यह मनोदशा क्षणिक है। 'हारून-अल-रशीद और मामुन के दिनों का इसलाम दुनिया के सब धर्मों में अधिक-से-अधिक सहिष्णु था', न्यायमूर्ति अमीरअली की इस राय से मैं बिलकुल सहमत होता हूँ। बाद में हारून-अल-रशीद और मामुन के समय के धर्मगुरुओं की उदार वृत्ति के विरुद्ध प्रत्याघात हुआ था। प्रतिगामियों में बहुत विद्वान्, विचक्षण और प्रभावशाली मनुष्य थे। उन्होंने इसलाम के उदार और सहिष्णु गुरुओं और तत्त्ववेत्ताओं के आसन हिला डाले। इस प्रतिक्रिया के बुरे असर के परिणाम हम भारत में अब भी भोग रहे हैं। परन्तु मुझे जरा भी संशय नहीं कि अनुदारता और असहिष्णुता को धो डालने की शक्ति इसलाम में मौजूद है। उन मुसलमान मित्रों के

बताये हुए सिद्धान्त की व्यापक स्वीकृति हो, ऐसे जमाने की तरफ मनुष्य-जाति प्रगति कर रही है। इस समय वास्तविक आवश्यकता एक धर्म की नहीं, परन्तु अलग-अलग धर्मों के अनुयायियों में परस्पर सम्मान और सहिष्णुता की है। हम सब धर्मों को मृतवत् एक स्तर पर लाना नहीं चाहते। हमें विविधता में एकता करनी है। पूर्व परम्पराओं को तोड़ना अथवा आनुवंशिक संस्कारों तथा जलवायु और दूसरे हालात के असर के कारण पड़े हुए रिवाजों को नष्ट करने के समस्त प्रयत्न निष्फल ही नहीं होंगे, परन्तु वह अधर्म्य हैं। सब धर्मों की आत्मा एक है, परन्तु वह अनेक रूपों में बँधी हुई है। यह चीज काल के अन्त तक कायम रहेगी। समझदार मनुष्य बाहर के कलेवर की अवहेलना करके अलग-अलग रूपों में रहनेवाली आत्मा को ही देखेंगे। मुसलमान अपनी ही कल्पना के इसलाम की सत्ता दुनिया में रहने की अभिलाषा रखें, यह जितना मिथ्या है, उतना ही मिथ्या यह है कि हिन्दू भारत से इसलाम, ईसाई धर्म और पारसी मजहब को निकाल बाहर करने की अभिलाषा रखें। परन्तु एक ही ईश्वर और उसके पैगम्बरों की अनन्त परम्परा की मान्यता से यदि इसलाम को सन्तोष होता हो तो हम सब मुसलमान हैं, परन्तु उसीके साथ हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं। सत्य किसी भी एक धर्मग्रन्थ की स्वतन्त्र सम्पत्ति नहीं है।

(ता० २५-९-१९२४, 'यंग इंडिया')

३. पाठक

मैं तुम्हें क्या लिखूँ ? मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध मेरी दृष्टि से असाधारण है। 'नवजीवन' का सम्पादक-पद मैंने न तो धन के लोभ से लिया, न कीर्ति के लोभ से। मैंने तो यह पद अपने शब्दों के द्वारा तुम्हारे हृदय में पैठने के लिए स्वीकार किया है। मेरे हाथ में यह अनायास आ पड़ा। परन्तु यह आया, तब से मैंने तुम्हारा ही चिन्तन किया है। प्रति सप्ताह मैंने 'नवजीवन' में अपनी आत्मा उँडेलने का प्रयत्न किया है। एक भी शब्द ईश्वर को साक्षी रखे बिना मैंने इसमें नहीं लिखा। मैंने ऐसा धर्म नहीं जाना कि तुम्हें पसन्द होनेवाली प्रसादी ही दूँ। कई बार मैंने कड़वी घूँटें पिलायी हैं। परन्तु कड़वी या मीठी प्रत्येक घूँट में मैंने

वही बताने का प्रयत्न किया है, जिसे मैंने स्वच्छ धर्म माना है, स्वच्छ देश-सेवा माना है।

आज मैं उपवास कर रहा हूँ तो सम्पादक-पद के लिए अधिक योग्य बनने की खातिर। मैं जानता हूँ कि 'नवजीवन' के अनेक पाठक भाई-बहन मेरे लेखों से मार्गदर्शन पाते हैं। उन्हें गलत ढंग से नेतृत्व देकर मैंने हानि पहुँचायी हो तो? यह विचार मुझे खटकता ही रहता था।

अस्पृश्यता के बारे में मुझे लेशमात्र भी शंका कभी नहीं हुई। चरखे के सम्बन्ध में सन्देह की गुंजाइश ही नहीं। चरखा लँगड़े की लाठी है, भूख से पीड़ित की भूख मिटाने का साधन है, गरीब स्त्री के लिए उसके सतीत्व की रक्षा करनेवाला किला है। चरखे को सार्वजनिक रूप में स्वीकार किये बिना हिन्दुस्तान की भुखमरी दूर होना मैं असंभव समझता हूँ। इसलिए चरखा चलाने या उसका प्रचार करने में कहीं भी भूल की गुंजाइश नहीं।

हिन्दू-मुसलिम-एकता की आवश्यकता के विषय में कहीं भी सन्देह के लिए स्थान नहीं। उसके बिना स्वराज्य आकाश-कुसुम के समान है।

परन्तु विशाल अहिंसा को अपनाने के लिए तुम तैयार हो या नहीं, इस बारे में मुझे सदा ही शंका रही है। मैंने पुकार-पुकारकर कहा तो है ही कि अहिंसा––क्षमा वीर का लक्षण है। मारने की जिसमें शक्ति है, वही मारने का संयम करेगा। मेरे लेखों से तुम भीरुता को अहिंसा मान लो तो? अपनों की रक्षा करने का धर्म तुम खो बैठो तो? तब तो मेरी अधोगति ही होगी। मैंने बहुत बार लिखा है, कहा है कि कायरता कभी धर्म हो ही नहीं सकती। इस संसार में तलवार का स्थान अवश्य है, परन्तु कायरता के लिए हरगिज नहीं। कायर का क्षय ही संभव है। इसका तो क्षय ही उचित है। परन्तु मैंने तो यह बताने का प्रयत्न किया है कि तलवार चलानेवाले का भी क्षय ही है। तलवार से मनुष्य किसे बचाये और किसे मारे? आत्मबल के सामने तलवार की ताकत तिनके के बराबर है। अहिंसा आत्मा का बल है; तलवार शरीर का बल है। तलवार का उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिंसा का उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है। यह चीज न समझनेवाले को तो तलवार काम में लेकर भी अपने आश्रितों की रक्षा जरूर करनी चाहिए।

ऐसा अमूल्य अहिंसा-धर्म मैं शब्दों के द्वारा नहीं बता सकता। इसका पालन तो पालन करके ही कराया जा सकता है। इसलिए मैं इस समय इस धर्म का पालन कर रहा हूँ। मेरे मन्दिरों को तोड़नेवाले मुसलमानों को मैं तलवार के जरिये नहीं मारूँगा; उन पर मैं क्रोध नहीं करूँगा; इन्हें भी प्रेम से ही जीतूँगा।

मैंने लिखा है कि भारत में एक ही शुद्ध प्रेमी जन्म ले तो भी वह स्वधर्म की रक्षा कर सकता है। मैं ऐसा बनना चाहता हूँ। तुमको ऐसा बनने के लिए मैंने हमेशा लिखा है।

मैं जानता हूँ कि मुझमें बहुत प्रेम है। परन्तु प्रेम की सीमा ही कहाँ है? मैं यह भी जानता हूँ कि मेरा प्रेम असीम नहीं। परन्तु मैं कहाँ साँप के साथ खिलवाड़ कर सकता हूँ? मुझे पूरा विश्वास है कि अहिंसा की मूर्ति के सामने तो साँप भी रुक जायगा।

उपवास करके मैं अपनी जाँच कर रहा हूँ, विशेष प्रेम विकसित कर रहा हूँ। मैं अपना कर्तव्य करके तुम्हारा कर्तव्य तुम्हें बताना चाहता हूँ। तुम मेरे साथ उपवास करो तो वह निरर्थक है। इसके लिए भी काल, अधिकारादि जरूर चाहिए। तुम्हारा कर्तव्य तो जो तीन चीजें तुम्हारे सामने अलग-अलग ढंग से मैं रख रहा हूँ, उन्हें पूरा करना है। मेरा विश्वास है कि इससे तुम्हें और सब कुछ मिल जायगा।

मेरे उपवास के औचित्य के बारे में सन्देह करने के बजाय, उसके लिए दुःखी होने के बजाय, तुम ईश्वर से यही माँगो कि मेरा उपवास निर्विघ्न पूरा हो और मैं फिर 'नवजीवन' के द्वारा तुम्हारी सेवा करने लगूँ और मेरे शब्दों में अधिक शक्ति आये।

ता० २४-९-१९२४, नवजीवन

तुम्हारा सेवक

मोहनदास गांधी

प्रमुख शब्द-सूची

पठनीय साहित्य

(गांधी-साहित्य)

गांधीजी के संस्मरण	२.५०
अन्तिम झाँकी	१.५०
शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति	१.००
युग-पुरुष गांधी	१.००
अफ्रीका में गांधी	१.००
गांधीजी और विश्व-शान्ति	०.६०
प्यारे बापू (तीन भाग) प्रत्येक	०.५०
गांधी पुण्य-स्मरण	०.५०
गांधी : एक सामाजिक क्रान्तिकारी	०.३७
बापू के जीवन में प्रेम और श्रद्धा	०.३०
बापू की गृह-माधुरी	०.३०

(विनोबा-साहित्य)

गीता-प्रवचन	२.००
शिक्षण-विचार	२.५०
कुरान-सार (हिन्दी)	२.५०
लोकनीति	२.००
शान्ति-सेना	२.००
नामघोषा-सार	१.५०
आत्मज्ञान और विज्ञान	१.५०
स्त्री-शक्ति	१.५०
प्रेरणा-प्रवाह	१.२५
कार्यकर्ता क्या करें ?	१.२५
सर्वोदय-विचार व स्वराज्य-शास्त्र	१.२५
ग्रामाभिमुख खादी	१.००
ज्ञानदेव-चिन्तनिका	१.००
सर्वोदय और साम्यवाद	१.००
व्यापारियों से	०.७५
प्रेममूर्ति ईसा	०.६०
राम-नाम : एक चिन्तन	०.३०

(अन्य साहित्य)

समग्र ग्राम-सेवा की ओर (तीन खंड)	६.००
गाँव-आन्दोलन क्यों ?	२.५०
गांधी-अर्थ-विचार	१.००
सत्याग्रह-विचार और युद्ध-नीति	३.००
सर्वोदय-दर्शन	५.००
अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया	४.००
स्त्री-पुरुष सहजीवन	१.५०
सत्य की खोज	१.५०
लोक-स्वराज्य	०.६०
समाजवाद से सर्वोदय की ओर	०.३७
समय और हम	१२.००
नारद-भक्ति-सूत्र	१.५०
आर्थिक विचारधारा : उदय से सर्वोदय तक	६.००
जाजूजी : जीवन और साधना	१.२५
सहजीवी गाँव : इजराइल का एक प्रयोग	३.००
मेरा गाँव	२.५०
चिंगलिंग (उपन्यास)	३.००
विश्व-शान्ति क्या सम्भव है ?	१.२५
मेरी जीवन-यात्रा : मैत्री-यात्रा	१.००
गो-सेवा की विचारधारा	०.५०
बच्चों की कला और शिक्षा	८.००
बालवाड़ी	३.००
हमारा राष्ट्रीय शिक्षण	२.५०
बुनियादी शिक्षा : क्या और कैसे?	१.२५
समग्र नयी तालीम	१.२५
सफाई : विज्ञान और कला	१.००
बिना पैसे दुनिया का पैदल सफर	३.५०
मेरा निर्माण और विकास	२.२५
किशोरलालभाई की जीवन-साधना	२.००
गुजरात के महाराज	२.००
स्मरणांजलि (जमनालालजी बजाज)	१.५०
मेरा जीवन-विकास	०.५०
नीति-निर्झर	१.२५
ताओ उपनिषद्	०.७५

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी



महादेव
मेरा
अतिरिक्त शरीर
था।
उसको मेरा
वारिस होना था,
पर
मुझे उसका
वारिस होना
पड़ा।

—मो० क० गांधी

महादेवभाई की डायरी

हिन्दी भाषा का महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

- महादेवभाई सन् १९१७ में गांधीजी के पास आये और १५ अगस्त १९४२ को उन्होंने शरीर छोड़ा। इन २५ वर्षों का उनका हर क्षण और कार्य गांधीजी तथा गांधीजी की प्रवृत्तियों को ही समर्पित रहा।

- २५ वर्षों की यह डायरी इसी प्रकार के २० खण्डों में प्रकाशित हो रही है। गांधीजी के पल-पल के जीवन का, सत्य के प्रयोग का प्रामाणिक विवरण इन डायरियों के पृष्ठों में देखिये।

- पूरे खण्डों का प्रकाशन सन् १९६९ में गांधी-शत-संवत्सरी तक हो जाने की आशा है।

- डायरी के अग्रिम या स्थायी ग्राहक बनने पर भारी रिआयत रखी गयी है। कृपया अग्रिम या स्थायी ग्राहक योजना के लिए लिखिये।

○

सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन
राजघाट · वाराणसी

आठ रुपये